

झुर्रियां परिवार के लंबे समय की सुख दुख की झालरें थीं

विनोद कुमार शुक्ल

तद्भव-33 में विलक्षण रचनाकार विनोद कुमार शुक्ल ने अपने जीवन, और रचनात्मकता पर पड़ने वाले उसके प्रभाव को बताने वाली शृंखला की शुरुआत 'अब और दूसरा' से की थी। इस बार पढ़ें अगली कड़ी।

बाबा के पिता जानकी प्रसाद जगतपुर उन्नाव जिला के निवासी थे। पुरखों का नाम हम लोगों को सिखाया जाता था। इसकी जरूरत पूजा, शादी, जनेऊ के समय पड़ती थी। पंडित जी पूछते पिता का नाम शिवगोपाल। बाबा का नाम रामलाल। बाबा के पिता का नाम जानकी प्रसाद इत्यादि। जानकी प्रसाद के दो बेटों में से एक रामलाल उन्नाव जिले के जगतपुर से निकलकर नागपुर होते हुए नांदगांव आए। दूसरे बाबा का परिवार जगतपुर, उन्नाव और झांसी में बस गया। जब बाबा के पिता तक का नाम भी बता देते तो पंडित जी बस! बस! कह रोक देते। जानकी प्रसाद के पिता का नाम किसी ने बताया नहीं।

बाबा 1890 के आसपास नांदगांव आए। उसी वर्ष नागपुर, नांदगांव रेल लाइन से जुड़ा। कलकत्ता की ओर से आने वाली रेल केवल रायपुर तक थी। बाबा नागपुर के पास कामठी में कुछ महीने रुककर नांदगांव आए। नांदगांव से रायपुर तक तब रेलगाड़ी नहीं थी। अजिया का परिवार उत्तर प्रदेश से आकर कामठी में बसा था। उनके पिता की हलवाई की दुकान थी। बाबा ने कुछ महीने उनकी दुकान में काम किया था।

अजिया लंबी थीं। उनका पुरख्यातम था। नई परछी में बोरे पर दीवाल से पीठ टिकाये बैठी

रहतीं। उनके सामने लकड़ी की एक छोटी पेटी रखी होती। पेटी सुंदर थी। उसमें जगह जगह पीतल की पट्टियां टुकी थीं। पेटी को खोलो तो उसमें छोटे छोटे कई खाने थे। उनमें अजिया का सामान रहता। एक खाने में अफीम की छोटी छोटी गोली होती। वे अफीम खाती थीं। राख में लपेटकर उन गोलियों को बनातीं, जिससे वे चिपकती नहीं थीं। रुई लेकर दिया की बाती बनातीं। बाती भी पेटी के एक खाने में होती। दिया जलाने जो मांगता उसको दे देतीं। किसी खाने में चिल्लर पैसे भी होते।

अजिया के कानों में सोने के उत्तन्ने (छल्ले) होते। घर में किसी बेटी की शादी होती तो उत्तन्ना उतारकर दे देतीं। संयुक्त परिवार में अजिया जब उत्तन्ना देतीं तो किसी को अच्छा लगता और किसी को नहीं। अजिया कहतीं—हमका बिटिया का उत्तन्ना देय का है। जिसको पसंद नहीं वह इसे नहीं सुनता। तो दूसरी खुशी से दौड़ पड़ती और अजिया का उत्तन्ना उतारकर अजिया को पकड़ा देतीं। अजिया बिटिया को चिपटाये रीतीं और उत्तन्ना उसके हाथों में दे देतीं।

अजिया का चेहरा बहुत झुर्रियों वाला था। चेहरे की झुर्रियां परिवार के लंबे समय की सुख दुख की झालरें थीं। आंसू आंखों से तो झट निकल आते होंगे पर झुर्रियां उनको कुछ देर टपकने से रोक देतीं। दिन में कई बार खुश होतीं और कई बार दुखी होतीं और रो देतीं।

काम करने वाली रेजाएं या रौताइन जिनके छोटे बच्चे होते घर से निकलने के पहले बच्चे को अफीम चटाकर बाहर निकलतीं।

बाबा के समय से घर में गाय, भैंसें थीं। अजिया सभी जानवरों का दाना अकेले तैयार करती थीं। बाबा की मृत्यु के समय मैं बहुत छोटा था। उनका मुझे स्मरण नहीं।

घर में भांग खाने की भी आदत थी। सबसे बड़े चाचा जो अलग हो गए थे, जब उनके घर जाओ तो प्रायः आरामकुर्सी पर दोनों पैर फैलाए बैठे होते। उनके पास स्टूल पर भांग का गोला होता। बच्चों को छोटी छोटी गोली देते। मुझे भी देते। जो बड़े बच्चे थे, उनको दो गोली दे देते। बड़े चाचा ने घर के सामने खुली जगह में एक ऊंची बल्ली गाड़ रखी थी। बल्ली से ढीली रस्सी से बांधे एक बंदर को पाला था। जो बल्ली के ऊपर एक छोटे से लकड़ी के डब्बे में जाकर बैठ जाता और कभी नीचे उतर आता। उन्होंने एक मैना भी पाल रखी थी। मैना बस्तर की थी और बहुत साफ बोलती थी। कोई बाहर से आता तो 'मन्ना महराज' 'मन्ना महराज' बोलकर बुलाती। बंदर काले मुंह वाला था। कुछ बड़ा हुआ फिर मर गया। मैना भी मर गई। कहा जाता था कि उसके गले में कांटा उग आया था इसलिए मर गई।

मैं औसत विद्यार्थी था। चौंवालीस प्रतिशत नंबर के साथ मैट्रिक पास करने के बाद रायपुर के साइंस कॉलेज में भर्ती हुआ। डूंगाजी कॉलोनी में तब किराये के कमरों में बहुत से विद्यार्थी रहते थे जिन्हें हॉस्टल में जगह नहीं मिली होती। छोटे चाचाजी (किशोरी लाला शुक्ल) पढ़ने का भी खर्च देते। उन्होंने कहा था—कभी जरूरत हो तो भैयाजी से खर्चा मांग लेना। चाचाजी से मुझे खर्चा मिलने में एक बार महीना बीते बहुत दिन हो गए।

बड़ी बहन का ब्याह रायपुर में हुआ था। उन दिनों जीजाजी से मांगने में हिचक होती थी। दीदी की शादी हुये कुछ वर्ष ही हुए थे। दीदी, जीजाजी के साथ सिनेमा देखने कभी जातीं तो घूंघट निकालकर जाती थीं। सिनेमा देखतीं तब भी घूंघट के अंदर से देखती थीं। जीजाजी के छोटे भाई बहुत सिनेमा देखते थे। दीदी को लगता कि बिना घूंघट के सिनेमा देखते हुए किसी ने उनके ससुर को बता दिया तो बहुत मुश्किल होगी। उनसे सब डरते थे। दीदी के यहां जब भी जाता चुपके से अखबार की पुड़िया में घर का बना कुछ खाने का बांधकर मुझे दे देतीं। इसका भी डर लगता कि कोई देख न ले। दीदी को कोई मेरे कारण कुछ कह न दे। दीदी का स्वभाव सबको

अच्छा लगता था।

पैसे कम होते तो सबसे पहले खाने की चिंता होती। दीदी के घर के पीछे पतली गलियों से होकर बैंडबाजा वालों की बस्ती थी। उस मोहल्ले में जगह जगह लोग छोटी छोटी दुकानों में बैठे बैंड बाजा बजाने का अभ्यास करते। मुसलमानों की बस्ती थी। वहीं तिराहे पर एक 'गरीबां' नाम का होटल था। वहां बारह आने में दो पराठे और शोरबा मिल जाता था। मैं कभी कभी खाना खाने वहां चला जाता। और छुपकर किसी आड़ में बैठकर खाता। पर यह मुहल्ला मेरे लिए सुरक्षित था। बजते हुए बैंडबाजों से समारोह जैसा वहां लगता। ऐसा भी हो जाता कि मैं गरीबां होटल के दरवाजे पर जाकर खड़ा होता और तभी कई बैंडबाजे बज उठते। लाल चमकीले, कंधों में सुनहरे झालर के कपड़े पहने आते जाते सड़क पर कई बैंड वाले दिखते। यह मुझे कोई दूसरी दुनिया लगती। बैंडबाजा सुनते हुए प्रायः पहले पराठे में ही शोरबा खतम हो जाता। तो दूसरा पराठा ऐल्यूमिनियम की टेढ़ी चपटी प्लेट में चिपके गाढ़े शोरबा से खाने लगता। कोई अचानक थोड़ा शोरबा प्लेट में डाल जाता तो मैं इस खातिरदारी से खुश हो जाता। बारह आने देकर जाते समय लगता कि फिर दो पराठे और खा लूं। पर तभी कल लगने वाली भूख की याद आ जाती। मैं मिर्च वाले शोरबे के कारण नाक की निकलती सुरसुरी को मिटाने नाक को ऊंगली से पोंछता तो शोरबे की खुशबू आती। फिर मैं कभी कल की लगने वाली भूख को भुलाकर दुबारा दो पराठे खाने होटल चला जाता।

भैया जी रायपुर में भारत बैंक के मैनेजर थे। छह फुट से दो तीन इंच अधिक होंगे। बहुत सुंदर और गौरवर्ण के। ये शिवकरण चाचा के लड़के थे। शिवकरण चाचा सब इंस्पेक्टर थे। इनका ब्याह कानपुर के झकरकटी वाले नाना की बेटी से हुआ था। मेरे जन्म के पहले वे उन्नीस वर्ष की उम्र में विधवा हो गई थीं। सब लोग उन्हें अम्मी कहते थे। अम्मी और अम्मा चचेरी बहनें थीं। शिवकरण चाचा की मृत्यु उनकी अपनी रिवाल्वर से धोखे से हो गई थी।

चाचाजी ने जैसा जो कहा था पैसे मांगने में भारत बैंक गया। चपरासी को कागज में अपना नाम लिखकर भेजा। कागज में ऊपर लिखा भैयाजी, नीचे विनोद। भैयाजी संभवतः मैनेजर थे। अलग कमरे में बैठते थे। भैयाजी ने बुलवा भेजा। बैठने के लिए कहा। सामने कुर्सी पर बैठ गया। उन्होंने मेरी तरफ देखा। मैंने सिर झुकाये कहा—“चाचाजी ने कहा था जरूरत पड़े तो भैयाजी से पैसे मांग लूं।” तभी वे व्यस्त हो गए थे। चपरासी जब तब कोई कागज या रजिस्टर ले आता था। या कोई आदमी अपनी समस्या लेकर उनके पास चला आता। वे बहुत कम बोलते। थोड़ा खाली समय मिला तो उन्होंने झार खोला और पांच रुपये की गड्डी टेबल पर रखी। चार पांच नोट उन्होंने गिने थे कि चपरासी फिर रजिस्टर लेकर आ गया। उन्होंने गड्डी को ड्रॉर में फिर डाल दिया। अब मेरा मन उठने उठने को होने लगा था पर अपने को वहां से निकालकर ले जाने की मुझमें ताकत नहीं बची थी। भैयाजी ने फिर गड्डी निकाली और जल्दी से एक पांच रुपये का नोट निकाला रुपये लेकर मैं उठा। उनका पैर छूने की कोशिश की पर वे व्यस्त थे। मैं बाहर आ गया। वहां से गरीबां होटल समीप था। डेढ़ दो बज रहे थे। और मेरी जेब में पांच रुपये थे। एक अधिक खिन्नता के साथ मैं बहुत खुश था। लेकिन फिर दुबारा उनसे पैसे मांगने नहीं गया।

डूंगाजी कालोनी में बिजली की तंगी रहती थी। बहुत देर तक बिजली नहीं रहती। दूसरे लड़कों के पास कंदील का इंतजाम था। एक दिन मैंने दीदी से कंदील मांगा। उन्होंने मेरे लिए एक कंदील तैयार की। कांच को अच्छे से पोंछा। मिट्टीतैल भरा और मुझे दिया।

मेरे पास एक पुरानी हरे रंग की साइकिल थी। मैंने पुरानी ही खरीदी थी। साइकिल में कंदील लटकाकर मैं दीदी के घर से कुछ दूर ही चला था कि साइकिल का चिमटा टूट गया। मैं छाती

के बल सड़क पर गिर पड़ा और बेहोश सा हो गया। थोड़ी देर बाद जैसे मुझे बहुत दूर से बहुत से लोगों की धीमी धीमी आवाजें सुनाई दीं। गांव की औरतें भी खड़ी थीं। उनकी च! च! के साथ आवाजें आ रही थीं कि बचा कि नहीं। मैं कुछ ठीक होकर उठा तो देखा कंदील मेरी छाती से दबकर टूट गई थी। कांच तो चूरा हो गया था। पर कांच मुझे अधिक नहीं लगा था। हाथ से थोड़ा खून निकल रहा था पर ऑठ फट गए थे। खड़ा हुआ तो कमीज पर मुंह से खून टपका। दूसरों की सहायता से टूटी साइकिल और टूटी कंदील लेकर रिक्शे में बैठा और इंगाजी कॉलोनी आ गया।

जब मैंने लिखना शुरू भी नहीं किया था तब से मुक्तिबोध जी का परिचय मेरे चचेरे बड़े भाई बैकुंठनाथ से हो चुका था। उन्हें रज्जनदादा कहते। वे शिवबिहारी चाचा के बेटे थे। शिवबिहारी चाचा को बाबूजी कहते। बाबूजी बहुत पहले बाबा से अलग हो गए थे। जंगल की ठेकेदारी का काम करते थे। और नांदगांव से दूर बैकुंठपुर में रहा करते थे। मुक्तिबोध जी जब 'हंस' में थे तब रज्जनदादा हंस के ग्राहक हो चुके थे। मुक्तिबोध से उनका तब कोई परिचय नहीं था। मुक्तिबोध जी ने एक दिन बैकुंठनाथ शुक्ल का जिक्र किया कि हंस के ग्राहकों की सूची में जो पता था उसमें बैकुंठनाथ, बैकुंठपुर पढ़कर बहुत अजीब लगता था। जब मुक्तिबोध नागपुर आए तब रज्जनदादा नागपुर में वकालत पढ़ रहे थे। वे कम्यूनिस्ट पार्टी के सक्रिय कार्यकर्ता थे और अंडरग्राउंड भी रहे। फिर मुक्तिबोध से उनकी मित्रता हो गई।

वकालत करने रज्जनदादा बैकुंठपुर के पास जशपुर में आ गए। वे दाढ़ी रखते थे। गरीबों के मुकदमे लेते थे और लोकप्रिय थे। वहां दो प्रसिद्ध वकील थे। एक तो रज्जनदादा, दाढ़ी की वजह से उन्हें झबरा वकील कहा जाता। दूसरे काबरा थे। झबरा और काबरा वहां दो प्रसिद्ध वकीलों का नाम था।

रज्जनदादा ने देर से शादी की। शादी के कुछ महीने हुए थे कि उनको रक्त कैंसर हो गया। और जल्दी उनकी मृत्यु हो गई। बत्तीस वर्ष के थे। रज्जनदादा की मृत्यु के बाद चाचाजी (किशोरी लाला शुक्ल) ने बाबूजी और उनके परिवार को नांदगांव के घर में ही रहने बुलवा लिया था।

रज्जनदादा के रहते मैं जशपुर एक बार गया था। आठवीं नवमी में पढ़ता रहा होऊंगा। उनकी टेबल पर मैंने पहली बार मैक्सिम गोर्की की तस्वीर देखी।

लखनऊ में उनकी शादी हुई थी। भाभी हिन्दी में एम.ए. थीं। जब रज्जनदादा की मृत्यु हुई तो उनका बेटा भाभी के पेट में छह महीने का था।

बाबूजी, ऊंचे पूरे थे। तीखे नाकनकश के और सुंदर। उन दिनों बाहर निकलते तो लाठी लेकर निकलते थे। रज्जनदादा भी बहुत सुंदर थे। बाबूजी का कहना था कि मुक्तिबोध ने रज्जनदादा को कम्यूनिस्ट बनाया। इस कारण बाबूजी मुक्तिबोध जी से लड़ने नागपुर भी गए। तब मुक्तिबोध उन्हें नहीं मिले थे और वे नांदगांव लौट आए। रज्जनदादा शादी नहीं कर रहे थे। सुनते थे कि कम्यूनिस्ट पार्टी में काम करने वाली एक पारसी लड़की केटी उनसे शादी करना चाहती है। पर उन्होंने केटी से शादी नहीं की। रज्जनदादा की मृत्यु के बाद बाबूजी के कठोर स्वभाव के कारण भाभी मायके लखनऊ में ही रहने लगीं। वहां रहते हुए उन्होंने हिन्दी में पी.एच.डी. की।

नांदगांव में चाचाजी और दूसरे लोगों के प्रयास से एक महाविद्यालय खोलने की तैयारी हो रही थी। राजा दिग्विजय दास का किला था। वहां उनके संबंधी और दूसरे भी किराये में रहते थे। किला बिना देखभाल के टूट रहा था। चाचाजी ने दिग्विजय दास को किले में उनके नाम से महाविद्यालय खोलने का प्रस्ताव रखा। दिग्विजय दास ने मना कर दिया। तब चाचाजी ने कहा हम लोग एक झोपड़ी में दिग्विजय दास नाम से महाविद्यालय खोल लेंगे। राजा को शायद लगा झोपड़ी में उनके नाम का महाविद्यालय खुलना ठीक नहीं और उन्होंने किले को दान में दे दिया।

वैसे कविता लिखने की कोशिश मैं मुक्तिबोध जी के नांदगांव आने के पहले से कर रहा था। शिवमंगल चाचा के बड़े बेटे भगवतीप्रसाद कविताएं करते थे। उन्हें बड़े भैया कहते। और शिवमंगल चाचा को बापू। बापू भी सब इंस्पेक्टर थे। तुरां वाली तुर्की टोपी और खाकी की उनकी ड्रेस थी। कब के रिटायर हो चुके थे!! बड़े भइया भी सब इंस्पेक्टर थे। पर उनका स्वभाव स्कूल के मास्टर्स वाला था। पुलिस ट्रेनिंग स्कूल में पढ़ाने का काम उनको अच्छा लगता। बहुत सा समय उनका वहीं बीता। थाने में रहना पसंद नहीं था। उन्होंने छपवाने के लिए एक कविता संग्रह जिसका नाम ही 'संग्रह' था, की पांडुलिपि बनाई। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने भूमिका लिखी। यह संग्रह तो नहीं छपा, भाभी के पास तब बेचने के लिए गहने नहीं थे। इसके पहले दो खंड काव्य भाभी के गहने बेचकर वे इलाहाबाद जाकर छपवा चुके थे। बांटने के बाद भी इन किताबों के बड़े बड़े बंडल घर में पहले रखे रहे। फिर पड़े रहे।

खंड काव्यों का नाम 'हम गरीब हैं' और 'एक रात की कहानी' है। एक दिन मैंने उन्हें बताया कि मैं भी कविता लिखता हूं। तब उन्होंने एक कॉपी मेरे लिए बना दी। फिर उन्होंने कहा तुम्हारे लिए इसमें लिख देता हूं। पहले पेज में लिखा—

*हुजुमे बुलबुल हुआ चमन में
किया जो गुल ने कमाल पैदा।*

फिर और लिखा—

*उम्मीदें टूटने से बहुत सदमा पहुंचता है
उम्मीदें जो करेगा कम
उसे सदमे भी कम होंगे।*

फुलेसर दाई से सभी छत्तीसगढ़ी में बात करते। मैं घरवालों से बैसवाड़ी भी बोलता था। फुलेसर दाई बैसवाड़ी समझ जाती थी। हिन्दी भी बोलता। पर मेरी हिन्दी का बड़े भैया प्रायः मजाक बनाते।

फुलेसर दाई का पूरा, लंबा जीवन हमारे घर में ही बीता। बाद में झुककर वह 90 अंश के कोण में चलते हुए घर आ जाती और बैठी रहती। वह जहां भी बैठती उसके बैठने से मुझे अजिया का बैठना याद आता। चाचाजी उसे पंद्रह रुपये महीने की पेंशन देते।

चाचाजी हम लोगों के खर्च के लिए महीने में पचास रुपये देते थे। महीने के किस दिन ये पचास रुपये मिलेंगे यह निश्चित नहीं था। चाचाजी ने कभी मना नहीं किया पर उन्हें याद नहीं रहता था। बिना याद दिलाए वे नहीं देते थे।

पूरे परिवार के लिए अनाज चाचाजी तथा कुछ और भी खर्च घर सुधरवाने, बिजली आदि का वे ही करते। पर चाचाजी की कोई तारीफ नहीं करता था। सभी दूसरे चाचा यही कहते कि सम्मलित खेती का पैसा है। यह मुझे झूठ लगता। खेती ऐसी ही थी।

जो पचास रुपये हम लोगों को मिलते थे और खर्च के थे जैसे साबुन, तेल, कापी, किताब, पट्टी, बाल कटवाना, व्यवहार में आना जाना और रुपये देना इत्यादि। शादी, जनेऊ, मुंडन इत्यादि निमंत्रण के व्यवहारों में दो रुपये का व्यवहार था।

घर में रोटी गिनकर बनती। और सबको केवल एक रोटी दी जाती। भात तो पेटभर खाते थे। कभी दो रोटी खाने को मन होता था। पर कभी एक रोटी भी नहीं मिलती थी।

खाने का नंबर हम भाई बहनों का बाद में आता था। सुबह का स्कूल होता। दोपहर को छुट्टी होती तो सब मिलाकर आठ दस होते और घर की ओर भागते। बाड़े की गली में चौके की खिड़की खुलती थी। बाड़े के अंदर घुसते ही खाने को दो, खाने को दो चिल्लाते और कोशिश करते जल्दी जल्दी हाथ मुंह धोकर बैठने के लिए पाटा झपट लें। पाटे कम थे। दो तीन। उसमें भी किसी

एक पाटे का एक तरफ का टेका नहीं होता। छोटी थालियां भी दो तीन थीं। बार बार धोकर परसी जातीं। खाने के समय फुलेसर दाई थाली मांजने के लिए तैयार रहती। तीन बड़ी थालियां बड़ों के लिए सुरक्षित रखी जातीं कि कब खाना मांग बैठें। जितनी खुशी से छुट्टी के बाद खाने के लिए घर भागते घर में आते ही भूख कम हो जाती। हम जानते थे अम्मा अपने बेटे, बेटियों को पहले खाना कभी नहीं देंगी। चचेरे भाई बहनों को कई बार अम्मा खुद थाली धो धो कर परसतीं। परसने में चाचियों, भाभियों का भी अपनी तरह से सहयोग होता। किसी भाभी का मन मुझे परसने का हो जाता तो अम्मा जैसे अनजाने में किसी और को थाली दे देतीं। आखिरी में हम बचते और बचा खुचा खाना भी बचता। कुछ न कुछ तो जरूर बचता। खाना खाकर कुछ भूख भी बची रहती। हम लोगों की बची भूख इकट्ठी होकर अम्मा के लिए बची रहती।

छत्तीसगढ़ में अलसी के नीले फूल वाले खेत अब नहीं दिखते। लाखड़ी के नीले फूल वाले खेत भी बहुत कम हो गए। अलसी के फूल जहरीले होते हैं। जानवर अगर ज्यादा चर गए तो मर भी जाते। धान या कोई भी फसल तैयार होने पर खेतों में जानवर छोड़ने की गांव में मनाही होती थी। पर तब भी चरा तो देते।

लाखड़ी (तिवरा) की खेती पहले बहुत होती थी। लाखड़ी की दाल गांवों में खायी भी बहुत जाती थी। सस्ती होती। इसकी दाल भी जहरीली होती। इसके कारण गांव में हाथ पैर टेढ़े होने से लाठी लेकर चलने वाले लोग बढ़ने लगे थे। लाखड़ी की खेती को मना किया जाने लगा। लेकिन अब भी इसकी खेती तो होती है। और अब भी बच्चे, बूढ़े तक लाठी टेककर चलते झुंड गांवों में दिख जाते हैं।

टिपरिया होटलों में अरहर की दाल के बदले लाखड़ी की दाल होती। कभी कभी खाने से कुछ नहीं होता। पर बाद में वहां लाखड़ी दाल खाने से मैं बचने लगा था। हाफ पैंट पहनता तो घुटने मुझे एक दूसरे से दूर धनुषाकार लगते। एक दो लोगों ने टोका भी। तुम्हारे पैर टेढ़े हैं क्या? मैं कहता नहीं। इसके बाद मेरी इच्छा फुलपैंट पहनने की होने लगी। घर में नये कपड़े छोटों के लिए कम बनते थे। बड़ों के कपड़े जो छोटे हो जाते उसे पहनते। बड़ों की पुरानी फुल पैंट ठीक कराकर मैंने पहनना शुरू कर दिया।

चाचाजी का दर्जी दीना का हमारे घर से चार पांच घर छोड़ घर था। सामने बरामदे में मशीन लेकर बैठता। नांदगांव के राजा दिग्विजय दास के कपड़े भी वह सिलता था। वह बड़ा दर्जी था। दीना दर्जी का चश्मा नाक तक खिसका होता और मशीन चलाते चलाते चश्मे के ऊपर से जब हमें देखता तो पुराने कपड़े ठीक कराने की हिम्मत टूट जाती थी। तो लौट जाते। पर कभी लौटते देख बुला भी लेता। नाप लेकर पुराने कपड़ों को हमारे पहनने लायक बना देता।

दीना दर्जी बीच से मांग निकालता था। जैसे बाल गिनकर दोनों तरफ बराबर बराबर करता हो। मैं सोचता कि आईने पर उसके मांग की सीधी लकीर का प्रतिबिंब रोज एक ही जगह पड़ते रहने के कारण आईना ठीक बीच से जरूर तिड़क गया होगा। उसका पेट बड़ा था। मूंछें थीं। गिड्डा था। नांदगांव क्लब में सारे सदस्य उसके ग्राहक थे। क्लब में ब्रिज का खेल होता था। दीना दर्जी भी ब्रिज खेलता। चाचाजी ब्रिज के अच्छे खिलाड़ी थे। दीना दर्जी ने उन्हीं से सीखा, और उनका पार्टनर हो गया। दीना दर्जी धोती और सलूका पहनता, कपड़े सिलते समय भी और क्लब जाते समय भी। वह कहीं भी जाए उसके कंधे पर नाप लेने का टेप हमेशा टंगा होता, ब्रिज खेलते समय भी। चाचाजी नांदगांव मिल की जीन की सफेद पतलून पहनते थे। मिल की मच्छरदानी और सफेद जीन प्रसिद्ध थी।

एक बार चाचाजी अपने बेटे और बेटी के साथ गर्मियों में कश्मीर घूमने गए। मैं बारह तेरह

साल का रहा होऊंगा। वे लौटकर आए तो गरम कपड़ों के थान लाए। हम भाइयों के लिए कोट बनवाया। हम सबका पहला नया कोट था। और उसका नाप घर पर ही दीना ने लिया। परंतु कोट इतने दिनों बाद बने कि बरसात के बाद ठंड बीत गई। बने तो पहनकर देखाभर। कोट पहनने की आदत कभी नहीं बनीं। शादी में जो सूट बना था, शादी के दिन पहना। फिर एक दो बार कोट पहन लिया और पतलून पहनता रहा। एक साथ सूट जैसा नहीं पहना। पतलून बहुत जल्दी फट गई। पर कोट रखे रखे फट गया।

जबलपुर में पढ़ता था। एक बार वहां फोटो खिंचवाने की जरूरत पड़ी। स्टूडियो में फोटो खिंचवाने गया। तीन चार टाइयां वहां टंगी रखी थीं। फोटोग्राफर ने वहां टाई पहनने को कहा। मैंने मना किया। टाई पहनना आता भी नहीं था। उसे लगा होगा कि ऐसे में उसकी खींची फोटो खराब आए। उसने टाई मेरे गले में डाल दी। और गांठ गले तक चढ़ा दी। स्टूडियो में टाई की सुविधा स्टूडियो का प्रचार जैसा था। कुछ लोग टाई के कारण खिंचवाने जाते हों। पूछते हों तुम्हारे पास टाई है?

मुझे हमेशा सस्ते और मटमैले धूसर कपड़े पसंद रहे। एक सूती सस्ता कपड़ा मलेसिया नाम का था। उसका स्लेटी मटमैला रंग मुझे बहुत अच्छा लगता था। उसकी पतलून मैंने बहुत पहनी और रबर की चप्पल। रबर की चप्पल पहनने के पहले टायर से बनी चप्पल भी बहुत पहनी। जूता पहनना मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। जब मैं पोलैंड गया तो कैनवास के जूते पहनकर। यह जानकर कि मैं कैनवास के जूते पहने हुआ हूं मुझे बाहर निकलने से मना कर दिया गया। वहां माइनस 17 डिग्री तापक्रम था। चारों तरफ बर्फ की सफेदी थी। और बर्फ गिर रही थी। फिर भी मनोहर श्याम जोशी का लंबा कोट पहनकर कुछ देर के लिए उनके साथ बाहर निकला। और जुवेनिल यूनिवर्सिटी के कार्यक्रम में श्रीलाल शुक्ल, अशोक वाजपेयी के साथ शामिल हुआ, जिसके लिए मैं वहां गया था।

विश्व पुस्तक मेला में जब फ्रैंकफर्ट गया था तो चमड़े का नया जूता खरीदकर। अनंतमूर्ति भी हमारे साथ थे। बातचीत में उन्होंने बताया कि उन्हें मधुमेह है। तो मैंने भी कहा कि मुझे भी मधुमेह है। फिर मेरे जूते देखकर वे गुस्सा हुये कि मुझे ऐसे जूते नहीं पहनना चाहिये। उनका कहना मुझे अच्छा लगा। उन्होंने मुझे अपना जूता बताया। उनका मधुमेह वालों के लिए बना खास तरह का जूता था।

मेरी रचनाओं में रबर की चप्पल पहने पात्र प्रायः आ जाता है। जीवन में जो लोग टकराते हैं वे रचना में भी आते जैसे टकरा जाते हैं। लेखक रचना में अपनी उपस्थिति पहचानता है। रचना से गैरहाजिर कभी नहीं होता। संपूर्ण काल्पनिक रचना में भी उसके होने के सबूत या चिह्न होते हैं। दूसरे शायद न पहचानें। किताबों का पढ़ना दूसरों के अनुभव को अपना अनुभव बनाने जैसा है। एक छोटी कविता भी संसार जानने की कोशिश है।

जिस तरह दीना दर्जी के मशीन के आसपास बिखरी और कोने में रंगबिरंगी कपड़ों की कतरनें पड़ी होती थीं। जीवन की कतरनें भी रचना के कोने में बिखरी दिखायी दे जातीं। बचपन का गहरा असर बड़े होने के बाद भी बना रहता। बदलता नहीं। बचपन अनुभव की जड़ है। गुल्लक की जमा पूंजी। बुढ़ापे में जिसके सहारे भी जी पा रहे होते।

अक्ती के त्यौहार में गुड्डा गुड्डी का ब्याह रचाया जाता। कतरनों से बनी मिट्टी की गुड़िया दीना दर्जी के यहां से खरीदकर लाते थे। उस घर की एक बूढ़ी स्त्री टोकनी लेकर सामने सड़क पर पाटे पर बैठी होती। वैसी ही कतरनों वाली गुड़िया अक्ती के दिनों में अभी भी मिल जाती है। पोती के लिए बेटा उन गुड़ियों को ले आता, जैसे मेरे लिए भी लाता। हम दोनों खेलते।

नागपंचमी के दिन परिवार की लड़कियां मांगकर लाई इन्हीं कतरनों से गुड़िया बनातीं। और रंगी टोकरी में गुड़िया लेकर भाइयों के साथ तालाब की तरफ जातीं। भाई लोग डंडा लिए पीछे पीछे चलते। साथ में घर की औरतें भी कजरी गाती होतीं। बहनें बड़ी मेहनत से गुड़िया बनातीं। और भाई पीटकर चिंदियों में बदल देते। ऐसा कहा जाता है कि इस तरह सालभर के लिए बहनों पर का सारा गुस्सा भाई बहनों की गुड़ियों पर उतार देता है। बाद में गुड़िया पीटने का यह त्यौहार अम्मा ने बंद करवा दिया।

लड़कियों को बचपन से परिवार में यह अहसास हो जाता था कि लड़कों का महत्व अधिक है। भाई रौब जमाता। बहनें शिकायत करतीं तो शिकायत टाल दी जाती। लड़के और लड़कियों का यह फर्क एक चलन की तरह था। जब लड़कियां कपड़े की गुड़ियां बोहे जा रही होतीं तो कोई एक अच्छी गुड़िया बचा लेने का मन जरूर होता होगा। परंतु पिटने से कोई गुड़िया छूटती नहीं थी। लड़के गुड़ियों को ताक ताककर पीटते।

चाचाजी ने फुलेसर दाई को घर के पीछे रहने के लिए एक खोली दी थी। उसका लड़का भग्गू इतना बड़ा हो चुका था कि चाचाजी का काम करने लगा। फुलेसर, भग्गू इसी खोली में मरे। चाचाजी महीने के खर्च के लिए अम्मा को पचास रुपये देते, फुलेसर दाई ले आया करती। पर कभी एक तारीख के बाद पांच छह दिन होने लगते तो अम्मा फुलेसर दाई से कह चुकने के बाद मुझे कहतीं कि जाओ चाचाजी से खर्चा के लिए रुपये मांग लाओ। कभी मैं चला जाता। कभी छोटी बहन पद्मा चली जाती। पर रुपये मांगने में डर लगता। बचने की कोशिश करते। जब बहुत बहाने करते तब अंत में फुलेसर दाई कहती—“मैं ही लेकर आवत हौं। नई देही तो डांटकर मांगहूं।” वह ऊपर जाती और हमारे लिए रुपये ले आती।

चाचाजी देर से उठते थे। जब तक वे सोते नीचे परिवार के सभी लोग हल्ला करने से बचते। चाचाजी के उठ जाने के बाद नीचे भी धीमी हलचल शुरू हो जाती। यह हलचल चाचाजी की दिनचर्या की जरूरतों के हिसाब से जो पहले से तैयार हो चुकी होती उसे पूरा करने की होती। जोर से बोलना तो तब शुरू होता जब चाचाजी तैयार होकर मिल जाने के लिए निकल जाते। जो उन्हें जाते हुए सबसे पहले जान जाता शायद सबसे पहले वही जोर से बोलना शुरू करता। और जोर से बोलने से अनुमान लगा लेते कि चाचाजी चले गए। यदि उन्हें प्रेमू ने सबसे पहले देखा, और सुबोध ने भी देख लिया तो दोनों जोर से बोलते।

परिवार के जितने भी झगड़े होते वे चाचाजी के जाने के बाद होते। अम्मा बताती थीं कि चाचाओं के भी आपस में झगड़े होते थे। बंदूकें तक निकल आतीं। पर एक बात थी औरतें नहीं लड़ती थीं। आदमी लड़ते और औरतें शांत, सहमी, एक दूसरे को सांत्वना देतीं अपना काम करती रहतीं। हमारा संयुक्त परिवार लंबे समय तक संयुक्त परिवार रहा। भात बनाने की बटलोही परिवार के बढ़ने के साथ बड़ी हो जाती। भात बनाने की बटलोही इतनी बड़ी थी कि दो लोग मिलकर अलग अलग समसी से पकड़कर बड़ी सी परात में पसाते। परात के पसिया को पीतल की कलई की हुई बाल्टी में रख लिया जाता। और इसी समय भीख मांगने वाले आना शुरू कर देते। पुकारते—बाई पसिया पेज दे दे। फिर चिल्लाकर कहते—बाई पसिया मांगथ हूं, दे दे। बार बार कहते। काम छोड़कर कोई जाता और उनके ऐल्यूमिनियम के बर्तन में गिलास भर पसिया डाल देता। पसिया पेज की भीख दी जाती थी।

दूध अधिक होता तो मक्खन निकाला जाता और घी बनाया जाता। लेकिन सभी की रोटी घी से चुपड़ी नहीं जाती थी। अम्मा ही मक्खन निकालतीं और घी बनातीं। एक बार अम्मा ने खुरचन थोड़ा सा इकट्ठा किया। उनका मन मुझे खिलाने को हुआ। अम्मा कोई काम छुपाकर नहीं

करती थीं। चाचाजी घर में नहीं थे। मैं ऊपर की छत से मुनगा तोड़ रहा था। अम्मा ने चौके से निकलकर मुझे आवाज दी—बीनू खुरचन खा लो। सुनकर मैं तेजी से भागा कि दूसरे भी दौड़ पड़ेंगे। भागते हुए मैं सीढ़ी से उतर रहा था। और मैं गिर पड़ा। पैर में बहुत गहरी चोट लगी। महीनों ठीक नहीं हुई। अम्मा को किसी ने बताया मक्खन में सिंदूर लगाकर लगाने से घाव ठीक हो जाएगा। अम्मा मक्खन और सिंदूर का लेप लगातीं। पर यह मलहम दो दिन के लायक था। खतम हो गया। मुनिसपल्टी के अस्पताल में कागज पर मलहम लगाकर दे देते। मैं उसे लगाने लगा। फिर भी ठीक नहीं हुआ। तो अस्पताल जाकर पट्टी बंधवाने लगा। दवाई की दुकान में घाव इत्यादि के लिए उन दिनों 'गमप्लास' मिलता था। उसकी पट्टी गरम करके घाव पर चिपका देते थे। लगाने में तकलीफ नहीं होती थी। पर उसे निकालने में रोएं उखड़ने के कारण तकलीफ होती थी।

नौकर की कमीज में 'गंगे गुरु' एक पात्र हैं। असल में राम टाकीज के पास के चौराहे पर इसी नाम से पान की एक दुकान थी। गंगे गुरु मोटी चोटी रखते और तिलक लगाते। वे अधगंजे थे। सामने बाल कम थे। लगता उनका माथा सिर के बीच तक गया है। माथे पर तो बाल उगते नहीं। यह माथा ही है इसके प्रमाण में वे जहां तक सिर पर बाल नहीं वहां तक टीका लगाते।

प्रायमरी स्कूल में उनका लड़का संपत मेरा सहपाठी था। संपत भी मेरी रचना का पात्र बना। वह भीड़ के नाम से अधिक जाना जाता। चेहरे पर चेचक के गहरे दाग थे। मेरे लिए वह किसी से भी भिड़ जाया करता था। उस समय के छोटे छोटे स्टंट उसी के साथ हुये।

टट्टी करने के बहाने हम दोनों स्कूल से बहुत भागते। तालाब के किनारे बैठ जाते। एक तालाब डबरा जैसा स्कूल के पास था। हाई स्कूल के लड़के भी वहां बैठे मिलते। सड़क के दूसरी तरफ स्टेट हाई स्कूल था। प्रायमरी स्कूल से निकलकर आगे की पढ़ाई इसी स्कूल में हुई।

जब मैं तीसरी कक्षा में था तो छुट्टी के दिन, नहाने हाई स्कूल के प्राचार्य के दफ्तर के सामने के बड़े टांके में जिसके बीच फौव्वारा भी चलता था, सुबह गए। भीड़ के कहने से कपड़े उतारकर टांके में नहाने लगे। गर्मी के दिन थे। देर तक नहाते रहे। पर उस दिन छुट्टी के दिन भी सुबह सुबह दफ्तर खुल गया। और चपरासी हम लोगों के कपड़े चुपचाप लेकर दफ्तर में रख आया। नहाकर बाहर आए तो कपड़े नहीं थे। भीड़ ने अनुमान लगा लिया। वह दफ्तर में नंगा ही घुस गया। मैं टांके के अंदर पानी में जाकर बैठ गया। भीड़ ने वहां पहले झगड़ा किया, चिल्लाया, फिर रोया, फिर हंसते हुए कपड़े लेकर आ गया।

अम्मा के साथ जो शादी में साबुन का डिब्बा आया था, मेरी पत्नी ने संभाल कर रखा था। विस्मृति में भी जैसे चीजें संभाल कर रख दी जाती हैं और याद आने पर मिल जाती हैं। उसने वह डिब्बा मुझे दिया। मैंने खोलकर उसे सूंधा। साबुन की गंध नहीं थी। हल्दी की गंध थी। यह अम्मा का उस समय का सामान है। बसकट के गांठ लगे चार धागे हैं। मैंने उनकी गठानों को गिना। एक धागे में सबसे अधिक चालीस गांठें हैं। दूसरे में सैंतीस, तीसरे में सत्ताईस और चौथे में केवल तीन। अधिक गांठ वाला धागा बड़े भाई दंगू दादा का होगा। अठत्तर वर्ष की उम्र में तीन वर्ष पहले उनकी मृत्यु हुई। अब हम केवल दो भाई हैं। वैसे बड़े होने के बाद हम लोगों का बसकट मनाना बंद हो चुका था। पर अम्मा जन्मदिन में गांठ लगा देती होंगी। जिसमें तीन गांठें लगी हैं वह धागा मेरे बेटे का होगा। साबुन का नाम 'बोरेटा सोप' अंग्रेजी में लिखा है। डिब्बे में एक एक्कनी, एक दुअन्नी और एक चवन्नी है। अम्मा का चश्मा है। कंधी है। हल्दी का टुकड़ा और एक छोटी सुरमेदानी है। एक रुपये और पांच रुपये का नोट भी।

त्रिलोचन : विराट के बीच दुर्धर्ष जिजीविषा

अनिल त्रिपाठी

विरल संयोग है : हिंदी कविता के दो महाकवि त्रिलोचन और मुक्तिबोध की जन्मशती प्रारम्भ हुई है। आगामी अंक में आप गजानन माधव मुक्तिबोध पर सामग्री पढ़ेंगे। इस बार प्रस्तुत है विख्यात और अनूठे कवि त्रिलोचन पर एक लेख एवं उनसे वार्ता।

आधुनिक हिंदी कविता के इतिहास में त्रिलोचन की कविताएं एक महत्त्वपूर्ण परिघटना हैं। एक ऐसा घटित जिसके बारे में बहुत दिनों तक चुप्पी रही बाकी अन्य साथी कवियों की तुलना में उन पर कम बातें हुईं। क्या कारण हो सकता है, कौन सी परिस्थितियां बनीं जो त्रिलोचन के मूल्यांकन में आड़े आईं? त्रिलोचन के इस जन्म शताब्दी वर्ष में उनका विश्लेषण होना चाहिए। पर केदारनाथ सिंह की इस चेतावनी को याद करते हुए कि “त्रिलोचन एक खास अर्थ में आधुनिक हैं और सबसे आश्चर्यजनक तो यह है कि वे आधुनिकता के सारे प्रचलित सांचों को अस्वीकार करते हुए भी आधुनिक हैं। दरअसल वे आज की हिंदी कविता में उस धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं जो आधुनिकता के सारे शोर शराबे के बीच हिंदी भाषा और हिंदी जाति की संघर्षशील चेतना की जड़ों को सींचती हुई चुपचाप बहती रही है..असल में त्रिलोचन की कविता जानी पहचानी समकालीन कविता के समानांतर एक प्रति कविता की हैसियत रखती है और इसलिए इस बात की मांग भी करती है कि उसका मूल्यांकन करते समय आधुनिक कविता के प्रचलित मान मूल्यों को लागू करने की जल्दबाजी न की जाय।”

आज से पैंतीस वर्ष पूर्व केदारनाथ सिंह की यह टिप्पणी त्रिलोचन की कविता के गंभीर मूल्यांकन का प्रस्थानबिंदु है। 1980 में प्रकाशित ‘ताप के तापे हुए दिन’ पर केदारनाथ सिंह की इस प्रतिक्रिया ने त्रिलोचन की कविताओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। 1981 में

अभिरुचि के पहले अंक में यह समीक्षा छपी है। उसी वर्ष इस कृति पर साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला। ध्यान रहे तब तक नामवर सिंह का 'एक नया काव्यशास्त्र' त्रिलोचन के लिए नहीं आया था और न ही राम विलास शर्मा का कोई मूल्यांकनपरक आलेख। आधुनिकतावादी आलेखों की छोड़िये लेकिन दो धुरंधर प्रगतिशील आलोचकों की यह चुप्पी समझ से परे है। जबकि त्रिलोचन की दोनों से गहरी आत्मीयता थी और नामवर सिंह से कुछ ज्यादा थी। 'कैननाइजेशन' की जो प्रक्रिया विचारधारा और कविता के मूल्यों के आधार पर पूर्ण हो जानी चाहिए थी वह तब पूरी न हुई। 'कविता के नये प्रतिमान' और 'नई कविता और अस्तित्वाद' जैसी पुस्तकों में त्रिलोचन संदर्भ का हिस्सा नहीं। कभी कभी लगता है कि प्रयोगवाद और नई कविता के दौर में हिंदी आलोचना के ये दो प्रगतिशील स्तंभ प्रयोगवाद और नई कविता के उन्नायकों द्वारा निर्धारित या उनके द्वारा 'सेट एजेंडा' के चक्रव्यूह में फंस गए थे। अन्यथा वे प्रगतिशील काव्य के सौंदर्यशास्त्र या प्रतिमानों की खोज के बजाय नई कविता के 'टूल्स' या औजारों की खोज में न पड़ते। तब श्रम राग और यथार्थ सौंदर्य की दृढ़ जमीन पर प्रगतिशील काव्य का सोता अप्रतिहत प्रवाहित झरने के रूप में फूट पड़ता। यह तब 'दूसरी परंपरा की खोज' होती जो निराला से लेकर केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर, मुक्तिबोध से होती हुई आठवें दशक के कवियों की कविता तक अविरल प्रवाहित दिखती। राम विलास शर्मा के लिए शमशेर और मुक्तिबोध प्रगतिशील कवि नहीं। वे अज्ञेय के रहस्यवाद की परंपरा में ही हैं। नई कविता के केंद्र में मुक्तिबोध को प्रतिष्ठित करने का श्रेय नामवर जी को दिया जाता है। लेकिन उनके यहां मुक्तिबोध की खोज और प्रतिष्ठा नई कविता के आधुनिकतावादी मानदंडों (टूल्स) के अनुरूप और अनुसार ही है। अस्मिता और तनाव जैसे मूल्य ही उसके केंद्र में हैं।

बात प्रगतिशील काव्यधारा के कैननाइजेशन और त्रिलोचन के मूल्यांकन के संदर्भ में हो रही है। 1987 में आलोचना के संपादकीय के रूप में नामवर जी ने 'एक नया काव्यशास्त्र त्रिलोचन के लिए' लेख लिखा और त्रिलोचन के काव्य वैशिष्ट्य को रेखांकित किया। उसी साल जनसत्ता में भी 'साधारण या असाधारण कवि' लेख लिखा। रामविलास शर्मा ने 1990 में 'रूप तरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि' में त्रिलोचन पर तीन लेख लिखे और प्रगतिशील काव्यधारा में हिंदी जाति के महत्वपूर्ण कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया।

इन लेखों का महत्व असंदिग्ध है फिर भी मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ त्रिलोचन की खोज एवं प्रतिष्ठा तथा प्रगतिशील काव्यधारा को सहज ऋजु रेखा जैसी निरंतरता में देखने का उपक्रम आठवें दशक की कविता के उभार के साथ ही संभव हुआ। राजेश जोशी, अरुण कमल, वीरेन डंगवाल, ज्ञानेंद्र पति, मंगलेश डबराल आदि कवियों की पीढ़ी ने अपने को आधुनिक हिंदी कविता की जिस परंपरा से जोड़ा वह प्रगतिशील चेतना की परंपरा थी। परंपरा दाय की यह खोज इस पीढ़ी के कवियों के लिए अपनी उपलब्धि तो थी ही साथ ही समकालीन कविता के लिए भी थी। परंपरा के विस्तार और पहचान से ही किसी पीढ़ी की विश्वदृष्टि का पता चलता है। उसकी सामूहिक चेतना के निर्माण में सक्रिय क्रियाशील शक्तियों में परंपरा और पहचान की शक्तियों की भूमिका होती है। दरअसल यह उस जमीन की शिनाख्त का मामला है जिस जमीन पर उसकी कविता संभव होती है। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर और मुक्तिबोध उस परंपरा की पांच विभूतियां हैं। राजेश जोशी ने इन्हें 'पंच महाभूत' कहा है। इस प्रगतिशील काव्य चेतना को प्रवाहित धारा के रूप देखना और परखना और उसके आदि स्रोत के रूप में निराला तक जाना इस पीढ़ी का अर्जित काव्यसत्य है। त्रिलोचन के 'ताप के तापे हुए दिन' संग्रह की कविताओं का चयन संचयन राजेश जोशी ने किया है, यह हमें नहीं भूलना चाहिए। संग्रह का नाम भी उन्हीं का दिया हुआ है। केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन के साथ त्रिलोचन, शमशेर और मुक्तिबोध को

बिठाने की क्यूवत इस पीढ़ी में थी। राजेश जोशी ने लिखा है : “त्रिलोचन जी को जानने वाले यह तो मानते थे कि त्रिलोचन एक बड़े कवि हैं लेकिन दुबारा इस हिंदी की साहित्यिक दुनिया में उनके लिए कोई स्पेस बन सकता है इसका भरोसा शायद लोगों को नहीं था। आठवें दशक के कवियों ने ज़िद के साथ अपने इन अद्वितीय कवियों का पुनर्वास किया, और हिंदी कविता की परंपरा जिसे आधुनिकतावादी कविता के अहंकार ने जगह जगह से खंडित कर डाला था, उसकी टूटी बिखरी कड़ियों को फिर से जोड़ने का काम किया। उसे चाहे मेरा अहंकार ही माना जाए लेकिन कहना चाहता हूँ हमने अपने त्रिलोचन और अपने नागार्जुन को फिर से खोजा है। अर्जित किया है। ये वही त्रिलोचन और नागार्जुन नहीं हैं जिन्हें हमसे पहले की पीढ़ियां जानती हैं और उनमें से बहुत सारे लोग जिन्हें विस्मृत कर चुके थे। हम जिस त्रिलोचन की बात कर रहे हैं वह हमारा अपना त्रिलोचन है। यहां निस्संदेह शमशेर और मुक्तिबोध के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। नई कविता दौर के शमशेर और मुक्तिबोध को भी इस पीढ़ी ने अपने लिए अर्जित किया है, इनका अर्थलंकार किया है।”

आठवें दशक के कवियों की इस पीढ़ी ने त्रिलोचन के मूल्यांकन के संदर्भ में आधुनिक कविता के प्रचलित मान्य मूल्यों को लागू करने की न तो जल्दबाजी की और न ही प्रगतिशील साहित्य के परंपरागत मानदंडों को अध्यारोपित ही किया, बल्कि संरचनाओं में बहुत गहरे उतरकर वहां से ऐसे मोती खोजे जिनसे रचनाओं के मर्म खुले और प्रगतिशील चेतना की सैद्धांतिकी का भी अर्थ विस्तार हुआ।

किसी भी समय की श्रेष्ठ आलोचना अपने समसामयिक विभेदगत परिवर्तन के मौलिक स्वभाव की अनदेखी नहीं कर सकती और न ही नई और पुरानी पीढ़ी की द्वंद्वत्मक और अंतःक्रियाशील चेतना के परिणामस्वरूप आकार लेती सामूहिक चेतना की अवधारणात्मक व्युत्पत्ति को ज़ब्त न करने का जोखिम ही उठा सकती है फिर यहां तो ‘विषम धरातल वाले कवि त्रिलोचन’ के काव्य सामर्थ्य की अचूक पहचान में वरिष्ठ कवि केदारनाथ सिंह और नई पीढ़ी के कवियों में एका था। केदारनाथ सिंह ने त्रिलोचन की प्रतिनिधि कविताओं के चयन के समय 1985 में यह लक्ष्य किया था कि “पिछले कुछ वर्षों में हमारी सांस्कृतिक चेतना पर पश्चिम का औपनिवेशिक दबाव कम हुआ है आधुनिकतावाद द्वारा स्थापित तथा प्रस्तावित बहुत से काव्य मूल्य संदिग्ध या अस्वीकार्य लगने लगे हैं और कुल मिलाकर कविता में और किसी हद तक साहित्य की अन्य विधाओं में भी अपने यथार्थ के मूल स्रोतों से जुड़ने की आकांक्षा प्रबल हुई है। फलतः नगर केंद्रित आधुनिक सृजनशीलता और हमारी ग्रामोन्मुख जातीय सृजन चेतना के बीच का अंतराल कम हुआ है। इसी बदले हुए माहौल में त्रिलोचन की कविता ने अपनी अर्थवत्ता नये सिरे से अर्जित की है और वृहत्तर पाठक समुदाय का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है।”

उस लक्ष्यशील परिस्थितिगत परिवर्तन और नई पीढ़ी की आगत काव्य दृष्टि से नामवर सिंह और राम विलास शर्मा आखिर अछूते कैसे रह सकते थे। बहुत संभव है इसने ही त्रिलोचन के सत्तर वर्ष होने पर आलोचना का विशेषांक निकालने, और संपादकीय रूप में ‘एक नया काव्य शास्त्र त्रिलोचन के लिए’ लिखने हेतु नामवर जी को विवश किया हो। किसी भी युग के समसामयिक काव्य बोध की पहचान आलोचना की मूल जमीन है, बिना इस पहचान के आलोचना आगे नहीं बढ़ सकती है। ‘बायस का आभ्यंतरीकरण’ और आभ्यंतर का बाह्यीकरण रचना की तरह आलोचना की भी सृजन प्रक्रिया है। 1987 में नामवर सिंह और 1990 में रामविलास शर्मा के त्रिलोचन संबंधी मूल्यांकनपरक आलेखों ने न केवल प्रगतिशील काव्यधारा में त्रिलोचन को प्रतिष्ठित किया बल्कि आठवें दशक के कवियों के सामूहिक काव्यबोध को स्वीकार कर नई रचनाशीलता के

उस मार्ग को भी प्रशस्त किया जिसे आठवें दशक की कविता ने अपना स्वाभाविक मार्ग माना था। एक लंबे अंतराल के बाद त्रिलोचन की कविताओं के लगातार प्रकाशन ने उस पूरे परिदृश्य को बदलने में एक बड़ी भूमिका अदा की। धरती (1945) गुलाब और बुलबुल (1956) दिगंत (1957) के तेईस वर्ष बाद 1980 में ताप के तापे हुए दिन के प्रकाशन के साथ एक एक कर कई संग्रहों के आने के बाद अब तक के सुपरिचित आधुनिकतावादी काव्यबोध की परिधि दरकने और टूटने के लिए मजबूर हुई। यह त्रिलोचन की काव्य प्रतिभा से विराट साक्षात्कार था समकालीन कविता के पाठकों का। शब्द, उस जनपद का कवि हूं, अरधान, तुम्हें सौपता हूं, सबका अपना अपना आकाश, फूल नाम है एक, अनकहनी भी कुछ कहनी है, चैती, और अमोला (1990) तक कुल दस काव्य संग्रहों का प्रकाशन इसी दशक में हुआ। पांच दशकों से अर्जित इस काव्य सत्य के विविधवर्णी रूपों और गंधों में सम्मोहन का जादू था। प्रयोगवाद, नई कविता, अकविता के समानांतर 'प्रति कविता की हैसियत' रखने वाली त्रिलोचन के कवि की ये मणि सिद्धियां अब आधुनिक हिंदी कविता के इतिहास की उपलब्धियां बन चुकी थीं।

(ii)

*पिरथी कबहुं न बिसरइ आपनि नाल
रितु बीतइ दिन बीतइ बीतइ साल।*

'अमोला' के इस बरवै में त्रिलोचन ने पृथ्वी के लिए अपनी धुरी को न भूलने की बात कही है। तमाम ऋतुओं, दिन एवं साल के बीतने के बाद भी। पृथ्वी की इस नाभिनालबद्धता में ही जीवन की लय और गति सुरक्षित है। 'धरती (1945) त्रिलोचन का पहला काव्य संग्रह है। उस संग्रह की पहली ही कविता में यह पंक्ति आती है कि 'मुझमें जीवन की लय जागी / मैं धरती का हूं अनुरागी। प्रगतिशील काव्य आंदोलन की पृष्ठभूमि में धरती से जुड़ाव इस अर्थ में मानीखेज है कि इस माध्यम से आधुनिक हिंदी कविता के विकासक्रम में छायावाद की वायवीयता के बरक्स धरती का ठोस प्रत्यक्षात्मक जीवन एक गुणात्मक छलांग लेता हुआ दिखाई देता है। क्या यह आकस्मिक है कि प्रगतिशील कविता के 'पंच महाभूतों' में त्रिलोचन का संग्रह 'धरती' नाम से सबसे पहले आता है। 'धरती' जैसे भी पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा और आकाश) में पहला महत्त्वपूर्ण 'महाभूत' है जिस पर अन्य के अनिवार्य उपयोग से जीवन संभव हुआ। धरती पर इस व्यापक और विपुल जीवन के प्रति त्रिलोचन का रिश्ता उनके खुद की काव्ययात्रा में गहन से गहनतर होता गया है। धरती पर श्रम और संघर्ष के जितने संज्ञाप्लावी क्षण और रंग उनकी कविताओं में मौजूद हैं वह अन्यत्र नहीं दिखाई देता। फिर भी सत्तर वर्षों की अनथक यात्रा के बाद त्रिलोचन का कवि यह महसूस करता है कि 'पृथिवी मेरा घर है / अपने इस घर को / अच्छी तरह मैं ही नहीं जानता।' (मेरा घर, पृ. 13) न जानना भी तो जानना ही है, कितने हैं जो बिना लाग लपेट कह सकते हैं, मैं नहीं जानता। यह विनम्रता ही अहं का परिष्कार है। तुलसीदास के 'कवित विवेक एक नहि मोरे' या मलिक मुहम्मद जायसी की 'हैं सब कविन्ह फेर पछिलगा' या गालिब की 'रेखते तुम्हीं उस्ताद नहीं हो गालिब' की इसी जमीन पर त्रिलोचन खड़े हैं। यह हमें नहीं भूलना चाहिए। वे अपने को 'गालिब महम्मद तुलसी के हम दास' कहते हैं। त्रिलोचन की खूबी यही है कि वे सहजता और सरलता से अपनी बात कहते हैं। लेकिन यह जानना जरूरी है कि यह सहज सरलता उन्हें कैसे प्राप्त होती है। उस सरलता को पाने के लिए कठिन साधना उन्होंने की है। दरअसल भावबोध की प्रक्रिया में वस्तुमुखता उन्हें अपार और निस्संग तटस्थता की आधार भूमि प्रदान करती है।

यह निस्संगता उन्होंने गहरी संलग्नता से हासिल की है। इस संलग्नता में जीवन संघर्ष का अर्क त्रिलोचन की कविता का मधु अर्क है। इन संघर्षों के अनुभवव्यापी संज्ञा क्षणों ने उन्हें तीव्र आवेगमय बेचैनी के क्षणों से उठाकर द्रष्टा की हैसियत प्रदान की है। एक तरफ दृश्य की आलेख्य प्रख्यता उन्होंने उसी द्रष्टा भाव से हासिल की है तो दूसरी तरफ अनुभूतियों के संघनन के ठोस स्वरूप में सूक्तियां। त्रिलोचन की कविता में भावबोध के प्रसार एवं संघनन की सफलश्रुतियों के रूप में ही यह आलेख्य प्रख्यता और सूक्तियां हासिल हैं जो कि उनकी ही नहीं आधुनिक हिंदी कविता की भी उपलब्धि है।

धरती (1945) के गीतों में संलक्ष्य सरलता उपर्युक्त प्रक्रिया में पाया हुआ काव्यसत्य है। शमशेर तो इतने मुरीद हैं कि वे लिखते हैं—*तुमने धरती का पथ पढ़ा है? / उसकी सहजता प्राण है।* उसी कविता में यह पंक्ति भी *सरलता का आकाश था /* जैसे त्रिलोचन की रचनाएं। शमशेर के पहले संग्रह की यह दूसरी कविता है, जिसका शीर्षक 'राग' है। पहली कविता 'निराला के प्रति, नाम से है। निराला और उसके बाद त्रिलोचन जैसे शमशेर के दोनों आंखों की दो चमकदार छवियां। मुझे कई बार लगता है छायावाद के दौर में जो संबंध निराला और पंत का था कुछ पैसा ही संबंध छायावादोत्तर काल में शमशेर और त्रिलोचन का है। एक दूसरे पर कठोर मत रखते हुए एक दूसरे के मुक्तकंठ प्रशंसक। 'सघनतम' और संघर्षतम के क्षणों में निराला दोनों के लिए ही दृष्टिदाता हैं।

धरती के गीतों के प्रशंसक मुक्तिबोध भी हैं। उसकी एकमात्र समीक्षा मुक्तिबोध ने ही की है। *हंस* जुलाई 1946 में प्रकाशित इस समीक्षा में धरती के 'संघर्ष पक्ष' को उन्होंने रेखांकित किया था। प्रशंसा में बहुत भारी वाक्य लिखा था—*'छद्म काव्य का संपूर्ण अभाव जिसमें हो, उसे ही तो मौलिक ईमानदारी कहना चाहिए'*। धरती की कविताओं में सन्निहित यह मौलिक ईमानदारी त्रिलोचन की अपनी जमीन है जिस पर मजबूती से टिके पांव 'ताप के तापे हुए दिन' में भी जनपद से लेकर दिक् दिगंत की यात्रा करते हैं। पहली कविता है 'मुझे जगत जीवन का प्रेमी / बना रहा है प्यार तुम्हारा'। प्रेम और प्यार पर लिखी गई कविताओं से इस कविता की प्रकृति कितनी भिन्न है, इसका अंदाजा लगाना कठिन है। यहां 'प्यार' एक को दूसरे का प्रेमी ही नहीं बल्कि जगत जीवन का प्रेमी भी बना रहा है। यहां प्रेम की गहरी वैयक्तिकता निर्वैयक्तिकता की उदात्त भूमि का संस्पर्श करते हुए कर्मपथ पर लय हो जाने को आतुर है।

दरअसल 'प्यार' त्रिलोचन के लिए निपट एकांत के बरक्स एक सामाजिक सत्य है। वह देह से परे संबंधों के सामाजिक उत्तरदायित्वपूर्ण बोध से संचालित है। दायित्व के इस बोध के कारण देह के निजी सौंदर्य त्रिलोचन के काव्य का हिस्सा नहीं बनते हैं। त्रिलोचन का प्रेम जीवन संघर्ष में श्रम सौंदर्य के रूप में ही प्रकट होता है। श्रम सौंदर्य के जितने रूप आशा और विश्वास के साथ त्रिलोचन के यहां हैं वह प्रगतिशील धारा के किसी अन्य कवि के यहां नहीं मिलते हैं। गार्हस्थ्य जीवन की ऐसी अनेक छवियां उनके यहां भरी पड़ी हैं। 'मिलकर वे दोनों प्राणी / दे रहे खेत में पानी' धरती में संकलित गीत है। इस गीत की विलक्षणता दांपत्य प्रेम के कर्मराग में निहित है। 'दोनों प्राणी' शब्द में निहित आत्मीयता की ऊष्मा में ही कर्मराग का सौंदर्य दांपत्य प्रेम के पवित्र, सौंदर्य में रूपांतरित होता है। कविता का यह अंश देखें—*'है धूप कठिन सिर ऊपर / थम गई हवा है जैसे / दोनों दूबों के ऊपर / रख पैर खींचते पानी / इस मलिन हरी धरती पर / मिलकर वे दोनों प्राणी / दे रहे खेत में पानी !'* यह पूरा दृश्य विपरीत और कठिन परिस्थिति की ओर संकेत करता है। ध्यान रहे 'प्रेम' अनुकूल नहीं बल्कि विपरीत एवं कठिन समय और परिस्थितियों में ही अपने उनवान को प्राप्त होता है। जरा इस गीत के इस बंद पर ध्यान दें—*जब तब वे बातें करते / सासों को संयत रखते / अवराम काम ही करते / पल दो पल नयन मिलाते / बल की परिभाषा करते / मिलकर वे...'*

उपर्युक्त अंश में 'नयन पल दो पल मिलते नहीं' बल्कि मिलाए जाते हैं। नयनों का मिलना स्वाभाविक तौर पर अनैच्छिक क्रिया भी हो सकती है जो प्रेम के दो स्वतंत्र आश्रयों के बीच संभव है। लेकिन यहां प्रयुक्त 'पल दो पल नयन मिलाते' में 'नयनों का मिलाना' ऐच्छिक ही नहीं बल्कि सायास क्रिया है। बल की थाह लेने के लिए। यह जानने के लिए कि बेड़ी या दुबला क्या कुछ देर और चल सकता है कि नहीं? गार्हस्थ जीवन में प्रेम इसी तरह सांद्र होता है।

प्रेम को लेकर त्रिलोचन ने कई कविताएं लिखी हैं जैसे 'तुम्हें जब मैंने देखा', 'प्यार', 'गीत अभी हो तुम', 'अपना अपना संधान', 'तुम्हें याद है', 'और क्या होना है', 'हम दोनों दुःखी हैं', प्रियगान नहीं गा सका तो, आज मैं अकेला हूं आदि। लेकिन त्रिलोचन की दृढ़ मान्यता प्रेम के सामाजिक होने पर है। अकेले रोमानी भावनाओं के आगोश से लबरेज प्लेटोनिक प्रेम की एकांतिकता उन्हें ग्राह्य नहीं। अपना अपना संधान कविता में यह मान्यता इस रूप में व्यक्त हुई है—'मैंने जो प्रेमगान गाया था / वह केवल मेरा था / तुमने जो प्रेमगान सुना था / वह केवल तुम्हारा था / मैं तुम दोनों ही अपना संधान कर रहे थे। प्रेम व्यक्ति व्यक्ति से / समाज को पकड़ता है / जैसे फूल खिलता है / उसका पराग किसी और जगह पड़ता है / फूलों की दुनिया बन जाती है। प्रेम में अकेले भी हम / अकेले नहीं हैं / मेला क्या हमारा ही मेला है / और मेले नहीं हैं।' (अरधान संग्रह से) 'प्रेम में अकेले भी हम / अकेले नहीं हैं' यह त्रिलोचन की प्रेम संबंधी कविताओं का केंद्रीय भाव है।

त्रिलोचन की कविता धरती, दिक् और काल की सहयात्री है। धरती पर संघर्षरत मनुष्य ही नहीं उसके साथ उसका पर्यावरण भी है, ऋतुएं हैं, वनस्पतियां हैं, मनुष्य से इतर पक्षी जानवर आदि जीवधारी भी हैं। ग्रह तारे हैं, राग हैं रागनियां हैं, चर अचर, दृश्यगान अदृश्यमान गतियां हैं, सब है और सबका सबसे रिश्ता है। और इन सबके बीच मनुष्य की जिजीविषा है जो सबसे ऊपर सबके बीच है। यहां से वहां तक खिंची हुई, अनवरत, अविश्राम, अनथकी हुई बराबर गतिशील। त्रिलोचन इस विराट के बीच ही मनुष्य की दुर्धर्ष जिजीविषा की सांसों को पकड़ते हैं। उसी के चित्र गढ़ते हैं, गढ़ते भी कहां हैं, सीधा उसको उसी रूप में उपस्थित कर देते हैं। फिर कोई कुछ भी कहे—वे अपनी निहाई की दृढ़ता को जानते हैं—

चौदह चरणों में मैंने चौदह भुवन को
यथा शक्ति नापा है, यह केवल बातूनी
की बकवास नहीं है, समझ के लिए दूनी
शक्ति चाहिए, दौं दौं गिरते हुए घनों को
क्या मालूम, निहाई में कितनी दृढ़ता है।

इस निहाई की दृढ़ता में जन की अदम्य शक्ति है, परंपरा की शक्ति है। जातीय चेतना की स्व अर्जित आनुभविक स्मृतियां हैं। भाषाओं के अगम समुद्रों का अवगाहन है, हजारों वर्षों के कठिन साधकों की मूक शक्तियां हैं। यह त्रिलोचन की कविता है, एकलोचन की नहीं। अतीत, वर्तमान और आगत की आशा से परिपूर्ण। जिसकी छाती बज्र की बनी है—

इसमें क्या है, मेरे और आप के दिल की
धड़कन है, कहना चाहे तो कविता कह लें
इसकी धारा में बहना चाहें तो बह लें।
देख सकेंगे यहां धूप छांही झिलमिल की

आभा। कवि तो हुए मंत्र द्रष्टा ऋषि, उनके

बाद हुए मुनि वाल्मीकि, फिर व्यास हुए फिर
कालिदास आए, फिर तुलसीदास हुए स्थिर
यशस्काय से, कवि रवींद्र ने आकर चुन के

स्वर सुमनों का हार पिन्हाया, औरों ने भी
गान किया है, वंदनीय है। आज भारती
की कितने जन प्रणत भाव से मूक आरती
करते हैं, कुसुमों की स्तुति की भौरों ने भी।

ओ रसज्ञ हैं, इसे उन्हीं के लिए लिखा है
जो अजीर्ण ग्रस्त है, कहेंगे इसमें क्या है।

(अन कहनी भी कुछ कहती है, पृ. 55)

उक्त सानेट में त्रिलोचन अपनी कविता का 'एड्रेस' बताते हैं। जातीय चेतना की ये जड़ें कितनी गहरी हैं इसकी थाह है इस कविता में। आपकी रसज्ञता, आपकी अर्थबोध क्षमता यहां तुलने के लिए तत्पर है मजबूर है। निराधार मानसिक दंभ के आस्फालन से अजीर्णग्रस्तों के लिए चुनौती है यह।

'भाव उन्हीं का सबका है जो थे अभावमय' या 'हिंदी की कविता उनकी कविता है जिनकी / सांसों को आराम नहीं था, और जिन्होंने / सारा जीवन लगा दिया कल्मष को धोने / में समाज के' या 'मैं उस जनपद का कवि हूं, जो भूखा, दूखा है नंगा है अनजान है कला नहीं जानता' जैसी काव्य पंक्तियां, जहां कविता के विषय को उसके लक्ष्य को स्पष्ट करती हैं वहीं यथार्थ की भूमि पर सरल सा दिखने वाला यह काव्यसत्य अपनी अभिव्यक्ति के लिए कितने रूपों से गुजरता है यह देखना बेहद दिलचस्प है।

(iii)

कविता कबहूँ न चली एक धड़ लीक
पावड़ केऊ तऊ ठीक न पावड़ ठीक।

त्रिलोचन जानते हैं कि कविता कभी भी एक लीक पर नहीं चली। उसने अनेक रास्ते अपनाये। इस रास्ते को किसी ने ठीक पाया तो किसी ने नहीं। वस्तु सत्य के उद्घाटन के लिए जिस रास्ते की खोज अभीष्ट है उस पर जाया ही जाना चाहिए। धरती (1945) से लेकर जीने की कला (2007) तक की काव्ययात्रा में त्रिलोचन ने अनेक काव्य रूपों की खोज अपने लिए की। गीत, मुक्त छंद, प्रोज पोएट्री, गजल, रुबाइयां, सानेट, कुंडलियां, बरवै आदि कई रूप उनकी कविताओं में अभिव्यक्ति के साधन हैं। 'गुलाब और बुलबुल' उनकी गजलों का संग्रह है। गजलों की महान परंपरा के बरक्स हिंदी की अपनी गजल है। हिंदी भाषा, उसमें भी त्रिलोचन की अपनी जमीन की भाषा, उनका संस्कृत ज्ञान, जिस पर वाक्यों को पूरा लिखने की अपनी पुरानी जिद— कुल मिलाकर गजल के मोर्चे पर त्रिलोचन की अपनी कलम है। उनमें अरुज की कहीं कोई गलती नहीं किंतु भाषा की वह रवानगी, कथन भंगिमा की वह विदग्धता नहीं दिखाई देती जिसके लिए गजलों की महान परंपरा विख्यात रही है। फिर भी विभिन्न गजलों के कई शेर लोगों की जुबान का हिस्सा बने हैं— 'कोई दिन था जब कि हमको भी बहुत कुछ याद था / आज वीराना हुआ है, पहले दिल आबाद था।' रंग कुछ ऐसा रहा और मौज कुछ ऐसी रही / आप बीती भी मेरी वह समझे कोई

वाद था।' जैसे शेर इसके उदाहरण हैं।

काव्य रूपों में त्रिलोचन जहां जमे, वह सॉनेट ही था। सानेट और त्रिलोचन एकमेव हो गए हैं। ऐसा नहीं है कि सानेट त्रिलोचन से पहले लिखे ही नहीं गए। निराला, पंत के यहां यह है। जानकार कहते हैं यह चतुष्पदी ज्यादा है, सानेट कम। त्रिलोचन के सानेट सानेट हैं— बाकायदा शेक्सपीयर, मिल्टन और स्पेंसर के सानेटों की तर्ज पर ही उन्होंने सानेट लिखे। 'सानेट का पथ' दिगंत की पहली कविता है—

इधर त्रिलोचन सॉनेट के ही पथ पर दौड़ा
सॉनेट, सॉनेट, सॉनेट, सॉनेट, क्या कर डाला
यह उसने भी अजब तमाशा। मन की माला
गले डाल ली। इस सॉनेट का रस्ता चौड़ा

अधिक नहीं है, कसे कसाए भाव अनूठे
ऐसे आएँ जैसे किला आगरा में जो
नग है, दिखलाता है पूरे ताजमहल को
गेय रहे एकान्वित हो। उसने तो झूठे

ठाट बाट बांधे हैं। चीज किराये की है।
स्पेंसर, सिडनी, शेक्सपीयर, मिल्टन की वाणी
वर्ड्स वर्थ, कीट्स की अनवरत प्रियकल्याणी
स्वर धारा है, उसने नई चीज क्या दी है

सॉनेट से मजाक भी उसने खूब किया है
जहां तहां कुछ रंग व्यंग्य का छिड़क दिया है।

दिगंत-11

दिगंत, शब्द, फूल नाम है एक, उस जनपद का कवि हूं, अनकहनी भी कुछ कहनी है जैसे संग्रह सॉनेटों के ही संग्रह हैं। अरधान में भी सॉनेट हैं। महाकुंभ की भयावहता के दृश्य अरधान के सॉनेटों में मौजूद हैं। सॉनेट के आक्टेव (आठ पंक्ति) सस्टेट (6 पंक्ति) के क्रम को त्रिलोचन ने तोड़ा है। 'दिगंत' में चार चार के तीन फिर एक द्विपदी का भी प्रयोग है। 'फूल नाम है एक' में 'आक्टेव' एवं 'सेस्टेट' में विभाजन है। 'उस जनपद का कवि हूं' में 12 चरण एवं दो चरण का भी विभाजन मिलता है। 'अनकहनी भी कुछ कहनी है' में चार चार के तीन पद और अंत में द्विपद हैं। चौदह पंक्तियों के इस सॉनेट में ज्यादातर तुकांत अ ब ब अ, अ ब ब अ, अ ब ब अ और अंत की द्विपदी अ अ के तुकांत के क्रम में है। लेकिन ताज्जुब तब होता है जब इस विजातीय काव्य छंद में त्रिलोचन रोला छंद का प्रयोग करते हैं। रोला 24 मात्राओं का चार चरणों वाला छंद है। रोला की आत्मा का सन्निवेश कर त्रिलोचन रुक गए हों, ऐसा नहीं है। वह एक और प्रयोग करते हैं पूरा वाक्य लिखने का, और यह पूरा वाक्य चरणांत के तुकांत पर खत्म न होकर चरण के बीच में पूरा होता है। एक विजातीय काव्य रूप में अपने जातीय छंद की आत्मा को बिठाकर पूरा वाक्य लिखने की जिद त्रिलोचन के बस की ही बात थी। शमशेर बहादुर सिंह त्रिलोचन की शक्ति एवं सीमाओं से खूब परिचित हैं। वे लिखते हैं कि 'सॉनेट और त्रिलोचन काठी दोनों की है / एक। कठिन प्राकार में बंधी सत्य सरलता।'

सोचता हूँ कि त्रिलोचन 'सत्य सरलता को कठिन प्राकार' में क्यों बांधते हैं? या फिर 'कठिन प्राकार' में सत्य सरलता क्यों बंधती है? देखता हूँ सरलतम की अभिव्यक्ति और प्राप्ति के लिए कठिनतम अभ्यास, अनुभव एवं समझ से गुजरना होता है। रियाज ही तो सुरों को ऊंचाई देता है। आसान बनाता है। काव्यसत्य की सरलता (विषयगत) यदि केवल सॉनेट (चतुष्पदी) में अभिव्यक्त हो रही होती तो शायद यह सरल अभिव्यक्ति न होती। रोला और वाक्य ही अभिव्यक्ति को आसान बना रहे हैं। 'कसे कसाये भाव अनूठे' को यह अनुशासन एक क्लासिकी संयम प्रदान करता है। त्रिलोचन के काव्यबोध का अधिकांश और महत्त्वपूर्ण यहीं उतरता है। सॉनेट की अंतिम द्विपदी में सूक्तियां सबसे अधिक मिलती हैं। ये ज्ञान, अनुभव, भावों का ठोस रूप है जिनमें लोकोक्ति बन जाने की सहज क्षमता है।

जिस तरह सॉनेट पर बात किये बिना त्रिलोचन पर बात अधूरी है उसी तरह त्रिलोचन के कविता की चर्चा हो रही हो तो वह चर्चा 'नगई महारा' और 'चंपा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती' का जिक्र किये बिना पूरी नहीं हो सकती। ये त्रिलोचन की सहजता की सघनतम अभिव्यक्तियां हैं। यह सघनता भाव के नये धरातल के अन्वेषण के रूप में घटित होती है।

'चंपा काले काले अच्छर वहीं चीन्हती' 1940-41 के आसपास की कविता है। संभवतः 40 में लिखी हुई। बकौल नामवर जी '41-42 के दिनों में जब त्रिलोचन यह कविता सुनाते थे तो लोग हंसते थे। गोया कोई हास्यरस की कविता हो।' में जब भी यह कविता पढ़ता हूँ, मुझे निराला की याद आती है, बल्कि कहना चाहिए कि उस पत्र की, जिसे निराला ने जानकी बल्लभ के लिए लिखा था 'तोड़ती पत्थर' कविता का वैशिष्ट्य रेखांकित करते हुए। 'तोड़ती पत्थर' 1937 में सुधा के अप्रैल अंक में प्रकाशित हुई। ये दोनों रचनाएं प्रगतिशील अधिवेशन के बाद की हैं। निराला के 'तोड़ती पत्थर' और त्रिलोचन के 'चंपा काले काले अच्छर नहीं चीन्हती' में महज 3-4 वर्ष का अंतर है। निराला ने पत्र में लिखा है— 'यहां सीधा वर्णन होने पर भी, हथौड़े की चोट पत्थर पर पड़ने पर भी, देखिए, किस तरह अट्टालिका पर पड़ती है, लेखक के वर्णन प्रकार के कारण और निर्देश से।' निराला के इस पत्र ने 'तोड़ती पत्थर' कविता के मर्म को समझने की कुंजी दे दी। मुझे बराबर यह लगता है जिस तरह 'तोड़ती पत्थर' की मजदूरनी के हथौड़े की चोट अट्टालिका पर पड़ती है उसी तरह चंपा के इस कथन में कि 'कलकत्ते पर बजर गिरे' का बज्र कलकत्ता पर भरपूर गिरता है। यहां पूरी कविता का यह केंद्रीय पक्ष है। एक अबोध बच्ची का कथन कैसे कलकत्ता के सारे तिलिस्म को चकनाचूर कर देता है— शक्ति और धन का स्रोत कलकत्ता एक झटके में धराशायी हो जाता है।

औपनिवेशिक दौर में उपनिवेशीकरण के चलते कलकत्ता को शक्ति प्राप्त हुई। और उस कलकत्ता ने रोटी देने के नाम पर कड़ियों के निवाले छीने थे। अराकारियों ने कड़ियों को सूरीनाम ट्रिनिडाड, टोबैगो, मारीशस भेज दिया था। यह दंश पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार आदि के लोगों ने झेला था। अवध में बिरहा और भोजपुरी में विदेशिया गीतों की शुरुआत इन्हीं वजहों से हुई थी। कलकत्ता धीरे धीरे मिथ में बदलता गया था।

मजदूरी करने गए लोगों के न लौटने पर इसमें जादू टोने का असर देखा गया। वैसे भी कलकत्ता शाक्त प्रभाव का मुख्य केंद्र था। औद्योगीकरण के चलते विस्थापित हुए मजूरों के न लौटने का कारण यह जादू टोना नहीं था। बंगाल के अकाल भी इसके कारण थे। कलकत्ता में भी भयंकर मौतें हुई थीं। एक ब्रिटिश लेखक विलियम डिज्बी के अनुसार भारत में 1854 से 1901 तक कुल मिलाकर दो करोड़ अट्ठासी लाख पच्चीस हजार मौतें हुई थीं। इनमें अधिसंख्य बंगाल में पड़ने वाले अकाल के कारण थीं। ऐसे में मजदूरों के न लौटने का कारण समझा जा सकता है। संचार

व्यवस्था के अभाव के कारण यह अनुमान सहजता से लगाया जा सकता है कि उनकी कोई सूचना भी उनके परिवारी जनों को नहीं मिली होगी। औपनिवेशीकरण की पृष्ठभूमि में कविता का यह पाठ मेरे लिए इसलिए महत्वपूर्ण बन जाता है। चंपा के इस कथन का मर्म मेरे लिए इसी तरह खुलता है— ‘और कहीं जो ब्याह हो गया / तो मैं अपने बालम को संग साथ रखूंगी / कलकत्ता मैं कभी न जाने दूंगी / कलकत्ते पर बजर गिरे।’ अन्य अनेकों खूबियां उस कविता में हैं, अक्षर को अच्छर, चीहनती को चीन्हती के रूप में लिखकर जहां बोलियों के व्यावहारिक प्रयोगगत रूप को त्रिलोचन सुरक्षित रख रहे थे वहीं यह साहस भी दिख रहा था कि कविता में इस तरह के प्रयोग संभव हैं और उचित भी।

व्यावहारिक प्रयोगगत भाषिक ध्वनि को सुरक्षित रखने की जिद तो अमोला में भी है। अवधी भाषा में बरवै के इस संग्रह में लोक बोली के रूप यथावत सुरक्षित हैं। त्रिलोचन भाषा पर बहुत जोर देते हैं। भाषा का अपार ज्ञान उन्होंने भाषा और जीवन के परस्परश्रित संबंधों में गहरे उतरकर हासिल किया। त्रिलोचन के यहां भाषा अलग इकाई नहीं वह जीवन से लगी होने पर जीवंत बनती है। वे कहते हैं कि ‘भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है / ध्वनि में क्रिया भरी है क्रिया में बल है।’ जीवन की हलचल को भाषा के धरातल पर क्रिया ही व्यक्त करती है। त्रिलोचन इसी क्रिया के कवि हैं। जीवन में गहरे धंसकर उसे उन्होंने प्राप्त किया है। ‘भाषा टहड़ उहड़ सझड़ कहनाइ / पावइ ऊ जेकर नगीच रहनाइ।’ विविध भाषाओं और शैलियों के शब्द थोड़ा निहुरकर ही त्रिलोचन से मिलते हैं। लगता है ये त्रिलोचन के लोचन के समक्ष तुल जाने के लिए अभिशप्त हैं। फणीश्वरनाथ रेणु उन्हें सबदयोगी कहते हैं। यह सबदयोग निरगुनिया के षट्चक्र भेदन की याद दिलाता है— इसके उपरांत ही ‘सुन्न महल’ में अनहद नाद का तूरा बजता है और निरगुनिया मगन हो उठता है। उसकी सिद्धि अपूर्व आनंद में डूब जाती है। भाषा की सिद्धि त्रिलोचन के यहां ऐसी ही है। वैदिक ऋचाओं से लेकर समकालीन ठेठ ठोली तक उनकी गति है। त्रिलोचन ने जिंदगी भर भाषा पर ही तो काम किया। यह बात अभिधा में भी उतनी ही सत्य है जितनी व्यंजना में। कालिदास वाल्मीकि व्यास वैदिक शब्दों तक उनकी व्याप्ति है। भाषिक प्रयोगों एवं भाषायी संपदा के रूप में शब्दों का अब्दो पुराना रूप जैसे त्रिलोचन के हाथ में पड़कर जग उठा हो। आधुनिक कविता के इतिहास में त्रिलोचन की भाषिक सजगता, शब्द संपदा को ध्यान में अगर रखा जाय तो उनकी तुलना सिर्फ निराला से ही हो सकती है। निराला से शायद उन्नीस न पड़ें। तुलसी और निराला उनके सबसे प्रिय कवि हैं तो उसका एक बड़ा कारण शब्द संपदा के साथ भाषिक प्रयोगों की सजगता भी है। यहां विस्तार में आने की गुंजाइश नहीं है फिर भी मेरा मन करता है कि मैं यह कहूं कि भाव भाषाबोध के धरातल पर निराला के असली वारिस त्रिलोचन ही हैं।

जीते जी त्रिलोचन ‘किंवदंती पुरुष’ बन गए थे। लीजेंड, मिथ की कोटियां उनके सामने ढह चुकी थीं। गिंसबर्ग उन्हें हिंदुस्तान का एजरा पाउंड कहते थे। रेणु को मलाल था कि ‘अगर कहीं कवि हो जाता तो, त्रिलोचन नहीं हो पाने का मलाल जीवन कर रहता।’ शमशेर उनकी सौ से अधिक चीजों को दुनिया भर के प्रसिद्ध शिल्पियों के सम्मुख रखने को तैयार थे। नागार्जुन विरचितम् त्रिलोचन त्रिकम् में नागार्जुन ने लिखा— ‘त्रिलोचनः पंच मुखः / दिगंते सुप्रतिष्ठितः / चतुर्दश पदी शैली / साधिता येन सिद्धिदा॥ भूतलं, सुतलं येन पदाभ्या मेव संभृतम् / सूर्या चंद्रमसौ श्रांतौ धरित्री ही मुखस्थिता।’ केदारनाथ सिंह ने लिखा है कि त्रिलोचन को पढ़ना / जैसे पके हुए ज्वार के / खेत से गुजरना / पूछना न जांचना / चढ़ना / न उतरना / बस भरना... भरना। त्रिलोचन की काव्य शक्तियों की उपरोक्त पहचान में इजाफा त्रिलोचन के इस जन्म शताब्दी वर्ष में इजाफा करते हुए अनेक पाठ विश्लेषण होंगे, ऐसी हमें उम्मीद है।

‘आज मैं कह रहा हूँ, कहीं कहा नहीं’ : त्रिलोचन

18 अगस्त, 1997 की शाम प्रसिद्ध लेखक विभूति नारायण राय के दिल्ली स्थित आवास पर त्रिलोचन जी उपस्थित थे। उनके सत्संग के लिए वहां केदारनाथ सिंह, कर्ण सिंह चौहान, गोबिंद प्रसाद, दिनेश कुमार शुक्ल, रवींद्र त्रिपाठी, राजीव भी इकट्ठा हुए। इस तरह शुरू हुआ त्रिलोचन जी से साहित्यिकों की एक लंबी वार्ता का सिलसिला जिसमें साहित्य, समाज, संस्कृति के अनेकानेक प्रसंग शामिल हुए। समूची बातचीत को प्रखर कवि, आलोचक अनिल त्रिपाठी ने टेप करके संरक्षित कर लिया था। लगभग दो दशक की कालावधि में इस संध्या के शब्द टेप में ही रहे। त्रिलोचन जी के जन्मशती वर्ष में पहली बार उसका प्रकाशन करते हुए हम उस वार्ता का संक्षिप्त, संपादित प्रारूप *अनिल त्रिपाठी* के माध्यम से तद्भव के पाठकों के लिए संभव कर रहे हैं।

विभूति नारायण राय : शास्त्री जी आपने अस्सी साल इस शताब्दी में बिताये। बीसवीं सदी धीरे धीरे खत्म हो रही है, इसमें क्या परिवर्तन देख रहे हैं? जैसे कि मार्क्सवाद आया, मार्क्सवाद का पराभव हो गया।...

त्रिलोचन : जो परिवर्तन हुए हैं उन पर लिखा जाय न लिखा जाय परिवर्तन तो साफ जाहिर हैं।

केदारनाथ सिंह : हमें आपका रिएक्शन चाहिए, इनका जो प्रश्न था कि कुछ लोगों की दृष्टि में मार्क्सवाद का पराभव हुआ है, हम ऐसा नहीं मानते। लेकिन एक सत्ता तो समाप्त हुई है, एक जमी जमाई सत्ता जिस पर बहुत कुछ टिका हुआ था...

त्रिलोचन : परिवर्तन तो हुआ है लेकिन और अच्छा हो सकता था। हमारे जो नेता पहले अधिकार से रहित थे, डंडे लाठियां झेलते थे, जब उनके हाथ अधिकार आया, तब उन्होंने अपना घर भरना शुरू किया। गरीबी हटाओ का मतलब हो गया, उनकी अपनी गरीबी हटाओ। पूरे देश की नहीं।

देश में गरीब जैसा था वैसा ही रहा।...और आप जानते हैं आपके यहां विज्ञापन हुआ इसका।... एक समय सीआईडी हमारा पीछा करती थी बराबर। कोई रिपोर्ट नहीं लिखने को होती थी तो त्रिलोचन का भाषण लिखकर भेज देते थे। ये बनारस का रिकॉर्ड है...75 में देवी इंदिरा जी चाहती थीं मैं गिरफ्तार होऊं। मुझे गिरफ्तारी से बचाने का श्रेय सरोजनी महिषी को है जिन्होंने मेरी किताबें...कविताएं वगैरह पढ़ी थीं। उन्होंने कहा कि यह आदमी खतरनाक नहीं है यह तो जर्नलिस्ट है।

केदारनाथ सिंह : 75 में गिरफ्तारी...ये तो इमर्जेंसी की बात है...

त्रिलोचन : हां...इमर्जेंसी की बात है। आप जानते हैं कि मैं सटायरिकल सॉनेट छपा रहा था। उन दिनों महेश प्रसाद वहां कलेक्टर था। महेश प्रसाद ने कागज भेजा कि जो सॉनेट वगैरह छपें, पहले उन्हें दिखा लीजिए। एक बार चौदह लाइनों में उन्होंने चार लाइनें रखीं तो मैंने कहा—मेरा नाम मत दीजिए। महेश प्रसाद का नाम दे दीजिए। उन दिनों सूचना आई थी कि कोई भी समाचार कलेक्टर की स्वीकृति से ही दें तो जानते हैं मैंने क्या किया? जनवार्ता के संपादक से मैंने कहा कि 'सरकारी अनुमति से' ये ब्रेकेट में दे दिया कीजिये। तो दो एक दिन ऐसे ही चला। महेश प्रसाद ने कहा—ये क्या कर रहे हैं आप...यह तो सीधे याने सरकार पर आरोप...लगा रहे हैं।

विभूति नारायण राय : ये तो इमर्जेंसी पर आप आ गए।

केदारनाथ सिंह : शास्त्री जी आप 42 में जेल गए थे वह प्रसंग बताइये।

त्रिलोचन : जेल की हवा तो और पहले खा चुका हूं। याने 31 में जब 14-15 साल का था। केवल—'फांसी का फंदा झूल गया मरदाना भगत सिंह' गाने के कारण।

विभूति नारायण राय : कहां सुलतानपुर में?

त्रिलोचन : हां सुलतानपुर में। प्राइमरी स्कूल में जो कादीपुर थाने के अंदर आता था, थानेदार ने थाने ले जाकर 10 बेंत लगाए। आपको बता दूं कि उन दिनों भगत सिंह का नाम गांधी की तरह गांव गांव घर घर फैल गया था।

केदारनाथ सिंह : भगत सिंह इन दिनों लोकगीतों का विषय बन गए थे।

कर्ण सिंह चौहान : शास्त्री जी हम लोग ये जानना चाहते हैं कि जब आपने लेखन की शुरुआत की थी तो ये एक उठान का समय था। स्वतंत्रता आंदोलन उठान पर, मार्क्सवाद उठान पर था। उन दोनों स्थितियों के बीच हम जानना चाहते हैं कि उस समय आप क्या सोचते थे और आज आप क्या सोचते हैं?

त्रिलोचन : भाई जब मैं बच्चा था बहुत, तभी सशस्त्र क्रांतिकारियों से जुड़ गया था। जोड़ने वाला एक संगठन था जिसका संबंध आजाद वगैरह के दल से था। मैं एक मेसंजर ब्याय था। शिव प्रसाद गुप्त से कभी कभी पैसे ले गया हूं उनके पास। शिव प्रसाद गुप्त ने कहा यह लड़का विश्वसनीय है।

केदारनाथ सिंह : आप किस सन् की बात कर रहे हैं?

त्रिलोचन : मैं कर रहा हूं सन 29 की। बारह साल की उम्र की बात कर रहा हूं। उन लोगों के साथ लाहौर, बड़ौदा, मलमाड ये तमाम इलाके घूमे। हां मैंने जो भाषाएं सीखीं वो बचपन से ही सीखीं। कमरे में बैठकर नहीं सीखीं। और आप जानते हैं सोवियत संघ में शासन व्यवस्था जिसकी प्रशंसा बहुत की है राहुल ने, के बारे में मैंने कहा कि वहां कम्युनिज्म नहीं है।

कर्ण सिंह चौहान : अच्छा कम्युनिज्म व्यवस्था नहीं तो क्या था वहां?

त्रिलोचन : व्यवस्था नहीं थी, ब्यूरोक्रेसी थी वहां। शेष जनता दुखी थी। कहती नहीं थी। उस समय कुछ लोग सच बोलने वाले थे—मुजप्फर हसन, वो तो हो आए थे वहां। उन्होंने कहा जो व्यवस्था रूस में चल रही है वो कामयाब नहीं होगी।

विभूति नारायण राय : शास्त्री जी भारत में आजादी की लड़ाई सशस्त्र हुई होती और गांधी का हस्तक्षेप न रहता तो क्या कुछ बेहतर शक्ति आती?

त्रिलोचन : गांधी जी बाद में अमान्य हो गए नेहरू और पटेल दोनों द्वारा।

विभूति नारायण राय : वो तो 47 के आसपास जब खूनी लड़ाई हुई।

त्रिलोचन : और गांधी को आज भी गाली देती है भाजपा, पहले भी देती थी। नाथूराम गोडसे की फांसी के बाद उसकी पुण्यतिथि मनाई।

केदारनाथ सिंह : बहुत ही सीधे सीधे आपसे पूछा जाय कि सशस्त्र क्रांति और अहिंसक क्रांति में आप किसको चुनना पसंद करेंगे?

त्रिलोचन : देखिए जब सशस्त्र क्रांति की जाएगी तो उसका इंपैक्ट भी आना चाहिए। मैं बता दूँ जिस साहित्यिक हेतु से जुड़ा हूँ वो नक्सलियों का है।

गोविंद प्रसाद : जन संस्कृति मंच से।

त्रिलोचन : मैं उसका सद्व हूँ।

कर्ण सिंह चौहान : आप जुड़े हैं तो क्यों यह भी बता दीजिए।

त्रिलोचन : वो कुछ कर रहे हैं। यह मैंने देखा। जो कुछ नहीं कर रहे हैं मैं उनके साथ नहीं रह सकता। सीपीआई वाले रेस्त्रां और काफी हाउसों में बैठते हैं।

दिनेश कुमार शुक्ल : वहां भी नहीं बैठते।

विभूति नारायण राय : सीपीएम के बारे में क्या राय है?

त्रिलोचन : सीपीएम के विषय में अपना अनुभव बंगाल का बताऊँ? सीपीएम वालों का ये हाल है, कलकत्ता में जनसत्ता में मेरा लड़का न्यूज एडीटर है तो एक दिन तीन चार युवक आए और उन्होंने कहा कि जो साहब यहां रहते हैं उनसे आपका क्या संबंध है? मैं ही था और किवाड़ सब खुले हुए थे। मैंने कहा बैठ जाइये। तो बोले हमको आपसे चंदा चाहिए। मैं खुश हुआ कि मेरे पास एक रुपये का नोट है दे दूंगा। तो मैंने उनसे कहा कि चंदा ले लीजिए। फिर उन्होंने पूछा यहां इस मकान में जो एडीटर साहब रहते हैं उनसे क्या रिश्ता है? मैंने कहा : दोस्त हैं। 'मेरे बेटे हैं' मैंने नहीं कहा। तो कहा चंदा हम आपसे ले सकते हैं। मैंने एक रुपये का नोट दे दिया तो वे बोले हम भिखारी नहीं हैं। मैंने कहा कि भीख मांगने का शिष्ट नाम है चंदा। आप कैसे कहते हैं कि हम भिखारी नहीं हैं। मैं स्वयं भिखारी रहा हूँ लेकिन दूसरों की सहायता के लिए, अपने लिए नहीं। उन्होंने कहा हम आपसे सौ रुपये लेंगे। मैंने कहा कि सौ पैसे ही आपको मिलेंगे। तो कहा कि हम गोमा लेकर आए हैं। मैंने कहा गोमा लेकर आए हैं तो गोमा से ही आपको सामना करना पड़ेगा। दिन तारीख तय कर लीजिए मैं भी तैयार रहूंगा और आप लोग भी।

विभूति नारायण राय : आप तो पुराने पहलवान हैं।

त्रिलोचन : हां, मुझे यह बात करनी पड़ी। मैंने देखा कि फिर मेरे यहां आने की हिम्मत नहीं पड़ी। तो भाई इससे मार्क्सवाद फैलेगा! उससे बदमाशी और लुच्ची फैलेगी।

कर्ण सिंह चौहान : एक और सवाल है। 1957 से 1978 के बीच में जहां तक मेरी जानकारी है आपकी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई 1957 में दिगंत और 1978 में ताप के ताये दिन।

गोविंद प्रसाद : 1978 में नहीं 1980 में।

कर्ण सिंह चौहान : ये जो लगभग पच्चीस साल हैं—एक रचनाकार की एक तिहाई उम्र होती है। ऐसा क्यों हुआ इसके बारे में बताइये।

त्रिलोचन : यह प्रश्न आपने बहुत ही वैयक्तिक कर दिया। देखिए उस समय हिंदी की जो मैंगजीन थीं जो साहित्य को छापने की दायेदार थीं उन्होंने प्रगतिशील लेखकों और कवियों को छापना

एक तरह से बंद कर दिया था। 'कल्पना' आदि जो पत्रिकाएं थीं वहां मैंने कोई रचना भेजी नहीं, यह मत समझिए। वापस आई हैं। और बाद में भेजना इसलिए बंद कर दिया उनके यहां जो हिसाब किताब रखता था पेमेंट का उसने दूसरे के नाम भेज दिया। लिखता तो मैं बराबर रहा हूं, छपा नहीं हूं।

कर्ण सिंह चौहान : लेकिन उस 25 साल में बहुत कविता संग्रह छपे हैं। कविता पर बड़ी चर्चा हुई है। 1957 से 78 तक के समय में तमाम काव्य आंदोलन हुए हैं।

दिनेश कुमार शुक्ल : नागार्जुन वगैरह धर्मयुग में काफी छपे।

गोविंद प्रसाद : मुक्तिबोध का संग्रह आता है।

त्रिलोचन : नागार्जुन का वक्तव्य पढ़ा है आपने धर्मयुग में? उन्होंने कहा है कि मैं प्रपंचियों के पंजे में फंस गया हूं। माओत्से तुंग को गालियां देना शुरू किया, वे कविताएं छपीं। विनोबा के खिलाफ लिखा और छपाया, विनोबा की प्रशंसा में लिखा है वो भी छपा है। मैंने पढ़ा है, वह आज तक किसी संकलन में नहीं है। जयप्रकाश की तारीफ में लिखा वह नहीं छपाया है आज तक। तो मेरा यह कहना है कि नागार्जुन कुछ हिसाबी आदमी हैं। कभी कभी नागार्जुन का व्यंग्य फूहड़ हो गया है। मैंने स्वयं नागार्जुन से एकांत में बात करते हुए कहा कि जवाहर लाल जी के गुजरने पर आपने जो कविता लिखी, वह अच्छी नहीं है, शिष्ट नहीं है। आपका व्यंग्य भी अनुचित है—*तुम रह जाते दस साल और / भारत का होता हाल और...*

केदारनाथ सिंह : बहरहाल शास्त्री जी हम व्यक्तिगत प्रसंग से बाहर निकलें। बुनियादी सवाल उठाये गए थे। आप तो सीधे क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़े रहे हैं? क्या आज का दौर क्रांति के उपयुक्त लगता है आपको?

त्रिलोचन : अवध सबसे बाद में गुलाम हुआ है। जाहिर तौर पर 1857 में। अगर जनयुद्ध कहीं हुआ है तो वह अवध का इलाका ही है। यहां सभी जातियों के लोग लड़े हैं। चमार और केवटों की सेनाएं थीं। असल में जनयुद्ध तो मेरठ में नहीं हुआ। वहां पब्लिक शरीक नहीं हुई।

कर्ण सिंह चौहान : 1857 में भी नहीं?

त्रिलोचन : वही तो मैं कह रहा हूं।

विभूति नारायण राय : बाकी जगह सिपाही लड़े अवध में जनता लड़ी।

त्रिलोचन : हां जानते हैं क्यों लड़े— बेगम हजरत महल गांव गांव में गईं।

केदारनाथ सिंह : अवध का सम्मान करते हुए मैं कहना चाहूंगा कि ये वाजिद अलीशाह अवध में ही हुआ... (हंसी)।

त्रिलोचन : केदारनाथ क्या बलिया में ही हो सकते थे (हंसते हुए)

विभूति नारायण राय : वो तो मैं जानता हूं कि केदारनाथ बलिया के अलावा भी हो सकते थे।

केदारनाथ सिंह : जिक्र बलिया का है...आपने निराला जी के सामने डांट खिलवाई इसी बलिया के सवाल पर...आपके भाषा ज्ञान पर तब भी भरोसा था, आज तो और ज्यादा है। एक शब्द के लिए महाकवि की डांट मैं लगातार खा रहा था अपने बलिया को लेकर और आप चुप रहे...ये चुप रहना आपका अन्यायपूर्ण था...कृपया उस प्रसंग को स्पष्ट करें...

त्रिलोचन : जहां वाद विवाद चलेगा वहां मैं फंसने का आदी नहीं हूं... (हंसी)...चाहे मेरी पत्नी करती रही हो चाहे कोई और, वहां मैं चुप रहता हूं।

विभूति नारायण राय : फिराक साहब से कभी आपका वाद विवाद हुआ...

त्रिलोचन : भयंकर हुआ। बाद में सी ऑफ करने मुझे और शमशेर को यूनिवर्सिटी गेट तक गए। उस समय कौन आया था शायद डगलस...डगलस का विरोध करने के लिए इलाहाबाद में मीटिंग हुई और मैं बनारस से बुलाया गया सदरत के लिए। उसमें फिराक मुख्य वक्ता थे। आवेश

में बोले, बढ़िया बोले। इसके बाद चले गए। बाद में शमशेर ने कहा तुमको फिराक जी से मिलाएंगे। तो गए उस दिन शाम को। असल में शाम का समय फिराक से मिलने के लिए अच्छा नहीं था, उस समय वह पीना शुरू कर देते थे, ऑफर नहीं करते थे...कोई मांग बैठे तो इसको बदतमीजी मानते थे। अक्खड़ और आकिम दोनों थे। तो शमशेर ने उनसे परिचय देते हुए कहा : इनका नाम त्रिलोचन शास्त्री है और ये हिंदी के कवि हैं। उस समय नशे की स्थिति में बोले हिंदी भी कोई जुबान है...तो मैंने कहा— जीऽऽ उसी जुबान को हिंदी कहते हैं जो आप तुतलाने में बोल रहे हैं। सीधा जवाब, इस पर भड़क गए, बोले मेरा घर घराना, मेरे वालिदान सब उर्दू जुबान बोलते हैं। मैंने कहा तब माहौल में आपको हिंदी जुबान सुनाई देती है।...देखिए फिराक की प्रतिभा का जो विकास हुआ है, आरंभ में नहीं मिलता है। जो गजलें शेर वगैरह लिखा है वह दो कौड़ी का है। उनकी प्रतिभा का प्रस्फुटन होता है 1935 के बाद।

केदारनाथ सिंह : 36 के बाद, प्रगतिशील आंदोलन के बाद उनमें निखार आ गया।

त्रिलोचन : यहीं से वे कवि हुए।

रवींद्र त्रिपाठी : लेकिन शास्त्री जी क्या हुआ था वो निराला जी और आपका (केदार जी की ओर इंगित करते हुए) वाकया...

केदारनाथ सिंह : मैं कहीं लिखने वाला हूँ उसके बारे में...क्या हुआ कि शास्त्री जी के नेतृत्व में मैं निराला जी से मिलने गया, वहां महाकवि दरी पर बैठकर खाना खा रहे थे। शास्त्री जी को देखकर उनकी आंखों में चमक आई। बोले नहीं, खाना खा रहे थे बड़े तन्मय भाव से। शास्त्री जी बैठ गए।

गोविंद प्रसाद : इलाहाबाद की ही बात है?

त्रिलोचन : हां।

केदारनाथ सिंह : खाना खाने में काफी वक्त लिया। जब खा चुके तो शास्त्री जी से पूछा— कब आए? बातचीत में काफी आत्मीयता थी। मैंने पाया कि शास्त्री जी के प्रति उनके मन में स्नेह है।

अनिल त्रिपाठी : आप तब विद्यार्थी थे?

केदारनाथ सिंह : मैं तब बी.ए. का विद्यार्थी था...तो एक पत्रिका थी ज्योत्सना। बिहार से छपती थी। तब ठीकठाक छपती थी, आज खराब छपती है। उसके प्रथम पृष्ठ पर निराला की कविता छपी थी अरधान वाली। अरधान शब्द मेरी समझ में न आए तो मैंने कहा कि महाकवि बैठे हुए हैं तो इन्हीं से पूछ लूं...बाल चापल्य था ही। तो मैंने कहा कि ये शब्द मेरी समझ में नहीं आ रहा है, महाकवि बोले— ये मैं नहीं बताऊंगा, तुमको जानना चाहिए, तुम्हारी बोली का शब्द है। मैंने दृढ़ता से कहा, मेरी बोली का शब्द नहीं है, मेरी बोली भोजपुरी है। भोजपुरी में नहीं है। बोले...भोजपुरी में है। मैंने शास्त्री जी की ओर देखा कि आप मेरी रक्षा कीजिए, कहिए भोजपुरी में नहीं है, आप तो भाषाविद हैं। अब महाकवि के सामने चुप तो चुप, बोले नहीं। बहुत डांटा— मुझे, आजकल के बच्चे अपनी बोली भूलते जा रहे हैं...अपने दादा, दादी जो भी पुराने लोग हैं उनसे जाकर पूछना तुम्हारी बोली में यह शब्द मौजूद है।...गए घर, मैंने पूछा भी, तब मेरी दादी जीवित थीं...दूर दूर तक भोजपुरी में अरधान नहीं है।

बाद में वहां से निकलकर मैंने शास्त्री जी से कहा—आपने मुझे बचाया नहीं। बोले—महाकवि से कौन हुज्जत करता।

गोविंद प्रसाद : महाकवि की मानसिक स्थिति इस तरह की थी उस समय, जो आप हुज्जत से बच रहे थे...

त्रिलोचन : इसका कारण यह है कि जिस बात पर अड़ जाते थे, उससे हटते नहीं थे, यह उनमें आदत थी।

विभूति नारायण राय : उस दौर में भुवनेश्वर से भी मुलाकात हुई थी?

त्रिलोचन : भुवनेश्वर नाटककार जो हैं...मैं शमशेर के साथ था, एक दिन वो आए तो शमशेर ने उनसे कहा कि ठहरिये, आप मेरी किताबों को न छुड़िये।

विभूति नारायण राय : शमशेर जी सतर्क रहे होंगे कहीं किताबें छुएंगे तो उठाकर ले न जाएं।

केदारनाथ सिंह : ले नहीं गए वो...वहां से सामान उठाकर ले गए।

त्रिलोचन : नहीं, नहीं।

केदारनाथ सिंह : बरतन ले गए थे वो, किताबें नहीं ले गए थे।

त्रिलोचन : हां, बरतन ले गए थे। दूसरी बात ये है भुवनेश्वर में। हाइली इंटेलेक्चुअल था, इसलिए शमशेर जो आदर देते थे, वह मैं भी देता था। पॉकेटमारी में भुवनेश्वर उस्ताद थे। पहले पत्र ले आते, जो पॉकेट में पत्र मिलते थे, पैसा नहीं। पैसा तो रख लेते थे।

रवींद्र त्रिपाठी : शास्त्री जी एक बार आपने कहा था जब आप दिल्ली यूनिवर्सिटी में थे, टैगोर हॉल में बैठते थे कि एक खूबसूरत स्त्री को देखने आप बहुत दूर पैदल चलकर गए थे।

त्रिलोचन : उस समय मैं सोलह साल था। जो कुर्ता मैं पहने हुए था, वह फटा हुआ था। उससे साफ सीधे कहा : मेरे पास पैसा नहीं है, मैंने तुम्हारी सूरत की प्रशंसा सुनी है देखने आया हूं। आजमगढ़ 100 कि.मी. पैदल चलकर गया था। लेकिन उसकी उदारता भी देखिए, उसने मुझे ठहराया। नर्तकी नृत्य कुशलात थी।

विभूति नारायण राय : शास्त्री जी अपने समकालीनों के बारे में सूत्र वाक्य में बताइए— एक एक वाक्य में, जैसे एक शायर थे उन्होंने पूछा कौन सबसे बड़ा उर्दू का शायर है तो मैंने कहा फिराक तो उन्होंने कहा घंटा लाल, तो मैंने कहा मीर तो उन्होंने कहा बददिमाग तो अपने कंटेम्पोरेरी के बारे में वन लाइनर।

त्रिलोचन : मीर ने एक शेर ही कहा है, कहते हैं मैं...

केदारनाथ सिंह : शास्त्री जी केदार जी के बारे में— केदारनाथ अग्रवाल के बारे में, बड़े कवि हैं। उन्होंने आपके बारे में कमेंट किया है, आपका उनके बारे में क्या कहना है?

विभूति नारायण राय : एक सूत्र वाक्य में, देखिए जो आपने बाबा के बारे में कहा, बहुत अच्छा कहा वह रिकॉर्ड हो गया।

त्रिलोचन : देखिए मैं आपको बता दूं, सबसे पहले नया जो हुआ— औरों से पहले—वह है केदारनाथ अग्रवाल माने शमशेर से भी पहले और त्रिलोचन से भी पहले है।

विभूति नारायण राय : बहुत अच्छा, शास्त्री जी अपने बहुत बड़ी बात कही। अच्छा नामवर जी के बारे में कुछ कह दीजिए।

त्रिलोचन : नामवर जी के बारे में उसी तरह कहने से अपने को रोकूंगा जिस तरह अपने बेटे के बारे में कहने से। नामवर को मैं पुत्रवत मानता हूं।

(समवेत स्वर : क्या बात कह गए आप।)

केदारनाथ सिंह : सही बात है, नामवर सिंह और त्रिलोचन जी की स्थिति मैं जानता हूं।

विभूति नारायण राय : अच्छा, नामवर जी भाषण न करते और लिखते, तो क्या ज्यादा ईमानदार होते, आपको क्या लगता है?

त्रिलोचन : आज साहित्य विषय के वक्ता के रूप में नामवर के बाद दूसरे नंबर पर कौन आता है...उनके अंदर जो प्रतिभा है, उसकी मैं आज भी डिमांड करता हूं। लेकिन भइया तुम लेखक हो तुम्हारे प्रवचन तुम्हारे व्यक्तित्व का महीन तत्त्व उद्घाटित नहीं कर पाएंगे।

गोविंद प्रसाद : शास्त्री जी हम मुक्तिबोध के बारे में जानना चाहते हैं : मुक्तिबोध के बारे

में आपकी क्या राय है?

त्रिलोचन : मुक्तिबोध असंग व्यक्तित्व के आदमी हैं। बेचैनी उनके जीवन का निरंतर सूत्र थी...मोटो...ऐसा बेचैन कवि मैंने दूसरा नहीं देखा।

केदारनाथ सिंह : ये तो अच्छी बात है।

विभूति नारायण राय : राम विलास जी के बारे में आपकी क्या राय है?

दिनेश कुमार शुक्ल : ये तो अवध के हैं...

त्रिलोचन : आप भी अवध के हैं, कौन जिला?

दिनेश शुक्ल : कानपुर।

त्रिलोचन : आप जानते हैं वहां का महान मेधावी राइटर, हिंदी में, प्रताप नारायण मिश्र है।

केदारनाथ सिंह : एग्रीड रामविलास जी के बारे में...

त्रिलोचन : रामविलास जी गांव की नैतिकता से प्रभावित थे जो बड़ी रूढ़ है। गांव की नैतिकता उनके दिमाग से नहीं गई। अब अगर उसको डिफाइन आधुनिक लैंग्वेज में कहना हो तो कहेंगे कि विक्टोरियन मोरलिटी में उनका यकीन था।

विभूति नारायण राय : शमशेर जी के बारे में आपने कुछ नहीं कहा।

त्रिलोचन : निरक्षर होते हुए भी मेरी पत्नी में साहित्य की समझ का विकास हो गया। उनको साक्षर करने का श्रेय जानते हैं, त्रिलोचन को नहीं है, शमशेर को है। संक्षिप्त और इशारों में बात करते हैं। यह होते हुए भी प्रथम श्रेणी के कवि हैं।

विभूति नारायण राय : अच्छा त्रिलोचन जी, विजयदेव नारायण साही के बारे में क्या सोचते हैं आप?

त्रिलोचन : प्रतिभाशाली थे और मैं उनसे कहता था भइया तुम्हारा नाम तो चौपाई है।

केदारनाथ : चौपाई की अर्धाली...

विभूति नारायण राय : राम कृपा कर चितवा जाही / विजयदेव नारायण साही। कवि के रूप में कैसे लगते थे?

त्रिलोचन : जब तक एकदम लोहियाइट रहा, स्ट्रिक्ट, तो वह गाइड भी था, फ्रेंड भी था और फिलासफर भी था। और बाकी लोग जगदीश गुप्त आदि पिछलगुए थे।

गोविंद प्रसाद : शास्त्री जी इलाहाबाद में उन दिनों एक और कवि थे रघुवीर सहाय...।

केदारनाथ सिंह : नहीं नहीं लखनऊ के थे।

त्रिलोचन : वे तो लखनऊ से थे। रघुवीर सहाय संपन्न जमींदार घराने से थे। अवध कम लखनऊ संस्कार ज्यादा है।

केदारनाथ सिंह : अवध का संस्कार तो लखनवी संस्कार हुआ।

दिनेश कुमार शुक्ल : अंतर है। अवध के संस्कार में और लखनऊ के संस्कार में हमेशा द्वंद्व रहा है।

त्रिलोचन : रघुवीर सहाय पत्रकारिता से लाभ उठाते हुए कवि हैं। रामदास की हत्या होगी पढ़ा है? फ्रीवर्स की तरह लोग पढ़ते हैं। लेकिन उसकी आंतरिक संरचना चौपाई की है। अनुप्रास नहीं है लेकिन चौपाई होती जाती है। चौपाई का छंद जहां वैरियर करता है वहीं फ्रीवर्स है।

विभूति नारायण राय : इंशा और परसाई में कौन बड़ा व्यंग्यकार आपको लगता है?

त्रिलोचन : मैं बिल्कुल निष्पक्ष होकर कहूंगा कि इंशा के स्तर का दूसरा व्यंग्यकार नहीं है।

कर्ण सिंह चौहान : आपके बाद की पीढ़ी से तार सप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक वाले जो कवि हैं उनमें से बाद के लोग जिस कवि को अपना मानते हैं वह हैं केदारनाथ सिंह...

त्रिलोचन : केदारनाथ सिंह सुनिये किन गुरुओं का कवि रहा है, वो शायद आप में साहस न हो...अवतार सिंह पाश ने केदारनाथ की कविताओं से प्रभावित कविताएं लिखी हैं। पंजाबी में। आप लोग गुरुमुखी पढ़ते नहीं और गुरुमुखी हिंदी के करीब थी।...मैं कमजोरी की हालत में कभी राजस्थान घूम आया हूं वहां का नया कवि कहता है, मैं केदारनाथ जैसा लिखना चाहता हूं, तो मैंने कहा— तुम्हारे लिए केदारनाथ जैसा लिखना संभव नहीं है, उनकी जड़ उगी है बलिया में।

विभूति नारायण राय : शास्त्री जी मैनेजर पांडेय कैसे आलोचक हैं?

त्रिलोचन : मैनेजर पांडेय प्रतिभाशाली और अच्छे आलोचक हैं, लंबे लंबे लेख लिखे हैं। मैनेजर पांडेय सिद्धांत स्थापन में उतने ही सफल हैं जितने नंद दुलारे वाजपेयी।

केदारनाथ सिंह : शांतिप्रिय द्विवेदी थे बनारस में, वे कैसे आलोचक थे?

त्रिलोचन : शांति प्रिय द्विवेदी को निबंधकार या समीक्षक केवल नहीं मानना चाहिए। वे मूलतः रचनाकार थे। उन्होंने आरंभ में जो किताबें लिखीं वे दोषमय हैं— छंदों में दोष है।

केदारनाथ सिंह : कविता नहीं गद्य के बारे में बात कीजिए।

त्रिलोचन : उनका गद्य भी काव्यमय है, उनके यहां सूत्र हैं, सूत्र को लेकर, विचार को लेकर प्रशस्त उच्चकोटि की आलोचना लिखी है।

केदारनाथ सिंह : हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने उनके एक सूत्र को लेकर पूरा एक लेख लिखा है 'ममता का अंतःस्पंदन'— यह वाक्य उनका है।

त्रिलोचन : तो आपको बताऊं कि शांतिप्रिय द्विवेदी जी का मेरे साथ सद्व्यवहार था। एक बार उन्होंने मुझसे प्रस्ताव किया कि तुम मेरे बाँडी गार्ड बनो, मेरे साथ रहा करो, लोग मुझे चुनौती दे देते हैं। और आप जानते हैं उस समय मैं क्या लिख रहा था? एक प्रकाशक ने मुझे रखा और उसने दो आने दाम की किताबें मुझसे लिखवाईं— जैसे तुलसी के पौधे का औषधीय उपयोग। साल भर तक मैं केवल खाने पर लिख रहा था। ये किताबें बहुत बिकती थीं। तुलसी का उपयोग, धतूरे का उपयोग और अनेक जड़ीबूटियों का उपयोग, ये सब मैंने लिखा है। आज मैं कह रहा हूँ, कहीं कहा नहीं।

गोविंद प्रसाद : शास्त्री जी अस्सी के बाद जो संकलन आए हैं जिनमें अरुण कमल, राजेश जोशी जैसे कवि हमारे सामने हैं, इस समय पर आप क्या कहना चाहेंगे?

त्रिलोचन : आप जानते हैं कि आधुनिक हिंदी का, जिसे स्वर्णिम युग कहना चाहिए वह छायावाद ही है।

विभूति नारायण राय : छायावाद सबसे स्वर्णिम युग है?

त्रिलोचन : हां।

गोविंद प्रसाद : लेकिन उसकी भाषा के बारे में आपने लिखा है।

त्रिलोचन : मैंने भाषा को सदोष कहा है।

केदारनाथ सिंह : सदोष भाषा में बड़ी कविता हो सकती है?

त्रिलोचन : हां।

गोविंद प्रसाद : इसका मतलब है कि भाषा की कोई निर्णायक भूमिका नहीं होती।

केदारनाथ सिंह : दुनिया में कोई ऐसा उदाहरण, जहां भाषा सदोष हो और बड़ी कविता हो...अपार्ट फ्रॉम छायावाद?

त्रिलोचन : राम चरित मानस।

केदारनाथ सिंह : नहीं है, सदोष नहीं है भाषा के लिहाज से। यह आप ही से सीखा है।

कर्ण सिंह चौहान : छंद की दृष्टि से दोष हो सकता है।

केदारनाथ सिंह : नहीं, छंद नहीं...

त्रिलोचन : जैसे *धावा हनूमान अति भारी*। अति लगा दिया तो भारी क्यों लगा रहे हैं आप... और सौंदर्य के लिए 'कोटि' दिया है। कोटि काम छवि...हारे।

केदारनाथ सिंह : विन्यास तो सही है...

त्रिलोचन : विन्यास में ही तो गलती आती है— गोस्वामी जी के यहां।

केदारनाथ सिंह : शास्त्री जी पुरानी कविताओं के बारे में हममें क्षमादान का भाव होना चाहिए क्योंकि वहां पाठ की समस्या होती है, आजकल तो नहीं होती।

त्रिलोचन : सवैया उनके यहां ढला नहीं आता, वह मतिराम में आता है। घनाक्षरी उनके यहां उतनी अर्जित नहीं है जितनी सेनापति के यहां।

केदारनाथ सिंह : ये मान लिया। क्या भाषा की त्रुटि तुलसीदास के यहां है?

त्रिलोचन : है।

केदारनाथ सिंह : 'सीता बोला' कहेंगे आप...

त्रिलोचन : '*मंद बचन सीता तब बोला*'। अवधी में 'बोला' कहा जाता है। मेरी दादी कहती थीं।

केदारनाथ सिंह : तो तुलसी दास बोले हुये का अनुसरण करते हैं वो बड़ी बात है।

त्रिलोचन : वो बात है बहुत बड़ी लेकिन है दोष।

गोबिंद प्रसाद : अरुण कमल और राजेश जोशी की पीढ़ी पर...

त्रिलोचन : एक गोष्ठी में राम प्रकाश ने कहा कि ये त्रिलोचन जी हैं और ये राजेश जोशी। कविता लिखते हैं। ये 1975 की बात है। तो पहले ही दिन परिचय कराते हुए राजेश जोशी ने तत्काल प्रश्न किया कि आप 'बेल' बेचा करते थे। तो मैंने कहा कि मैं दूसरे फल भी बेचा करता था। अब भोपाल का आदमी बैल नहीं कह सकता था।

केदारनाथ सिंह : वहां ऐ का उच्चारण नहीं होता।

त्रिलोचन : तो अब बताऊं उसके जाने के बाद मैंने सोचा कि उसने यह सवाल क्यों पूछा कि मैं बेल बेचता था। फिर उसी दिन बिल्लेसुर बकरिहा का ध्यान आया। निराला की किताब है, कम से कम 30-35 साल पहले मेरी पढ़ी हुई है। उसमें एक करेक्टर है त्रिलोचन। तो त्रिलोचन निहायत गरीब है, वो बैल चुराता है, बेचता है। तो दूर बेचता है इसलिए पकड़ में नहीं आता।

गोबिंद प्रसाद : तो बेल पत्थर समझ गए आप।

त्रिलोचन : हां उस समय यह अर्थ लिया मैंने। तो यह प्रसंग था।

केदारनाथ सिंह : शास्त्री जी! राजेश की कविता।

कर्ण सिंह चौहान : इधर की कविता में जो आपको अपील करता है।

त्रिलोचन : सबको पढ़ता हूं, सब अपील करते हैं। सब समर्थ हैं। अगर लिखते रहे तो विकास होना ही चाहिए। मैं अपनी ओर से फैसला देने का अधिकार नहीं रखता। मेरी भाषा भी तो बराबर इसी कारण बदल रही है। मैं नई पीढ़ी की बदली हुई भाषा को भी देखता हूं।

आदिवासी और आदिवासी साहित्य की अवधारणा

वीर भारत तलवार

आदिवासियों की चर्चा करते हुए सबसे पहली बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि भारत में आदिवासी कोई एक या समरूप समाज नहीं है। भारत में कई तरह के आदिवासी समुदाय हैं जिनके बीच भिन्नताएं भी हैं; यहां तक कि कुछ एक के बीच युगों का अंतर है। कोई समाज आगे बढ़ा हुआ है और कोई अभी बहुत पीछे है। पूरे भारत में और झारखंड में भी जो बड़े आदिवासी समुदाय हैं वे मुख्य रूप से खेतिहर समाज हैं जिन्हें अंग्रेजी में एग्रेरियन कम्युनिटीज कहा जाता है। उनकी संस्कृति ग्रामीण संस्कृति है। झारखंड में मुंडा, संथाल और उरांव आदि ऐसे ही समाज हैं जिन्हें हम आदिवासी कहते हैं। अब उनके ये जो नाम हैं— मुंडा, संथाल आदि— ये नाम खुद आदिवासियों ने नहीं रखे हैं। कोई भी समुदाय अपना नाम खुद नहीं रखता क्योंकि उसको इसकी जरूरत नहीं होती। नाम अकसर दूसरे लोग ही उनका रखते हैं। झारखंड के उदाहरण से मैं कह सकता हूं कि आदिवासी तो अपने आप को सिर्फ मनुष्य कहते हैं। संथाली और मुंडारी का एक शब्द है 'होर' (संथाली में होड़) जिसका मतलब होता है मनुष्य। इस शब्द में 'ह' ध्वनि बाद में आई जब ये आदिवासी भारतीय आर्य भाषाएं बोलने वालों के संपर्क में आए होंगे। इससे पहले जब ये हिंदवीन के इलाके में थे तो वहां इस शब्द में 'ह' की जगह मूल ध्वनि 'क' होती थी। वह 'क' ध्वनि आज भी कोरकू आदिवासियों (मध्यप्रदेश) की भाषा में सुरक्षित है। कोरकू में जो 'कू' है वह तो बहुवचन का प्रत्यय है और जो 'कोर' है यह उसी होर का मूल रूप है। कोर का एक रूप 'कोल' भी होता है। झारखंड के सिंहभूम जिले के आदिवासियों में होर शब्द और भी संक्षिप्त होकर सिर्फ 'हो' रह गया है। इन सभी शब्दों का अर्थ है मनुष्य। मुंडा, संथाल नाम बाहर के लोगों द्वारा दिये गए नाम हैं। मुंडा, संथाल तो बड़े खेतिहर समाज हैं और झारखंड में ही एक छोटा सा आदिवासी समाज बिरहोर नाम का है। उन्हें यह नाम मुंडाओं ने दिया। मुंडारी भाषा में 'बिर' का मतलब होता है

जंगल और 'होर' यानी मनुष्य। बिरहोर एक छोटा सा समुदाय है। वे खेती नहीं करते और जंगल के अंदर रहते हैं। कुछ तो रस्सी बनाकर बेचते हैं और कुछ बंदर पकड़कर बेचते हैं। इसके अलावा उनके पास आजीविका का कोई उपाय नहीं है। सिंहभूम के जंगलों के अंदर मैं कभी कभी उनके बीच जाता था। एक बार मैंने उनसे पूछा कि तुम लोग खेती क्यों नहीं करते? जवाब में उन्होंने कहा कि जमीन कहाँ है? जमीन तो सब मुंडाओं की है! मैं यह देखकर चकित रह गया कि उनके लिए मुंडा आदिवासी एक इतना प्रभुत्वशाली और शक्तिशाली समाज है कि सारी जमीन मुंडाओं की हो चुकी है और बिरहोरों के लिए कोई जमीन नहीं बची। जंगल में रहने वाला और जंगल पर ही निर्भर यह छोटा सा समुदाय बिरहोर अब धीरे धीरे खत्म होता जा रहा है। उनकी आबादी, मेरा खयाल है, अब तीन चार हजार ही बची है। यही स्थिति अब शबरखड़िया की भी है। तो मुंडाओं का दिया हुआ नाम है बिरहोर— जंगल का मनुष्य। यानी मुंडा तो जंगल से बाहर निकल आए और खेतिहर हो गए लेकिन बिरहोर अभी तक आदिवासी ही हैं। तो मुंडा आदिवासियों की नजर में भी एक समुदाय है जो आदिवासी है। कहने का मतलब यह है कि भारत में आदिवासी कोई एक जैसा, एक समान समाज नहीं है। कई तरह के आदिवासी समाज हैं और हम कोई एक ही सिद्धांत सबपर समान रूप से लागू नहीं कर सकते। पूर्वोत्तर को देखें जिसे आजकल नॉर्थ ईस्ट कहते हैं। नॉर्थ ईस्ट या पूर्वोत्तर की कोई एक पहचान नहीं है, कोई एक आइडेंटिटी नहीं है। इस बात को समझना होगा कि इस पूर्वोत्तर में कितने अलग अलग तरह के आदिवासी समाज हैं और उनके बीच कितने तरह के अंतर्विरोध हैं और वे सभी अपनी अपनी अलग पहचान को कायम रखने के लिए कितना संघर्ष कर रहे हैं। इसके साथ ही पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों से बाकी भारत के आदिवासी समुदायों के कई तरह के महत्वपूर्ण फर्क हैं। एक बुनियादी फर्क जो हमेशा ध्यान में रखना चाहिए वह यह है कि मध्य उत्तर और पश्चिमोत्तर भारत में जो आदिवासी समाज रहते हैं वे सदियों से अपने चारों ओर हिंदू आबादी से घिरे रहे हैं। इस कारण उनके अंदर बाकी हिंदुओं से अपनी स्वायत्तता के बोध के बावजूद अलगाव की तीव्र भावना नहीं मिलती, बल्कि इसके विपरीत उनके और हिंदुओं के बीच ऐतिहासिक काल से कुछ आदान प्रदान भी होता रहा है और उनकी भाषाओं के बहुत से शब्द एक दूसरे की भाषाओं में आ गए। लेकिन पूर्वोत्तर में इस तरह का आदान प्रदान बहुत कम हुआ है। पूर्वोत्तर के आदिवासी एक जमाने से मुख्य भारत भूमि से बिल्कुल अलग रहे हैं। इसलिए बाकी भारत के साथ उनका लगाव और जुड़ाव वैसा कभी नहीं हो सकता जैसा मध्य और उत्तर भारत के आदिवासियों का है। अपने अलगाव और अपनी स्वतंत्रता की चेतना जितनी पूर्वोत्तर के आदिवासियों में है उतनी मध्य और उत्तर भारत के आदिवासियों में नहीं है जो सदियों से बाकी हिंदुओं से घिरे या उनके करीब रहते आए हैं। यही कारण है कि पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदायों पर छठा शिड्यूल लागू किया गया है जिसके फलस्वरूप उनकी जमीन की पूर्ण सुरक्षा है और वहां उनके अपने इलाके हैं जहां उन्हीं की परिषदें स्थानीय प्रशासन चलाती हैं।

यह बड़ा अंतर है। लेकिन बहुत सारी विविधताओं और भिन्नताओं के बीच भारत के आदिवासियों में कुछ एक बुनियादी समानताएं भी हैं। इनमें से एक है भूमि का अर्थ। भूमि की हमारी जो अवधारणा है, आदिवासियों की भूमि संबंधी अवधारणा उससे बहुत अलग होती है। हमारे लिए भूमि हमारी संपत्ति है, प्रॉपर्टी है; वह हमारे उत्पादन का साधन या 'मीन्स ऑफ प्रोडक्शन' भी है, लेकिन आदिवासियों के लिए भूमि का यह अर्थ नहीं है। उनके लिए भूमि संपत्ति नहीं होती और उत्पादन का साधन भी नहीं। आदिवासी के लिए भूमि का अर्थ होता है—टेरिटरी—इलाका। यानी आदिवासी के लिए भूमि का मतलब है उसका इलाका। ऐसा एक प्रदेश जहां वह

आदिवासी समुदाय स्वतंत्रतापूर्वक रहता है, जो उसके राज्य जैसा है। उसके अंदर कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता। अपने इलाके में आदिवासी स्वतंत्रतापूर्वक, अपने पुरखों से चली आई परंपराओं के अनुसार उन्मुक्त भाव से रहते हैं और उनके ऊपर किसी और का नियंत्रण या अंकुश नहीं होता। भूमि का यही अर्थ कमोवेश भारत के सभी आदिवासियों में रहा है लेकिन कोई भी सार्वभौमिक राज्य, खासकर आधुनिक पूंजीवादी राज्य, भूमि के उनके इस अर्थ को स्वीकार नहीं करता है और अपने प्रशासन, फौज और बाजार के जरिए उनके बीच लगातार आवाजाही करता रहता है। उनके बीच जो एक दूसरी बड़ी समानता है वह है प्रकृति के साथ मनुष्य की एकता की चेतना। आदिवासी प्रकृति और मनुष्य के बीच कोई भेद नहीं करते। यह उनकी एक खूबसूरत विशेषता है। चर अचर, जड़ चेतन, पहाड़, पत्थर, नदी, तालाब, मनुष्य और जीव जंतु—सब उनके लिए एक जैसे सजीव हैं। सबके अंदर एक जैसी आत्मा का निवास है। यह आत्मा का निवास उनके लिए किसी शास्त्र में लिखी हुई बात नहीं है, यह उनके जीवन दर्शन में गुंथी हुई चीज है और उनके रोजमर्रा की जीवनदृष्टि का अंग रही है। प्रकृति और मनुष्य की एकता में उनका गहरा विश्वास रहा है। हालांकि अब स्थितियां काफी बदल रही हैं, फिर भी अगर उनका ऐसा विश्वास न होता तो उड़ीसा के नियामगिरी के जंगलों में कंध आदिवासियों ने अपने जंगलों की रक्षा के लिए पास्को कंपनी के खिलाफ जैसी लड़ाई लड़ी, वह न लड़ी होती। कंध आदिवासियों का विश्वास रहा है कि ईश्वर ने जंगलों को उन्हीं के जीवन यापन में सहायता के लिए बनाया और इसकी सुरक्षा की जिम्मेदारी ईश्वर ने स्वयं उन्हीं पर डाली है। इसलिए जंगल की रक्षा करना उनका धर्म है। प्रकृति के साथ मनुष्य की एकता—यही उनकी धर्म दृष्टि है, यही उनकी साहित्य दृष्टि है और यही उनकी आध्यात्मिक दृष्टि और यही उनका सौंदर्यबोध भी है। उनके साहित्य में, चाहे वह लोक साहित्य हो या लिखित साहित्य, सबमें प्रकृति को बहुत सजीव है।

आदिवासी समाज की इन कुछ एक विशेषताओं के बाद मैं कहना चाहूंगा कि आदिवासियों के बारे में शेष भारत में बहुत अज्ञान है। इतना अज्ञान है कि उसकी जितनी भी निंदा की जाए, वह कम ही होगी। ऐसे अज्ञान के रहते भारत कभी एक राष्ट्र नहीं बन सकता। अगर हम भारत को एक राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो हमें भारत के विभिन्न समाजों के बारे में सचमुच कुछ जानना चाहिए, उनके बीच जाना चाहिए और उनसे प्रेम रखना चाहिए। आदिवासियों के बारे में बहुत से पढ़े लिखे लोग भी बहुत सी भ्रामक धारणाएं रखते हैं। मैं यहां कुछ एक गंभीर धारणाओं की बात रखना चाहूंगा। जैसे लोग समझते हैं कि आदिवासी मातृसत्तात्मक समाज होते हैं। ऐसी कोई बात नहीं है। आदिवासियों में सिर्फ खासी और एक दो समाज ही ऐसे हैं और ये भी मातृसत्तात्मक नहीं, बल्कि मातृवंशीय हैं। यानी मां के नाम से वंश चलता है और पुरुष ब्याह के बाद स्त्री के घर रहने आता है। ज्यादातर आदिवासियों में घोर पितृसत्तात्मक समाज हैं और वहां पुरुष की प्रधानता खूब चलती है। एक बार हम कुछ लोग मिजोरम में घूम रहे थे और मैंने जब अपने मिजो झाइवर को खासी लोगों के बारे में बताया तो हमारे मिजो झाइवर को बहुत आश्चर्य हुआ और दुख भी। उसने बड़े क्षोभ से कहा कि लगता है खासी समाज में लड़कों का कोई मान सम्मान नहीं होता! तो आदिवासियों का समाज कितना पुरुष प्रधान है मिजो झाइवर की इस बात से भी समझ में आ सकता है। अधिसंख्य आदिवासी समाज ऐसे ही हैं। दूसरी बात, बहुत से लोग सोचते हैं कि आदिवासी समाज में स्त्रियों की दशा बहुत अच्छी है। कुछ एक समाजों में जरूर अच्छी है। खासकर हिंदुओं की तुलना में वहां स्त्रियों को स्वायत्तता अधिक मिली हुई है। लेकिन कुछ समाजों में बहुत बुरी भी है। इसलिए यह समझना कि सभी आदिवासियों में स्त्री की दशा बहुत अच्छी है और वहां उनको बहुत अधिकार है, ऐसी बात बिल्कुल नहीं है। वहां भी स्त्रियों के साथ बहुत

सारी समस्याएं हैं और उनके सामाजिक अधिकार बहुत कम हैं। ज्यादातर आदिवासी समाजों में स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण यही है कि उनको काम करने के लिए लाया गया है और उनको काम करना है। हम उन्हें स्वतंत्र इसलिए समझते हैं क्योंकि उनको काम करने के लिए घर से बाहर जाना पड़ता है। अगर हमारी स्त्रियों को भी बाहर जाना पड़े तो वे भी दूर से स्वतंत्र दिखाई देंगी। इसी तरह वहां दहेज प्रथा के अभाव को लेकर भी भ्रम है। दहेज प्रथा हिंदुओं में है, लेकिन बहुत से आदिवासियों में दहेज प्रथा नहीं होती। वहां गोनॉड (ब्राइड प्राइस) की प्रथा है, दुल्हन का मूल्य चुकाया जाता है। इसलिए लड़की के पैदा होने पर वे उदास नहीं होते बल्कि खुश होते हैं। वधू मूल्य लाने के अलावा वह पिता के घर में भी श्रम करती है और पति के घर में भी। उसके श्रम को मूल्यवान माना जाता है। हिंदू तो लड़कियों से श्रम भी कराते हैं और उसको कोसते भी रहते हैं। लेकिन दुल्हन के मूल्य को स्त्रियों की स्वतंत्रता के साथ जोड़कर देखना गलत होगा। भले ही वहां स्त्रियों पर हमारी तरह कई प्रकार के यौनिक अत्याचार नहीं होते, लेकिन ब्राइड प्राइस अथवा दुल्हन का मूल्य अपने आप में स्त्री की स्वतंत्रता का बोधक नहीं है। उससे तो उस लड़की के बाप को ही फायदा होता है, उस लड़की की स्वतंत्रता से इसका कोई संबंध नहीं।

कहना चाहता हूं कि आदिवासी समाज को एक जड़ समाज, एक स्थिर समाज नहीं समझना चाहिए। बहुत से लोग उनकी बहुत सारी विशेषताओं को स्थायी समझते हैं, जैसे उनमें ऊंच नीच नहीं है, अमीर गरीब नहीं है, जातिप्रथा नहीं होती है। रामदयाल मुंडा उनकी चार बुनियादी विशेषताएं बताया करते थे जिनमें सहजीविता और सहभागिता वगैरह हैं। कहना चाहता हूं कि ये जो विशेषताएं बताई जाती हैं आदिवासी समाज की, इनमें से बहुत सी विशेषताएं पहले होती थीं, अब नहीं हैं या तेजी से खत्म हो रही हैं। पिछले दो सौ सालों में आदिवासी समाजों में बहुत सारे फर्क आए हैं, बहुत सारे परिवर्तन हुए हैं। हमारे देश के आदिवासी समाज आज बुनियादी रूप से टूट चुके हैं। वे कई तरह के दबावों और तनावों के तहत अपनी बुनियादी विशेषताओं को छोड़ते हुए एक रूपांतरण की प्रक्रिया से, संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं। आदिवासी समाज में सामूहिकता के मूल्य का काफी बखाना होता रहता है, लेकिन पिछले 40-50 वर्षों में वास्तविकता काफी बदली है। आज आदिवासी समाज में सामूहिकता उतनी भर ही बची है जितनी कि शहरों की तुलना में गांवों में अक्सर होती है, गैरआदिवासी समाज के गांवों में भी होती है। वास्तविकता यह भी है कि गांवों में आपसी झगड़े, फूट, ईर्ष्या, द्वेष और एक दूसरे को नुकसान पहुंचाने की प्रवृत्ति भी उतनी ही प्रबल होती है। ये सारी विशेषताएं आदिवासी गांवों में समान रूप से मिलती हैं। अगर आदिवासी समाज में सामूहिकता का मूल्य आज भी पहले जैसा ही प्रबल होता तो आज आदिवासियों में एकजुटता क्यों नहीं दिखाई देती? उनके नेताओं में इतनी फूट और आपसी विरोध क्यों है? झारखंड के सभी आदिवासियों का एक राजनीतिक दल क्यों नहीं है? इतने सारे अलग अलग दलों के पीछे कौन सी सामूहिकता की भावना है? यहां तो हर आदिवासी राजनीतिक दल अंदरूनी झगड़ों से बंटकर दो तीन दलों में विभाजित हो गए नजर आते हैं। खुद आदिवासी बुद्धिजीवियों में आपसी डाह और इतना व्यक्तिवाद क्यों है?

इसी तरह अमीर गरीब की बात लें या ऊंच नीच की बात देखिए तो देखेंगे कि बहुत से आदिवासी समाजों में आज ऊंच नीच कायम हो चुका है और अमीर गरीब भी स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे हैं। आदिवासी समाज का मतलब यही होता है और यही होना भी चाहिए कि उसके अंदर कोई भी ऊंच नीच नहीं है, अपने गण में सब बराबर के सदस्य हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि पिछले सौ डेढ़ सौ सालों के अंदर आदिवासी समाजों के अंदर की एकता और समानता कमोबेश टूट चुकी है, उनमें विषमता आ चुकी है और नए नए वर्ग पैदा हो चुके हैं जो पहले नहीं थे। उनमें

तीन नए वर्ग बहुत साफ दिखाई देते हैं। शिक्षा के प्रसार के कारण, आरक्षण के प्रावधान के कारण आदिवासियों में एक छोटा सा शहरी मध्यवर्ग विकसित हुआ है। इसके अलावा चुनावी राजनीति और संसदीय जनतंत्र का ढांचा जो आदिवासियों पर ऊपर से थोपा गया है और आदिवासियों के लिए एक अजनबी चीज है। इसका सबसे बुरा परिणाम उनमें भ्रष्टाचार के विकास के रूप में सामने आया है। इस राजनीतिक भ्रष्टाचार और चुनावी राजनीति से जुड़े आदिवासियों का एक नया राजनीतिक वर्ग बन गया है। इस वर्ग के आदिवासी सदस्यों के पास लाखों रूपए हैं और कुछ एक के पास तो करोड़ों हैं। आज भारत में आपको कई करोड़पति आदिवासी भी मिल जाएंगे। झारखंड में, छत्तीसगढ़ में और पूर्वोत्तर में भी। जहां करोड़पति आदिवासी आए हैं, वहीं दूसरी ओर ऐसे गरीब आदिवासियों की संख्या बहुत बढ़ गई है जिनकी जमीन चली गई है, जो भूमिहीन मजदूर बन गए हैं। इनमें से कई भिखारी बन गए हैं, शहरों में रिक्षा खींचते हैं। कुली और रेजा बन गए हैं और वेश्यावृत्ति तक करने को मजबूर हैं। इस तरह सामान्य ग्रामीण आदिवासियों के वर्ग के अलावा ये तीन तरह के वर्ग आज आदिवासियों में लगभग सभी जगह दिखाई देते हैं। आदिवासी समाज ऐसा वर्गीय समाज पहले कभी नहीं था।

अगर आदिवासियों का पिछले दो सौ सालों का इतिहास देखें तो पाएंगे कि वे युद्धरत रहे हैं। दो सौ सालों से उनका युद्ध चल रहा है एक गैर आदिवासी प्रभुत्वशाली व्यवस्था के विरुद्ध, जिसमें विशाल सरकारी फौज के अलावा सामंतवाद, पूंजीवाद और बड़ी कॉर्पोरेट कंपनियां शामिल रही हैं। इस बाहरी और अजनबी व्यवस्था के खिलाफ वे कभी हथियारों के साथ लड़े और कभी बिना हथियारों के भी लड़े। पिछले दो सौ सालों से चल रही इस टकराहट ने आदिवासी समाज के अंदर भारी बदलावों को जन्म दिया है। इसी टकराहट के अंदर से आदिवासियों के बीच अलग अलग वर्गों का उदय हुआ। इसी टकराहट में इनकी बहुत सी परंपरागत चीजें खत्म हो गईं और हो रही हैं। उनके मूल्य, सामाजिक संस्थाएं और भाषाएं सभी खत्म होती गईं हैं। ऐसी टकराहटें प्राचीन युगों में भी कई समाजों के बीच होती थीं जिनसे लगातार परिवर्तन हुए। एक जमाने में सवर्ण हिंदू भी आदिवासी जैसी जिंदगी ही बिताते थे। जब वेदों की रचना हुई या जिसे वैदिक सभ्यता का काल कहा जाता है उस समय आर्य भाषाएं बोलने वाले भी गणों (ट्राइब्स) के रूप में ही थे। ये गण कैसे टूटे अथवा किन लोगों के साथ संघर्ष या संपर्क में आकर बदलते गए, इन सबकी विस्तृत जानकारी हमें नहीं है। लेकिन जो बात स्पष्ट है वह यह कि दुनिया में कोई भी विकास, परिवर्तन या प्रगति सबसे अलग स्वतंत्र रहकर नहीं हुई है। सारे देशों और समाजों का विकास या परिवर्तन एक दूसरे के संपर्क में आने से ही हुआ है। इस संपर्क के बिना, विभिन्न समाजों के बीच आदान प्रदान और परस्पर सम्मिश्रण के बिना कोई परिवर्तन या विकास नहीं हो सकता। ये संपर्क कई तरह से होते हैं। यह संपर्क दूसरे आदिवासी समुदायों के साथ मिलकर एक बड़ा समाज बनाने के रूप में भी हो सकता है जैसे मिजो लोगों ने बनाया है या नागा लोग बनाना चाहते हैं। यह संपर्क युद्ध और हमले के रूप में भी हो सकता है। आखिर ग्रीकों के साथ भारतीयों का संपर्क सिकंदर के आक्रमण के फलस्वरूप ही हुआ था। बहुत से ग्रीक यहीं रह गए, उनकी कला विद्या और शब्द भारतीय समाज का अंग बन गए। इसी तरह तुर्क, ईरानी और अफगान भारत में हमलावर बनकर आए, यहां शासन किया और यहीं रह गए। इसके बाद अंग्रेजों से संपर्क हुआ जिनके हम गुलाम बने। इन सारे संपर्कों से भारत एक नया रूप लेता गया और बदलता गया। भारतीय संस्कृति इन सभी संपर्कों से ही विकसित हुई है। ये संपर्क बहुत पीड़ादायक भी होते हैं, दुखदायी भी होते हैं। दुर्भाग्य से आज आदिवासी एक ऐसी ही पीड़ादायक प्रक्रिया से गुजर रहे हैं। आदिवासियों की जमीन में चूंकि बहुत संपदा है—धातुएं, खदानें, जंगल की लकड़ी और बांस

है जिनका दोहन करना पूंजीवादी व्यवस्था का एक बड़ा स्वार्थ है और इसीलिए आदिवासियों को आज उनकी जमीनों से उजाड़ा जा रहा है। यह युद्ध चल रहा है दो सौ सालों से। प्राचीन काल में हुए युद्धों को हमने देखा नहीं, उनका हम सिर्फ इतिहास में विश्लेषण करते हैं, कल्पना करते हैं। लेकिन यह युद्ध तो हमारी आंखों के सामने चल रहा है। इसकी पीड़ा को महसूस किए बिना हम कैसे रह सकते हैं? इस युद्ध ने ही उस चीज को जन्म दिया है जिसे आजकल हिंदी में 'आदिवासी विमर्श' कहते हैं। हिंदी के बाहर यह शब्द नहीं चलता। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आदिवासी गैरआदिवासी संघर्ष ने जिस विमर्श को जन्म दिया उसे अंग्रेजी में 'ट्राइबल क्वेश्चन' कहा जाता है। गैर आदिवासियों के लिए आदिवासी एक क्वेश्चन, एक सवाल या समस्या बन गए। यह आदिवासी प्रश्न क्या है और इसको कैसे हल करना है, इसी को लेकर दुनिया में एक विमर्श कई सालों से चल रहा है। इस सवाल के जवाब में कई तरह के उत्तर इतिहास में अभी तक आए हैं जिनमें तीन प्रमुख हैं। एक जवाब तो अमरीका ने रेड इंडियंस के प्रति अपने बर्ताव से दिया कि इन आदिवासियों को, जहां ये रहते हैं वहां से हटा दो, इनकी जमीनें ले लो और इनको मार के भगा दो। रेड इंडियंस के साथ अमेरिका ने यही किया। रांची में फादर कामिल बुल्के से, जो हिंदी के बड़े साहित्यकार थे, जब मैं पहली बार मिला तो मैंने पता नहीं क्यों चिढ़ाने के लिए उनसे कह दिया कि गोरी जातियों ने आदिवासियों को खत्म किया है। यह सुनकर वे बहुत दुखी हुए। वे तो भारत में आदिवासियों की सेवा करने के लिए आए हुए थे और मैं पहली मुलाकात में ही उनसे कह रहा हूं कि गोरी जातियों ने आदिवासियों को खत्म किया है। उन्होंने एक सफाई दी मुझे कि गोरी जातियों ने ऐसा नहीं किया, हां, अमरीकी लोगों ने जरूर किया है। मैंने और भी निडरता से कहा—“अमेरिकी कौन है? यूरोप की गोरी जातियों के ही तो लोग हैं।” इसके बाद वे कुछ बोले नहीं, पर मैं उनकी पीड़ा को समझ सकता हूं। वे सच्चे संत थे, इसमें कोई शक नहीं। उन्होंने अपना गुस्सा पी लिया और बाद में आदिवासियों को संगठित करने के जिस काम से मैं आया था उस काम में मेरी मदद भी की। कहने का मतलब यह है कि एक तो जवाब अमेरिका ने दिया रेड इंडियंस के प्रति कि ताकत के बल पर उनको हटा दिया जाए और उनके इलाके पर कब्जा कर लिया जाए। उन्हें उनके प्राकृतिक परिवेश से खदेड़कर कई सौ मील दूर ओल्काहोमा में एक तरह से बाड़े में बंद कर दिया गया। एक दूसरा जवाब जो इस विमर्श में उभरकर वैश्विक स्तर पर आया, उसका प्रतिनिधित्व करते हैं स्पैनिश लेखक मारियो वर्गास लोसा। उनका प्रसिद्ध उपन्यास है **एल आब्लादोर** जिसको 2010 में नोबेल पुरस्कार भी मिला। पेरू लैटिन अमरीका में एक देश है जहां का एक आदिवासी समुदाय है मांचीग्वेंगा। मांचीग्वेंगा ट्राइब पर लिखे गए 'एल आब्लादोर' उपन्यास में मारियो वर्गास लोसा तर्क देते हैं कि तथाकथित सभ्य जातियां आदिवासियों से दूर ही रहें और आदिवासियों को अपने ढंग से जीने दिया जाए। क्या इन्हें धरती पर अपने तौर तरीकों के साथ रहने का अधिकार नहीं है? हरेक को यह अधिकार है कि वह अपने ढंग से रहे। ये आदिवासी तथाकथित सभ्य जातियों जैसी सुविधाएं चाहते ही नहीं हैं। ये रेलगाड़ी, हवाई जहाज, शॉपिंग मॉल और आप जैसी धन संपत्ति नहीं चाहते। ये तो जैसे हैं बस वैसे ही रहना चाहते हैं। उनको आप लोगों जैसी सुविधाओं की जरूरत नहीं है। आपकी विकास योजनाओं की जरूरत नहीं है। उनके पास सदियों से अपने बाप दादाओं के जो अनुभव हैं, ज्ञान है, उस अनुभव और ज्ञान के बल पर ही वे आज तक जिंदा रहे हैं और आगे भी रह सकते हैं। जंगल पहाड़ की जिन परिस्थितियों में उनको रहना होता है, वहां रहने के लिए जितनी चीजें जरूरी हैं, वो सब उनके पास हैं। ऐसी कोई भी चीज नहीं है जिसकी उनको जरूरत हो और वह उनके पास न हो। दवा दारू, जड़ी बूटी, अनाज और मादक पेय, उनकी जरूरत की हर चीज उनके पास है। तो आप उनको

अपने ढंग से जीने क्यों नहीं देते? लोसा का यह जवाब एक तर्क के रूप में बिल्कुल मानवीय और सही लगने वाली बात है। लेकिन सवाल इतना ही है कि क्या यह संभव है? क्या यह संभव है कि आपके आसपास तो लगातार परिवर्तन हो रहे हों, उथल पुथल चल रही हो लेकिन आप हमेशा उसी तरह से रहते रहें जैसे कि आपके बाप दादे रहे थे? क्या यह संभव है कि आदिवासी समाज पर बाहरी दुनिया का कोई प्रभाव न पड़े, इस प्रभाव से उनके समाज में किसी भी तरह का परिवर्तन न आए? वास्तव में यह संभव नहीं है। अगर यह संभव होता तो आज हम भी उसी आदिवासी अवस्था में होते जिसमें हजारों साल पहले हमारे पुरखे थे। तो ये दो जवाब है वैश्विक स्तर पर आदिवासी विमर्श के। एक तीसरा जवाब हमारे देश में आया जिसे वेरियर एल्विन ने दिया। वेरियर एल्विन एक अग्रज पादरी थे। वे भारत आ गए और गांधीजी के साथ काम करने लगे। वे आजीवन आदिवासियों के बीच रहे और उन्हीं के होकर रह गए। उन्होंने आदिवासी लड़की से ही शादी की और भारत में बस गए। आदिवासियों से प्रेम रखने वाला वैसा कोई दूसरा नहीं दिखता। वेरियर एल्विन ने आदिवासियों के बारे में बहुत कुछ लिखा। एल्विन की एक किताब है **ए न्यू डील फॉर ट्राइबल इंडिया** जिसे जवाहरलाल नेहरू ने अपनी सरकार की आदिवासी संबंधी नीतियों का आधार बनाया। नीतियों के आधार के रूप में उससे अच्छी और कोई किताब नहीं है। एल्विन ने इस किताब में आदिवासियों को अपने ढंग से जीने देने के अधिकार को स्वीकार किया और साथ ही उनको आधुनिक सुविधाएं शिक्षा, स्वास्थ्य, खाद्यान्न और रोजगार संबंधी अधिकार भी देने की बात कही ताकि वे धीरे धीरे भारत राष्ट्र और उसकी लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंग बनते जाएं। एक बुद्धिजीवी के रूप में नेहरू ने इसकी बहुत सराहना की और एल्विन के विचारों को अपना लिया। लेकिन नीति बनाना एक चीज है और प्रशासनिक ईमानदारी से उसको वास्तविकता में लागू करना दूसरी चीज है। सच यह है कि ये नीतियां कभी भी ठीक से लागू नहीं हो पाईं। स्थानीय सामंतों, पूंजीपतियों और व्यावसायिक वर्गों के शक्तिशाली स्वार्थों के आगे ये नीतियां काफी हद तक असफल रहीं। आज आदिवासियों का अस्तित्व संकट में है। पिछली कांग्रेस सरकार के दौरान मनमोहन सिंह के नेतृत्व में वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण की नीतियां लागू हुईं तो देश की हर चीज और दूर दराज के इलाके, जंगल पहाड़ सब पूंजीवादी शोषण के लिए खोल दिये गए। इन्हीं नीतियों को वर्तमान सरकार दुगने उत्साह और चौगुनी ताकत के साथ लागू कर रही है। इससे आदिवासियों के मिटने की रफ्तार भी उतनी ही ज्यादा बढ़ गई। आज आदिवासियों की जनसंख्या दर दूसरों की तुलना में कम हो रही है और वे एक समाज के रूप में टूटते बिखरते जा रहे हैं। उनके अंदर वर्ग विभेद पैदा हो गए हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात ये कि उनके परंपरागत मूल्य और संस्कृति की मूल्यवान विशेषताएं भी तेजी से खत्म हो रही हैं। ज्यादातर आदिवासी समाजों में स्त्री की तुलनात्मक रूप से जो अच्छी स्थिति थी, स्वायत्तता थी, उसमें एक खास बात यह थी कि उसके साथ कभी बल प्रयोग नहीं होता था। वहां एक लड़की अपनी जिंदगी का फैसला खुद लेती थी, उसे समाज में यह स्वतंत्रता थी। स्त्री को जीतने के लिए उसके मन को जीतना पड़ता था, उसका प्रेम जीतना पड़ता था। हमारे समाज के साथ उनके समाज का यह एक बड़ा फर्क रहा है। आदिवासी समाज में जब आप स्त्री का मन जीतेंगे तभी वह आपकी होगी और उसके मन को जीतने के लिए बहुत कुछ करना पड़ता है। लेकिन गैर आदिवासी समाज में स्त्री की मर्जी का कोई मतलब नहीं है। जे.एस.वर्मा कमेटी की सिफारिशों से बने कड़े कानूनों के बावजूद यहां स्त्री की मर्जी को कोई मान्यता नहीं मिल रही है। दिल्ली के निर्भया कांड में लड़की के साथ बर्बरतापूर्ण बर्ताव करने वाला लड़का जब जेल में था और उससे पूछा गया कि आखिर तुमने इतनी बर्बरता के साथ उस लड़की से हिंसा क्यों की? तो जवाब में उस लड़के ने बड़े स्वाभाविक ढंग से कहा

कि वो मान क्यों नहीं रही थी? तो यह दृष्टिकोण है तथाकथित सभ्य समाज में स्त्री के प्रति। हिंदू समाज में जन्म लेने से पहले लड़कियों की भ्रूण हत्या कर दी जाती है। अगर जन्म हो गया तो उसके पालन पोषण में लड़कों की तुलना में भेदभाव किया जाता है, शादी में उसकी मर्जी नहीं चलती और अगर शादी में दहेज न दिया गया हो तो लड़के वाले जलाकर मार सकते हैं। अगर दहेज लेकर आ भी गई तो कोई गारंटी नहीं कि उसपर यौनिक हिंसा न होगी। इन सबके साथ साथ घर और बाहर, समाज में हर जगह उसे बलात्कार का डर रहता है। इतनी विकृतियां हैं स्त्रियों को लेकर हमारे समाज में। आदिवासी समाज में ये विकृतियां नहीं हैं या बहुत कम है क्योंकि उस समाज में स्त्री की इच्छा को मान्यता है। आप उस इच्छा के विरुद्ध उससे कुछ नहीं कर सकते। दुर्भाग्य की बात यह है कि आज बाहरी प्रभाव से आदिवासी समाज के इतने मूल्यवान और मानवीय मूल्य खत्म हो रहे हैं। जब आदिवासी अपने आसपास चारों ओर के मध्यवर्गीय हिंदू परिवारों में देखते हैं कि वे अपनी स्त्रियों को कैसे कंट्रोल में रखते हैं तो आदिवासी पुरुष समझता है कि हमें भी अपनी औरतों को ऐसे ही कंट्रोल में रखना चाहिए। वह देखता है कि ये गैर आदिवासी मध्यवर्गीय हिंदू समाज में बड़े सम्मानित लोग हैं, शिक्षित और प्रभुत्वशाली हैं तो इसीलिए उन्हीं के मूल्य और आचरण मानक हैं। कुछ साल पहले मैं मिजोरम में आइजोल से काफी दूर बर्मा की सीमा की तरफ एक गांव खोजोल में गया था। वहां नवोदय उच्च विद्यालय के एक प्रिंसिपल ने मुझे अपने स्कूल में व्याख्यान देने के लिए बुलाया था। मैं वहां दो दिन रहा। वह प्रिंसिपल दक्षिण भारतीय ब्राह्मण था। उसने मुझसे लगातार यह शिकायत की कि मिजो लोग नैतिक रूप से बहुत गिरे हुए हैं। यहां औरतें भी बीड़ी सिगरेट पीती हैं, दारू भी पी लेती हैं। लड़के लड़कियां हॉस्टल में रहते हैं और शाम को लड़के लड़कियों के हॉस्टल की तरफ भागते हैं और लड़कियां भी पता नहीं कैसी हैं कि उनके साथ निकल जाती हैं। मैं सुनता रहा। मैंने उनको समझाने की कोशिश की कि अगर बीड़ी और दारू पीना बुरा है तो वह स्त्री पुरुष दोनों के लिए समान रूप से बुरा होगा लेकिन आपको पुरुषों के लिए बुरा नहीं लगता तो स्त्रियों के लिए बुरा क्यों लगता है? यह तो एक अच्छी बात है कि खाने पीने के मामले में आदिवासी समाज स्त्री पुरुषों के बीच कोई भेद नहीं करता। दोनों बीड़ी पी सकते हैं, दोनों दारू पी सकते हैं। शाम को लड़के लड़कियों के मिलने के संबंध में आप इसे अपनी रूढ़िवादी तमिल ब्राह्मणवादी संस्कृति के हिसाब से न देखें। भिन्न समाज के आचरण को नापने के लिए आप अपनी संस्कृति के मूल्यों को पैमाना क्यों बना रहे हैं? दुनिया में पचासों तरह के समाज और उनकी संस्कृतियां हैं, वे हमसे भिन्न हैं। भिन्नता का मतलब निम्न होना नहीं होता और न उच्च होना होता है। वे बस, सिर्फ भिन्न हैं। उस भिन्नता का हमें आदर करना सीखना चाहिए। अंग्रेज भिन्न हैं तो महान हैं, आदिवासी भिन्न हैं तो हमसे नीचे हैं—हमें इस तरह के दृष्टिकोण को छोड़ देना होगा। हम सब भिन्न भिन्न समाज के लोग हैं, लेकिन सब बराबर हैं। किसी एक समाज की दृष्टि से दूसरे समाज को नापना ठीक नहीं। बाद में मुझे यह भी पता चला कि यह तो नागा और मिजो समाज की संस्कृति है कि वहां गांव में लड़के शाम को उन परिवारों में जाते हैं जहां उनकी मित्र लड़कियां होती हैं। अगर लड़की के दोस्त शाम को उनसे मिलने न आए तो इससे लड़की के मां बाप को दुःख और चिंता होती है कि हमारी लड़की में ऐसी क्या कमी है कि इसके दोस्त इससे मिलने नहीं आते, जबकि बाकी सभी लड़कियों के दोस्त उनके घर जाते हैं। वहां मां बाप खोद खोदकर अपनी बेटी से पूछते हैं कि तुम्हारे दोस्त क्यों नहीं आते? क्या तुमने कुछ गलत बात कही है, उनसे झगड़ा किया है या उनसे खराब ढंग से बोलती हो? यह उनकी सामाजिक संस्कृति है। वहां सेक्स का दमन नहीं है, उसकी सहज स्वीकृति है। वे अपने बेटे बेटियों को भावी स्त्री पुरुष के रूप में देखते हैं और उन्हें इसी रूप में मिलते जुलते

देख प्रसन्न होते हैं। इसी सामाजिक संस्कृति के कारण उनके समाज में स्त्रियों के खिलाफ ऐसी विकृतियां और यौन हिंसा नहीं होती जैसी हमारे समाज में है। उनके समाज में बलात्कार के लिए कोई शब्द ही नहीं है। कहते हैं कि नागा लोगों ने बलात्कार का अर्थ पहली बार भारतीय सेना के व्यवहार से जाना। नतीजतन हमें भिन्नता का आदर करना चाहिए और अपने से भिन्न आदिवासियों से कुछ सीखना चाहिए। दुर्भाग्य की बात है कि आदिवासियों की यह विशेषताएं आज तेजी से खत्म हो रही हैं। क्यों खत्म हो रही हैं? बाहरी प्रभाव से खत्म हो रही हैं। एक बाहरी आदमी खोजोल में जाकर मिजो आदिवासियों की निंदा करता है कि इनकी संस्कृति अनैतिक और निम्न कोटि की है। वहां तो और सब मिजो लोग हैं, इसलिए उस अकेले बाहरी आदमी की बात का इतना प्रभाव न पड़ता होगा, हालांकि मिजो लोग उसकी बात सुनकर दुखी जरूर होते होंगे। लेकिन आप सोचिए कि जहां आदिवासियों की संख्या कम हो और शहरी लोगों की ज्यादा या जब दिल्ली या बंगाल, बिहार, उड़ीसा या महाराष्ट्र में कोई आदिवासी शहर में नौकरी करके परिवार के साथ रहता है और उसके चारों ओर मध्यवर्गीय हिंदू परिवार हों और वे सब मिलकर जब आदिवासियों के समाज और संस्कृति के प्रति इस तरह का दृष्टिकोण व्यक्त करें, उनकी निंदा करें तो वह आदिवासी क्या करेगा? उसमें तो धीरे धीरे अपनी संस्कृति के प्रति एक गहरी हीनता का बोध भरता जाएगा। वह तो बिल्कुल छोड़ देगा अपनी संस्कृति को और उन्हीं हिंदुओं जैसा बनने की कोशिश करेगा। आज सभी राज्यों के शहरों में यही हो रहा है। जो आदिवासी शहरों में नौकरियां करते हुए रहते हैं वे अपने पड़ोसी बंगाली, बिहारी या यूपी आदि के मध्यवर्गीय हिंदुओं को देखते हैं कि कैसे वे अपनी पत्नियों को नियंत्रण में रखते हैं तो इसका अपने आप एक प्रभाव पड़ता है। वह आदिवासी पुरुष यही सोचता है कि मुझे भी शायद ऐसा ही करना चाहिए। उसकी पत्नी भी ऐसे ही सोचती है कि जैसे हिंदू स्त्रियां अपने पतियों के नियंत्रण में रहती हैं, मुझे भी शायद ऐसे ही रहना चाहिए ताकि हम सुसंस्कृत बन सकें। इस तरह एक प्रभुत्वशाली और वर्चस्वशाली हिंदू संस्कृति आज आदिवासी संस्कृति को खत्म करती जा रही है। यह ज्यादा खतरनाक प्रक्रिया है जो आदिवासी समाज के अंदर चल रही है। दलितों को एक आंबेडकर मिला जिसने दलितों के अंदर आत्मसम्मान और आत्मगौरव की भावना भरी और इस तरह उन्हें जागृत किया। दुर्भाग्य से आदिवासियों के बीच अभी तक कोई आंबेडकर नहीं हुआ। आदिवासियों में अपने समाज और संस्कृति के प्रति आत्मसम्मान और आत्मगौरव का एक आंदोलन चलाने की सख्त जरूरत है ताकि उनमें अपनी परंपरा और मूल्यों के प्रति हीनता की भावना न आए, बल्कि वे इनपर गर्व कर सकें।

लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि आज आदिवासियों के बीच न कोई सांस्कृतिक आंदोलन चल रहा है न राजनीतिक आंदोलन जबकि उनके जल, जमीन और जंगल को लूटने वाली शक्तियां इस समय पूरी तरह सक्रिय हैं। आदिवासियों के नाम पर बने राज्यों झारखंड और छत्तीसगढ़ में आज आदिवासियों की हालत कैसी है? आज वहां उनका कोई ईमानदार राजनैतिक नेतृत्व नहीं दिखाई देता। वहां सभी राजनैतिक दलों के नेतृत्व में वैश्विक पूंजीवाद और कॉरपोरेट घरानों के हितों की सेवा करने के लिए न सिर्फ सहमत है, बल्कि इसके लिए आपस में होड़ मची हुई है। स्पष्ट है कि नेतृत्व दलाल हो चुका है। आदिवासियों का सबसे बड़ा सवाल उनकी जमीन की सुरक्षा का सवाल रहा है। इस जमीन की रक्षा के लिए 1855-56 में सिटू कानून के नेतृत्व में संधाल लड़े थे और 1900 ई. में बिरसा के नेतृत्व में मुंडा लड़े। इन लड़ाइयों में सैकड़ों हजारों आदिवासी मारे गए। इन विद्रोहों के फलस्वरूप झारखंड में दो असाधारण कानून बने—छोटा नागपुर काश्तकारी कानून और संधाल परगना काश्तकारी कानून जिनके मुताबिक वहां किसी भी आदिवासी की जमीन

को कोई भी गैर आदिवासी नहीं खरीद सकता। लेकिन इन कानूनों के बावजूद तबसे लेकर आज तक लाखों आदिवासी अपनी जमीन गंवा चुके हैं और आदिवासी इलाकों में बाहर से आए लोगों की बड़ी बड़ी कालोनियां बस चुकी हैं। कंपनियों के कार्यालय खुल चुके हैं, खदानें और कारखाने बन चुके हैं। अपने ही घर में आदिवासी अल्पसंख्यक बन गए हैं और मिटते जा रहे हैं। झारखंड में आदिवासी के नाम पर बनने वाली सरकारें उपरोक्त दोनों कानूनों में संशोधन करने और उन्हें ठीला करने का संकेत देती रही हैं। यह आदिवासी जनता के साथ गद्दारी नहीं तो और क्या है? अभी हाल में झारखंड की भाजपा सरकार ने राज्य के मूलवासियों को नौकरियां और अन्य सुविधाएं देने के उद्देश्य से स्थानीय नागरिक की परिभाषा वाला कानून कुछ इस तरह से बनाया है कि उससे झारखंड में आकर रहने वाले लगभग सभी लोग स्थानीय की श्रेणी में आ जाएंगे। दुख की बात यही है कि आदिवासियों को लूटने और उनके साथ छल कपट करने वाले इन कदमों के खिलाफ आदिवासियों का कोई भी संघर्ष नहीं उभर रहा है। सिर्फ झारखंड में ही नहीं, पूरे भारत में आज कहीं भी आदिवासियों का कोई प्रभावशाली नेतृत्व दिखाई नहीं देता और न कोई शक्तिशाली आंदोलन। केरल में कुछ समय के लिए जानू का आंदोलन एक अपवाद था लेकिन वह भी कुछ हासिल नहीं कर पाया। झारखंड में पिछले 20-25 सालों से जो आदिवासी नेतृत्व रहा वह या तो पस्त या समझौतापरस्त या फिर दलाल रहा। पिछले 50 सालों से आदिवासियों के पक्ष में ऐसा कोई बड़ा और महत्वपूर्ण कानून नहीं बना जो उनके हितों की मजबूती से रक्षा करता हो। **पेसा** और **बनाधिकार** कानून बना भी तो ज्यादातर जगहों पर निष्क्रिय रहा। आदिवासियों का परंपरागत सामाजिक नेतृत्व—पढ़हा, मानकी मुंडा या दिसुम मांझी इत्यादि आदिवासी समाज और संस्कृति की रक्षा करने में बिल्कुल नाकाम रहा है। शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ आज उनका प्रतिरोध सिर्फ स्थानीय स्तर पर ही हो रहा है। राष्ट्रीय स्तर तो छोड़िए, यह संघर्ष प्रादेशिक स्तर तक भी नहीं पहुंच पाता है। पूरे झारखंड में नक्सलियों को कुचलने के नाम पर जगह जगह केंद्रीय सुरक्षा बलों (CRP) की बड़ी बड़ी कंपनियां तैनात हैं जो किसी भी लोकप्रिय जनआंदोलन को उभरने नहीं देतीं। जहां छठा शिड्यूल नहीं है, जहां उनकी जमीन की सुरक्षा नहीं है और उनका अपना अलग इलाका नहीं है, वहां आदिवासियों की संस्कृति और खुद आदिवासी भी बच पाएंगे—इसे लेकर आज संदेह हो रहा है। लगता है कि वैश्विक पूंजीवाद के हमलों के मुकाबले आदिवासी एक हारी हुई लड़ाई लड़ रहे हैं। उनका प्रतिरोध संघर्ष किसी न किसी स्तर पर जरूर चलता रहेगा, लेकिन सवाल है कि क्या आदिवासी अपने समाज और संस्कृति को बचा पाएंगे? बचा पाएंगे तो कितना और किस रूप में?

आदिवासी साहित्य

इधर कुछ एक लोगों द्वारा आदिवासी साहित्य की अवधारणा का सवाल उठाया गया है। कुछ साल पहले तक मैंने ऐसा कोई भी सवाल नहीं सुना था। आदिवासियों के बारे में हमेशा से साहित्य लिखा जाता रहा है। खुद आदिवासी भी लिखते रहे हैं, दूसरे लोग भी लिखते रहे हैं, कभी किसी ने यह सवाल नहीं उठाया कि आदिवासी साहित्य की अवधारणा क्या हो? किसको कहेंगे आदिवासी साहित्य? मैंने यह सवाल नहीं सुना था। मेरा खयाल है कि दलित साहित्य की जो अवधारणा हिंदी साहित्य में चली है, यह उसी की नकल पर खड़ा किया गया सवाल है। इसे दलित साहित्य की देखादेखी में उठाया गया है। दलितों ने जब दलित साहित्य की अवधारणा बना ली तो फिर आदिवासी साहित्य की अवधारणा क्यों न बनाई जाए?

आदिवासी साहित्य का यह जो सवाल है इसे खुद आदिवासी भाषाओं के लेखकों ने नहीं उठाया। आदिवासी भाषाओं में जो आदिवासी साहित्यकार लिख रहे हैं उन्होंने इस सवाल को नहीं उठाया कि आदिवासी साहित्य की क्या अवधारणा होनी चाहिए। फिर किसने उठाया? यह सवाल हिंदी के लोगों ने उठाया। हिंदी में आदिवासी साहित्य पर विमर्श करने वालों ने उठाया। जो लोग हिंदी में अपना साहित्य लिखते हैं, जो लोग हिंदी के माध्यम से आदिवासियों की चर्चा करते हैं—वे खुद चाहे आदिवासी हों या गैरआदिवासी ऐसे ही लोगों ने यह सवाल उठाया है। मैंने आदिवासी भाषाओं के साहित्यकारों को यह सवाल उठाते नहीं देखा। मुझे नहीं लगता कि किसी मित्रो साहित्यकार ने यह सवाल उठाया। मुंडा भाषा साहित्य में यह सवाल कभी नहीं उठाया गया। संथाली भाषा साहित्य के सम्मेलनों में मैं पिछले बीस सालों से जा रहा हूँ। संथाली साहित्य जितने बड़े पैमाने पर लिखा जाता है भारत में किसी आदिवासी भाषा में साहित्य उतने बड़े पैमाने पर नहीं लिखा जाता। संथाली भाषा के साहित्यकारों ने कभी यह सवाल नहीं उठाया कि आदिवासी साहित्य की अवधारणा क्या है क्योंकि उन्हें इसकी जरूरत ही नहीं है। मुंडारी के मंगलसिंह मुंडा को या फिर संथाली की दमयंती बेसरा को अपना साहित्य लिखने के लिए इसकी क्या जरूरत है कि वे पहले मुंडा या संथाली साहित्य की अवधारणा को समझें? क्या हिंदी में लिखने वाले लेखक हिंदी साहित्य की अवधारणा का सवाल उठाते हैं? क्या बंगला, उड़िया या पंजाबी राष्ट्रीयताओं के लेखकों को बंगला, उड़िया या पंजाबी साहित्य की अवधारणा को पहले स्पष्ट कर लेने की कोई जरूरत पड़ती है?

करीब 38 साल पहले 1978 में मैंने एक लेख लिखा था जिसमें लैटिन अमेरिका के मार्तिनिक द्वीप के कवि और बुद्धिजीवी एमे सिजायर की एक कविता 'रिटर्न टू माई नेटिव लैंड' की चर्चा की गई थी। साहित्य और चिंतन के क्षेत्र में एमे सिजायर का सबसे मूल्यवान योगदान उनकी नीग्रो दृष्टि की अवधारणा को माना जाता है। उपरोक्त कविता में भी उन्होंने अपनी जड़ों की खोज की थी। हम लोग कौन हैं? हमारी अस्मिता क्या है? हमारा देश कहां है? इन सबका जवाब देते हुए सिजायर ने कहा कि हमें यह कहने में शर्म नहीं आनी चाहिए कि हम नीग्रो हैं। नीग्रो मूल के और अफ्रीका के हैं, जहां हमारी जड़ें हैं। इतिहास में हमारी एक पहचान रही है। हम आधे अमरीकी और आधे फ्रांसीसी नहीं हैं, जैसाकि लोग हमें समझते हैं या जैसा हमें बताया जाता है। हम नीग्रो हैं और दुनिया को देखने की हमारी एक नीग्रो दृष्टि होगी। इस तरह सिजायर ने नीग्रो अस्मिता और नीग्रो दृष्टि का सवाल उठाया था। मैंने अपने लेख में सिजायर की चर्चा करते हुए झारखंड के बुद्धिजीवियों के सामने यह सवाल रखा था कि क्या झारखंड में इसी तरह कोई आदिवासी दृष्टि है? मैंने यह सवाल सिर्फ साहित्य के संदर्भ में नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक राजनीतिक संदर्भ में उठाया था, यह उदाहरण देते हुए कि कैसे आज मुंडा स्त्री का विकास मुंडा दृष्टि से न होकर हिंदू दृष्टि से हो रहा है। मैंने यह पूछा था कि समाज और इतिहास को तथा घटनाओं को देखने की, साहित्य को देखने की क्या कोई आदिवासी विश्वदृष्टि है?

38 साल तक इस प्रश्न का मुझे कोई जवाब नहीं मिला। अब जाकर कुछ लोगों ने आदिवासी साहित्य की अवधारणा के संदर्भ में इस सवाल को उठाया है। उन्होंने मेरे लेख का हवाला तो नहीं दिया कि 38 साल पहले भी किसी ने इस प्रश्न को उठाया था, लेकिन उन्होंने इस प्रश्न के महत्व को समझा, यह अच्छी बात है। आदिवासी साहित्य की अवधारणा का आधार आदिवासी जीवन दर्शन या आदिवासी दृष्टि होनी चाहिए। यह कहते हुए उन्होंने इस दर्शन के 15 बुनियादी तत्वों की सूची भी पेश की। अच्छी बात है कि उन्होंने आदिवासी साहित्य की अवधारणा का एक वस्तुगत मापदंड बनाया। लेकिन यह जो आदिवासी जीवन दृष्टि है, आदिवासी

दर्शन है इसकी परिभाषा क्या है अथवा इसकी समझ क्या है, यह एक अलग समस्या है। हम किसको आदिवासी दर्शन कहेंगे? जब आप आदिवासी दर्शन के बहुत सारे स्थायी लक्षण बना लेंगे तो आप देखेंगे कि जो वास्तविकता है आदिवासी समाज की, उसमें वे लक्षण बहुत स्पष्ट नहीं दिखाई देते। तो उनके आधार पर आदिवासी दर्शन कैसे बनाएंगे? आदिवासी दृष्टि भी बदलती रहने वाली चीज है और इसे किसी रोमांटिक दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। मैं एक उदाहरण देता हूँ। गोपीनाथ महंती उड़िया के बड़े महान साहित्यकार थे। हिंदुस्तान में आदिवासियों के बारे में लिखने वाला उनसे बड़ा कोई साहित्यकार नहीं हुआ। कंध और परजा लोगों पर उन्होंने महान उपन्यास लिखे। उनसे एक बार मेरी बात हो रही थी। आदिवासी दर्शन की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि असंचय यानि चीजों को जमा करके नहीं रखना—यह आदिवासी दर्शन की एक बड़ी विशेषता है। आदिवासी कल के लिए कोई चीज बचा के नहीं रखते। जो है खाओ पीओ, मस्त रहो, कल की कल देखेंगे। यह बात सही है कि आदिवासियों के समाज में यह विशेषता रही है। लेकिन थोड़ी गहराई से सोचिए तो इस विशेषता को लेकर सवाल उठेगा। आज आदिवासियों में एक नौकरीपेशा मध्यवर्ग बन चुका है। क्या वह इस दर्शन में विश्वास करता है कि कल के लिए चीजें मत जोड़ो? मैं सिर्फ कुछ करोड़पति आदिवासियों की बात नहीं कर रहा हूँ जिन्होंने बड़े बड़े मकान बना लिए हैं और जिनके बैंकों में बड़ी बड़ी कानूनी और गैर कानूनी रकमें रखी हुई हैं। मैं आदिवासियों के साधारण मध्यवर्ग की बात कर रहा हूँ जो अपनी कमाई से हर महीने कुछ पैसे जोड़ जोड़कर रखते हैं ताकि बच्चों की पढ़ाई हो सके, शहर में किसी तरह एक घर बन सके; और अगर वे ऐसा करते हैं तो इसमें गलत क्या है? तो जिस असंचय को आदिवासी दर्शन की विशेषता बताया जाता है वह आज आदिवासियों में कितनी बची है? गांवों में भी जो आदिवासी किसान थोड़ा बहुत संपन्न हैं, आसपास के स्कूल में मास्ट्री भी की है, वह भी जो बचा सकता है उसे बचाता है। हां, गांव के अधिसंख्य गरीब आदिवासियों की हालत जरूर इस दर्शन को चरितार्थ करती है। लेकिन गांव के गरीब आदिवासी किसान के पास इतना होता ही नहीं कि वह कल के लिए बचाए। इसलिए यह जीवन दर्शन उसका सोचा समझा दर्शन नहीं है बल्कि यह उसकी परिस्थितिजन्य मजबूरी है। जिसके पास होता ही नहीं, वह कल के लिए क्या बचाएगा? लेकिन अगर उसकी परिस्थिति थोड़ी सुधर जाए, उसका भी लड़का या लड़की कुछ पढ़ लिखकर आरक्षण में नौकरी पा ले तो कल से वह भी कुछ न कुछ जोड़ना शुरू कर देगा। इसलिए यह आदिवासी दर्शन उसकी कोई स्थायी विशेषता नहीं हो सकती।

अखड़ा द्वारा 2014 में रांची में इसी विषय पर आयोजित सेमिनार में पढ़े गए लेखों को संपादित करते हुए अखड़ा की संपादिका वंदना टेटे ने **आदिवासी दर्शन और साहित्य** नाम से किताब प्रकाशित की है। उसमें अपने लंबे आलेख के अंत में उन्होंने आदिवासी साहित्य की पंद्रह बुनियादी तत्वों की जो सूची पेश की है उसका अंतिम सूत्र यह है कि आदिवासी साहित्य मूल आदिवासी भाषाओं में लिखा होना चाहिए। वास्तव में इसे सबसे पहला सूत्र होना चाहिए। यह बिल्कुल सही है कि आदिवासी साहित्य उसी को कहना चाहिए जो आदिवासी भाषाओं में लिखा गया हो। लेकिन हकीकत में आदिवासी साहित्य की स्थिति क्या है? स्थिति यह है कि भारत में रहने वाले 400 से भी अधिक आदिवासी समुदायों में बहुत से आदिवासी समुदाय अपनी मूल भाषाओं को छोड़ चुके हैं, भूल चुके हैं और उन्होंने आसपास प्रचलित प्रादेशिक, क्षेत्रीय या किसी मिश्रित भाषा को अपना लिया है। यहां तक कि उनके अपने लोकगीत और लोककथाएं भी उनकी मूल आदिवासी भाषा में न होकर अब इसी प्रचलित क्षेत्रीय या मिश्रित भाषा में मिलती हैं। जो बाकी आदिवासी समुदाय बचे हैं, उनमें से कइयों के पास न कोई लिपि है, न वे साहित्य लिखते हैं। इसके बाद

भी जो आदिवासी समुदाय बच जाते हैं उनमें से कई समुदाय साहित्य लिखते जरूर हैं, लेकिन अपनी मूल आदिवासी भाषा में नहीं। वे अपना साहित्य क्षेत्रीय या प्रादेशिक भाषाओं में जैसे बांगला, उड़िया, मलयाली, मराठी या हिंदी आदि में ही लिखते हैं। वंदना टेटे के सूत्र के मुताबिक इसे भी आदिवासी साहित्य नहीं कहा जा सकता। वास्तव में बांगला, उड़िया या हिंदी आदि भाषाओं में लिखा साहित्य चाहे उसे गैर आदिवासियों ने लिखा हो या आदिवासियों ने वह बांगला, उड़िया या हिंदी भाषा का ही साहित्य माना जाएगा, साहित्य की विषयवस्तु चाहे जो हो। तो फिर अंत में बचा क्या? कुछ ऐसी आदिवासी भाषाएं जरूर हैं, हालांकि उनकी संख्या पूरे भारत में 25-30 से अधिक नहीं होगी, जिनमें अपनी भाषा में साहित्य लिखा जाता है। इनमें भी कुछ एक भाषाओं में बहुत कम, छिटपुट लिखित साहित्य ही मिलता है। संथाली, बोडो, खासी जैसी आदिवासी भाषाएं कम हैं जिनमें काफी साहित्य लिखा जा रहा है। गौरतलब बात यह है कि ये सब अलग अलग आदिवासी भाषाएं हैं और इनके बीच कोई संपर्कसूत्र नहीं है। इनके बीच संपर्कसूत्र कोई गैर आदिवासी या प्रादेशिक भाषा ही बनती है। वंदना टेटे झारखंड के खड़िया समुदाय की हैं और जब वे संथाली साहित्य के सम्मेलन में जाती हैं तो वहां अपनी बात आदिवासी भाषा में नहीं रख पातीं, हिंदी का सहारा लेती हैं क्योंकि संथाल खड़िया नहीं समझते और वंदना को संथाली आती नहीं। यह विडंबना ही है कि जो संथाल असल में आदिवासी साहित्य लिख रहे हैं, वे आदिवासी साहित्य का विमर्श नहीं चलाते और जो आदिवासी साहित्य का विमर्श चला रहे हैं, वे इसे आदिवासी साहित्य में नहीं चला रहे हैं, हिंदी साहित्य में चला रहे हैं।

आदिवासी दर्शन के 15 मूल तत्वों की उपयोगिता किसके लिए है? लगता है आदिवासी दर्शन के इन सूत्रों की रचना आदिवासियों के बारे में लिखने वाले गैर आदिवासी हिंदी लेखक लेखिकाओं—जैसे रणेंद्र, महुआ माजी या संजीव आदि—को ध्यान में रखकर की गई है। उनके साहित्य को आदिवासी साहित्य की अवधारणा की कसौटी पर कसा जाएगा। आदिवासी दर्शन के पंद्रह सूत्रों में से कितने सूत्र उनके लेखन में मिलते हैं और कितने नहीं मिलते, इसे जांचा जाएगा और इस तरह उन्हें उनकी जगह बता दी जाएगी। यह स्थिति लगभग गैर दलितों द्वारा दलित साहित्य लिखने जैसी ही है। लेकिन दलित साहित्य और आदिवासी साहित्य में कुछ बुनियादी फर्क है। उनके बीच एक महत्वपूर्ण फर्क यह है कि दलित साहित्य की अपनी कोई अलग भाषा नहीं होती। जिसमें दूसरे लोग भी लिखते बोलते हैं दलित भी उन्हीं भाषाओं में बोलते और लिखते हैं। लेकिन आदिवासियों का जैसे अपना अलग इलाका होता है उसी तरह उनकी अपनी अलग भाषाएं भी हैं। इसलिए रणेंद्र या महुआ आदि के साहित्य में आदिवासी दर्शन के कितने भी सूत्र क्यों न मिल जाएं, उसके लिए उनकी सराहना तो जरूर की जा सकती है लेकिन फिर भी उनका लेखन आदिवासी भाषा में नहीं होने के कारण हिंदी साहित्य में ही आएगा, आदिवासी साहित्य में नहीं।

तो फिर इन सूत्रों की उपयोगिता किसके लिए है?

जो आदिवासी साहित्यकार अपनी आदिवासी भाषाओं में साहित्य लिख रहे हैं वे इस दर्शन के तत्वों को अलग से पढ़ समझकर अपना साहित्य नहीं लिखते हैं। यहां तक कि जो आदिवासी लेखक हिंदी में भी या हिंदी में ही अपना साहित्य लिखते हैं जैसे मंगलसिंह मुंडा या पीटर पॉल एक्का, उन्हें भी अपना साहित्य लिखने के लिए पहले इन सूत्रों को देखने समझने की जरूरत नहीं है। इसके ठीक उल्टे आदिवासी लेखक जो कुछ साहित्य लिख रहे हैं उसी के अंदर से आदिवासी दर्शन या आदिवासी विश्वदृष्टि को खोजने समझने की जरूरत है। यानी आदिवासी लेखक को आदिवासी दर्शन के सूत्रों की जरूरत नहीं है, बल्कि आदिवासी दर्शन को ही आदिवासी लेखकों के साहित्य की जरूरत है। समाजशास्त्रीय तरीकों से आदिवासी दर्शन के दस पंद्रह तत्वों की सूची

बना लेना बहुत आसान है, लेकिन आदिवासी भाषाओं के साहित्य के अंदर से आदिवासी दृष्टि या दर्शन को ढूँढ़ निकालना आसान काम नहीं है। इसलिए इस काम को कोई नहीं करता। यही वजह है कि खड़िया भाषा की सबसे बड़ी लेखिका को जब साहित्य में आदिवासी दर्शन को ढूँढ़ने दिखाने का काम करना पड़ा तो इसके लिए उन्हें आदिवासी साहित्य की कोई कृति नजर नहीं आई जिसमें वे आदिवासी दर्शन को दिखा सकें। आदिवासी दर्शन को दिखाने के लिए उन्होंने सहारा लिया प्रेमचंद की कहानियों का—‘मंत्र’ और ‘मुक्तिमार्ग’ का। ‘मुक्तिमार्ग’ में आदिवासी दर्शन क्या है? यह लेखिका के विवेचन से स्पष्ट नहीं होता। ‘मंत्र’ कहानी का बूढ़ा न तो जंगल में रहता है और न किसी आदिवासी गांव में। कहानी में भी ऐसा कोई प्रमाण या संकेत नहीं मिलता जिससे यह कहा जा सके कि उसमें चित्रित बूढ़ा किसी आदिवासी समाज का सदस्य है। फिर उसकी दृष्टि को आदिवासी दृष्टि क्यों माना जाए? कहानी में सवाल विद्या से पैसे कमाने का नहीं, मनुष्यता का है। डाक्टर चड्ढा बूढ़े के बेटे को पैसों की कमी के कारण नहीं बल्कि अपनी संवेदनशीलता और मनुष्यता की कमी के कारण नहीं देखता है। बूढ़ा भी जिसके बेटे को सांप ने काटा है, यह सुनते ही उठकर अपनी विद्या का दान करने नहीं चल पड़ता है। उसके मन में डॉक्टर से प्रतिशोध लेने की भावना जगती है। लेकिन प्रतिशोध और मनुष्यता के बीच द्वंद्व में आखिर मनुष्यता की जीत होती है। यह सामान्य मनुष्यता की कहानी है जो अमीरों की तुलना में गरीबों में कहीं अधिक होती है, वे गरीब आदिवासी हों या न हों।

लेकिन सबसे बड़ी विडंबना तो यह है कि आदिवासी दर्शन को साहित्य में दिखाने के लिए किसी आदिवासी भाषा की कृति की बजाय प्रेमचंद की कहानियों का सहारा लेना पड़े! जबकि प्रेमचंद आदिवासियों और उनके समाज के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे और न उन्होंने कभी आदिवासी समाज को अपने साहित्य का विषय बनाया। उनके साहित्य में जहां भी (सिर्फ दो तीन जगह) आदिवासियों का प्रसंग आया है वह काफी सामान्य और सतही किस्म का है। उसमें आदिवासी दृष्टि की खोज करना व्यर्थ है। साहित्य में प्रेमचंद का महत्व दूसरे कारणों से है।

वास्तव में आदिवासी समाज को ज्यादातर रोमांटिक दृष्टि से देखा गया है। सिर्फ उनके हितैषी गैर आदिवासी कार्यकर्ताओं और विद्वानों द्वारा ही नहीं, बल्कि खुद आदिवासियों द्वारा भी। आज भी बहुत से आदिवासी कार्यकर्ता और बुद्धिजीवी रोमांटिक दृष्टि से आदिवासी समाज का गौरवगान करते रहते हैं। वे आदिवासी समाज की उन वास्तविकताओं को नहीं देखते, उन कमजोरियों को नहीं दिखाते जिनके खिलाफ लड़कर आदिवासियों को सचेत करने की जरूरत है। उलटे कभी कभी ये कमियां भी उनकी नजर में गौरवपूर्ण बन जाती हैं। यह एक तरह की मनोवैज्ञानिक क्षतिपूर्ति है। उदाहरण के लिए कुछ लोग कहते हैं कि श्रम आदिवासी जीवन का बहुत बड़ा मूल्य है। यह बात दलितों के प्रसंग में भी कुछ विद्वानों ने कही है। सच्चाई यह है कि आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से जितने भी कमजोर और पिछड़े हुए समाज हैं जिनमें आदिवासी और दलित भारत में मुख्य हैं—उन सबमें श्रम करने का लगभग सारा बोझ स्त्रियों के सिर पर डाल दिया गया है। श्रम पुरुषों को भी करना पड़ता है, लेकिन पुरुषों के जिम्मे सिर्फ कुछ एक महत्वपूर्ण काम होते हैं तथा उनका बहुत सा समय सोने, तमाखू पीने, दारू पीने, जुआ खेलने या स्थानीय राजनीति करने जैसे कामों में खर्च होता है। चाहे बर्मा की सीमा पर बसे मिजो आदिवासियों का समाज हो अथवा तिब्बत की सीमा पर बसे भोटियों का समाज हो—सभी आदिवासी समाजों में स्त्रियों को ज्यादा से ज्यादा काम करना पड़ता है। तिब्बत से सटे हिमाचल प्रदेश के स्पीती जिले में घूमते हुए एक बार मैं गांव की महिला प्रधान से मिलने गया तो वह अपने खेती के कामों में लगी हुई थी। मैं दो तीन घंटों तक उसके साथ रहा लेकिन वह इस सारे समय एक के बाद एक लगातार मेहनत वाले कामों में लगी रही।

जब मैंने उससे और उसकी पड़ोसी स्त्री से पूछा कि यहां गांव में मर्द क्यों नहीं दिखाई दे रहे? तो उन्होंने मुझसे हंसते हुए कहा—होंगे कहीं जुआ खेल रहे या दारू पी रहे। उन्होंने बहुत रुआंसे स्वर से यह बताया था कि उनके समाज में औरतों को बहुत ज्यादा काम करना पड़ता है और अगर वह अपने पुरुष से इसकी शिकायत करती हैं तो जवाब मिलता है—“और तुम्हें लाए किसलिए हैं? क्या तुम्हारा मुंह देखने के लिए?” जब मैं जिला स्पीति के मुख्यालय काजा के बाजार में बने कैसीनो घर में गया तो दरवाजा खोलते ही अंदर चौपड़ खेल रही भीड़ को देखा और पूरा कमरा बीड़ी, सिगरेट के धुएं और शराब की महक से भरा हुआ था। वहां चौपड़ खेल रहे पचासों व्यक्तियों में एक भी स्त्री नहीं थी। इसलिए यह कहना सही नहीं है कि श्रम इन समाजों का बहुत बड़ा मूल्य है। वास्तव में शोषण पर आधारित सभी समाजों में श्रम कोई मूल्य नहीं है बल्कि आजीविका के एकमात्र साधन के रूप में नीरस और कठोर कामों में लगे रहने की एक मजबूरी है। इस मजबूरी को गौरवान्वित करके देखने की जरूरत नहीं। एक मूल्य के रूप में श्रम सिर्फ समाजवादी व्यवस्था में ही प्रतिष्ठित हो सकता है जो अभी बहुत दूर का लक्ष्य है।

आदिवासी संबंधी साहित्य की चार श्रेणियां

आदिवासियों के बारे में साहित्य बहुत दिनों से लिखा जाता रहा है। उनके बारे में आदिवासी भी लिखते रहे हैं और गैर आदिवासी भी। मेरी दृष्टि में आदिवासियों के बारे में जो साहित्य लिखा जाता रहा है उसकी चार श्रेणियां बनाई जा सकती हैं। इन श्रेणियों की चर्चा मैंने पहले भी की है। आदिवासियों के बारे में जो सबसे खराब साहित्य है उस श्रेणी की चर्चा मैं सबसे पहले कर दूँ। कुछ ऐसे लेखक हैं जो आदिवासी समाज के बारे में बहुत कम और सिर्फ सतही जानकारी रखते हैं और साथ ही अपने सवर्ण हिंदू संस्कारों से ग्रस्त हैं, अपने सामाजिक सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हैं और उसी दृष्टि से आदिवासी समाज को चित्रित करते हैं। ऐसा चित्रण करते हुए वे आदिवासियों को नैतिक दृष्टि से गिरा हुआ दिखाते हैं, ‘उच्चतर सांस्कृतिक मूल्यों’ से हीन दिखाते हैं। इसके साथ ही वे आदिवासियों को सवर्ण हिंदू समाज के प्रति बड़ा ही कृतज्ञ, विनम्र और श्रद्धालु दिखाते हैं। जैसे राम ने जाकर शबरी और अहिल्या का उद्धार किया था वैसे ही इन लेखकों के नायक आदिवासियों का उद्धार करते हैं। आदिवासियों के प्रति यह जो उद्धारक वाला दृष्टिकोण है यह तभी आता है जब आप उन्हें नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से गिरा हुआ समझ रहे हों। जब आप उन्हें ऐसा समझेंगे और आपका नायक उनका हितैषी बनेगा तो सबसे पहले उनकी बीड़ी छुड़ाने में लगेगा, उनकी ताड़ी छुड़ाने में लगेगा। वह समझेगा कि मैं तो आदिवासियों का उद्धार कर रहा हूँ, उनको मनुष्य बना रहा हूँ। इस दृष्टि से आदिवासियों के बारे में लिखने वाले हिंदी के एक लेखक योगेंद्रनाथ सिन्हा थे जो 1950-60 के दशक में बिहार में चीफ फॉरेस्ट कंजर्वेटर थे। उन्होंने एक उपन्यास लिखा **वनलक्ष्मी** जिसे अमृतराय ने हंस प्रकाशन से छापा था। मैंने उसकी एक लंबी आलोचना लिखी थी जो मेरी किताब में आपको मिल जाएगी। योगेंद्रनाथ सिन्हा इसी दृष्टि से आदिवासियों को देखते थे। आदिवासियों का चित्रण करने वाली यह सबसे घटिया किस्म की दृष्टि है जिसमें आप अपनी जातिप्रथा से ग्रस्त ब्राह्मणवादी संस्कृति और उसके मूल्यबोध को पैमाना बनाकर आदिवासियों का उद्धार करने की इच्छा रखते हैं। हमारे समाज में ज्यादातर पढ़े लिखे मध्यवर्गीय भले मानुष, जिन्होंने आदिवासियों के समाज को उसके अंदर से कभी नहीं देखा, आदिवासियों के प्रति इसी तरह की दृष्टि रखते हैं। आदिवासियों के बीच काम करने वाली संस्था **आदिम जाति सेवा मंडल** ने, जिसे गांधीजी के निर्देश पर कांग्रेस के ठक्कर बापा और राजेंद्र प्रसाद आदि ने बनाया था, इसी दृष्टि से बहुत सारे आदिवासी कल्याण

आश्रम खोल रखे हैं। भारतीय जनता पार्टी ने भी ऐसी ही दृष्टि के साथ 'बनवासी कल्याण आश्रम' खोल रखे हैं। अगर आप ऐसे दृष्टिकोण को लेकर आदिवासियों के बीच जाते हैं तो बेहतर है कि आप न जाएं क्योंकि बजाय अपनी संस्कृति के प्रति गौरव भावना भरने के आप उनमें हीनता का मनोभाव पैदा करते हैं।

आदिवासियों से संबंधित साहित्य की दूसरी श्रेणी उन लेखकों की है जो लंबे समय से आदिवासियों के करीब रहते आए हैं। उनके बीच रहते हैं, यह मैं नहीं कहूंगा। लेकिन उनके करीब रहते हैं और उनसे पूरी सहानुभूति रखते हैं और उनके समाज से थोड़ा बहुत वाकिफ भी हैं। इनकी मुख्य प्रवृत्ति आदिवासियों के दमन, शोषण और उत्पीड़न को चित्रित करने और उनकी आर्थिक राजनीतिक समस्याओं को उठाने की है। इनमें ज्यादातर लेखक वामपंथी हैं, कुछ एक नहीं भी हैं। आदिवासियों के बारे में इन्होंने जो उपन्यास लिखे हैं आप देखेंगे कि उनमें आदिवासियों के सामाजिक राजनीतिक सवाल को ठीक ही उठाया गया है। मसलन मनमोहन पाठक का उपन्यास **गगन घटा गहरानी**, संजीव का उपन्यास **पांव तले की दूब**, रणेंद्र का उपन्यास **ग्लोबल गांव के देवता**, महुआ माजी का उपन्यास **मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ**, और विनोद कुमार के तीनों उपन्यास **समर शेष है**, **मिशन झारखंड और रेड जोन** ऐसी ही रचनाएं हैं। महाश्वेता के उपन्यास भी इसी श्रेणी के हैं जो आदिवासियों के आर्थिक राजनीतिक सवालों को लगभग ठीक ठीक ही उठाते हैं। हालांकि प्रेस की कृपा से उनका प्रचार बहुत हुआ और उनको कहीं से कहीं पहुंचा दिया गया है। लेकिन आदिवासी समाज का कोई अंदरूनी चित्र आप इन कृतियों में खोजेंगे तो वह आपको नहीं मिलेगा। आदिवासियों की संस्कृति कैसी है, उसके मूल्य क्या हैं उसका सांस्कृतिक मानस कैसा है, उसके अंतर्द्वंद्व और तनाव क्या हैं—यह सब आपको इस साहित्य में नहीं अथवा बहुत कम मिलेगा।

आदिवासियों से संबंधित साहित्य की एक तीसरी श्रेणी भी है जिसमें उन लेखकों का साहित्य है जो आदिवासियों के बीच लंबे समय तक रहे हैं, जिन्होंने उनका अच्छा बुरा देखा है और उनकी प्रवृत्तियों को समझने का प्रयास किया है। हिंदी के एक लेखक हैं पुन्नी सिंह। **सहराना** नाम से उन्होंने राजस्थान के सहराना आदिवासियों के बारे में एक छोटा सा उपन्यास लिखा है जो एक सहराना आदिवासी युवक के अंतर्मन की कहानी कहता है। हिंदी में श्रीप्रकाश मिश्र ने मिजो लोगों पर **जहां बांस फूलते हैं** उपन्यास लिखा। श्रीप्रकाश मिश्र भारत सरकार के इंटेलिजेंस विभाग के अफसर थे। जब मिजो विद्रोह चल रहा था तो सरकार ने वहां उनकी तैनाती की थी ताकि वे मिजो नेताओं से सरकार की बात करा सकें। वे दस साल से ज्यादा मिजो लोगों के बीच रहे। जो आदमी दस साल मिजो लोगों के बीच रहेगा, अगर वह बहुत ही पूर्वाग्रहग्रस्त नहीं है तो, वह मिजो लोगों के बारे में कुछ अच्छा बुरा जरूर समझेगा। उनके उपन्यास में एक दो कमजोरियां हैं। लेकिन उन्होंने मिजो लोगों की कमजोरियों के साथ उनकी अच्छाइयों को भी समझा है, उनकी संस्कृति और मूल्यबोध को समझा है। मिजो नेशनल फ्रंट बनाकर मिजो अपने मिजोरम के लिए विद्रोह कर रहे थे। श्रीप्रकाश मिश्र ने उनके विद्रोह को बहुत सहानुभूति के साथ चित्रित किया है। उन्होंने यह भी दिखाया कि सरकार किस तरह मिजो नेताओं के साथ चालाकी कर रही थी, मिजो नेताओं को अपनी जेब में रखकर उनके साथ समझौना करना चाहती थी और मिजो नेताओं ने इसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि मिजो किसी की कठपुतली नहीं बन सकते। युद्ध और शांति वार्ता की उलझी हुई प्रक्रियाओं के बीच तनावग्रस्त मिजो मानस को श्रीप्रकाश मिश्र ने बहुत अच्छी तरह दिखाया है। उन्होंने खासी समाज पर भी एक उपन्यास **रूपतिल्ली की कथा** लिखा। यह उनके पहले उपन्यास जितना प्रभावशाली तो नहीं पर फिर भी ढंग का उपन्यास है। इसमें 19वीं सदी का खासी समाज जिन सांस्कृतिक अंतर्द्वंद्वों और तनावों से होकर गुजर रहा था उनका विस्तार से चित्रण किया गया

है। 19वीं सदी में एक ओर खासी समाज के अंदर प्रवेश कर गए अंग्रेजों के साथ आए ईसाई मिशनरी उन्हें प्रभावित कर रहे थे और दूसरी ओर श्रीहट (सिलहट) का हिंदू राजा जो वैष्णव था उसका प्रभाव भी खासी लोगों पर पड़ रहा था। प्रभावित करने वाले इन दो शक्तिशाली दबावों के बीच उन्नीसवीं सदी के खासियों के समाज में किस तरह के सांस्कृतिक परिवर्तन शुरू हुए, श्रीप्रकाश मिश्र ने इसे दिखाने की कोशिश की है। इस श्रेणी में कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण नाम उड़िया की लेखिका प्रतिभा राय का है जिन्होंने **आदिपुत्र** नाम से उड़िसा के बोंडा आदिवासियों के बारे में एक कमाल का उपन्यास लिखा है। यह उनकी वर्षों की साहित्य साधना का फल है। इस श्रेणी के लेखकों में सबसे महान उड़िया के ही गोपीनाथ महंती हैं जिन्होंने कंध आदिवासियों पर **अमृत संतान** और परजा आदिवासियों पर **परजा** नाम से उपन्यास लिखा। आदिवासी समाज को उसके अंदर से समझने वाला उनसे बड़ा दूसरा कोई लेखक नहीं हुआ। उनका लगभग सारा जीवन ही उड़िसा के आदिवासियों के बीच गुजरा। अपने ही खोल में रहने वाले शहरी मध्यवर्ग के पढ़े लिखे लोग और कुछ लेखक भी जिन आदिवासियों को नैतिकताविहीन और सांस्कृतिक दृष्टि से हीन समझते हैं, उन आदिवासियों के अंदर कैसे गहरे नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य हैं और हमारी तुलना में कहीं ज्यादा गहरी मनुष्यता है, इसे देखना हो तो गोपीनाथ महंती का **अमृत संतान** उपन्यास जरूर पढ़ना चाहिए। एक आदिवासी स्त्री के अंदर कैसी गरिमा होती है इसे उन्होंने दिखाया। आदिवासी समाज के जैसे विस्तृत और सच्चे चित्र गोपीनाथ महंती के उपन्यासों में मिलते हैं, ऐसे चित्र अन्य भारतीय लेखकों की रचनाओं में नहीं दिखलाई पड़ते। उन्होंने आदिवासी संस्कृति को उसके गहरे अर्थों में समझा। खासकर एक आदिवासी स्त्री के मानस और व्यक्तित्व को समझने वाला उनके जैसा दूसरा कोई नहीं दिखता। **अमृत संतान** की नायिका का पति जब किसी दूसरी युवती के प्रेम में पड़ जाता है तो वह पति के घर रहने की सुविधा होने के बावजूद उसे छोड़ देने का फैसला करती है। अंधेरी रात है, मूसलाधार बारिश हो रही है। उसका छोटा सा बच्चा है। वह कहां जाएगी? लेकिन वह उस भयानक रात में अपने छोटे से बच्चे को लेकर घर से निकल पड़ती है। एक आदिवासी स्त्री के आहत अहं और उसकी गरिमा का जैसा चित्रण गोपीनाथ महंती ने किया, क्या कोई करेगा!

आदिवासी साहित्य की चौथी और अंतिम श्रेणी खुद आदिवासियों द्वारा लिखे गए साहित्य की है। यह साहित्य उन्होंने अपनी मूल भाषाओं में लिखा हो अथवा हिंदी, बंगला या अन्य प्रादेशिक भाषाओं में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। इस श्रेणी का साहित्य मात्रा में बहुत ज्यादा नहीं है लेकिन इसकी गुणवत्ता बिल्कुल अलग किस्म की है। आदिवासियों के जीवन और समाज के सच्चे चित्र यहीं मिलते हैं। सिर्फ आदिवासियों की संस्कृति और रीति रिवाज ही नहीं आदिवासी व्यक्ति के भी विश्वसनीय चित्र इसी श्रेणी के साहित्य में दिखाई देते हैं। महाश्वेता देवी के उपन्यासों को आप पढ़िये, उनके आदिवासी चरित्र बहुत विश्वसनीय नहीं लगते। बिरसा मुंडा पर जो उपन्यास उन्होंने लिखा, उसमें एक भी आदिवासी गांव का नाम सही नहीं मिलता। असल में ये नाम उन्होंने अंग्रेजी किताबों में पढ़े थे। छोटा नागपुर के कमिश्नर रहे डॉ. कुमार सुरेश सिंह की किताब **दी डस्ट स्टॉर्म एंड द हैंगिंग मिस्ट** में पढ़े थे जो बिरसा मुंडा के आंदोलन पर केंद्रित शोध ग्रंथ है। खुद कुमार सुरेश सिंह से जब मैंने महाश्वेताजी के इस उपन्यास के बारे में पूछा तो उन्होंने बहुत संक्षेप में कहा—“मेरी किताब को उन्होंने आधार जरूर बनाया लेकिन उनके उपन्यास को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे किसी ने बाहर बाहर से सुनकर लिख दिया है।” वास्तव में आदिवासी समाज का जो अंदरूनी चित्र है, उनका जो सांस्कृतिक मानस और उसकी बनावट है, उनके अपने जो तनाव और अंतर्द्वंद्व हैं, वे आपको आदिवासियों की रचनाओं में ही मिलेंगे। ये आदिवासी रचनाएं महान भले

ही न हों, क्लासिक भले ही न समझी गई हों और हिंदी, बांगला या मराठी साहित्य के आलोचना के मापदंडों पर चाहे खरी न उतरती हों, लेकिन आदिवासी समाज का सच्चा चित्र आपको इन्हीं रचनाओं में मिलेगा। आज बहुत से आदिवासी अपनी मूल भाषाओं में कविता, कहानी, उपन्यास आदि साहित्य लिख रहे हैं और इनसे भी ज्यादा संख्या में वे विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में हिंदी, बांगला, उड़िया, मराठी इत्यादि में लिख रहे हैं। इनके साहित्य का अलग महत्व है। उस महत्व को हिंदी, बांगला, उड़िया, मराठी के बड़े लेखक लेखिकाओं द्वारा आदिवासियों पर लिखी गई प्रभावशाली रचनाओं से विस्थापित नहीं किया जा सकता। पूर्वोत्तर की आदिवासी भाषाओं में बोडो, खासी, मिजो और काक बराक इत्यादि आदिवासी भाषाओं में तो काफी आधुनिक ढंग का साहित्य लिखा जा रहा है। अगर किसी को आदिवासी साहित्य में रुचि है तो उसे आदिवासियों द्वारा लिखे गए साहित्य को जरूर पढ़ना चाहिए। आदिवासी भाषाओं में लिखे जा रहे साहित्य के विकास की कई समस्याएं हैं और उनके अध्ययन अध्यापन की भी कई समस्याएं हैं। इन समस्याओं को लेकर विस्तार से एक अन्य आलेख की आवश्यकता है।

मिजोरम विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में हिंदी एम.ए. के पाठ्यक्रम में एक पेपर आदिवासी साहित्य का भी रखा गया है। यह पाठ्यक्रम मैंने देखा नहीं है, लेकिन जहां तक मेरी जानकारी है उसमें ज्यादातर हिंदी के लेखकों ने मिजो आदिवासियों के बारे में जो साहित्य लिखा है वही ज्यादा हैं (जैसे श्रीप्रकाश मिश्र का **जहां बांस फूलते हैं** उपन्यास आदि)। मैं यह कहना चाहता हूँ कि मिजो विद्यार्थियों को सिर्फ हिंदी या बाहर के लेखकों द्वारा लिखे गए साहित्य को ही नहीं पढ़ना चाहिए, भले वह मिजो लोगों के ही बारे में हो। खुद मिजो लेखक लेखिकाओं ने जो लिखा है, उसे वे पढ़ें। हम सब जानते हैं कि आज भारत में आदिवासी समाज कई तरह के संकटों से गुजर रहे हैं। आदिवासियों की जनसंख्या वृद्धि दर भी ज्यादा नहीं है। आदिवासी समुदाय खत्म हो रहे हैं और बिखरते जा रहे हैं। वे अपनी सांस्कृतिक पहचान खो रहे हैं, अपनी भाषाएं खो रहे हैं। एक तरफ तो यह प्रक्रिया चल रही है। दूसरी ओर आदिवासी साहित्य फल फूल रहा है। आदिवासी लेखक सम्मानित किए जा रहे हैं। आदिवासी भाषा साहित्य के नए नए विभाग खुल रहे हैं और नए विकसित हुए आदिवासी शिक्षित मध्यवर्ग में आदिवासी साहित्य का प्रचार प्रसार हो रहा है, उनकी पत्रिकाएं निकल रही हैं और बड़े बड़े सम्मेलन हो रहे हैं। सवाल है कि यह कैसा अंतर्विरोध है और क्यों है? एक तरफ आदिवासी समाज का टूटना बिखरना और खत्म होते जाना और दूसरी तरफ उनके साहित्य का फलना फूलना और आदिवासी विमर्श का लोकप्रिय होते जाना—इस विरोधाभासपूर्ण स्थिति की व्याख्या हम कैसे करें?

कला, आधुनिकता और इतिहासदृष्टि : कुछ संदर्भ कुछ विचार

राहुल सिंह

आधुनिकता का सवाल एक जटिल सवाल है क्योंकि स्वयं आधुनिकता की अवधारणा अपने स्वरूप और संरचना में अत्यंत जटिल है। “आधुनिकता का आरंभिक प्रयोग ‘थियोलॉजी’ के संदर्भ में देखने को मिलता है। ‘आधुनिकता’ जिस ‘मार्डर्निटी’ शब्द की हिंदी है, वह अंग्रेजी में ग्रीक ‘मोडो’ (क्रियाविशेषण) से आया है, जिसका अर्थ है हाल फिलहाल, अभी का, आज, इस समय का, समकालीन।”¹ लेकिन ‘आधुनिकता’ शब्द की व्युत्पत्ति पांचवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लैटिन शब्द ‘मौडर्नस’ से हुई है, जिसका प्रयोग औपचारिक रूप से ईसाई वर्तमान को गैर ईसाई रोमन अतीत से अलग करने हेतु किया गया था। उसके बाद इस शब्द का व्यवहार, प्राचीन की जगह वर्तमान को स्थापित करने हेतु किया गया, जो यूरोप में उस अवधि में उत्पन्न हो रहा था, जब नये युग की चेतना प्राचीन के साथ नये संबंध के माध्यम से नया आकार ग्रहण कर रही थी।² शब्दकोश में भी ‘मार्डर्न’ की व्युत्पत्ति लैटिन के ‘मौडर्नस’ से ही बतलायी गई है। वैसे आधुनिकता के प्रसंग में संदर्भवत्ता का खयाल रखना बेहद आवश्यक है क्योंकि अपने उद्भवकाल से ही आधुनिकता अन्य ज्ञानानुशासनों को प्रभावित करती और उनसे प्रभावित होती रही है। इसी क्रम में उसका स्वरूप विकसित होता गया है इसलिए सभी ज्ञानानुशासनों में आधुनिकता की पहचान और परख की कसौटियां भी अलग अलग हैं।

आधुनिकता के बारे में विचार जगत में एक समझ बन चुकी है कि आधुनिकता एक यूरोपीय स्थिति और अवधारणा है जबकि व्यवहार जगत की वास्तविकता इस बात का पुरजोर विरोध करती है। आधुनिकता का कोई एक वैश्विक मॉडल नहीं हो सकता है। आधुनिकता के बारे में इस गलत

समझ की मूल वजह यह रही कि अन्य एशियाई अफ्रीकी देशों ने अपनी आधुनिकता की सैद्धांतिकी विकसित नहीं की, यदि कहीं कुछ अर्थों में ऐसा हुआ भी तो उसकी कोई वैश्विक पहचान नहीं बन सकी। स्वयं भारत के पास आज आधुनिकता का कोई अपना मॉडल नहीं है। इस दिशा में महात्मा गांधी अकेले व्यक्ति थे जिन्होंने भारतीय संदर्भ में आधुनिकता की मौलिक संकल्पना सामने रखी थी लेकिन आजादी के साथ ही उनके विचार हाशिये में डाल दिये गए।

आधुनिकता को एक यूरोपीय अवधारणा मान लेने का एक प्रमुख कारण यह रहा है कि यूरोप में एक विचारधारा और दृष्टिकोण के रूप में आधुनिकता का स्पष्ट और सुसंबद्ध इतिहास रहा है। जो इस बात की ओर संकेत करता है कि 'आधुनिकता के उद्भव काल में नये परिवर्तनों का प्रमुख स्रोत यूरोप था।'³ इस कारण से यूरोप में आधुनिक काल के प्रस्थान बिंदु के तौर पर पुनर्जागरण को प्रस्तावित किया जाता है। सुदीर्घ इतिहास के कालखंड में विभाजक बिंदु के तौर पर पुनर्जागरण का ही चुनाव क्यों किया गया? जबकि 'इतिहास में पुनर्जागरण की प्रकृति से मिलते जुलते कम से कम दो आंदोलन और हुए हैं। इनमें एक 'कैरोलिंजियाई पुनर्जागरण' है, जो नवीं शताब्दी में हुआ था। इसके बारे में लोगों को बहुत कम मालूम है। इसके माध्यम से पांचवीं और छठी सदी में हुए बर्बर आक्रमणों के बाद (जिनकी वजह से प्राचीन ग्रंथों का अध्ययन एक प्रकार से समाप्त हो गया था) पुनः पहली बार लैटिन का समुचित पठन पाठन शुरू हुआ।'⁴ इसके बाद नवीं से बारहवीं सदी के बीच के अरब साम्राज्य की उपलब्धियों को देखा जाय तो इतिहास की कुछ और ही तस्वीर उभरती है। इस तीन सौ साल की अवधि के दौरान अरबों ने तर्जुमा (अनुवाद) के क्षेत्र में एक आंदोलन को ही जन्म दे दिया था। ग्रीक, रूसी, संस्कृत और ईरानी ग्रंथों विशेषकर वैज्ञानिक और दार्शनिक पांडुलिपियों के अनुवाद द्वारा वैश्विक ज्ञान को अपनी भाषा में आत्मसात करने की एक ईमानदार कोशिश अरबों के द्वारा देखने को मिलती है। जिसके फलस्वरूप अरबों ने अलजेब्रा (आधुनिक भौतिकी और गणित का आधार), अलगोरिथम (कम्प्यूटर की गणितीय गणना का आधार) और अल्केमी (रसायनशास्त्र का आधार) के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धि हासिल कर ली थी। इन इस्लामिक ज्ञान के केंद्रों के रूप में उस समय के बगदाद, मस्कट, कैरो, ईरान, सीरिया विशेषकर उसकी राजधानी दिमास्कस को पहचाना जा सकता है। अब भी आधुनिक विज्ञान की भाषा में प्रयुक्त बहुत से संदर्भ के स्रोतों को अरबी ज्ञान परंपरा में देखा जा सकता है। बारहवीं से सत्रहवीं शताब्दी के बीच यूरोपीय विद्वान लगातार 'इस्लामिक टेक्स्ट' की ओर देखते रहे हैं। अल ख्वारिज्म जैसे विद्वान ने यूरोपीयों को भारतीय अंकपद्धति की मदद से 'अर्थमेटिक के एप्लीकेशन' के ज्यादा सहज तरीके बतलाए। अरब ज्ञान विज्ञान की दिशा में इतनी बढ़त इसलिए बना सके क्योंकि उनके बढ़ते साम्राज्य के साथ नगर योजना, बाजार की मूल्य पद्धति और जनता के स्वास्थ्य की चिंता जुड़ी थी। अब्बासी खलीफा साम्राज्य को चलाने के लिए सैन्य शक्ति के साथ 'साइंटिफिक टेंपर' की जुगलबंदी की जरूरत को समझ रहे थे। गणितीय योग्यता (नगर की वित्तीय योजनाओं के लिए), सैन्य तकनीक (युद्धों के लिए) और चिकित्सा ज्ञान (जीवन रक्षा के लिए) लगातार सघन होती जनसंख्या पर सुचारु रूप से शासन करने की दिशा में ज्ञान विज्ञान की ये शाखाएं विशेष मददगार साबित हुईं। (इसकी सविस्तार चर्चा सरे विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान के प्रो. जिम अल खलीली ने बी.बी.सी. के लिए 'साइंस ऑव इस्लाम' नामक डॉक्यूमेंट्री में की है।) तो अरब साम्राज्य शुरुआती बढ़त लेने के बावजूद 'पुनर्जागरण' जैसी चीज का श्रेय क्यों नहीं ले सका? इसके पीछे एक कारण तो यूरोपीय साम्राज्यवादी नीतियां रहीं तो वहीं दूसरी ओर तुर्कों का बढ़ता प्रभाव रहा जिसने उनकी इन उपलब्धियों को धुंधला करने का काम किया और सबसे बड़ी वजह मानववाद की वह परिघटना रही जिसका सूत्रपात पुनर्जागरण से पहले इटली

में हो चुका था। जिसे अक्सरहां बल देकर इस अंदाज में कहा जाता है कि इससे भी अधिक महत्वपूर्ण आंदोलन 12वीं शताब्दी का था जिसमें मानववादी विचारों का विकास हुआ। पेरिस, बोलोन और आक्सफोर्ड के महान विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई और यूनान के धर्मशास्त्रीय तथा नैतिक ग्रंथों की पुनः खोज हुई। इसी समय गोथिक मेहराबें, निर्माण कौशल की पूर्णता की दृष्टि से, अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचीं और रोमन कानून का व्यवस्थित रूप से अध्ययन किया गया। इसलिए जो तत्व पुनर्जागरणकालीन विद्वानों तथा कलाकारों को अपने पूर्ववर्तियों से अलग करता है वह केवल यही नहीं है कि इस काल में क्लासिकी व्याकरण, कविता या कला रूपों के प्रति एक नवीन जोश तथा शौक पैदा हुआ। वास्तव में वह तत्व है इन सभी चीजों के प्रति उनका व्यावहारिक तथा मानवीय दृष्टिकोण जिसे 19वीं सदी की भाषा में मानववाद नाम दिया गया।

इतालवी मानववाद ने मनुष्य की बौद्धिक तथा कलात्मक क्षमता के उन्नयन की दिशा में उल्लेखनीय गति प्रदान की। जिसके परिणामस्वरूप मानव सभ्यता के विकास में 'इस अवधि के दौरान ऐतिहासिक विकास की कई प्रक्रियाएं आरंभ होती हैं। आधुनिक सभ्यता के विकास के कई चरणों की शुरुआत यहां से होती है।'⁵ तो सवाल उठता है कि ऐसा क्या होता है जो अब तक नहीं हुआ था?

इसके लिए थोड़ी चर्चा इतालवी मानववाद के संदर्भ में जरूरी है। '14वीं-15वीं शताब्दी में जो लोग प्राचीन रोम और यूनान (ग्रीस) की कला, साहित्य और संस्कृति के ग्रंथों की खोज करते थे उन्हें इतालवी भाषा में 'उमानिस्त' और प्राचीन कला, साहित्य, संस्कृति और ज्ञान के अनुशासनों को 'उमानिता' कहा गया जिसे आज अंग्रेजी में 'ह्यूमैनिटीज' कहते हैं। इन अनुशासनों के केंद्र में था मनुष्य। मनुष्य के विभिन्न पक्षों का गहरा ज्ञान करानेवाले विषयों की सबसे विस्तृत और पूर्ण अभिव्यक्ति हुई थी प्राचीन ग्रीक और लैटिन साहित्य और ज्ञान के शास्त्रों में। इन अनुशासनों का अध्ययन करना मनुष्य का अध्ययन करना था। इसलिए इन अनुशासनों को ह्यूमैनिटीज कहा गया और इनका अध्ययन मनन करनेवालों को ह्यूमनिस्ट।'⁶ इतालवी पुनर्जागरण के अग्रदूतों में मूलतः दांते, पेत्रार्का और बोकाच्यो की गणना की जाती है। हांलाकि दांते का निधन पुनर्जागरण काल के आरंभ के पहले ही हो गया था फिर भी उसकी रचनाओं में उन आधारभूत गुणों को प्रचुरता में देखा जा सकता है जिसकी अभिव्यक्ति आगे चलकर पुनर्जागरणकालीन रचनाओं में प्रमुखता से देखी गई। जिस इतालवी भाषा में आगे चलकर इटली अपने युग को वाणी दे सकी उस भाषा साहित्य का आरंभ दांते ने किया था। यह रेखांकित करने योग्य बात इस कारण से है कि उन दिनों प्राचीन शास्त्रीय लैटिन में भाषा साहित्य की रचना करना विशेष गौरव की बात समझी जाती थी। (लैटिन को छोड़कर इतालवी में रचना करना लगभग संस्कृत को छोड़कर अपभ्रंश या अन्य लोकभाषाओं में रचना करने के समान था।) 1302 ई. में दांते को फ्लोरेंस छोड़ना पड़ा, अपने निष्कासन के उन्नीसवें वर्ष तक दांते वेरोना और बाद में रेवेना में रहे। इस अवधि में दांते पूर्णरूपेण सर्जनात्मक लेखन के क्षेत्र में उतर कर अपनी पहचान कायम कर चुके थे। 1304 ई. में उन्होंने 'द वल्यरी इलोकवेंशिया' शीर्षक पुस्तिका लैटिन भाषा में लिखी जो लैटिन कविता के ऊपर देशी भाषा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करता था। दांते ने अलग से इटली के विभिन्न क्षेत्रों में बोली जानेवाली चौदह बोलियों के उच्चारणगत वैविध्य को लक्ष्य कर यह घोषणा की थी कि उससे पहले इस किस्म का अध्ययन करने का प्रयत्न भी किसी ने नहीं किया था और इस अवधारणात्मक एप्रोच और अनुभवात्मक ब्योरे के साथ तो कत्तई नहीं। इसी क्रम में उन्हें लोक भाषाओं में कविता के उत्कृष्ट नमूने प्राप्त हुए जिससे दांते ने परंपरा का एक बोध अर्जित और विकसित किया। देशी भाषा में ऊंचाई को छूनेवाले कवियों के रूप में दांते ने ग्विल्डो कावलकेंति, लेपो और स्वयं को

याद किया है। ग्विल्डो को तो पिता के रूप में पूरे आदर के साथ याद करते हुए दांते ने लिखा है कि

Your sweet songs

Which so long as modern use shall last

Will make their very ink precious

Modern use (uso moderno) से मतलब कविता की उस नई शैली (स्टाईल) से है जो दांते के जीवन काल में प्रचलित दो काव्य शैलियों प्रोवेंकल और सिसिलियन से काफी आगे निकल चुकी थी।⁷ इसके अलावा दांते और तत्कालीन साहित्यिक जमात के लिए ब्रूनोतो लातिनी एक आदर्श और प्रेरणा पुरुष थे। दांते के लिए वह इस अर्थ में सुशिक्षित थे कि वे आम जन और जनकल्याण के कार्यों में पूरी तत्परता के साथ सक्रिय रहते थे। उनसे प्रेरणा ग्रहण करते हुए दांते ने आधुनिक अर्थों में बुद्धिजीवी के सामाजिक दायित्व की पूरी गंभीरता से चर्चा की है। 'दफन प्रतिभाएं' (ब्यूरीड टैलेंट) की अवधारणा को प्रस्तुत करते हुए दांते ने जनहित में अपनी आवाज उठाने की गहन इच्छा प्रकट की थी। बुद्धिजीवियों के रवैये को देखते हुए दांते ने लिखा था कि 'कुछ चीजें हैं जो हमारे अधिकार क्षेत्र में आती हैं जिसके बारे में सोचना नहीं करना चाहिए।... जिनका संबंध सोचने से नहीं करने से जुड़ता है।'⁸ जोनाथन गलासी ने इतालवी साहित्य में दांते की अर्थपूर्ण उपस्थिति को चिह्नित करते हुए लिखा है कि 'वह पहला व्यक्ति है जिसने भाषा को उसके शास्त्रीय अतीत की परछाई से मुक्त किया।'⁹ अपनी पीढ़ी के लोगों में बोकाच्यो दांते के सबसे बड़े प्रशंसक और अनुसरणकर्ता के रूप में उभरे थे। दांते ने इतालवी भाषा में रचना करते हुए स्वयं को कविता तक सीमित कर रखा था उसका प्रसार कहानी के क्षेत्र में करने का श्रेय बोकाच्यो को जाता है। 'जियोवानी बोकाच्यो (1313-75) ने डेकामेरान (सौ से ऊपर कहानियों का संग्रह) और 'जीनियोलॉजी ऑव दि गाड्स' (देवताओं की वंशावली) में प्रोमेथ्यूस के मिथक की पुनर्व्याख्या की है। इसमें उन्होंने आग चुराने वाले को पढ़े लिखे व्यक्ति के समान बताया है क्योंकि स्पष्टतः विद्या ही मनुष्य को नैतिक, ज्ञानवान तथा गुणी बनाती है।'¹⁰ 'दांते, बोकाच्यो और पेत्रार्का में रिनेसां की चेतना के लिहाज से सबसे ज्यादा महत्व पेत्रार्का का है।...पेत्रार्का ने चर्च के रूढ़िवादी और कर्मकांडी ज्ञान की खुलकर निंदा की।...मध्ययुग की ईसाई पुरोहिती संस्कृति के हजार वर्षों को 'अंधकार युग' कहते हुए खारिज कर दिया और उसके मुकाबले प्राचीन रोमन संस्कृति के गौरव को सामने रखा।...पेत्रार्का की सबसे महत्वपूर्ण भूमिका प्राचीन ग्रंथों की खोज का अभियान शुरू करने में थी। ईसाई धर्म की दृष्टि से यह शौक बहुत खतरनाक था। गौरतलब है कि मध्ययुग में ज्ञान के सभी स्रोतों पर चर्च का एकाधिकार होता था और सभी किताबें सिर्फ ईसाई मठों के पुस्तकालयों में होती थीं। (अंबर्तो इको के प्रसिद्ध उपन्यास 'द नेम ऑव रोज' में इसे पूरे ब्योरे के साथ देखा जा सकता है) पेत्रार्का ने चर्च के इस एकाधिकार को तोड़ डाला। अपनी घुमक्कड़ जिंदगी में वह जहां भी गया, उसने दुर्लभ प्राचीन किताबों की खोज की। 1374 ई. में अपनी मृत्यु होने तक पेत्रार्का ने पूरे यूरोप से करीब दो सौ महत्वपूर्ण दुर्लभ पांडुलिपियों को जमा कर लिया था।...इस तरह इतालवी रिनेसां के इन मानववादियों द्वारा प्राचीन ग्रंथों और पांडुलिपियों की खोज, उनका अध्ययन, संपादन, पाठालोचन, प्रकाशन और उनका तुलनात्मक तथा आलोचनात्मक अध्ययन आदि आधुनिक बौद्धिक अनुशासनों का विकास हुआ। इसका एक महत्वपूर्ण नतीजा यह निकला कि ग्रीक लैटिन साहित्य की कई प्राचीन विधाएं, जो ईसाइयत के उभार के बाद उपेक्षित होकर मध्ययुग में गायब ही हो गई थीं, फिर से जीवित हो उठीं, जैसे इतिहास लेखन, पत्र, नैतिक वार्ता, आत्मकथा और प्रेमकाव्य। पेत्रार्का के बाद इस आंदोलन के दो महत्वपूर्ण नाम क्लूचिओ

सलूतती और निकोले डी निकोली थे। इनके द्वारा जमा किए गए ग्रंथों से ही इतालवी लोगों को पता चला कि मध्ययुगीन कट्टर ईसाई संस्कृति के विपरीत प्राचीन यूनानी समाज में कितना खुलापन था।...प्लेटो के ग्रंथों (विशेषकर डायलॉग) ने मानववादियों को बहुत प्रभावित किया। प्लेटो के ग्रंथों में मनुष्य की स्वतंत्रता और विवेक बुद्धि को जो प्रमुखता दी गई है, उसने ईसाई धर्मशास्त्रों को और उनके नैतिक नियमों के प्रभाव को ध्वस्त कर दिया।...पैगन धर्म और संस्कृति (ईसाई धर्म से पहले के ग्रीक रोमन धर्म एवं संस्कृति) की जानकारी से इटली में, इसके शिक्षित भद्रवर्ग के बीच ईसाई धर्म खत्म तो नहीं हुआ, पर उसका प्रभाव बहुत कम हो गया। लोगों के सामने यह सवाल उभरा कि जब यहूदी या ईसाई धर्म के बिना भी प्राचीन रोमन और यूनानी सभ्यता संस्कृति इतनी ऊंचाइयों तक पहुंची थी, तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि धर्म के बाहर मनुष्य का उत्थान और मुक्ति संभव नहीं?...रिनेसां से पहले मध्ययुगीन इतिहास लेखन एक अराजक वृत्तान्त भर होता था। इतिहास धार्मिक दृष्टि से नियंत्रित होता था। इतिहास ईसाई देश और गैर ईसाई देश के बीच फर्क मान कर लिखा जाता था। पूरे यूरोप के ईसाई बन जाने का मतलब उनके इतिहास का भी एक हो जाना था। लेकिन इतालवी मानववाद ने ईसाई धर्म से पहले की ग्रीक रोमन सभ्यता संस्कृति से अपना संबंध जोड़ा तो इतिहास का एक नया बोध विकसित हुआ। पहली बार धर्म के बजाय किसी समाज की सांस्कृतिक विशेषताओं को इतिहास लेखन का मुख्य विषय बनाया गया और इतिहास लेखन में काल की अवधारणा का विकास हुआ। विभिन्न कालों की अवधारणा सामने आई और उनका मूल्यांकन ईसाइयत के आधार पर न करके उन कालों की भौतिक सभ्यता संस्कृति के आधार पर होने लगा।”¹¹ इस तरह देखें तो यूरोप में इतिहासबोध का आरंभ रिनेसां से होता है। रिनेसां के पूर्व इतिहास में प्रमुख भूमिका ईश्वर या पाप की थी, लेकिन ‘पोस्ट रिनेसां’ के समय इतिहास में सोद्देश्यता (टेलियोलॉजिकल) और प्रगति के विचार ने केंद्रीयता हासिल की। मतलब यह कि रिनेसां से पहले इतिहास का कोई निश्चित फ्रेमवर्क नहीं था। वह भूत या अतीत भर था, इतिहास नहीं। इससे इतिहास का एक स्पष्ट दिशा और लक्ष्य की ओर बढ़ना संभव हो सका। स्वयं रिनेसां इतिहास बोध के इस पैटर्न का एक प्रतिमान बन गया। न सिर्फ गैर यूरोपीय राष्ट्रों के लिए बल्कि यूरोपीय राष्ट्रों के लिए भी। ऐसा इसलिए कह रहा हूँ कि आधुनिक होने की प्राथमिक शर्तों में यूरोप के लिए जिस अंधकार से मुक्त होने की कामना की गई उसके लिए पुनर्जागरण एक प्राथमिक शर्त थी। यह अकारण नहीं की इतालवी पुनर्जागरण की तर्ज पर पूरा यूरोप अपने यहां रिनेसां की एक प्रतिछवि गढ़ने लगा। ‘नादर्न रिनेसां’ इसका सबसे बड़ा उदाहरण है।

इस बदले हुए युगबोध के कारण नयी शिक्षा पद्धति की आवश्यकता महसूस की जाने लगी थी। परिणामतः 14वीं शताब्दी के मध्य तक सार्वजनिक शिक्षा के बारे में चर्च का एकाधिकार बड़ी तेजी से समाप्त हो रहा था। इसके मुख्यतः दो कारण थे। पहला यह कि चर्च शिक्षा की बढ़ती मांग को पूरा करने में स्वयं समर्थ नहीं था। दूसरा कारण (जो कि अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण है) यह था कि लोग जिस ढंग की शिक्षा चाहते थे चर्च वैसी शिक्षा दे नहीं सकता था। उदाहरण के लिए इटली के अधिसंख्य राज्यों में माता पिता अपने बच्चों को इस प्रकार की शिक्षा देना चाहते थे जिससे वे व्यापारिक सौदों और ऋण आदि का हिसाब किताब रख सकें या कम से कम किसी कारीगर की दुकान में काम कर सकें।¹² इतना ही नहीं जो ‘प्राचीन ग्रंथ खोजे गए थे उनमें शिक्षा प्रणाली से संबंधित दो ग्रंथ बहुत महत्वपूर्ण थे, एक प्लूटार्ख का ‘ऑन दी एजूकेटिंग चिल्ड्रेन’ और दूसरा क्यूइंटिलियन का ‘ऑन दी एजूकेशन ऑव एन अरिटर’, इन दोनों ग्रीक ग्रंथों के इतालवी अनुवाद ने शिक्षित भद्र वर्ग के बीच शिक्षा की एक नई अवधारणा को विकसित किया। शिक्षा

संबंधी नई किताबों में सबसे महत्वपूर्ण बतीस्ता अलब्रेती की 'ऑन दी फेमिली' थी। इसमें कहा गया है कि अभिभावकों को अपने बच्चों का भविष्य और व्यवसाय पहले से तय नहीं कर देना चाहिए बल्कि उनके निजी गुणों, स्वभाव और प्रतिभा को देखना चाहिए और इन्हीं के अनुरूप उन्हें अपने जीवन का मार्ग चुनने देना चाहिए। बच्चों की शिक्षा के बारे में इस आधुनिक, मानवीय दृष्टिकोण ने भद्रवर्ग को काफी प्रभावित किया और इसी दृष्टिकोण के अनुसार इटली के नगरों में नये ढंग के स्कूल कायम होने लगे। शिक्षा संबंधी इस मानवीय दृष्टिकोण और प्रणाली का ऐतिहासिक महत्व इस बात से समझा जा सकता है कि 15वीं सदी में शुरू हुई यह नई शिक्षा प्रणाली अगली चार शताब्दियों तक यूरोप में प्रचलित रही। इस शिक्षा प्रणाली में ज्ञान के कई विषय पहली बार अध्ययन के लिए शामिल किए गए। ऐसे विषय जो मध्ययुग में चर्च द्वारा नियंत्रित शिक्षा प्रणाली में नहीं होते थे, लेकिन प्राचीन ग्रीक रोमन शिक्षा प्रणाली में थे।¹³ इस नई शिक्षा पद्धति ने व्यक्तित्व के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। जिसको पुनर्जागरण काल में स्पष्टता से लक्ष्य किया गया। मानववादियों द्वारा खोजे गए ग्रंथों और उस पर आधारित नई शिक्षा व्यवस्था ने कला संस्कृति के क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का काम किया। बल्कि यही शिक्षा अगली शताब्दी में होनेवाली वैज्ञानिक क्रांति की पीठिका साबित हुई। कला पर इसका असर कुछ इस रूप में देखने को मिला कि 'इटली के कुछ कलाकारों जैसे लियोनार्दो द विंची, अलबर्टी और चेनिनी कला में वैज्ञानिक मानदंडों को लागू करने की संभावनाओं के प्रति इतने मुग्ध थे कि उन्होंने इस विषय पर विपुल साहित्य का निर्माण किया।'¹⁴ जैसे लियोनार्दो द विंची (1452-1519) ने (ट्रीटिज ऑन पेंटिंग) लिखी। लियोनार्दो की बुनियादी मान्यता थी कि 'चित्रकार को इस बात का खयाल रखना चाहिए कि वह मनुष्य की कायिक भंगिमा का चित्रण करते हुए उसके मस्तिष्क में चल रहे विचारों को भी रेखांकित करे, 'लोरेजों गिबेर्ती ने अपनी (कमेंट्रीज, 1450) में लिखा है कि इसके लिए मूर्तिकार और चित्रकार को निम्न उदार कलाओं जैसे व्याकरण, ज्यामिती, दर्शन, चिकित्साशास्त्र, ज्योतिषविद्या, परिप्रेक्ष्य, इतिहास, शरीररचना विज्ञान, सिद्धांत, खाका और अंकगणित का ठोस ज्ञान होना चाहिए। लियोनार्दो अल्बेर्ती ने भी अपने (द रे अइर्देफिक्टोरिया) में वांछित योग्यताओं के रूप में उपरोक्त सूची को ही रखा है।'¹⁵ इन विषयों के ज्ञान के साथ चित्रकला और मूर्तिकला के क्षेत्र में प्रवेश करने वालों में सिर्फ लियोनार्दो द विंची और माइकेल एंजेलो का ध्यान करने से हमें इसकी ऐतिहासिकता और क्रांतिकारिता दोनों का बोध हो जाता है। लियोनार्दो के इन विषयों से जुड़े शोध और उससे निष्पन्न परिणामों ने चर्च के साथ संघर्ष की स्थिति पैदा कर दी थी, किसी ईष्यालु व्यक्ति ने लियोनार्दो के शव परीक्षण के द्वारा शरीररचना के अध्ययन की खबर पोप तक पहुंचा दी थी। 'चर्च और लियोनार्दो के बीच इस पूरे विवाद के मूल में 'मिलान' के आखिरी वर्षों में लियोनार्दो द्वारा किया गया भ्रूण विषयक अध्ययन था। जो विंडसर अध्ययन ('गर्भ में भ्रूण') के नाम से विख्यात हुआ। जिसकी कुछ टिप्पणियां और रेखांकन का काम मिलान के बाद आगे चलकर रोम में पूरा हुआ। जिसके तार धर्माध्यात्म के विवादास्पद प्रश्न 'अजन्मे बच्चे की आत्मा' से जुड़े थे। लियोनार्दो ने लिखा कि 'भ्रूण एक ऐसा प्राणी या जंतु' है जो अपनी मां के गर्भ में पूर्णतः मां की आत्मा पर आश्रित रहता है। एक ही आत्मा इन दोनों की नियंता होती है जो उस जीव की आकांक्षा, भय और दुःखों का साझा करती है और ऐसा सिर्फ मनुष्यों के साथ नहीं बल्कि समस्त मादाओं (पशुओं) के साथ होता है। क्योंकि जब एक गर्भवती स्त्री मरती है तो उसके शिशु को बचाने के लिए अलग से कोई दूसरी आत्मा नहीं आती।'¹⁶ लियोनार्दो ने स्त्री के गर्भ में शिशु के विकास को 'मेडिकल साइंस' के आधुनिक तकनीकों के ईजाद होने से बहुत पहले 1509-10 के आसपास ही दिखा दिया था। जिसने संतति ईश्वरीय देन है की धारणा को प्रश्नांकित करने

का काम किया था। लियोनार्दो ने 'शरीररचना विज्ञान को ऐसे ज्ञान की शाखा के तौर पर देखा था जो प्रकृति के द्वारा सहेज कर रखे रहस्यों का उद्घाटन करती थी।'¹⁷ यदि बात माइकेल एंजेलो (1475-1564) की करें तो हम पाते हैं कि लियोनार्दो की भांति इसने भी न सिर्फ शव परीक्षण के द्वारा शरीरविज्ञान पर आधारित जानकारी हासिल की थी, बल्कि उसका इस्तेमाल लगातार अपनी रचनाशीलता को एक नया आयाम देने के लिए किया था। अपने चित्रों में माइकेल एंजेलो और लियोनार्दो ने 'परिप्रेक्ष्य' के तौर पर लगातार सचेत रूप से किसी दैवीय (पारलौकिक) पृष्ठभूमि का चुनाव न करके इसी धरती (इहलौकिक) के दृश्यों को दर्शाने की कोशिश की। इससे चित्रकला की दुनिया में पहली बार 'परिप्रेक्ष्य' की अवधारणा विकसित हुई। जिसे उस समय 'परिप्रेक्ष्य का विज्ञान' (साइंस ऑफ पर्सपेक्टिव) कहा गया। पुनर्जागरण काल में इटली में विकसित इस कलागत अवधारणा का विकास बाद के दिनों में अन्य यूरोपीय देशों में भी देखने को मिला। 'नार्दरन रिनेसां' की जो बात की जाती है उसमें जर्मनी जैसे देश में 'परिप्रेक्ष्य' की इस अवधारणा को ले जाने वाले चित्रकार का नाम डयूरर (1471-1528) था। जबकि इतालवी रिनेसां के इन कलात्मक मूल्यों को नीदरलैंड की सीमा में दाखिल कराने वाले चित्रकार का नाम ब्रूगेल (1525-1569) था। इस तरह हम पाते हैं कि इन उदार कलाओं की अंतर्ज्ञानानुशासनात्मकता से चालित कूची ने ईश्वर का देवत्व छीन लिया था। विज्ञान से पहले ईश्वर की संकल्पना पर शुरुआती प्रहार कला की दुनिया से आरंभ हुए थे, जिसमें गति बाद में विज्ञान के शामिल होने से आई। अपने चित्रों में माइकेल एंजेलो और लियोनार्दो ने ईश्वर को भी एक सामान्य मनुष्य की भाव संवेदनाओं से युक्त दिखाने का अपराध (चर्च की दृष्टि में) किया था। इन सब बातों का विशेषकर चित्रकला और मूर्तिकला के क्षेत्र में दूरगामी प्रभाव इस रूप में देखने को मिला कि 'जब पुनर्जागरण काल से कलाकार ने वैज्ञानिक ढंग से अपनी अंकन पद्धतियों में संशोधन शुरू किया तब कला की धार्मिक अभिव्यक्ति कमजोर हुई और उसको भौतिक रूप प्राप्त हुआ। भौतिक सौंदर्य के प्रति आकृष्ट दर्शक के लिए कलाकृति में वास्तविक सृष्टि की सच्ची प्रतिकृति होना कलाकृति की श्रेष्ठता का मापदंड बन गया।'¹⁸ इस कलात्मक दृष्टि का विस्तार सिर्फ चित्रकला या मूर्तिकला के क्षेत्र तक सीमित नहीं था बल्कि अन्य ललित कलाओं पर भी इसका असर पड़ा। वास्तु या स्थापत्य की बात करें तो मध्यकालीन गॉथिक शिल्प की जगह बरोक शैली अपना स्थान बना रही थी। साहित्य की बात करें तो 'देशी भाषाओं में पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति' देखने को मिल रही थी। (इसके ऐतिहासिक महत्व को भारतीय संदर्भ में देशी भाषाओं में रचे गए भक्ति काव्य को ध्यान में रखकर समझा जा सकता है। विशेषकर इस सामाजिक सवाल के संदर्भ में कि यदि लोकभाषाओं में रचना नहीं हुई होती तो क्या हमारे सामने इतनी संख्या में दलित या स्त्री कवि आ पाते? देशी भाषाओं में रचना का संबंध जातीय गठन की प्रक्रिया से है जिसको एक प्रतिमान के बतौर हिंदी साहित्य में नवजागरण की अवधारणा पर बात करते हुए रामविलास शर्मा ने बारंबार अपनी आलोचना में इस्तेमाल किया है। पर इस क्रम में रामविलास शर्मा ने जिस एक तथ्य की सचेत तौर पर अनदेखी की है वह यह कि यूरोपीय आधुनिकता के मूल में ग्रीक और लैटिन की ज्ञान परंपरा ने आधार स्तम्भ का काम किया है। भारतीय संदर्भों में विशेषकर मध्य काल के भक्ति साहित्य के संदर्भ में हम संस्कृत की ज्ञान परंपरा का विकास उसी रूप में नहीं पाते हैं जिस रूप में ग्रीक और लैटिन की ज्ञान परंपरा का विकास इतालवी पुनर्जागरण में देखने को मिलता है। इसका बड़ा कारण संस्कृत भाषा पर वर्णाश्रम व्यवस्था के पुरोधे माने जानेवाले ब्राह्मण वर्ग का एकाधिकार था, जो जन समाज में उस भाषा के विकास की राह में सबसे बड़ा अवरोधक था। इस कारण संस्कृत भाषा में संचित ज्ञान परंपरा का विस्तार ग्रीक और लैटिन की तरह न हो सका। बल्कि संस्कृत के प्रतिकार या प्रतिरोध में जो लोकभाषाएं

अस्तित्व में आई भारत में आधुनिकता की चेतना के प्रचार प्रसार की सूरतें उनसें बनीं। भाषा पर जातिगत वर्चस्व के कारण संस्कृत एक खास जाति से संबद्ध हो गई थी, उस जाति से जो समाज की गतिशीलता को जड़ किए हुए था। भारतीय आधुनिकता की राह इस जड़ता से लड़कर निकलनी थी। इसलिए भारतीय आधुनिकता की अवधारणा पर विचार करते हुए इस बात को ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि यूरोपीय आधुनिकता के बरक्स भाषागत संदर्भों में एक विपरीत स्थित यहां देखने को मिलती है। यूरोप में ग्रीक लैटिन आधारभूमि हैं। यहां संस्कृत अवरोधक है। वह महज भाषा न होकर व्यवस्था का पर्याय हो गई है, जिससे लड़कर आधुनिकता की राह निकली है। पंद्रहवीं सोलहवीं शती में 'प्राचीन ग्रंथों' के पुनर्पाठ का जो सिलसिला पुनर्जागरणकालीन यूरोप में देखने को मिलता है, उसने पुनर्जागरण काल में यूरोप में विज्ञान के विकास का मार्ग प्रशस्त किया था। इसके उलट मध्यकालीन भारत में भाषा से लेकर अंतर्वस्तु तक प्राचीन शास्त्रीयता को उतार फेंकने का एक आग्रह लोकचेतना में देखने को मिलता है। उत्तर मध्य काल या रीति काल में संस्कृत के काव्यशास्त्र की जिस परंपरा का विकास 'लक्षण ग्रंथों' के रूप में होता है उसे स्वयं हिंदी साहित्य के इतिहास में हीनता के साथ याद किया गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल से लेकर हजारीप्रसाद द्विवेदी तक इस मामले में एकमत हैं। रामविलास शर्मा भी रीतिकाल को एक 'ट्रेजेडी' मानते हैं।)

पुनर्जागरण काल के आरंभ में रचे गए देशी भाषाओं के साहित्य में चर्च का मुखर विरोध देखने को नहीं मिलता है बल्कि एक जनपक्षधरता को उभरता हुआ पाते हैं। सवाल जनहित या मानवाधिकारों के अंतर्गत उठाये जाते थे और चर्च जिस अनुपात में जनविरोधी या मानवाधिकारों का हनन करने वाला था, ये रचनाएं परोक्ष रूप से लिखी जाने के बावजूद उसी अनुपात में उसका प्रत्यक्ष विरोध करती आभासित होती थीं। जैसे 'दांते की प्रारंभिक कृतियों में जहां चर्च और ईसाई धर्म के प्रति श्रद्धा की भावना है, वहां पोप और पादरियों के प्रति उस समय उभरती हुई निंदा की भावना को व्यक्त किया गया है।'¹⁹ यह चर्च की पूरी सत्ता के सुसंगत विरोध से ज्यादा स्थानीय पादरियों की निरंकुशता और अमर्यादित आचरणों की निंदा थी। इसे शोषितों के द्वारा की गई शासकों की आलोचना के तौर पर देखा जा सकता है। 'उस समय चूंकि समाज में मोटे तौर पर दो तबके मौजूद थे शासक और शासित, मालिक और नौकर, अतः नैतिकता के दो भिन्न मापदंड, दो भिन्न अवस्थाएं थीं—एक शक्तिशाली के लिए और दूसरा शक्तिहीन के लिए। मैकियावेली की भी महत्ता इस बात में है कि उसने लोगों को इस द्वैध के बारे में जागरूक बनाया। साथ ही वह पहला व्यक्ति है जो राज्य के मामलों को निजी जीवन से अलग करके देखता है तथा यह तर्क पेश करता है कि भाईचारे और सच्चाई के ईसाइयत के नैतिक सिद्धांत राज्य और राजा के ऊपर बंधनकारी नहीं है। राजनीति में सुविधाभोगिता और उपयोगिता मैकियावेली ने प्रविष्ट नहीं कराई थी। उसने सिर्फ यह किया था कि इस पहलू का अधिक वैज्ञानिक ढंग से परीक्षण किया था।'²⁰ फिर वे चाहे अंग्रेजी पुनर्जागरण के सर टॉमस मूर (1478-1535) हों या डच मूल के इरास्मस (1469-1536) एक दायरे में रहते हुए इन्होंने भी कमोवेश ऐसी ही भूमिका अपनायी थी। टामस मूर ने अपनी किताब 'यूटोपिया' में 'मूलतः प्लेटो की 'रिपब्लिक' की तरह एक पैटर्न प्रस्तुत करना चाहा था जिसे पढ़कर आप स्वयं एक आदर्श देश की कल्पना कर लें।'²¹ 'यूटोपिया में तत्कालीन समाज की राजनीतिक एवं सामाजिक बुराइयों की आलोचना है। मूर ने ईश्वर, चर्च और धर्म के आगे कभी प्रश्नचिह्न लगाने का काम नहीं किया। वास्तविकता यह है कि उसके द्वारा लगातार राजा को चर्च का धार्मिक नेता मानने से इनकार करने का ही यह परिणाम था कि उसे अपनी जान गंवानी पड़ी। सन् 1534 में उस पर देशद्रोह का आरोप लगाकर प्राणदंड दे दिया गया।'²² इरास्मस की भी स्थिति मूर से अलहदा नहीं है। दिलचस्प बात यह है कि इरास्मस ने अपनी किताब 'प्रेज

ऑव फॉली' (मूर्खता की प्रशंसा) मूर के घर पर रहकर लिखी थी। जिसमें उन्होंने व्यंग्यपूर्ण शैली में कहा था कि यह दुनिया केवल मूर्ख चलाते हैं। इसमें उन्होंने कवियों, लेखकों, वकीलों, वैज्ञानिकों, विशिष्टों, और पादरियों पर व्यंग्य कसा कि 'पादरी मनुष्यों को जैसा आचरण करने की सलाह देते हैं वैसा आचरण खुद करने लगे तो उनकी जिंदगी हराम हो जाए।' 'किसी भी अन्य व्यक्ति की तुलना में इरास्मस में एक आलोचनात्मक रुझान के बहुत तीव्रता से दर्शन होते हैं, फिर भी इरास्मस ने उभरती हुई पूंजीवादी आत्मचेतना के साथ परंपरागत ईसाई अवधारणाओं के संबंध जोड़ने की जरूरत महसूस की। वे अतिरिक्त क्रांतिकारी हुए बिना ही सुधारवादी थे। उनमें मसीही धर्मांडंबर और धर्मनिष्ठा का समन्वय दिखाई देता है। कैथोलिक विश्वासों में उनकी आस्था के लिए प्रोटेस्टैंट सुधार का शुरु होना उनके लिए व्यक्तिगत आघात था।'²³

पुनर्जागरण से जो तार्किक चेतना उपजी थी उसके बाद धर्मसुधार की मांगें उसकी स्वाभाविक परिणति ही कही जाएंगी। चर्च की सत्ता जिस कदर उस समय के यूरोपीय जीवन पर प्रभावी थी उससे स्वयं चर्च की सत्ता से लेकर उसके धार्मिक दावों का प्रश्नों के घेरे में आना स्वाभाविक था। चर्च की सत्ता को चुनौती देने के कारण ही एक स्तर पर मार्टिन लूथर ज्यादा संगत तरीके से आधुनिक लगता है। उसकी बुनियादी वजह यह है कि वह धार्मिक रूढ़ियों, आडंबरों, अंधविश्वासों के प्रति अपना व्यवस्थित विरोध जगजाहिर करता है। उसने चर्च की अतार्किक सत्ता का मुखर विरोध किया था। पापमुक्ति के नाम पर बेचे जाने वाले प्रार्थनापत्रों (इंडल्जेन्स) को निरा पाखंड बताते हुए उसे चर्च से वापस लेने की मांग की थी। प्रार्थनापत्रों की बिक्री रोमन चर्च के आय की 'इस्टेब्लिश्ड प्रैक्टिस' थी, जिसपर लूथर ने गहरा आघात किया था। मार्टिन लूथर को मूर्तिभंजक (आइक्नोक्लास्ट) भी कहा जाता है। एक ओर वह मूर्तिपूजा का विरोधी था जो पुनर्जागरणकालीन कला के विकास का अवरोधक था। वहीं दूसरी ओर उसने जर्मन भाषा में बाइबिल का अनुवाद कर आधुनिक जर्मन गद्य की नींव भी डाली थी। उसके इस अनुवाद से बाइबिल के यूरोप की अन्य भाषाओं में अनुवाद किए जाने की मांग बढ़ गई थी। इसकी बुनियादी वजह यह थी कि बाइबिल जिस भाषा में लिखी गई थी, आमजन उसे पूरी तरह से समझ पाने में असमर्थ थे और इस कारण वे चर्च या पादरियों के द्वारा की गई बाइबिल की व्याख्या को मानने को बाध्य थे।

धर्मसुधार ने ऐसी कई जरूरी मांगें पहली बार सामने रखीं। कला भी इन मांगों की सूची में शामिल थी। 'धर्मसुधार आंदोलन का यूरोप के अनेक भागों में कला पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा। लूथर जैसे मूर्तिपूजा का विरोधी था, वैसे ही वह चर्च की कला का भी कटु आलोचक था। 1514 में ज्विंगली ने ज्यूरिख नगर कौंसिल पर दबाव डाला कि वह सभी उपासनाघरों और चर्चों की तमाम कलात्मक वस्तुओं को हटा दे, ताकि बाद में उन्हें नष्ट किया जा सके। काल्विन ने कभी कला को सुख और प्रसन्नता देने के माध्यम के रूप में नहीं माना, कला के प्रति आक्रामक रूख सांसारिक संस्कृति के प्रति आम आक्रामकता का ही एक हिस्सा था। इन वास्तविकताओं का सामना करते हुए धर्मसुधार आंदोलन के विरोधी आंदोलन ने कला का इस्तेमाल इस दकियानूसी रुझान के विरुद्ध एक हथियार के रूप में किया—एक ऐसे माध्यम के रूप में जिससे लोकमत को प्रभावित किया जा सके तथा वह भी इस रूप में जैसा कि इससे से पहले कभी देखा नहीं गया था। त्रांते कौंसिल (1545) को बुलाने का अर्थ था कला के साथ चर्च के संबंधों में उदारतावाद का अंत। इसके बाद से कला न केवल चर्च के उद्देश्यों के लिए ही रह गई, बल्कि उसे धार्मिक निरीक्षण के अधीन भी कर दिया गया। इस परिस्थिति में यह एकदम स्वाभाविक था कि कला की भूमिका संबंधी संपूर्ण अवधारणा में जबर्दस्त तब्दीली आए। इस युग के सबसे महान सिद्धांतकार जियो पाओलो लोमाजो

यह विश्वास करते थे कि चित्रकार को धार्मिक विषयवस्तु का चित्रांकन करते समय धर्मवेत्ताओं की सलाह अवश्य लेनी चाहिए।²⁴ बाद में धर्मसुधार आंदोलन से चर्च की सत्ता को होनेवाले नुकसान की भरपाई के लिए जब प्रति धर्मसुधार आंदोलन की शुरुआत हुई तो पुनः कला का क्षेत्र उससे अप्रभावित हुए बगैर नहीं रह सका। इस तरह धर्मसुधार और प्रति धर्मसुधार आंदोलनों से बाद के दिनों में कला, साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र अछूते नहीं रह सके। फिलिप सिडनी ने कविता को शुद्धतावादियों से बचाने के लिए 'द डिफेंस ऑव पोयट्री' जैसा निबंध इसी समय लिखा था। लेकिन यह प्रक्रिया दोहरी थी। सिर्फ प्रभाव ग्रहण ही नहीं प्रभावित करने की प्रक्रिया भी साथ साथ चल रही थी। बाद के दिनों में धर्म को अपदस्थ करने का काम पूंजी ने किया। पूंजीवाद एक ऐसी सर्वग्रासी व्यवस्था बनकर उभरा जिससे कुछ भी अछूता नहीं रह सका। उत्पादन की पद्धतियों में आए बदलावों ने पूरे सामाजिक संबंधों को बदलने में निर्णायक भूमिका निभाई। कह सकते हैं कि पुनर्जागरणकालीन समाज में ही आने वाले समय की औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी नीतियों के बीज छिपे थे। पुनर्जागरणकालीन समाज में ही वैज्ञानिक आविष्कारों और खोजों की अनवरत श्रृंखला की गुत्थी छिपी थी, जिसने आगे चलकर पूंजीवादी विकास का मार्ग प्रशस्त करने में ऐतिहासिक भूमिका अदा की। और इसी वैज्ञानिक क्रांति ने पश्चिम में ज्ञानोदय की प्रक्रिया को संपन्न कराया।

पुनर्जागरण के बाद आधुनिकता के अगले पड़ाव के रूप में हम ज्ञानोदय को पाते हैं। पुनर्जागरण काल में यदि धर्म को अपदस्थ कर मानव उसके केंद्र में आया था तो 'ज्ञानोदय काल में उसी 'मानव के स्वभाव का अध्ययन' एक केंद्रीय प्रवृत्ति बन कर उभरती है। इस काल में मानव स्वभाव पर इतना बल दिये जाने की प्रमुख वजह मानव को सभी विषयों या अनुशासनों का आधार (केंद्र) मानना था। विद्वानों ने इसके लिए एक ओर मानव मस्तिष्क की क्रियाओं का पर्यवेक्षण आरंभ किया तो दूसरी ओर उसके आचरण से उसका मिलान करना भी आरंभ किया। 'स्त्री पुरुष के इस स्वभावपरक अध्ययन पर दिये जाने वाले जोर ने 'स्व' से जुड़े दार्शनिक प्रश्नों को जन्म दिया और मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र जैसे समाज विज्ञान के विषयों के अध्ययन की परिपाटी का विधिवत सूत्रपात कराया। इन विषयों के अध्ययन से उपजे निष्कर्षों की तार्किकता ने 'ओल्ड टेस्टामेंट' पर आधारित एक 'पवित्र' इतिहास के स्थान पर 'सेकुलर' इतिहास की स्थापना पर बल दिया। ईसाइयत पर आधारित समाज की अवैज्ञानिकता को पर्यवेक्षण और प्रयोग ने गलत साबित किया।'²⁵

'यूरोपीय ज्ञानोदय की जड़ें सत्रहवीं शताब्दी के उन बौद्धिक उपलब्धियों में देखी जाती हैं जो आइजक न्यूटन की वैज्ञानिक खोजों, देकार्त के 'रेशनलिज्म', फ्रांसिस बेकन और जॉन लॉक के अनुभववाद से जुड़ती हैं। ज्ञानोदय काल की यह बुनियादी मान्यता थी कि मनुष्य अपनी अज्ञानता, असहिष्णुता और पूर्वाग्रहों के अंधकार से तार्किकता की सहायता से मुक्त होकर एक बेहतर जीवन की ओर अग्रसर हो सकता है। ज्ञानोदय काल ने परंपरा के लिए परंपरा पर जोर दिए जाने की निर्भरता का प्रतिवाद करते हुए एक आदर्श राज्य और सार्वभौमिक सिद्धांत के निर्माण के प्रगतिकामी 'विजन' की परिकल्पना सामने रखी। ब्रिटेन में यह परंपरा बेकन और लॉक से होती हुई अठारहवीं शताब्दी में विलियम गॉडविन तक आती है, फ्रांस में देकार्त, वाल्टेयर, रूसो, दिदेरो से होती हुई इनसाइक्लोपीडिया के अन्य संयोजकों तक आती है, जर्मनी में लाइबनिज से कांट तक तो अमेरिका में बेंजामिन फ्रेंकलिन, थामस जैफरसन, टॉम पैन आदि ज्ञानोदयकालीन मतों से गहरे प्रभावित देखे जा सकते हैं। ज्ञानोदयकालीन मतों और सिद्धांतों ने अमेरिकी क्रांति (1775-81) को वैचारिक आधार प्रदान करने का काम किया था और कुछ वर्षों बाद फ्रांसीसी क्रांति (1789)

को।²⁶

फिलहाल यूरोपीय ज्ञानोदय की बात देकार्त (1596-1650) से आरंभ की जा रही है। देकार्त से बात आरंभ करने का मतलब यह नहीं है कि यूरोपीय ज्ञानोदय की शुरुआत देकार्त से होती है। बल्कि देकार्त एक सुविधाजनक बिंदु प्रतीत होते हैं जहां से आधुनिकता के रूपग्रहण की प्रक्रिया एक निश्चित दिशा की ओर बढ़ती दीखती है। यों तो बुद्धिवादी चिंतन के सूत्र देकार्त से पहले भी मिलते हैं लेकिन बुद्धिवादी दर्शन की शुरुआत देकार्त के साथ होती है। दूसरी बात यह कि आधुनिकता की अवधारणा से जुड़ी अन्य मूलभूत शर्तें जैसे जातीय गठन की प्रक्रिया, व्यापारिक पूंजीवाद का विकास, आदि का मेल संगत तौर पर देकार्त के समय में देखने को मिलता है। वे देकार्त ही थे, जिन्होंने विज्ञान की नई कार्यसूची की प्रस्तावना निर्मित करते हुए 'मैं सोचता हूँ, इसीलिए मैं हूँ' (आई थिंक देयरफोर आई एम) का लोकप्रिय सिद्धांत दिया। देकार्त ने अपने दर्शन से सिद्ध किया कि मनुष्य की मुक्ति 'प्रकृति पर स्वामित्व' में निहित है। आधुनिक विज्ञान इसी काल की उपलब्धि है। इस काल में बुद्धिवादी चिंतन और दर्शन के विकास के साथ मध्ययुगीन धार्मिक अंधविश्वासों की पहचान और परख तर्क की कसौटी पर की जाने लगी। तार्किक चिंतन ने वैचारिकता को बढ़ावा दिया और फिर उन विचारों की पुष्टि के लिए विज्ञान आगे आया।

आधुनिकता के पहले चरण की एक मुख्य सीमा यह रही थी कि 'मशीनों और औद्योगिक उत्पादन से पुनर्जागरण की आधुनिकता का कोई संबंध नहीं था। सामाजिक, आर्थिक, भाषिक परिवर्तन के बावजूद, पुराना ढांचा, पुरानी रूढ़ियां अभी निःशेष नहीं हुई थीं।'²⁷ इन पुराने ढांचों और पुरानी रूढ़ियों पर चोट आधुनिकता के दूसरे चरण अर्थात् ज्ञानोदय काल में देखने को मिलती है। इतालवी पुनर्जागरण के बाद जर्मन धर्मसुधार आंदोलन से होता हुआ यह कारवां फ्रांसीसी राज्य क्रांति और इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति के ज्ञानोदयकालीन दौर में दाखिल होता है। 'अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति और फ्रांस की राज्यक्रांति ने पुराने ढांचे को जोरदार धक्का दिया। यूरोप का रोमांटिक युग औद्योगिक पूंजीवाद का युग है। उत्पादन प्रक्रिया में मशीन के प्रयोग से उत्पादन की तकनीक और उत्पादन संबंधों में तब्दीली आई। मनुष्य के साथ मशीन भी उत्पादन श्रम करने लगी। मनुष्य ने विज्ञान को बढ़ावा दिया। विज्ञान से टेक्नोलॉजी विकसित हुई। टेक्नोलॉजी से मशीन का निर्माण हुआ। मनुष्य को अपनी बौद्धिक क्षमता पर भरोसा बढ़ा। फ्रांसीसी क्रांति ने मनुष्यों की आपसी समानता में बाधक धारणाओं को लगभग समाप्त कर दिया। एक अच्छा नियम सबके लिए अच्छा हो फ्रांसीसी क्रांति का नारा था। फ्रांस की राजनीतिक सत्ता सामंत वर्ग के हाथ से निकलकर बर्जुआ वर्ग के हाथ में आ गई।'²⁸ यह आधुनिकता का दूसरा चरण था। 'पहले चरण में यूरोप अंधकार युग से बाहर आ रहा था और दूसरे चरण में विश्वविजेता बनकर औपनिवेशिक साम्राज्य स्थापित कर रहा था।'²⁹

देकार्त से जिस बुद्धिवादी दर्शन (रैशनल फिलॉसफी) की शुरुआत हुई थी, उसका विकास और विस्तार ब्रिटिश अनुभववादियों (एंपीरीसिस्ट्स) ने किया। यह दूसरी धारा थी, 'यह धारा प्राकृतिक विज्ञान से और विशेषतः उसके वस्तुनिष्ठ स्वरूप और प्रायोगिक प्रणाली से प्रभावित थी। जॉन लॉक (1632-1704) का ब्रिटिश अनुभववादियों में महत्त्वपूर्ण स्थान था। लॉक अपने आप को न्यूटन का अधीनस्थ श्रमिक विचारक कहा करते थे।'³⁰ लॉक द्वारा निरूपित ज्ञान का अनुभववादी सिद्धांत, अंतर्जात विचार जैसी किसी चीज को मान्यता देने की बजाय समस्त ज्ञानप्राप्ति का मूल आधार इंद्रियानुभव को बताता था। 'जॉन लॉक ने सत्रहवीं शताब्दी के अंत में 'रैशनलिज्म पर यह बुनियादी आरोप लगाया कि 'ज्ञान का प्राथमिक स्रोत हमारी पांच इंद्रियां हैं। न कि बुद्धि।' यही सिद्धांत सामान्यतः 'अनुभववाद' के नाम से जाना जाता है। लॉक के

सिद्धांत को आगे बढ़ाने का काम डेविड ह्यूम ने किया। लॉक के तार्किकतावाद की आलोचना का समर्थन ह्यूम ने यह कहते हुए किया कि 'रेशनलिज्म' मानवीय समझ के निर्माण में इंद्रियों की भूमिका को कम कर के आंकता है।³¹ इसके विपरीत इसी दौर में फ्रांसीसी विचारकों ने अनुभव के स्थान पर बुद्धिवाद को प्रधानता दी, कहते हैं 'फ्रांस के इस युग (1715-1760) में एक नये देवता, बुद्धि देवता की प्रतिष्ठा हुई।'³²

ब्रिटिश अनुभववाद और फ्रांसीसी बुद्धिवाद का संयोग कांट (1724-1804) के यहां देखने को मिलता है। 'कांट ने ज्ञानोदयकालीन विचारकों जैसे वाल्लेयर, रूसो और मोंतेस्क्यू को प्रभावित किया था।'³³ कांट ने अनुभववाद के संदर्भ में अपनी किताब 'क्रिटीक ऑव प्योर रिजन' (1781) में कहा कि 'ज्ञानप्राप्ति का आधार केवल अनुभव नहीं हो सकता। विश्व के बारे में हमारा ज्ञान केवल ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त बिखरे हुए संकेतों पर आधारित होता है जिसे हम तर्कसंगत रूप से समन्वित करके सार्थक अनुभव का आकार देते हैं। इससे स्पष्ट है कि हम ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'व्यावहारिक विवेक' का सहारा लेते हैं। मात्र इंद्रियानुभव के आधार पर विश्व के यथार्थ रूप का ज्ञान प्राप्त करना कठिन है।'

कांट ने 'क्रिटीक ऑव प्योर रिजन' में आधुनिकता को तर्क का आधार प्रदान किया। 1784 ई. में लिखे अपने प्रसिद्ध निबंध 'ज्ञानोदय क्या है?' में कांट ने ज्ञानोदय का मतलब बताया, 'मनुष्य का स्व अर्जित अपरिपक्वता (अवयस्कता) से उबर जाना। अपरिपक्वता का अर्थ है बिना किसी दूसरे के निर्देश के स्वयं अपनी समझ के उपयोग में अक्षमता।'³⁴ मनुष्य उस अपरिपक्वता से उबर सकता है, अपने विवेक के इस्तेमाल से, स्व अर्जित ज्ञान के उपयोग से। 'इस तरह ज्ञानोदय साहस का पर्याय है क्योंकि वह स्व अर्जित ज्ञान से परिचालित होता है।...कांट के ज्ञानोदय में ज्ञान अनुभव से सिद्ध होता है। कांट के हिसाब से हर चीज ज्ञान का निर्माण है, यदि वह अपनी सिद्धि अपने तर्क से स्वयं करती है।...कांट ने देकार्त के चक्करदार अनुभववाद को भी प्रश्नांकित किया। उन्होंने कहा कि एक क्षणिक मानसिक अवस्था तब तक 'मानसिक' नहीं है जब तक कि व्यक्ति उसके होने के बारे में सचेत नहीं है। इस तरह अनुभव काफी नहीं है (वह पशुओं को भी होता है), अनुभववाद का सचेत ज्ञान भी जरूरी है। इससे देकार्त के चक्करदार अनुभववाद का जादू टूटा।'³⁵

कांट के चिंतन में स्वयंसिद्ध तर्क, ज्ञान का निर्माण करता है। प्रबोधन काल में तर्कबुद्धि विज्ञानबुद्धि (साइंटिफिक रीजन) से संचालित होने लगी थी। हीगेल ने अपने निबंध 'बीलिफ एंड नॉलेज' में कांट को सुधारते हुए कहा है कि 'ज्ञान और तर्क की विजययात्रा उस आस्था के विरुद्ध यात्रा है, जिसे उसने 'आस्था' का 'विश्वास' समझा। यह विजय यही सिद्ध करती है कि 'तर्क' ने स्वयं को 'अतर्क्य' बना डाला।'³⁶ सवाल उठता है कि तर्क ने स्वयं को अतर्क्य कैसे बना डाला? हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि 'आधुनिकता की संरचना में और विशेषकर प्रबोधन की परियोजना में आत्मप्रश्नेयता (रिफ्लेक्सिविटी) का गुण गहरे रचा बसा है। विज्ञान और तर्कबुद्धि दोनों की प्रकृति अपने आप को हमेशा कटघरे में खड़ा रखने की है। विज्ञान अपने को गलत सिद्ध करने के प्रयास में आगे बढ़ता है और अधिक व्यापक और अधिक गहरे सिद्धांतों तक पहुंचता है। तर्कबुद्धि भी अपने आप से सवाल पूछती रहती है और इस प्रक्रिया में अपना परिष्कार करती जाती है।'³⁷ तो तर्क के इस निरंतर परिष्कार की प्रक्रिया में तर्क का अतर्क में बदलते चले जाना स्वाभाविक है।

हीगेल (1770-1831) ने इतिहास के दर्शन विशेषतः चिंतन के इतिहास को विकसित किया। इस क्रम में उन्होंने विचार को प्रमुखता देते हुए तीन चरणों की ओर संकेत किया। प्रथम चरण, जो विचार की प्रारंभिक प्रस्थापना है, को वाद (थीसिस) कहा। प्रारंभिक प्रस्थापना की कमियों को दूर करने के लिए प्रति स्थापना के दूसरे चरण को प्रतिवाद (एंटीथीसिस) की संज्ञा दी और तीसरे

चरण में आरंभिक दो चरणों के तर्कसम्मत मत को मिला दिया, इसे संवाद (सिनथीसिस) कहा गया। चिंतन के इतिहास की इस प्रक्रिया को हीगेल ने सामाजिक परिवर्तन या विकास की प्रक्रिया से जोड़ दिया। हीगेल के चिंतन में दो अवधारणाएं प्रमुख हैं—द्वंद्वत्मकता और आदर्शवाद। द्वंद्वत्मकता का परिचय हो गया। रही बात आदर्शवाद की, तो 'हीगेल का विश्वास एक ऐसे निरपेक्ष विचार (एबसोल्यूट आइडिया), एक ऐसी विश्व चेतना में है जो निर्विकल्प रूप से प्रकृति और मानव को उठाये इसलिए वे प्रकृति को समझने के लिए दिखने वाली भिन्नता में निहित आध्यात्मिक नियमों को समझने पर बल देते हैं, उन नियमों को जो प्रकृति को व्यवस्था और संदर्भ दें और विश्व का एकीकरण एक इकाई में कर दें।'³⁸

'हीगेल के शिष्य लुडविग फायरबाख (1804-1872) ने इस बात को सामने रखा कि स्वतंत्रता केवल तभी आ सकती है जब ऐतिहासिक चेतना के केंद्र में मनुष्य स्वयं को ईश्वर के स्थान पर रखे, वे ऐसा कहकर ऐतिहासिक विकास के हीगेलियन आख्यान का ही समर्थन कर रहे थे।'³⁹ अंतर इतना रहा कि फायरबाख ने हीगेल के आदर्शवादी दर्शन के स्थान पर भौतिकवादी दर्शन को प्राथमिकता देते हुए विचारों के स्थान पर मानव जीवन की भौतिक वास्तविकता पर बल दिया और कार्ल मार्क्स (1818-1883) ने हीगेल के मनोजगत संबंधी नियमों के स्थान पर भौतिक यथार्थ (मैटर) की बात की। 'कार्ल मार्क्स ने भी मानव विकास की कथा में धार्मिक आयाम के स्थान पर सामाजिक आर्थिक कारकों के कार्य कारण संबंध को रखा जो वैज्ञानिक विधान पर आधारित थे।'⁴⁰ कार्ल मार्क्स ने हीगेल से 'द्वंद्वत्मकता' और फायरबाख से 'भौतिकवाद' की अवधारणा ग्रहण कर 'द्वंद्वत्मक भौतिकवाद' के सिद्धांत की प्रस्तावना की।

कार्ल मार्क्स ने समाज की आर्थिक संरचना और सामाजिक संस्थाओं (धर्म, कानून, परिवार, कला) के मध्य संबंधों की धारणा पर विचार करते हुए व्यक्ति को ही उसके जीवन का भाग्यनिर्माता बतलाया। मार्क्स के चिंतन ने जहां मनुष्य की नियति संबंधी धारणा पर प्रश्नचिह्न लगाने का काम किया था, वहीं चार्ल्स डार्विन के 'विकासवाद के सिद्धांत' (1859) ने ईश्वर से उसका देवत्व छीन लिया और आगे चलकर नीत्शे (1844-1900) ने तो ईश्वर की मृत्यु की घोषणा कर दी। डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत को समाज के विकासवादी सिद्धांत से जोड़कर देखने का कार्य हर्बर्ट स्पेंसर (1820-1903) ने किया और फ्रायड (1856-1939) ने 'काम भावना' को मानव की मूल वृत्ति बताकर हलचल मचा दी।

यहां इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि 'आधुनिकता जिस समाज को बनाती है, उसमें तब तक वह वैधता नहीं पा सकती जब तक कि वह अपने औचित्य और अद्वितीयता का दर्शन न बना ले। यूरोप में वह दर्शन कांट से शुरू होता है और हीगेल पर खत्म होता है। मार्क्स इस आधुनिकता के विखंडन के कुछ बिंदु भर देखते हैं।'⁴¹ इसका तात्पर्य यह नहीं कि आधुनिकता को लेकर बहसें मार्क्स तक पहुंचकर समाप्त हो जाती हैं, बहसें आज तक जारी हैं लेकिन उसकी ऐतिहासिक परिस्थितियां, संदर्भ और परिप्रेक्ष्य बदल चुके हैं।

बेकन, देकार्त, हाब्स, लॉक, मोंतेस्क्यू, वाल्टेयर, रूसो, ह्यूम, कांट, हीगेल, फायरबाख, मार्क्स, डार्विन, स्पेंसर और फ्रायड आदि के चिंतन से यूरोप में जो आधुनिकता की सैद्धांतिकी निर्मित होती है, उसकी सीमा और संभावनाओं की पड़ताल करने के क्रम में आधुनिकता एक विमर्श का रूप धारण कर लेती है। इस लिहाज से देखें तो आधुनिकता ही वह संकल्पना है, जहां से कायदन 'डिस्कोर्स' की शुरुआत होती है। इस आधुनिकता संबंधी विमर्श से पूर्ववर्ती दार्शनिकों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक विचारों को संशोधित परिवर्धित करने का दौर आरंभ होता है। परिणामतः कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाएं और विचारधाराएं भी उभरकर सामने आती हैं। इनकी भी

थोड़ी चर्चा कर लेनी आवश्यक है, जिससे पूर्ववर्ती और परवर्ती आधुनिकता के अंतर को समझा जा सके।

इस क्रम में जहां बौदलेयर ने बुर्जुआ वर्ग द्वारा लाई गई आधुनिकता और ज्ञानोदय पर सबसे पहली टीका करते हुए उसे प्रश्नांकित किया था वहीं मैक्स वेबर (1864-1920) ने तो 'आधुनिक ब्रह्मांड' को एक 'लौह पिंजरा' तक कहा, जहां मनुष्य अपने किए की कैद में ही जीने लगता है। ज्ञानोदय की विरासत के तौर पर मैक्स वेबर ने 'उद्देश्य को साधनेवाली तार्किकता' (Zweckrationalitat) की अवधारणा प्रस्तुत की और इसकी सहायता से प्रशासनतंत्र या नौकरशाही का विश्लेषण किया। अपने चिंतन में 'मैक्स वेबर ने जहां तक हो सका, विज्ञान की उन्नति, सार्वभौमिक स्वच्छंद चेतना और तार्किकता के मध्य मजबूत संबंधों की अनिवार्यता को स्वीकार किया और ज्ञानोदय की विरासत के रूप में 'उद्देश्य को साधनेवाली तार्किकता' को लेकर बताया कि सार्वभौमिक मुक्ति के बोध को मजबूती प्रदान करने के स्थान पर 'उद्देश्य को साधनेवाली तार्किकता' ने केवल एक नौकरशाही प्रशासनतंत्र के निर्माण में मदद की, जिससे बचने की कोई गुंजाइश नहीं थी।'⁴² वेबर का आशय था कि औद्योगिक पूंजीवाद में जैसे जैसे लागत, लाभ, कुशलता की सामाजिक महत्ता में बढ़ोत्तरी होती है, तार्किकीकरण एक शक्तिशाली सिद्धांत के रूप में विकसित होता जाता है। परिणामस्वरूप उस लौह पिंजरे का निर्माण होता है, जिससे पलायन संभव नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो मानवीय आत्मा पर इसके दमघोंटू प्रभाव से बचना अत्यंत कठिन होता है। रिचर्ड बर्न्स्टाइन ने वेबर पर टिप्पणी करते हुए ठीक ही कहा था कि 'हमारे ऊपर जो उत्साहहीन और संयमित चेतावनी मंडरा रही है वह आधुनिकता का समाधिलेख हो सकती है।'⁴³

ज्ञानोदय काल के यूरोप और दो विश्वयुद्धों के मध्य यूरोप की ऐतिहासिक परिस्थितियों में काफी बदलाव आ चुका था। परिणामस्वरूप आधुनिकता संबंधी विमर्श भी नई दिशाओं की ओर मुड़ गया था। 'अठारहवीं सदी के ज्ञानोदय युग ने मनुष्य को एक उम्मीद दी थी कि तर्कवाद, मशीन, केंद्रीकृत राज्य व्यवस्था और वैज्ञानिक चिंतन मनुष्य की मुक्ति को संभव बनाएंगे। बीसवीं सदी तक आते आते यूरोप के विकसित औद्योगिक समाजों में इसी तर्कवाद, मशीन, राज्यसत्ता की विकराल ताकत और वैज्ञानिक विकास की कोख से तानाशाही युद्ध, नस्ली घृणा, दमन, नृशंसता और सामाजिक विभेदों का जन्म हो रहा था। मनुष्य की एक छद्म चेतना को गढ़ने के नए नए तरीके विकसित हो रहे थे।...प्रथम विश्वयुद्ध के बाद का यह वह समय था जब एक 'निहिलिज्म' ने यूरोपीय बौद्धिकों को घेर लिया था। मार्क्सवादी बुद्धिजीवियों के भी अपने गहरे असमंजस थे। न उन्हें स्टालिन की विशाल नौकरशाही वाला सोवियत मार्क्सवाद आश्वस्त करता था और न विकसित औद्योगिक समाजों में पूंजीवाद के संकट के भीतर से सर्वहारा की कोई क्रांतिकारी चेतना फूटती नजर आ रही थी। मार्क्सवादी सिद्धांत हमेशा से कहते आए थे कि पूंजीवाद एक आंतरिक संकट में घिर जाएगा और उसकी कोख से साम्यवाद का जन्म होगा, पर बीसवीं सदी के यूरोप में पूंजीवाद के कोख से तो फासीवाद का जन्म हो रहा था। यूरोप के इन मार्क्सवादियों ने देखा कि विकसित औद्योगिक समाजों में सर्वहारा में क्रांति की मानसिकता विकसित नहीं हो पाती। वहां संस्कृति, समाज, व्यक्ति, जीवन मूल्य और विवेक की संभावनाएं धूमिल हो जाती हैं। यह यूरोपीय मार्क्सवादियों के लिए संशय, मोहभंग, आत्मनिरीक्षण और नई दिशाओं के संधान का समय था। मार्क्सवादियों का ऐसा समूह 1920 के आसपास फ्रैंकफर्ट में एकत्रित हुआ और उसने 'इंस्टीट्यूट ऑव सोशल साइंसेज' की स्थापना की, जिसे 'फ्रैंकफर्ट स्कूल' के नाम से भी जाना जाता है।... होर्खाइमर, एडोर्नो, मार्क्यूज और वाल्टर बेंजामिन जैसे चिंतकों ने फासीवाद के उभार के जिम्मेदार कारणों का अध्ययन किया। अध्ययन के इन तरीकों को 'क्रिटीकल थ्योरी' के नाम से जाना जाता

है।... 'फ्रैंकफ़र्ट स्कूल' केवल परंपरागत मार्क्सवादी अवधारणाओं में मौजूद अपर्याप्तताओं को ही नहीं देख रहा था, वह फासीवाद का विश्लेषण करते हुए 18वीं सदी के ज्ञानोदय युग से चले आ रहे उन बहुत सारे विश्वासों पर भी उंगली उठा रहा था जिन्होंने तर्क, बुद्धि, विज्ञान, तकनीक, स्वतंत्रता और विकासवाद की अवधारणाओं के तहत आधुनिक सर्वसत्तावादी निरंकुश समाजों को जन्म दिया था। 'फ्रैंकफ़र्ट स्कूल' का यह 'रेडिकल चिंतन' था। इन विचारकों ने फासीवाद के बीज ज्ञानोदय युग की विरासत में देखे, जहां केवल प्राकृतिक विज्ञानों के विकास और प्रत्यक्षवाद को ही मनुष्य की मुक्ति का साधन मान लिया गया था। ज्ञानोदय युग इस संसार के रहस्यों को अनावृत करने की आकांक्षाओं और संभावनाओं से जन्मा था। विज्ञान प्रकृति पर काबू पाना चाहता था। अपने दो सौ वर्षों के इस विजय अभियान में वह निरंतर एकाधिकारवाद की ओर बढ़ता गया और बीसवीं सदी में उसने सर्वसत्तावादी निरंकुश समाजों को जन्म दिया। ज्ञानोदय युग का यह अंतर्विरोध 'फ्रैंकफ़र्ट स्कूल' के राजनीतिक दर्शन का प्रस्थान बिंदु था।⁴⁴

मार्टिन हाइडेगर (1889-1913) के आरंभिक दौर के लेखन में फासीवादी रुझान देखने को मिलता है। 'हाइडेगर के, कैरियर के शुरुआती दौर में नाजीवाद को लेकर उसके खुद के भ्रम थे, लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के तत्काल प्रभाव से उसने ज्ञानोदयकालीन तर्क और उसके विकास की आलोचना की।'⁴⁵ आधुनिकता की सबसे प्रखर आलोचना 'थियोडोर एडोर्नो (1889-1968) और मैक्स होर्खाइमर (1895-1973) के 'डायलेक्टिक ऑव इनलाइटेनमेंट' में देखने को मिलती है। 'डायलेक्टिक ऑव इनलाइटेनमेंट' की पहली पंक्ति ही इस विवादास्पद बहस के साथ खुलती है: 'प्रगतिशील विचार के अपने व्यापक अर्थों में, ज्ञानोदय का लक्ष्य हमेशा से मानव को भयमुक्त कर उसका प्रभुत्व (श्रेष्ठता) स्थापित करना रहा है, तथापि ज्ञानोदय संपन्न पृथ्वी पर नाश फैलाकर विजयोत्सव मना रही है। उनकी पुस्तक विकास और ज्ञानोदय के बारे में उदारवाद और मार्क्सवाद की स्थापित मान्यताओं पर सवाल उठाती है और पाती है कि पूंजीवादी समाज में वस्तुतः साधक तार्किकता की अग्रगमिता को नहीं रोक पाने में और मानव स्वतंत्रता के गतिशील हास का एक दूसरे से संबंध है।'⁴⁶ मूल बात यह कि 'डायलेक्टिक ऑव इनलाइटेनमेंट' में एडोर्नो कहते हैं कि 'आधुनिकता के साथ आई तथाकथित तार्किकता ने मनुष्यों को अभी उनके मिथकीय अतीत से मुक्त नहीं किया है। प्राकृतिक दुनिया पर मनुष्य का वर्चस्व धीरे धीरे उसे सामाजिक दुनिया के नियंत्रण की ओर ले गया है। 'प्रगति' की अवधारणा एक प्रकार की पाशविकता में बदल गई है। विज्ञान और टेक्नोलॉजी अमानवीकरण की प्रक्रिया के औजार बन गए हैं। फासीवाद के उदय की परिस्थितियों में एडोर्नो ने संस्कृति के इसी आततायी रूप को टेक्नोलॉजी और पूंजी के विकास से जोड़कर देखा था।'⁴⁷

'1920 ई. के आसपास यूरोप में आधुनिकता का जो रूप विकसित हो रहा था, उसका संदर्भ ज्ञानोदयकालीन नहीं रह गया था। ऐतिहासिक परिस्थितियां बदल चुकी थीं, पूंजीवाद के गर्भ से पनपा फासीवाद अपने चरम पर था, जिसकी परिणति यहूदियों को अपने यातनाशिविरो में भेजने में हुई। इसी दौर में कला साहित्य के क्षेत्र में आधुनिकतावादी कला आंदोलनों और अवांगार्ड प्रवृत्तियों का जन्म हुआ जिसकी प्रतिरोधात्मक क्षमता को 'फ्रैंकफ़र्ट स्कूल' की 'क्रिटिकल थ्योरी' ने रेखांकित किया। बीसवीं शताब्दी में विकसित होने वाले इस 'आधुनिकतावादी आधुनिकता' के ऐतिहासिक संदर्भ विश्वयुद्धों वाला परिवेश, कला साहित्य के आधुनिकतावादी आंदोलन, फासीवाद, कांस्ट्रैशन कैंप और होलोकॉस्ट साहित्य रहा। संकटबोध, अस्तित्वबोध, विडंबना, संत्रास, अजनबीपन, अलगाव या एलियनेशन, आत्मबोध, आत्म प्रश्नेयता आदि इस 'आधुनिकतावादी आधुनिकता' की विशेषताएं रहीं। ऐतिहासिक संदर्भों का ध्यान न रखने के कारण भ्रमवश ये प्रवृत्तियां हिंदी साहित्य

में भी आधुनिकता के नाम पर प्रचलित हो गई हैं।

ज्ञानोदय कालीन आधुनिकता का विकास और परिणति हिटलर के जिन यातनाशिविरों में हुई, उससे इस आधुनिकता को और 'आधुनिकतावादी परियोजना' को प्रश्नांकित किया गया। 'कंडोर्स ने अपनी पुस्तक 'स्केच फॉर ए हिस्टोरिकल पिक्चर ऑव द प्रोग्रेस ऑव ह्यूमन माइंड' (1795) में सभ्यता के स्वाभाविक विकास के आलोक में आधुनिकता को तर्क की विजय के रूप में परिभाषित किया था।⁴⁸ लेकिन नाजीवाद के उदय ने जिन नस्लवादी हत्याओं को जन्म दिया उसके बाद ज्ञानोदय कालीन आधुनिकता का विकसित रूप प्रश्नों और चुनौतियों के घेरे में आ गया। प्रख्यात इतिहासकार आलोचक 'ह्यूग थॉमस ने लिखा था कि 'आश्वित्ज' के लेखक (सर्जक) विश्व के उस देश के नागरिक थे, जहां अठारहवीं सदी में सर्वाधिक साक्षरता दर थी।...जिगमूट बॉमन ने आधुनिकतावादी परियोजना को चुनौती देते हुए कहा था कि होलोकॉस्ट सभ्यता की असफलता नहीं है बल्कि...यह तो सभ्य होने की प्रकृति और उसकी स्थिर क्षमता का स्वाभाविक परिणाम है।'⁴⁹

जर्मनी में फासीवाद के उदय ने ज्ञानोदय की प्रकृति, अर्थ, संरचना और स्वरूपगत अन्य विशेषताओं की पुनर्व्याख्या और पुनःअवलोकन का दौर ला दिया। यह अकारण नहीं कि कांट ने 'ज्ञानोदय क्या है?' नामक लेख 1784 ई. में लिखा था। उसके 200 वर्षों पश्चात 1984 ई. में मिशेल फूको (1926-1984) ठीक उसी शीर्षक से निबंध लिख रहे थे। मिशेल फूको ने, 'ज्ञानोदय क्या है?' नामक उस निबंध में, आधुनिकता को अनुभव और चिंतन के साथ साथ समकालीन यथार्थ से जुड़ने का माध्यम कहा। अपने इसी निबंध में फूको यह कह रहे थे कि 'आधुनिक युग को प्राकृआधुनिक या उत्तर आधुनिक से अलगाने से ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि पता लगाया जाए कि आधुनिकता अपने जन्म के समय से ही अपने से इतर प्रवृत्तियों के साथ किस तरह का व्यवहार करती रही है? मिशेल फूको इस तरह जागरण काल और ज्ञानोदय युग का एक निर्मम क्रिटिक तैयार करते हैं। वे आधुनिक ज्ञान विज्ञान के विकास के साथ अस्तित्व में आए समग्रता, मानकीकरण और सत्य के आधिकारिक रूपों के तमाम दावों पर सवाल उठाते हैं।'⁵⁰ फूको अपने इन तमाम अध्ययनों में इस एक केंद्रीय विचार को रखते हैं कि ज्ञानोदय युग की मूल इच्छा यह थी कि ऐसी पद्धतियां विकसित की जाएं, जिनसे हमारे समाज तर्क आधारित तरीकों और किसी नियमित व्यवस्था के अंतर्गत स्वचालित ढंग से नियंत्रित होते रहें। वे कहते हैं कि 19वीं सदी में जब विभिन्न किस्म के आधुनिक मानव विज्ञानों का विकास हो रहा था तो उनकी पदावली जो इतनी 'वस्तुपरक' और 'निर्दोष' दिखाई देती है, दरअसल शक्ति संरचना के विकास को दर्शाती है।'⁵¹

आधुनिकता की 'व्यक्त अपूर्णता' के स्थान पर 'अव्यक्त पूर्णता' पर बल देते हुए जुर्गेन हैबरमास (1929) ने आधुनिकता के प्रति आशावादी दृष्टि रखी थी। आधुनिकता की सीमाओं से परिचित होते हुए भी इसकी संभावना पर उनकी आस्था बनी हुई थी। जिस लोकवृत्त (पब्लिक स्फियर) का विश्लेषण करते हुए हैबरमास ने कहा था कि 'सार्वजनिक जीवन के दायरे में अठारहवीं सदी के शुरुआती वर्षों में आकार ग्रहण करना आरंभ किया था। इसका उद्देश्य था कि यह व्यक्ति के पारिवारिक और सार्वजनिक जीवन के सरोकारों के बीच एक पट्टी बिठाये। इसका काम मनुष्य के निजी हितों तथा व्यापक समाज के हितों के बीच एक संवाद बनाते हुए किसी आम सहमति तक पहुंचना था। बुर्जुआ सामाजिक दायरे के कारण ही यह संभव हुआ कि एक तरफ तो राज्य सत्ता का विरोध करने वाली सार्वजनिक धारणाएं आकार ग्रहण कर सकीं और दूसरी ओर वे ताकतें भी उभरीं जो बुर्जुआ समाज को अपने हिसाब से गढ़ना और चलाना चाहती थीं। इस सार्वजनिक दायरे की वजह से ही जनता के सामान्य हितों के तमाम मुद्दों पर बहस संभव हो सकी थी। इसी सार्वजनिक दायरे ने वाणी की स्वतंत्रता, सार्वजनिक सभाओं के आयोजन, प्रेस की आजादी,

राजनीतिक प्रक्रियाओं और बहसों की खुली हिस्सेदारी को संभव बनाया था।⁵² फूको और हैबरमास आधुनिकता की शुरुआत समान रूप से कांट के उस प्रयास में देखते हैं जब कांट तर्क बुद्धि को निर्णायक घोषित करते हैं यानि कि 'तर्क की सीमाओं की स्थापना और उसके वैध इस्तेमाल से।' लेकिन फूको और हैबरमास के चिंतन में विषमता की रेखाएं ज्यादा गहरी हैं। फूको के लिए आधुनिकता की परियोजना 'आश्वित्ज' की सृष्टि करती है और ज्ञान शक्ति के नये विमर्शों को जन्म देती है, गढ़ती है, तो वहीं दूसरी ओर हैबरमास के लिए 'आधुनिकता एक अधूरी परियोजना है' क्योंकि इसकी संभावनाएं अभी शेष नहीं हुई हैं। इसके स्पष्टीकरण के लिए दो रूपकों का उदाहरण हमारे सामने है। आधुनिकता को परिभाषित करते हुए एंथनी गिडंस (1938) ने अपनी पुस्तक 'दी कांसीक्वेन्सेज ऑव माडर्निटी' (1990) में लिखा है कि आधुनिकता एक तरह का जगर्नाट है। शब्दकोश में जगर्नाट के दो अर्थ मिलते हैं; एक बड़ी भारी गाड़ी और दूसरा रथ पर सवार हिंदू देवता कृष्ण (जगन्नाथ) का। यह दिलचस्प है कि रथ की सवारी का अपना आनंद है लेकिन जगन्नाथपुरी में जगन्नाथ जी की निकलने वाली यात्रा का स्मरण करें तो हम पाते हैं कि उस रथयात्रा की दिशा जगन्नाथ नहीं बल्कि भक्त जन तय करते हैं जिससे उसको नियंत्रण में रखना और उसकी मंजिलें निश्चित करना जगन्नाथ के वश में नहीं होता है। इसीलिए आधुनिकता की परियोजना भी अधूरी है। यदि 'फूको के रूपक' का इस्तेमाल करें तो कह सकते हैं कि 'आधुनिकता एक दृष्टिकोण के रूप में, संभवतः अनंत काल तक अपनी संभावनाओं का विकास करते हुए और तथाकथित प्रतिपक्षियों को अपने अनुकूल बनाते हुए अपनी उपस्थिति बनाये रखेगी। कम से कम हैबरमास ने आधुनिकता को अधूरी परियोजना कहते हुए ऐसा ही सोचा होगा।'⁵³ यह अनुमान है लेकिन स्वयं हैबरमास ने क्या सोचा था? उस धारणा के निहितार्थ तक पहुंचने में उनकी इस मान्यता से थोड़ी सहूलियत होगी। हैबरमास का मानना है कि 'आधुनिकता पूर्व की अवधारणाओं की वकालत करने के बजाय आधुनिक विज्ञान को नये सिरे से आत्मबोधक बनाना होगा। उसे एक ऐसा माध्यम बनाना होगा, जिसके द्वारा मनुष्य समुदाय की आवश्यकताओं और हितों को स्पष्ट किया जा सके। उन्हें राजनीतिक रूप से प्राप्त किए जाने वाले साक्ष्यों के साथ जोड़ा जाए।' जब तक ऐसा नहीं होता आधुनिकता की परियोजना अधूरी है। इतनी चर्चा के बाद यह बात तो समझ में आ जाती है कि क्यों आधुनिकता को पश्चिमी या यूरोपीय अवधारणा के तौर पर देखा जाता है।

आधुनिकता की विकसनशील प्रक्रिया के समानांतर उसकी अवधारणात्मक गतिशीलता को लक्ष्य किया जा सकता है। आधुनिकता के इस निरंतर विकासशील चरित्र को समझने के लिए ही यूरोप में आधुनिकता को कई चरण में बांटा गया है। जैसा कि हमने पुनर्जागरण कालीन आधुनिकता की सीमाओं पर विचार करते हुए ही इस तथ्य को रेखांकित किया था कि इसकी सीमाएं काफी लचीली हैं तो लगभग वही बात हर चरण के बारे में सही है। क्योंकि तमाम भौतिक परिस्थितियों के बावजूद आधुनिकता बुनियादी स्तर पर 'मुक्तिकामी चेतना' का नाम है। और यह चेतना हर दौर में मौजूद रही है, अंतर मात्रा और सुसंगतता का है। फिर भी सामान्यतः यूरोप में आधुनिकता के दो चरणों का उल्लेख मिलता है। पहला चरण 15वीं-16वीं शताब्दी का पुनर्जागरण तथा दूसरा चरण 17वीं 18वीं शताब्दी का ज्ञानोदय। जबकि 'बरमैन ने आधुनिकता के विकास में तीन अलग अलग चरणों की पहचान की है। प्रथम चरण का विस्तार सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ से लेकर अठारहवीं शताब्दी के अंत तक माना है। दूसरा चरण फ्रांस की क्रांति से और तीसरे चरण को बरमैन विश्व स्तर पर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तथा वैश्विक सांस्कृतिक आधुनिकीकरण के विकास के रूप में उल्लिखित करते हैं। जब सामाजिक और राजनीतिक जीवन में अधिकाधिक

अनिश्चतता और आंदोलन शुरू होता है।⁵⁴ इस तरह कई विद्वानों ने यूरोपीय आधुनिकता को अपने ढंग से चरणों में बांटकर देखने की कोशिश की है। इसके मूल में इतिहास के अध्ययन की सुविधा का आग्रह तो है ही साथ ही उन विचारकों के अपने दृष्टिगत आग्रह रहे हैं।

पहले चरण की आधुनिकता की कुछ अपनी विशेषताएं रही हैं। पुनर्जागरणकालीन आधुनिकता की चर्चा की जा चुकी है इसलिए यहां ज्ञानोदय कालीन आधुनिकता की कुछ विशेषताओं की चर्चा की जा रही है। यदि पुनर्जागरणकालीन आधुनिकता के समय धर्मकेंद्रित (थियोसेंट्रिक) समाज, मानवकेंद्रित (एंथ्रोपोसेंट्रिक) समाज में परिवर्तित होता है तो ज्ञानोदय काल में वही समाज 'इकोसेंट्रिक' समाज में परिवर्तित होता है। 'इकोसेंट्रिक' दो अर्थों में एक पूंजी के अर्थ में और दूसरा पारिस्थितिकी के अर्थ में। यदि पुनर्जागरणकालीन आधुनिकता के केंद्र में 'मानव' है तो ज्ञानोदय कालीन आधुनिकता में 'मानव स्वभाव' अध्ययन के केंद्र में है। यदि पुनर्जागरणकालीन समाज में मनुष्य की जययात्रा प्रकृति पर विजय से आरंभ होती है तो ज्ञानोदय काल में वह 'प्रकृति में पद्धति की सचेत तलाश में परिवर्तित' हो जाती है। प्रकृति में पद्धति की तलाश से हमारा मतलब 'देकार्त के उस प्रश्न से है जिसने आधुनिकता के दर्शन की मूल समस्या पर अंगुली धर दी थी कि क्या यथार्थ का विज्ञान संभव है? देकार्त का जवाब था कि हां, संभव है। यदि हमें सही पद्धति मिल जाए तो हम एक विज्ञान संभव कर सकते हैं। इस तरह 'पद्धति' विज्ञान बन गई। यदि हम ऐसे नियमों की संरचना कर सके जो निश्चित परिणाम देने वाले हों, जो सार्वभौमिक हों, सार्वकालिक हों, तब हम रहस्यमय, कभी पकड़ में न आनेवाली प्रकृति को नाथ सकते हैं। इस पद्धति का आधार है कि मनुष्य एक विचारशील प्राणी है।⁵⁵ पुनर्जागरणकालीन आधुनिकता का आधार सामंती उत्पादन पद्धति की अवस्था थी तो ज्ञानोदय कालीन आधुनिकता का आधार उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति थी। ज्ञानोदय कालीन आधुनिकता की अन्य विशेषताओं के बारे में बताती हुई इलेन मिक्संस वुड कहती हैं, 'यह माना जाता है कि विवेकशीलता, विवेकशील नियोजन का जुनून, तकनीकी केंद्रियता, ज्ञान और उत्पादन का मानकीकरण, रैखिक प्रगति विशेषतः बुद्धि और स्वतंत्रता की प्रगति में विश्वास, विश्व के पूर्णतावादी दृष्टिकोणों के प्रति लगाव तथा सार्वभौमिक और संपूर्ण सत्त्यों में विश्वास तथाकथित ज्ञानोदय परियोजना का प्रतिनिधित्व करते हैं।'⁵⁶

अब यदि तथाकथित तीसरे चरण की बात करें तो इस दौर की आधुनिकता विश्वयुद्धों के मध्य उपजी मानसिकता और परिवेश से जुड़ी है, जो वस्तुतः 'आधुनिकतावादी आधुनिकता' है और आधुनिकता का यही रूप उत्तर आधुनिकता की विडंबना, संत्रास, अजनबीपन, अलगाव या एलियनेशन, आत्मसमीक्षा, आत्मबोध, संकटबोध, मूल्यहीनता, अमूर्तता के रूप में देखी जाती है। इस तरह आधुनिकता के कई रूप हैं।

बीसवीं शताब्दी के अंत तक आते आते आधुनिकता के विमर्श ने आधुनिकता के कुछ लक्षणों, तत्वों, मूल्यों और अवधारणाओं की पहचान की। जिसकी सहायता से आज आधुनिकता का एक सहजबोध विकसित हुआ है। इस सहजबोध ने जाने अनजाने प्रतिमान का रूप भी ग्रहण कर लिया है। पीटर बर्गर ने अपनी किताब 'फेसिंग अप टू द माडर्निटी' (1977), में आधुनिकता के पांच लक्षण बतलाए हैं—अमूर्तिकरण, भविष्यवाद, वैयक्तिकता, मुक्ति और धर्मनिरपेक्षता।

इस पड़ताल के बाद कूजे वेन की यह बात सही जान पड़ती है कि 'एक परियोजना के अंतर्गत जब हम ज्ञानोदय को अवधारणाओं के स्तर पर समझने की कोशिश करते हैं तो यह अवधारणा के स्तर पर आधुनिकता की परियोजना का ही एक अभिन्न हिस्सा साबित होता है।' तो कुल मिलाकर देखें तो नतीजा यह सामने आता है कि 'रिनेसां रिफार्मेशन इनलाइटेनमेंट इंडस्ट्रियलाइजेशन' की कड़ी में चौदहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी तक के पांच सौ वर्षों के दौरान

आधुनिकता यूरोप में न सिर्फ आकार ग्रहण करती है बल्कि एक यूरोपीय प्रतिमान में भी बदलती है। एक ऐसा प्रतिमान जिससे समूचा भूमंडल प्रभावित होता है। भले आधुनिकता के निहितार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान में बदलते रहे हों, जो अलग अलग हिस्सों में स्थानीय शक्तियों द्वारा की गई व्याख्या पर निर्भर रहे हों। लेकिन आज यह कहा जा सकता है कि आधुनिकता अपने प्रतिस्कांदी (रीजिलियंस) और लचीले स्वरूप के कारण गैर पश्चिमी समाजों में भी जहां वह प्रत्यक्ष रूप से पश्चिमी राजनीतिक व्यवस्था से संचालित नहीं है, सौंदर्य और सांस्कृतिक विमर्श की एक अत्यंत उपयोगी अवधारणा बन चुकी है। एक ऐसी अवधारणा या प्रतिमान जिसके आधार पर 'तीसरी दुनिया' के देशों को 'आधुनिक' और 'गैर आधुनिक' राष्ट्रों में विभाजित किया गया। बीसवीं सदी के मध्य तक 'तीसरी दुनिया' के लिए आधुनिकता के दो मॉडल उपलब्ध थे। यूरोप की पूंजीवादी आधुनिकता को चीन और सोवियत संघ की समाजवादी आधुनिकता से चुनौती तो मिली लेकिन इस समाजवादी आधुनिकता का भी अनिवार्य संदर्भ पूंजीवादी आधुनिकता ही थी। 'आधुनिकता की मार्क्सवादी आलोचना दरअसल पूंजीवादी आधुनिकता की आलोचना थी। उसका केंद्रीय तत्त्व यह था कि अपने को स्थापित करने के बाद पूंजीवाद आधुनिकता के आदर्शों का परित्याग कर देता है, उन्हें वर्गहित के दायरे में बांध देता है। प्रगति, न्याय, समता और मुक्ति के आदर्शों को वास्तविक रूप आधुनिकता की समाजवादी राह पकड़कर ही दिया जा सकता है। सारी दुनिया के पूर्व आधुनिक देशों के सामने आधुनिकता के ये दो वैकल्पिक रास्ते थे। दोनों तरफ अपनी अपनी शक्ति में दुनिया को ढालने की परियोजनाएं थीं और दोनों ही परियोजनाओं में तीसरी दुनिया के लिए एक दूसरे प्रकार का समरस, समतल, समरूप भविष्य था।⁵⁷ सवाल यह उठता है कि भारत जो औपनिवेशिक राष्ट्र था, उसने कौन सा मार्ग अपनाया? या अपने लिए किसी नये मार्ग की खोज की?

यूरोपीय आधुनिकता जिन चरणों से गुजरकर अस्तित्व में आई थी उसे जब अवधारणा के तौर पर सूत्रबद्ध किया गया तो मूलतः उसे एक पश्चिमी प्रत्यय और प्रतिमान में बदल दिया गया और जिसका उपयोग आगे चलकर साम्राज्यवादी अभियानों और औपनिवेशिक शासन को वैध ठहराने के लिए किया गया। परिणामतः न सिर्फ गैर यूरोपीय राष्ट्र बल्कि कई यूरोपीय देशों ने भी स्वयं को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में आधुनिक साबित करने के लिए आधुनिकता की तथाकथित शर्तों को पूरा किया। ऐसा नहीं था कि यूरोप ने सिर्फ एशिया में ही अपने उपनिवेश स्थापित किए थे बल्कि स्वयं यूरोपीय राष्ट्रों के आपसी संघर्षों से विश्व इतिहास के पन्ने भरे पड़े हैं। यूरोपीय आधुनिकता के बरक्स भारतीय आधुनिकता की बात करना बेमानी है। क्योंकि यूरोप कई देशों का समुच्चय है और जब भी यूरोपीय आधुनिकता की बात की जाती है तो इन तमाम राष्ट्रों के योगदानों को मिलाकर यूरोप की ज्ञान परंपरा की एक चमकती तस्वीर पेश की जाती है। इस लिहाज से यूरोपीय आधुनिकता के समक्ष गर बात करनी हो तो एशियाई आधुनिकता की, की जानी चाहिए। इस पाश्चात्य आधुनिकता की सैद्धांतिकी के बरक्स एक प्राच्य आधुनिकता की सैद्धांतिकी खड़ी की जा सकती है। यूरोपीय आधुनिकता के समानांतर एशियाई आधुनिकता पर बात करने के लिए कम से कम जापान, चीन और भारत को एक साथ रख कर विचार करने की आवश्यकता है जो अपने आप में एक श्रमसाध्य कार्य है। यदि जापान और चीन को यहां छोड़ भी दें तब भी सिर्फ भारतीय आधुनिकता के संदर्भ में विचार करने पर समस्या की विकरालता और जटिलता दोनों का बोध होता है। अब तक भारतीय आधुनिकता पर विचार की जो दशा दिशा रही है, वह मुख्यतः यूरोपीय दृष्टि से ही प्रभावित रही है। इसमें मूल रूप से प्राचीन या मध्यकालीन भारत में जाकर उन तत्त्वों और कारकों को सामने लाने की कोशिश की गई है, जिससे यहां भी पश्चिम जैसा कुछ

घटता दिखलाया जा सके। पर इस मार्ग में सबसे बड़ी बाधा औपनिवेशिक इतिहास दृष्टि ही रही जो भारत की दुर्गति के लिए मुगलों और इस्लामी शासन को जिम्मेदार ठहराती रही। इसके कारण भारतीय मध्यकाल इतिहास दृष्टि लंबे समय तक उस औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी इतिहासदृष्टि का शिकार रही। चूंकि भारतीय संदर्भों में इतिहास लेखन की पश्चिम सरीखी परंपरा मौजूद नहीं थी तो योरोपीय आधुनिकता के समान भारतीय आधुनिकता का कोई क्रमबद्ध और व्यवस्थित इतिहास नहीं मिलता है। क्रमबद्ध और व्यवस्थित इतिहास के अभाव का यह मतलब नहीं है कि इतिहास का अस्तित्व ही नहीं था। बल्कि इसका मतलब सिर्फ इतना है कि अवधारणात्मक स्तर पर इस दिशा में अपेक्षित प्रयास नहीं हुआ था। इस कारण समग्रता में देखने पर भारतीय आधुनिकता 'खंडित अस्मिताओं' का कोलाज सा जान पड़ती है। जिसे एक 'दूरी' से देखने पर इसके रूप आकार का कुछ कुछ आभास तो मिलता है लेकिन पास से देखने पर इसकी 'दरारें' हमारी समझ को जगह जगह से दरकाने लगती हैं। बावजूद इसके भारतीय संदर्भ में यूरोपीय ढंग की आधुनिकता के अवधारणात्मक विकास के कुछ चरणों को मोटे तौर पर पहचाना जा सकता है। पहला चरण भारतीय आधुनिकता बोध के उदय का है। दूसरा चरण आधुनिकता के सिद्धांत निर्माण से जुड़ा है। तीसरा चरण उन सिद्धांतों के नतीजों से सहमत और असहमत होने का है। और चौथा चरण उन निष्कर्षों के समानांतर अपना पक्ष रखने का है। इनमें से प्रथम तीन चरण 'भारतीय आधुनिकता के नवजागरण काल' (1757-1947) तक के कालखंड से जुड़े हैं। इस कालखंड में भारतीय आधुनिकता के आरंभिक तीन चरण घटित होते हैं। 1947 के बाद 'भारतीय आधुनिकता के नवजागरण काल के बाद' का दौर आरंभ होता है जिसमें भारतीय आधुनिकता का चौथा चरण आकार ग्रहण करता है। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय आधुनिकता और भारतीय नवजागरण के आरंभिक विचार यूरोपीयों की देन हैं और उनके आगमन के पूर्व आधुनिकता या नवजागरण का कोई भी विचार विमर्श के धरातल पर भारतीय संदर्भ में एक गैर जरूरी विचार था। आधुनिकता की प्रवृत्ति को नवजागरण काल से पहले खोजने का प्रयत्न भी नवजागरण काल से प्रारंभ होता है। इसलिए नवजागरण काल से पहले आधुनिकता की पहचान और परख भी 'नवजागरणकालीन आधुनिकता' की ही प्रवृत्ति जान पड़ती है जिसका उदय राष्ट्रवादी आंदोलन के साथ होता है।

यूरोप में आधुनिकता पुनर्जागरण (रेनेसां), धर्मसुधार (रिफॉर्मेशन), प्रति धर्मसुधार (एंटी रिफॉर्मेशन), ज्ञानोदय (इनलाइटनेमेंट) और औद्योगीकरण (इंडस्ट्रियालाइजेशन) के चरणों से गुजरकर आकार ग्रहण करती है। अब सवाल उठता है कि भारतीय संदर्भ में 'नवजागरण' को इन चरणों में से किसके समतुल्य रखा गया है? इसके जवाब में हम पाते हैं कि यद्यपि 'नवजागरण' पद यूरोपीय रेनेसां से मिलती जुलती परिस्थितियों के लिए भारतीय संदर्भ में प्रयुक्त हुआ था लेकिन इसके द्वारा एक साथ यूरोपीय पुनर्जागरण, धार्मिक सुधार आंदोलन और ज्ञानोदयकालीन विशेषताओं को निरूपित किया गया। इस तरह यह एक ऐसा भ्रामक पद बनकर उभरा जिसने हमारे इतिहास बोध को धुंधला करने का ही काम किया। 'रेनेसां' शब्द के भारतीय संदर्भ में प्रथम प्रयोग एवं उसके अवधारणात्मक विकास की रणनीति और राजनीति का खुलासा वीरभारत तलवार ने किया है। अपने विद्वतापूर्ण शोधपरक आलेख 'नाम में क्या रखा है?' में वे इस पर रोशनी डालते हुए लिखते हैं, 'अपनी सीमित जांच पड़ताल से मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूँ कि बंगाल या भारत के नवजागरण के लिए रेनेसां का चलन भारतीयों ने नहीं किया था क्योंकि उन्हें इसकी आवश्यकता नहीं थी। इसका चलन यूरोपीयों ने अपनी आवश्यकता से किया था।'⁵⁸ इसके जरिये वे जहां एक ओर यूरोपीय दृष्टि से भारत को समझना चाह रहे थे वहीं दूसरी ओर बाकी यूरोप के लिए भारत

की एक समझ विकसित करना चाह रहे थे। और इसके जरिये मूलतः वे हम पर योरोपीय इतिहास बोध आरोपित कर अपने औपनिवेशिक शासन को वैध साबित करना चाह रहे थे। आधुनिकता इस औपनिवेशिक शासन को वैध साबित करने वाली विचारधारा का कार्य कर रही थी। और आधुनिकता ने अपनी वैधता के लिए नवजागरण की विचारधारा को जनोपयोगी और लोकप्रिय बनाने का काम किया। आधुनिकता की तुलना में नवजागरण का विचार ज्यादा मूर्त था। आधुनिकता की पहचान चेतना के स्तर पर हो सकती थी और नवजागरण की प्रक्रिया के अंतर्गत भौतिक आधारों के निर्माण के द्वारा अपने पक्ष में शुरुआती जनमत सहजतापूर्वक तैयार किया जा सकता था। इसलिए औपनिवेशिक भारत में 'आधुनिकता' के स्थान पर 'नवजागरण' की विचारधारा को लोकप्रिय बनाने का कार्य किया गया। परिणामतः नवजागरण समग्रतामूलक विकास की एक ऐसी अवधारणा बनकर उभरा जिसे आधुनिकता का पर्याय समझा जाने लगा। अब सवाल यह उठता है कि भारत में नवजागरण की अवधारणा ने कैसे रूप आकार ग्रहण किया? यहां हम पाते हैं कि इसका आरंभिक आधार भारतविदों और प्राच्यविदों ने निर्मित किया, फिर उसके समानांतर सामाजिक और भौतिक आधारों का निर्माण तथा उसके अनुकूल परिस्थितियां बनाई गईं। विचारधारात्मक आधार के अंतर्गत हम देखेंगे कि यूरोपीय बौद्धिकों ने भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अवस्था की कैसे व्याख्या की और उन व्याख्याओं से कैसे भारतीय नवजागरण की परिकल्पना साकार हुई?

कोई भी साम्राज्यवादी देश अपने द्वारा उपनिवेशित राष्ट्र को समझने के लिए उसकी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करता है। ताकि बिना किसी प्रतिरोध के वह उन पर सहजतापूर्वक शासन कर सके। और यह जानकारियां वे उस देश के इतिहास के अध्ययन और वर्तमान के अनुभवों से हासिल करते हैं। लेकिन जब अनुभवों में एकरूपता न हो तो फिर इतिहास का ही सहारा बचता है। और अगर इतिहास भी उपलब्ध न हो तो फिर कुछ सहूलियतों के साथ थोड़ी परेशानी भी दरपेश आ सकती है, बल्कि आती है। भारतीय नवजागरण की अवधारणा को मूर्त करने के विचारधारात्मक प्रयास 'इतिहासलेखन' के जरिये आरंभ किए गए।

अगर उत्तर आधुनिकता को 'वृद्ध पूंजीवाद का सांस्कृतिक तर्क' कहा जा सकता है तो आधुनिकता के इतिहास को देखते हुए उसे 'आरंभिक पूंजीवाद का सांस्कृतिक तर्क' कह सकते हैं। क्योंकि औपनिवेशिक राष्ट्रों में आधुनिकता का इस्तेमाल सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के उस औजार के तौर पर किया गया जिसके माध्यम से 'मानसिक औपनिवेशन' की प्रक्रिया को अंजाम दिया जाता है। यह 'औपनिवेशिक अनुकूलन' इतिहास, समाज, राजनीति, संस्कृति हर क्षेत्र में एक साथ दृष्टिगत होता है। यह बात वैश्विक परिप्रेक्ष्य के साथ साथ भारतीय संदर्भ में भी सत्य है। जैसे भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रादेशिक नवजागरणों (बांग्ला नवजागरण 1757 से, मराठी नवजागरण 1818 से, हिंदी नवजागरण 1857 से) के घटित होने को कालखंड के हिसाब से रखें तो वे क्रमशः उनके पराधीन होने के कालखंडों से मेल खाता है। आखिर 'पराधीनता की इन बेड़ियों' को कैसे 'सौभाग्यसूचक प्रतीकों' में बदल दिया गया? यहीं 'आरंभिक पूंजीवाद के सांस्कृतिक तर्क की प्रयोजनमूलकता' देखने को मिलती है। यहां इतिहासबोध की वह साम्राज्यवादी भूमिका सामने आती है जिसके जरिये 'अन्य' के अतीत को अपने ढंग से व्याख्यायित कर, उसके वर्तमान को अनुकूलित कर, अपने भविष्य को सुखद और सुरक्षित बनाने का उपक्रम किया जाता है। यह बात जोर देकर इसलिए कही जा रही है क्योंकि 'औपनिवेशिक काल में भारत के इतिहास ने अठारहवीं उन्नीसवीं सदी में जो रूप धारण किया वह अन्य औपनिवेशिक समाजों के इतिहास के पैटर्न से मिलता

जुलता है।⁵⁹

अब यदि अन्य औपनिवेशिक समाजों के इतिहास के पैटर्न के ब्योरे में न जाएं तो भी प्राच्यविदों द्वारा नवजागरण काल में प्राचीन भारत को अपने अध्ययन का आधार बनाया जाना उसी पैटर्न का अंग जान पड़ता है जिसके अनुसार 'यूरोप में पुनर्जागरण काल के बाद प्राचीन विश्व का अध्यापन बड़े पैमाने पर आरंभ हुआ था।'⁶⁰ इसलिए यह जानना आवश्यक है कि 18वीं 19वीं शताब्दी में औपनिवेशिक इतिहासलेखन ने कौन सा रूप धारण किया था? संभवतः उन नतीजों से अन्य औपनिवेशिक समाजों के इतिहास के पैटर्न का थोड़ा अनुमान किया जा सकता है।

अठारहवीं सदी से भारत में पश्चिमी ढंग के इतिहासलेखन का आरंभ होता है जिसका श्रेय भारतविदों (इंडोलॉजिस्ट्स) और प्राच्यविदों (ओरियंटलिस्ट्स) को जाता है। इन भारतविदों और प्राच्यविदों के रूप में मुख्यतः यूरोपीय विद्वानों की गणना की जाती है जिनमें से ज्यादातर ब्रिटिश जर्मन और फ्रेंच मूल के थे। 'जिन्होंने भारत को विशेषकर भारतीय भाषाओं को अपने अध्ययन का विषय चुना था। भारतविदों में अधिसंख्य (जैसे जॉस, कोलब्रुक और विलसन) ईस्ट इंडिया कंपनी के नौकर थे जो विभिन्न प्रशासनिक पदों पर नियुक्त थे। इनमें से अनेक यूरोप की क्लासिकल परंपरा में प्रशिक्षित थे। वे समकालीन भाषा विज्ञान से भी परिचित थे। प्रशासक के रूप में उन्हें भारत के प्रथागत कानून, राजनीति, समाज और धर्म के विशेष ज्ञान की आवश्यकता थी। इसीलिए वे संस्कृत और फारसी के साहित्य के अध्ययन में प्रवृत्त हुए। इस प्रकार वैदुष्य और प्रशासनिक दोनों सरोकार घुल मिलकर एक हो गए।'⁶¹ इससे यह लक्षित होता है कि अठारहवीं सदी में भारतीय इतिहास से जुड़े साक्ष्यों के अध्ययन का आरंभ ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रशासकीय जरूरतों के कारण होता है। यह प्रशासकीय जरूरतें शासन से जुड़ी थीं। दीर्घकालीन आर्थिक दोहन के लिए विधि व्यवस्था को बनाये रखना जहां एक चुनौतीपूर्ण कार्य था, वहीं कानून का निर्माण और क्रियान्वयन उससे बड़ी चुनौती थी। भारत में यूरोप की भांति कानून जिल्लों में बंधा हुआ नहीं था बल्कि परंपरा से चली आती प्रथाएं, रीति रिवाज, धार्मिक, आस्था विश्वास, रूढ़ियां आदि सभी अलिखित कानून के समान थीं। भारत में 'कस्टम' ही कानून था। आज भी भारत में प्रचलित कई प्रकार के कानूनों में 'कस्टमरी लॉ' ही सर्वाधिक शक्तिशाली है। इन अलिखित 'कस्टम' की जगह विवेकसम्मत लिखित विधानों को क्रियान्वित करने में कई तरह की समस्याएं सामने आ रही थीं। अतः उन प्रथाओं, रिवाज, परंपरा, विश्वास, आस्था, धर्म और कर्मकांडों की जानकारी के लिए संस्कृत के नाटकों का अध्ययन—तत्कालीन समाज को समझने की दृष्टि से—आरंभ हुआ। एक ओर जहां प्रशासकीय जरूरतों के अनुसार उनकी व्याख्या और सूत्रबद्धता का कार्य आरंभ हुआ, वहीं दूसरी ओर प्राच्यवैदुष्य ने उनमें निहित काव्यात्मक मूल्यों की उत्कृष्टता की मुक्त कंठ से प्रशंसा आरंभ की। यूरोप में विशेषकर अंग्रेजी साहित्य में उन दिनों स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज्म) का बोलबाला था और कहना न होगा कि कालिदास की रचनाओं में उन्होंने रोमांटिसिज्म की विशेषताओं को लक्ष्य कर लिया था। प्राच्यविदों के लिए यह खासा विस्मयकारी अनुभव था कि यूरोपीय कविता जहां आज खड़ी है भारतीय कविता वह पड़ाव कब का पार कर चुकी थी! यूरोप की कालिदास विषयक मुग्धता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि अन्य यूरोपीयों को कालिदास की महत्ता समझाने के लिए उन्होंने कालिदास को भारत का शेक्सपियर कहा। इतना ही नहीं कालिदास का नाटक 'अभिज्ञानशाकुंतलम्' भी प्राच्यविदों के द्वारा ही खोजा गया। हिंदी नवजागरण काल में तो 'कालिदास प्राचीन भारतीय साहित्यिक मेधा के प्रतीक पुरुष' बन जाते हैं।

प्राच्यविदों के कार्यों से ईस्ट इंडिया कंपनी को जरूर आरंभिक लाभ प्राप्त हुए होंगे अन्यथा 1784 ई. में एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल की स्थापना नहीं हुई होती। एशियाटिक सोसायटी

की स्थापना को प्राच्यविदों द्वारा किए जा रहे प्रयत्नों को सांस्थानिक स्वीकृति दिये जाने के रूप में देखा जा सकता है। क्योंकि 1793 ई. में बंगाल में भूमि का स्थायी बंदोबस्त लागू कर दिया जाता है। 1800 ई. में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना को इन प्राच्यवादी प्रयत्नों को प्रोत्साहित करने की दिशा में अगला पड़ाव माना जा सकता है। जो इस बात का संकेत करते हैं कि प्राच्यविद ईस्ट इंडिया कंपनी की प्रशासकीय जरूरतों को पूरा कर रहे थे अन्यथा बंगाल एशियाटिक सोसायटी की भांति 1804 ई. में बंबई एशियाटिक सोसायटी की स्थापना नहीं हुई होती। आगे चलकर इन संस्थानों ने ब्रिटिश औपनिवेशिक जरूरतों की पूर्ति की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया।

‘उन्नीसवीं सदी के आरंभिक दशकों में एशियाटिक सोसायटी और फोर्ट विलियम कॉलेज से जुड़े प्राच्यविदों ने संस्कृत के प्राचीन, दुर्लभ या गायब हो गए ग्रंथों को खोज निकाला, उनको संपादित करके प्रकाशित कराया और अंग्रेजी तथा आधुनिक भाषाओं में उनका अनुवाद किया ताकि प्राचीन संस्कृत भाषा न जानने वाले भी इन ग्रंथों को पढ़ सकें। अपनी प्राचीन विरासत के महत्व से अनजान बंगाली बौद्धिक वर्ग को इससे एक नये गौरव का बोध हुआ। इन प्राच्यविदों ने प्राचीन पांडुलिपियों और ग्रंथों का पुस्तकालय कायम किया, पहली बार भारत में छापाखाना खोला, भारतीय भाषाओं के टाइप ढलवाये और महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन किया।⁶² गौर से देखें तो पाएंगे कि मानववादियों ने इसी प्रक्रिया के जरिये इतालवी पुनर्जागरण को अंजाम दिया था। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी में जहां एक ओर भारत में प्राच्यविद्या का विकास हुआ वहीं इसके साथ साथ यूरोपीय और दूसरे विश्वविद्यालयों में प्राच्य भाषाओं के पाठ्यक्रम का आरंभ हुआ।⁶³ इसका परिणाम यह हुआ कि प्रशासकीय जरूरतों के अनुरूप साहित्य और इतिहास के अध्ययन को नियंत्रित नहीं किया जा सका और अपने शोध कार्यों की वजह से यूरोप में प्राच्यविदों की प्रशासकीय छवि पर उनका वैदुष्य प्रभावी होने लगा। जैसे अपने शोध कार्यों के कारण विलियम जॉस ने दस राज्यों पर आधारित प्राथमिक महत्व का एक शोधपत्र ‘डिस्कोर्स ऑन दी ओरिजिन एंड फैमिलीज ऑव नेशंस’ लिखा, जो संस्कृत ग्रीक और लैटिन के मध्य अनेक विशेषताओं की अद्भुत समानता को रेखांकित करता था। जॉस का यह कार्य ‘तुलनात्मक भाषा विज्ञान’ का आरंभिक बिंदु माना जाता है और इसी की क्रमिक शृंखला के रूप में ‘इंडोयूरोपीयन’ परिवार की भाषाओं तथा लोगों के विस्थापन पर बहस आरंभ होती है। ‘तुलनात्मक भाषाविज्ञान’ संस्कृत और कुछ यूरोपीय भाषाओं के मध्य नजदीकी संबंध होने के संकेत देता है, इससे ‘आर्य नस्ल का सिद्धांत’ प्रचलन में आया, जिसे यूरोप और भारत में प्राच्यविद्याविदों ने यूरोपीयों और प्राचीन आर्य लोगों के मध्य नृशास्त्रीय वंश परंपरा के रूप में स्वीकार कर लिया। यह मान लिया गया कि भारोपीय मूल के वंशज ही विश्व सभ्यता के प्रकाश वाहक थे।⁶⁴ इस तरह उन्नीसवीं सदी में प्राच्यविदों के सबसे प्रभावशाली सिद्धांत के तौर पर जहां ‘आर्य नस्ल का सिद्धांत’ और ‘भारोपीय भाषा परिवार की संकल्पना’ सामने आई वहीं दूसरी ओर भारतीय प्राच्यविदों में सबसे प्रभावशाली व्यक्तित्व के तौर पर मैक्समूलर उभरकर सामने आए। दूसरी ओर लगातार बढ़ते साम्राज्य में दीर्घकालिक आर्थिक दोहन की योजनाओं को क्रियान्वित न कर पाने से उत्पन्न समस्याओं का जो समाधान ब्रिटिश प्रशासक इतिहासकारों ने किया, उसे तो बस साम्राज्यवादी मेधा का शानदार उदाहरण ही कहा जा सकता है। सर्वत्र उन्होंने इन समकालीन समस्याओं के लिए प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय मूल्यों को दोषी ठहराया।

भारतविदों और प्राच्यविदों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स मिल ने अपने पहले प्रयास में इतिहास का एक ऐसा विकृत बोध भारतीयों पर आरोपित कर दिया कि उसने आनेवाले लगभग डेढ़ सौ वर्षों तक भारतीय इतिहास बोध को प्रभावित किये रखा। 1817

ई. में जेम्स मिल का इतिहास ग्रंथ 'हिस्ट्री ऑव ब्रिटिश इंडिया' प्रकाशित हुआ। भारतीय इतिहास में यह संदर्भ ग्रंथ का दर्जा हासिल कर चुका है। प्राचीन भारतीय इतिहासकारों जैसे रोमिला थापर, डी.डी. कोशाबी से लेकर मध्यकालीन इतिहासकार इरफान हबीब तक ने जेम्स मिल की इतिहास दृष्टि का विश्लेषण किया है। लेकिन यहां अति धर्मनिरपेक्ष माने जाने वाले पाकिस्तानी इतिहासकार मुबारक अली के विचारों पर गौर किये जाने की जरूरत है कि जेम्स मिल के बारे में उनकी क्या राय है? वे लिखते हैं कि 'जेम्स मिल ने भारत का इतिहास लिखते हुए पहली बार इसका सांप्रदायिक आधार पर विभाजन किया जैसे हिंदू काल, मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल। पूरे का पूरा मध्य युग मुस्लिम शासनकाल कहलाता है, जो भारत पर विदेशी जाति के प्रभुत्व को रेखांकित करता है। अंग्रेजों ने सांप्रदायिक आधार पर इतिहास का विभाजन करते हुए अपने शासन को धर्मनिरपेक्ष तथा ज्ञानोदय का शासन बताते हुए उसे ईसाई शासन की जगह ब्रिटिश कहा तथा यह जताने का प्रयास किया कि उन्होंने भारत को न सिर्फ मुसलमानों के सांप्रदायिक शासन से मुक्ति दिलायी बल्कि शांति व धार्मिक सहिष्णुता के युग का भी सूत्रपात किया।'⁶⁵ इतना ही नहीं जेम्स मिल (जो स्वयं को आमूल परिवर्तनवादी (रेडिकल) और उपयोगितावादी (यूटिलिटरियन) मानता था) भारतविदों और प्राच्यविदों की भारत संबंधी मान्यताओं को अपने पक्ष में (साम्राज्यवादी हितों के अनुरूप) बेहद खूबसूरती से मोड़ने में कामयाब रहा।

मैक्समूलर की भारतीय धर्म दर्शन के प्रति दीवानगी का आलम यह था कि वह मोक्षमूलर भी कहलाने लगा था। मैक्समूलर कभी भारत नहीं आए पर भारत के प्रति उनकी रोमांटिक दृष्टि ने भारत की कुछ अतिरंजनापूर्ण प्रशंसा उनसे करा दी। 'आर्य जीवन के प्रति (अर्थात् जिस रूप में उन्होंने इसे देखा उस रूप के प्रति) अपने उत्साह के कारण मैक्समूलर ने आर्य समाज का चित्रण ग्राम समुदायों के एक आदर्श समाज के रूप में किया, जिसमें लोगों को दैनिक जीवन की लौकिक बातों की चिंता नहीं थी बल्कि वे पारलौकिक विचारों और मूल्यों के चिंतन में लीन रहते थे।'⁶⁶ मैक्समूलर ने जिन भारतविदों और प्राच्यविदों के लेखन को अपना आधार बनाया था, सवाल उठता है कि उनके लेखन के आंतरिक और बाह्य साक्ष्य कौन कौन से थे? रोमिला थापर इस रहस्य से पर्दा उठाते हुए लिखती हैं कि 'भारत की सामग्री का इस्तेमाल करने वाले प्रोफेशनल इंडोलॉजिस्ट्स नहीं थे। पुनः यह सामग्री भी सीमित मात्रा में ही उपलब्ध थी। जाति के संबंध में बुनियादी सामग्री के रूप में वे अधिकांश में आधुनिक काल के लिए जनगणना की रिपोर्टें और इंपीरियल गजेटियरों तथा प्राचीन काल के लिए धर्मशास्त्रों का इस्तेमाल करते थे। जनगणना की रिपोर्टें और इंपीरियल गजेटियरों का संकलन संपादन सरकारी कर्मचारी करते थे। इसलिए इनमें प्रागौपनिवेशिक भारत के अतीत के बारे में उस काल में प्रचलित पूर्वग्रहों के दर्शन होते हैं। यह भी न भूलना चाहिए कि भारत के अतीत का अध्ययन और विश्लेषण करने वाले विद्वान भी अधिकांश में ये ही सरकारी अधिकारी थे। भारत के धर्मों का अध्ययन भी अनुवादों के सहारे हुआ।'⁶⁷

मैक्समूलर के भारत के प्रति रोमांटिक भाव बोध के आधार की चर्चा इसलिए की गई क्योंकि मैक्समूलर की प्राचीन भारत विषयक मान्यताओं को प्रमाण रूप मान कर जेम्स मिल ने भारत के संदर्भ में कुछ अनैतिहासिक स्थापनाएं प्रस्तुत कर दी थीं जिसका काफी दूरगामी प्रभाव भारतीय इतिहास पर पड़ा। जेम्स मिल ने मैक्समूलर के साक्ष्यों के आधार पर प्राचीन भारतीय ग्राम समाज की अपरिवर्तनशीलता को एक सिद्धांत का रूप दे दिया। जिसके कारण प्राचीन भारतीय ग्राम्य समाजों की स्थिरता जड़ताबोधक प्रत्यय के तौर पर प्रयुक्त होने लगी। जेम्स मिल के भारतीय ग्राम्य समाजों की अपरिवर्तनशीलता को हीगेल ने प्राचीन भारतीय समाज में द्वंद्वात्मक परिवर्तनों के अभाव के रूप में देखा। इस द्वंद्वात्मक परिवर्तनों के अभाव की व्याख्या करते हुए हीगेल ने भारत में भूमि

के निजी स्वामित्व के अभाव की घोषणा की। भूमि के निजी स्वामित्व के अभाव के बारे में हीगेल की अवधारणा को जानकर कार्ल मार्क्स ने 'उत्पादन की एशियाई पद्धति' की अलग ही परिकल्पना कर डाली। राज्य को भू स्वामी बताकर निरंकुश शासकों को उसकी सत्ता सौंप दी गई और सत्ता को बनाये रखने के लिए सिंचाई व्यवस्था का राजकीय प्रावधान बताकर, जनता को इन निरंकुश शासकों से त्रस्त दिखलाया गया। कार्ल मार्क्स के बाद मैक्स वेबर ने पश्चिमी यूरोप के अलावा अन्य देशों में पूंजीवाद के विकसित न होने के कारणों की पड़ताल करते हुए मैक्समूलर के भारत विषयक ज्ञान को अपने निष्कर्षों के अनुकूल पाकर बिना जांचे परखे ही अपना लिया। यहां उपर्युक्त सभी विचारों के विश्लेषण का अवकाश नहीं है। इसलिए सांकेतिक तौर पर मैक्स वेबर की मान्यताओं का विश्लेषण किया जा रहा है क्योंकि मैक्स वेबर के उपरोक्त विचारों का विकास अभी तक जारी है। 'भारतीय सामग्री के प्रयोग के पीछे वेबर का उद्देश्य अधिक स्पष्ट था। वह भारतीय समाज को एक मॉडल के रूप में प्रस्तुत कर आधुनिक यूरोपीय समाज के बारे में अपने कई सिद्धांत प्रमाणित करना चाहता था। उसके अध्ययन के लिए गैर यूरोपीय परंपरा का होना जरूरी था क्योंकि इस रूप में वह एक विलोम प्रस्तुत कर यह बतलाना चाहता था कि पश्चिमी यूरोप के अलावा अन्य देशों में पूंजीवाद का प्रादुर्भाव क्यों नहीं हुआ? उसकी दृष्टि में पूंजीवाद किसी ऐतिहासिक विकास का परिणाम नहीं है बल्कि वह एक अनूठा विकास है जिसकी जड़ें सत्रहवीं सदी के पश्चिमी यूरोप में मिलेंगी। अपने विश्लेषण को प्रतिपादित करने के लिए उसे ऐसे विलोम मॉडलों का प्रयोग करना जरूरी था जिनकी परंपरा यूरोप से भिन्न हो। उसने विश्लेषण से पहले ही मान लिया था कि यूरोप की परिस्थिति में कुछ महत्वपूर्ण घटक ऐसे थे जो दूसरे समाजों से भिन्न थे, वे विश्व इतिहास की दृष्टि से ज्यादा प्रभाववाले थे इसलिए यूरोप के बारे में वेबर की दृष्टि यूरोपीयन दृष्टि से भिन्न न थी। वह यूरोप के इतिहास की परीक्षाकर अपनी पूर्व कल्पना को प्रामाणिक सिद्ध करना चाहता था।'⁶⁸ हालांकि मैक्स वेबर के पूंजीवाद के उदय और प्रोटेस्टेंट धर्म के बीच खोजे गए अंतर्संबंधों की हवा तो अकेले कैथोलिक इटली निकाल देता है जो पुनर्जागरण के दौरान वैज्ञानिक अनुसंधानों का अकेला केंद्र था। पूंजीवाद और विज्ञान के उदय को भी एक साथ जोड़कर देखने की रिवायत यूरोपीय आधुनिकता में रही है। अपनी एक अन्य पुस्तक में रोमिला थापर पुनः लिखती हैं कि 'भारतीय इतिहास की उन्नीसवीं सदी की समझ के आधार पर कुछ आधुनिक समाजशास्त्री सिद्धांतकारों ने समकालीन भारत और भारतीय समाज के बारे में बहुत व्यापक सामान्यीकरण किये हैं। अपनी कृति 'दी रिलीजन ऑव इंडिया' (न्यूयार्क 1967, पुनर्मुद्रण) में मैक्स वेबर ने मैक्स मूलर जैसे प्राच्यविदों के लेखन का इस्तेमाल काफी हद तक सोच विचार किए बिना किया है। विकल्पों की पर्याप्त छानबीन किए बिना इस परंपरा को स्वीकार कर लेने का एक अपेक्षाकृत अर्वाचीन उदाहरण लुई दयूमां की कृति 'होमो हाइड्राकिकस' (1967) है। भारतीय समाज की परलोक चिंता पर जोर देने वाले ऐसे चिंतन का प्रभाव आर्थिक इतिहासकारों पर भी पड़ा है। इसका प्रमाण गुनार मिरडल की कृति 'एशियन ड्रामा' (1969) है, जिसमें भारत में पूंजीवाद की विफलता की व्याख्या करने के लिए वेबर की स्थापना पर काफी जोर दिया गया है।'⁶⁹ मैक्समूलर से लेकर मैक्सवेबर तक के प्राचीन भारत विषयक भ्रांतियों को सूत्रबद्ध कर के. विटफोगल ने 'पूर्वीय निरंकुशता' की पूरी सैद्धांतिकी ही रच डाली। इसलिए पूर्वीय निरंकुशता के इस महाभ्रांति के आरंभिक विचार को अव्यक्त तौर पर जेम्स मिल की इतिहास दृष्टि में तलाशने का सटीक काम रोमिला थापर ने किया है। अतः प्राच्यविदों के भारत विषयक अध्ययन की परिणति यूरोपीय इतिहासलेखन के प्रसंग में जेम्स मिल ने जहां एक ओर पूर्वी निरंकुशतावाद के तौर पर करा दी तो वहीं दूसरी ओर भारतीय प्रसंगों में भी इस भारतविद्या और प्राच्यविद्या के

कुछ ज्यादा सुखद नतीजे देखने को नहीं मिले।

प्राच्यविदों के शोध और अध्ययनपरक निष्कर्षों से पराधीन भारतीयों में जो एक आत्म सम्मान और राष्ट्रीयता का बोध जाग रहा था, प्राच्य निरंकुशतावाद के सूत्रों ने उसे बराबर करने का काम किया। 'प्राच्य निरंकुशतावाद' ने भले कुछ समय के लिए राष्ट्र और राष्ट्रीयता बोध के लिए प्रतिपक्ष की भूमिका निभाई हो लेकिन बढ़ती जागरूकता और लगातार सामने आते पुरातात्विक अभिलेखों से इसे बहुत दिन तक दबाया नहीं जा सकता था। 1837 ई. में जेम्स प्रिसेप के द्वारा ब्राह्मी लिपि को पढ़ लिए जाने से इस दिशा में प्रगति के नये द्वार खुल गए थे। दूसरी ओर ईस्ट इंडिया कंपनी के बढ़ते साम्राज्य के साथ समस्याओं का समानुपातिक संबंध स्थापित हो गया था। विधि व्यवस्था की इन समस्याओं को जेम्स मिल जहां कानून बनाकर हल करने के लिए फिक्रमंद था। 'वहीं इवैजिलिकल (चार्ल्स ग्रांट) इस देश को ईसाई बनाकर ऐसा करना चाहते थे। इसलिए स्वभावतः उन्होंने यह साबित करने का प्रयत्न किया कि भारत के पिछड़ेपन का कारण हिंदू धर्म है।'⁷⁰ इसका एक परिणाम यह हुआ कि इतिहास के अनेक अध्ययनपरक पक्षों में धर्म भी सचेत तौर पर शामिल कर लिया गया।

इतिहास लेखन की यह प्रक्रिया संभवतः इसी दिशा में विकासमान होती अगर स्वयं इतिहास (समय) ने ही हस्तक्षेप नहीं किया होता। 1857 ई. के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन ने न सिर्फ अंग्रेजों की इतिहासनीति को बल्कि पूरे प्रशासनिक एजेंडे को पुनर्संयोजित करने पर विवश कर दिया। औपनिवेशिक संदर्भ में 1857 को एक विभाजक रेखा और प्रस्थान बिंदु के तौर पर देखा जा सकता है। पहली बार अखिल भारतीय स्तर पर 'मुक्तिकामी चेतना' की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। जिसे अखिल भारतीय स्तर पर आधुनिकता बोध के उदय से जोड़कर देखा जा सकता है। इसी वर्ष भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन का अंत होता है और महारानी विक्टोरिया का शासन आरंभ होता है। 1857 से अंग्रेजों के औपनिवेशिक शासन की एक नई पारी आरंभ होती है। पहले से चली आती प्रशासकीय नीतियों में बदलाव दृष्टिगत होता है। 1857 के बाद अंग्रेजों की इतिहासदृष्टि, शिक्षा नीति और सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक नीतियों को नये सिरे से पुनर्नियोजित किया। इन क्षेत्रों में कौन से बदलाव दृष्टिगत हुए इसको एक एक कर के देखते हैं।

1857 के बाद अंग्रेजों की इतिहास नीति का जोर प्राचीन भारत से मध्यकालीन भारत पर चला जाता है। 1857 के दस साल पूरा होते होते 1867 में एम. एच. इलियट और डाउसन द्वारा लिखी गई इतिहास शृंखला 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियंस' का पहला खंड प्रकाशित होता है। इस इतिहास शृंखला के बारे में दो बातें विचारणीय हैं, एक तो शीर्षक और दूसरा निष्कर्ष। शीर्षक अंग्रेजों की मासूमियत और तटस्थता का प्रचार करता जान पड़ता है। 'भारत का इतिहास उनके अपने इतिहासकारों की जुबानी' मानो 'स्थिर संपर्ण है हमारा', इससे हम अंग्रेजों को कुछ लेना देना नहीं है। लेकिन इसके निष्कर्षों पर गौर करें तो अंग्रेजों की सारी तटस्थता तार तार हो जाती है। इरफान हबीब उनकी इस साम्राज्यवादी नीति पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि 'ब्रिटिश इतिहासकारों में एम. एच. इलियट मध्यकालीन भारतीय इतिहास का सबसे बड़ा विद्वान था। अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया एज टोल्ड बाय इट्स ओन हिस्टोरियंस' की मूल भूमिका में मुसलमानों के साथ विवाद करने पर हिंदुओं के कत्ल किए जाने, जुलूसों, पूजा अर्चना आदि के विरुद्ध प्रतिबंध लगाने तथा अन्य असहिष्णुतापूर्ण उपायों का इस्तेमाल करने, प्रतिबंध लगाने तथा संपत्ति हड़पने, हत्याएं तथा नरसंहार करने और इन सारी बातों को लागू करवाने वाले अधिकारियों की विषयासक्ति तथा मद्यपता की उसने एक झलक प्रस्तुत की है।'⁷¹ इसके बाद तो जैसे इन निष्कर्षों के सामने आने का सिलसिला सा चल पड़ा। अब इतिहास ग्रंथों

की मुख्य स्थापना यह थी कि अंग्रेजों ने इस देश को निरंकुश शासकों से मुक्त कराकर सुशासन और सभ्यता की राह दिखलायी। 1904 ई. में विसेंट स्मिथ की 'अर्ली हिस्ट्री ऑव इंडिया' प्रकाशित हुई जो रोमिला थापर के अनुसार 'विसेंट स्मिथ जो शायद सबसे अधिक जाने माने प्रशासक इतिहासकार हैं, उनके इतिहासलेखन की बुनियादी मान्यता यह थी कि अंग्रेजी हुकूमत ने भारत में अत्याचारी निरंकुश राजाओं की परंपरा समाप्त कर दी।'⁷² यद्यपि भारतीय संदर्भ में योरोपीय इतिहास दृष्टि आरंभ से ही (जेम्स मिल, 1817) तथाकथित निरंकुश शासकों की मौजूदगी को सत्यापित करती रही है लेकिन 1857 के बाद अंग्रेजों की संशोधित इतिहासदृष्टि का यह अंतर उल्लेखनीय जान पड़ता है कि 1857 से पहले यूरोपीय इतिहासदृष्टि भारतीय शासकों की निरंकुशता और ग्राम्य समाज की अपरिवर्तनशीलता के मूल में पूरी व्यवस्था को देखती थी 1857 के बाद इस निरंकुशता के मूल में धार्मिक विभेद को आधार बनाकर सांप्रदायिकता की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया जाने लगा।

इस तरह 1857 के बाद यूरोपीय इतिहास दृष्टि खलनायक के तौर पर मुगलकालीन शासकों को और अजनबी कारकों के लिए प्राचीन भारत को लक्षित करती रही। इसके लिए इतिहास लेखन में जिस युक्ति का उपयोग किया गया उसको रेखांकित करते हुए रोमिला थापर लिखती हैं कि 'औपनिवेशिक अवधारणा में प्राचीन और आधुनिक भारत दोनों के बारे में अवधारणाएं शामिल हैं। इतिहास के एक काल का प्रक्षेपण दूसरे काल में करना कई तरह से अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में भारत के बारे में हुए यूरोपीय अध्ययन की विशेषता थी।'⁷³ इस ऐतिहासिक युक्ति के साथ भारतीय इतिहास संबंधी लेखन में 'ग्रामीण समुदाय' और 'निरंकुश शासकों' पर जोर देने का सिलसिला उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के आरंभ में जारी रहा। 'इस काल के कई इतिहासकार प्रशासक थे (जैसे एस. जे. स्ट्रेशी और ए. लायल) जिन्हें पूरा विश्वास था कि ब्रिटिश प्रशासन का जो रूप है वह भारतीय समाज को बदलकर बेहतर बनाने का काम कर रहा है।'⁷⁴ इन मतों को प्रश्नांकित करने का काम 1870 के आसपास आर्थिक मसलों पर भारतीयों की चिंता से आरंभ होता है। 1876 में दादाभाई नौरोजी की किताब 'दि पोवर्टी ऑव इंडिया' का प्रकाशन होता है। उसके बाद भारत की निर्धनता के मूल में निहित कारणों की पड़ताल आरंभ होती है। इस तरह आर्थिक राष्ट्रवाद के उद्भव के साथ राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों का उत्थान देखने को मिलता है। लेकिन इतिहास लेखन के क्षेत्र में राष्ट्रवादी प्रवृत्तियों की स्पष्ट पहचान का सिलसिला 1920 के आसपास अपनी सीमाओं के साथ आरंभ होता है। इसे लक्ष्य करते हुए रोमिला थापर लिखती हैं कि 'चुनौती का स्वर राष्ट्रवाद की ओर से उठा और धीरे धीरे इतिहास लेखन के क्षेत्र में उसके अपने कुछ बौद्धिक सूत्र बन गए। (जैसे प्रारंभिक भारतीय राष्ट्रवाद ने यूरोप के साथ संबंध पर जोर देने की अपेक्षा भारत के आर्यों के गुणगान करने की ओर अधिक ध्यान दिया।) लेकिन भारतीय इतिहासकारों की अगली पीढ़ी एक मूलभूत मान्यता की दृष्टि से अपने बुजुर्ग इतिहासकारों से भिन्न थी। 1920 और 1930 वाले दशकों में लिखने वाले इतिहासकारों पर राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव पड़ा, जो उनके ऐतिहासिक चिंतन में प्रतिबिंबित हुआ। एच.सी. रायचौधुरी, के.पी. जायसवाल, आर.सी. मजुमदार, आर. के. मुखर्जी और एच. सी. ओझा प्रभृत विद्वान मुख्य रूप से राजनीतिक राजवंशीय इतिहास ही लिखते रहे परंतु उनकी व्याख्याएं स्पष्ट रूप से राष्ट्रवादी दृष्टिकोण पर आधारित थीं।'⁷⁵ 1920-30 के दौर में राष्ट्रवादी आंदोलनों के साथ जो राष्ट्रवादी इतिहास लेखन जोर पकड़ता है, उस राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की एक सीमा यह रही है कि 'राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने इतिहास के प्रति समग्रतावादी दृष्टिकोण अपनाए की बजाय तत्कालीन संदर्भों में राष्ट्रीय एजेंडे के अनुरूप ऐतिहासिक स्थापनाओं के समर्थन विरोध की राह अपनाई और

एक अर्थ में राष्ट्रवादी विचारधारा ने अपने प्रश्नों के स्वरूप की सीमा बांध दी।⁷⁶ 1885 ई. में स्थापित अखिल भारतीय कांग्रेस से इतर 1906 में मुस्लिम लीग और 1925 ई. राष्ट्रीय सेवक संघ की स्थापना को इसके राजनीतिक धरातल पर फलितार्थ होने के रूप में देखा जा सकता है। इस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए 1930-40 के दशकों में औपनिवेशिक भारतीय इतिहास लेखन में जो परिवर्तन आया उसे समझा जा सकता है। 'तीसोत्तर तथा चालीसोत्तर दशकों में भारतीय राजनीति में जो सांप्रदायिक वातावरण छाया हुआ था, उसने प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय इतिहास को दूषित किया। गुप्त काल 'स्वर्ण युग' बहुत हद तक इसलिए बन गया कि वह पुनर्जाग्रत हिंदुत्व का काल था। भारत के बहुत से दोषों के लिए 'मुस्लिम आक्रमण और शासन' को जिम्मेदार बताया गया।⁷⁷ इसका नतीजा यह निकला कि 'भारत का सारा गौरव प्राचीन हिंदू अतीत के खाते में डाल कर उस मध्यकाल को किसी भी तरह के गौरव से वंचित कर दिया गया जिसमें इस्लाम भारत आया था। इससे नतीजा क्या निकला? मध्यकाल में हिंदू मुसलमानों के कई पीढ़ियों तक एक साथ रहने और परस्पर आदान प्रदान से जो नई परिस्थितियाँ बनी थीं, उनमें बादशाह के अलावा कई संतों ने भी हिंदू मुसलमान, दोनों के लिए सामान्य मार्ग निकालने की कोशिश की थी, जो भले असफल हो गई हो, लेकिन 19वीं सदी के नवजागरण में उस परंपरा का कोई निशान नहीं मिलता है। यह बात फिर भी उतनी दुखद नहीं है, जितनी यह कि नवजागरण की चेतना का पूरे मध्ययुग से किसी तरह का संबंध नहीं बन सका।...हम अपनी मूल्यवान 'मध्यकालीन' बौद्धिक विरासत से कट गए। 19वीं सदी में अंग्रेजों और औपनिवेशिक इतिहास दृष्टि से 15वीं-16वीं-17वीं सदी की बौद्धिक सांस्कृतिक परंपराओं की निरंतरता को अचानक लगभग पूरी तरह से भंग कर दिया। शायद भारतीय इतिहास के और किसी भी कालखंड में परंपराओं का इस तरह टूटना नहीं दिखायी देता जैसा 19वीं सदी में। इसकी नोटिस लेते हुए सुमित सरकार ने लिखा है कि मुगलकालीन ज्ञान की परंपरा में, खासकर फारसी की ज्ञान परंपरा में ऐसा बहुत कुछ रचा गया था जो हमारी बौद्धिक विरासत थी और हमारे नवजागरण के अनुकूल भी था। जैसे फारसी का 'दबिस्ताने मजाहिब' जैसा ग्रंथ जिसमें भारत के विभिन्न धर्मों को लेकर होने वाली बहसों के साथ साथ हिंदू मुसलमान, दोनों के लिए अकबर द्वारा प्रस्तावित साझे धर्म का परिचय दिया गया था।'⁷⁸ इस मध्यकालीन बौद्धिक विरासत के अन्य पहलुओं की चर्चा करते हुए इरफान हबीब ने 'मध्यकालीन भारत में चिंतनशक्ति और विज्ञान की दशा दिशा' का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि '1616 ई. में जहांगीरी दरबार के विद्वानों से अपनी बातचीत में सर टॉमस रो ने यह लक्षित किया कि मुस्लिम मुल्ला दर्शनशास्त्र और गणित के विषय में थोड़ी जानकारी रखते हैं। वे ज्योतिष विद्या के महापंडित हैं तथा अरस्तू, यूक्लीड, इब्न रुश्द (एवरोस) और अन्य लेखकों के विषय में बात करने की क्षमता रखते हैं। यदि अकबर के शासनकाल में क्लासिकीय वैज्ञानिक परंपरा में नये सिरे से जाग्रत होने वाली रुचि महत्वपूर्ण है तो इस रुचि अथवा प्रवृत्ति का आगे न बढ़ पाना गंभीर विचार विमर्श की मांग करता है।'⁷⁹ इस रुचि अथवा प्रवृत्ति के आगे न विकसित हो पाने के लिए एक हद तक तो अंतिम दौर के मुगल शासक जिम्मेदार रहे। इन और ऐसे अनेक छोटे बड़े कारणों से प्राच्यविदों के अध्ययन अनुसंधान से सामने आए नतीजों ने भारतीय मध्यकाल को यूरोपीय इतिहास दृष्टि के सांचे में रख कर भारतीय संदर्भ में 'डार्क एज' में तब्दील कर दिया। फलतः औपनिवेशिक प्रभावों के बीच विकसित होते राष्ट्रवाद ने अपनी ऐतिहासिक सीमाओं के कारण भारतीय मध्यकाल को भी तथाकथित 'डार्क एज' में बदलने का काम किया।

लेकिन 1930 के आसपास विकसित होती इतिहास दृष्टि का एक सुखद और अधिक महत्वपूर्ण परिणाम यह रहा कि 'क्षेत्रीय तथा स्थानीय इतिहासों में रुचि में अभिवृद्धि हुई। बंगाल,

महाराष्ट्र और प्रायद्वीपीय भारत के अन्य विभिन्न प्रदेशों के क्षेत्रीय इतिहासों का अध्ययन अधिक आम हो गया।⁸⁰ इसमें दो बातें ध्यान देने लायक हैं। एक तो प्रादेशिक और क्षेत्रीय इतिहास लेखन का आरंभ बंगाल, महाराष्ट्र और अन्य प्रायद्वीपीय भारत में हुआ। दूसरा इन प्रादेशिक इतिहास लेखनों ने भी अपने स्वरूप की सीमा बांध ली थी। उस समय इन प्रादेशिक नवजागरणों की अवधारणा का भ्रूण विकसित हो रहा था। बंगाल और महाराष्ट्र में इन नवजागरणों ने पहले जन्म लिया क्योंकि नवजागरण के विचार को न सिर्फ उन्होंने ग्रहण पहले किया था बल्कि उसके प्रसव के लिए जिस 'नेटिक्स इलीट' की जरूरत थी वह भी वहां पहले तैयार हुए थे। इसकी वजह यह थी कि 'प्रेसिडेंसियों' में आधुनिक ढंग की शिक्षा का प्रचार प्रसार हिंदी भाषी प्रदेशों की तुलना में पहले आरंभ हो गया था। जैसे कलकत्ता, बंबई और मद्रास में जहां विश्वविद्यालयों की स्थापना 1857 में हुई थी, वहीं हिंदी भाषी प्रदेश में पहला विश्वविद्यालय 1887 में इलाहाबाद में खुला। परिणामतः 'नेटिक्स इलीट' का निर्माण भी हिंदी भाषी क्षेत्रों में बाद में हुआ। इसके कई परिणामों में से एक यह भी हुआ कि शिक्षा के कम प्रचार प्रसार के कारण यहां समाज सुधार और धर्म सुधार आंदोलनों का वैसा प्रभाव नहीं पड़ा जैसा बंगाल या महाराष्ट्र में पड़ा। जो भूमिकाएं बंगाल, महाराष्ट्र में समाजसुधारक और धर्मसुधारक निभा रहे थे, हिंदी भाषी प्रदेशों में वही भूमिकाएं अपने अंतर्विरोधों के साथ साहित्यकारों ने निभायीं। और चूंकि हिंदी भाषी प्रदेश में इन भूमिकाओं को साहित्यकारों ने निभाया तो इन साहित्यकारों ने जैसे स्वयं बंगला और मराठी नवजागरण को अपना रोल मॉडल मान रखा था। हिंदी नवजागरण के नाम पर जो प्रवृत्तियां उभरकर बाद के दिनों में सामने आईं उनका प्रेरणास्त्रोत भी बंगाल और महाराष्ट्र ही रहा। और बंगाल तथा महाराष्ट्र स्वयं को पश्चिमी ज्ञानोदय की परंपरा में विकसित कर रहे थे। इन प्रादेशिक नवजागरणों की अवधारणा का अवधारणात्मक विकास भारत की आजादी के बाद हुआ। स्वतंत्रताप्राप्ति के आसपास औपनिवेशिक इतिहास लेखन जहां राष्ट्रवादी दिशा में बढ़ता हुआ प्रादेशिक और क्षेत्रीय इतिहास लेखन के क्षेत्र में पैर बढ़ा रहा था तो वहीं दूसरी ओर 'ऐतिहासिक व्याख्या के राष्ट्रवादी चरण के फलस्वरूप जाहिरा कारणों से भारतीय इतिहासकार बड़ी संख्या में अपना इतिहास आप लिखने में प्रवृत्त हुए। इसके साथ ही ऐसा लगता है, प्राचीन भारतीय इतिहास में यूरोपीय भारतविदों की रुचि क्षीण होती गई, जिसका अपवाद सिर्फ फ्रांस था।'⁸¹ इस तरह स्वतंत्रताप्राप्ति के साथ नवजागरण काल का एक चरण पूरा होता है जिसके अंतर्गत इतिहासलेखन के आरंभिक प्रयासों में साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक इतिहास बोध के द्वारा भारतीय आधुनिकता बोध को संस्कारित होता हुआ देखते हैं और फिर आधुनिकता के तीसरे चरण के आसपास आधुनिक बोध के द्वारा इतिहास बोध को प्रभावित करने की प्रक्रिया का सूत्रपात होता है। हांलाकि यह प्रयत्न भी एक सीमा के भीतर ही रहकर किए गए। पूरे देश की तुलना में यह सीमित प्रतिरोध अपने अंतर्विरोधों के साथ पहले बंगाल और फिर महाराष्ट्र में घटित हुए। ऐसा क्यों और कैसे हुआ? उसको प्रक्रिया के स्तर पर घटित होते हम देख चुके हैं। लेकिन अवधारणा के रूप में इसके विकास की गाथा एक नवजागरणोत्तर परिघटना है। उत्तर औपनिवेशिक इतिहास लेखन में औपनिवेशिक इतिहासदृष्टि से मुक्ति के प्रयासों को देखा जा सकता है, पर वह एक अलग लेख का विषय है, उस पर फिर कभी।

संदर्भ सूची

1. सुधीश पचौरी, आलोचना से आगे, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000, पृ. 18।
2. बेरी स्मार्ट, आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता और वर्तमान, समकालीन सृजन, शंभुनाथ (संपा), अंक 21, 2002, पृ. 155।
3. देवेश विजय (संपा),

प्रारंभिक आधुनिक यूरोप में सांस्कृतिक परिवर्तन, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 32।

4. पार्थसारथि गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2006, पृ. 4।

5. Charles Homer Haskins, *The Renaissance of the twelfth century*, BS Publishers, 2007, P. 3।

6. वीर भारत तलवार, इतालवी रिनसांस में अतीत की खोज और मानववाद, आलोचना सहस्त्राब्दी अंक-25, पृ. 18।

7. R.W.B.Lewis, *DANTE : a life*, Phoenix Paperback, 2001 P. 50।

8. Ibid, P. 122।

9. Ibid, P. 180।

10. पार्थसारथि गुप्ता, वही, पृ. 10।

11. वीर भारत तलवार, वही, पृ. (19-23)।

12. पार्थसारथि गुप्ता, वही, पृ. 9।

13. वीर भारत तलवार, वही, पृ. 23-24।

14. पार्थसारथि गुप्ता, वही, पृ. 10-15।

15. Ibid – 54-55।

16. Ibid – 481।

17. Ibid – 241।

18. र. वि. साखकर, वही, पृ. 1।

19. पार्थसारथि गुप्ता, वही, पृ. 12।

20. वही, पृ. 36।

21. टॉमस मूर यूटोपिया, डॉ. काशी प्रसाद (अनुवादक), राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2007, पृ. 5।

22. पार्थसारथि गुप्ता, पृ. 30।

23. वही, पृ. 32।

24. वही, पृ. 18।

25. Paul Hyland, *Olga Gomej Fancesca Greensides (edited)–The Enlightenment:A sourcebook and reader*, Routledge, 2003, P. 4-5.

26. Aidan Day, *Romanticism*, Routledge, 1996, P. 64-65.

27. समकालीन सृजन, शंभुनाथ (संपा), पृ. 99।

28. वही, पृ. 99 100।

29. अजय तिवारी, आधुनिकीकरण पर पुनर्विचार, तद्भव, अंक-11, अगस्त 2004, संपादक अखिलेश, पृ. 32।

30. रवि सिन्हा, आधुनिकता और आधुनिकताएं, संधान, सुभाष गाताड़े (संपा), अंक-3, अक्टूबर दिसंबर 2001, पृ. 16।

31. *The Enlightenment:A sourcebook and reader*, Ibid, 2003, P. 33-34.

32. भूपेंद्रनाथ सान्याल, फ्रेंच साहित्य का इतिहास, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, हिंदी समिति प्रभाग, 1979, पृ. 150।

33. Sudha P. Padya, *Praffula C. Kar (edited)-Interdisciplinary Perspective on Modernity*, Pencraft International, Delhi, P. 52.

34. इमानुएल कॉंट प्रबोधन क्या है?, संधान अंक-3, अक्टूबर दिसंबर 2001, सुभाष गाताड़े (संपा), पृ. 29।

35. सुधीश पचौरी, पृ. 21।

36. वही, पृ. 22।

37. रवि सिन्हा, वही, पृ. 18।

38. Sudha P. Padya, *Praffula C. Kar (edited)*, P. 53.

39. Ibid, P. 53.

40. Ibid, P. 53.

41. सुधीश पचौरी, पृ. 16।

42. Sudha P. Padya, *Praffula C. Kar (edited)*, P. 57.

43. Ibid, P. 56.

44. विजय कुमार अंधेरे समय में विचार, संवाद प्रकाशन, मेरठ 2006, पृ. 29-31।

45. Sudha P. Padya, *Praffula C. Kar (edited)*, P. 56.

46. Ibid, P. 55.

47. विजय कुमार, पृ. 56।

48. Sudha P. Padya, *Praffula C. Kar (edited)*, P. 48.

49. Ibid, P. 57-59.

50. विजय कुमार, पृ. (120-121)।

51. वही, पृ. 125।

52. वही, पृ. 65।

53. Sudha P. Padya, *Praffula C. Kar (edited)*, P. 11.

54. बेरी स्मार्ट, वही, पृ. 155।

55. सुधीश पचौरी, पृ. 19।

56. राबर्ट डब्ल्यू मैक्वेस्नी, इलेन मिक्सिन्स बुड, जॉन बेलेमी फॉस्टर (संपा) पूंजीवाद और सूचना का युग, ग्रंथशिल्पी प्रका., 2006, पृ. 58, 61।

57. रवि सिन्हा, वही, पृ. 12।

58. वीरभारत तलवार, नाम में क्या रखा है?, तदभव-21, अखिलेश (संपा), पृ. 29।

59. रोमिला थापर, आदिकालीन भारत की व्याख्या, ग्रंथशिल्पी, 2008, पृ. 2।

60. वही, पृ. 1।

61. वही, पृ. 2।

62. वीरभारत तलवार, वही, तदभव-21, पृ. 34।

63. रोमिला थापर, वही, पृ. 2।

64. Braj Ranjan Mani, *Debrahmanising history*, Manohar Publication, 2005 p. 192.

65. मुबारक अली, इतिहासकार का मतांतर, राजकमल प्रकाशन, 2002, पृ. 19।

66. F. Max Muller, *India What can it teach us ?*, Vishv Books, New Delhi, P 101 onwards.

67. रोमिला थापर, वही, पृ. 2।

68. वही, पृ. 22 23।

69. रोमिला थापर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, ग्रंथशिल्पी, 2001, पृ. 192।

70. वही, पृ. 11।

71. इरफान हबीब, भारतीय इतिहास में मध्यकाल, ग्रंथशिल्पी, 2002, पृ. 12।

72. रोमिला थापर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 13।

73. रोमिला थापर, आदिकालीन भारत की व्याख्या, पृ. 20।

74. रोमिला थापर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 12।

75. वही, पृ. 15-16।

76. रोमिला थापर, आदिकालीन भारत की व्याख्या, पृ. 7।

77. रोमिला थापर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 18।

78. वीर भारत तलवार, तदभव-21, अखिलेश (संपा), पृ. 36।

79. इरफान इबीब, भारतीय इतिहास में मध्यकाल, पृ. 143।

80. रोमिला थापर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 19।

81. वही, पृ. 23

शहर की आंखें

जितेंद्र भाटिया

वह जानता है कि वहां कुछ नहीं है, फिर भी उसकी आंखें बार बार पीछे की ओर लौटती हैं। पिछले कई महीनों से उसे लग रहा है कि कोई उसके हर कदम, हर हरकत पर नजर रखे हुए है। उसके लिए पीछे घूमकर किसी एक को पहचानना मुश्किल है, क्योंकि भीड़ में वे सब एक जैसे दिखाई देते हैं। लेकिन फिर भी कुछ है जो बदल गया है। उसे लोगों से मिलते हुए एक अनकहा जोखिम महसूस होने लगा है। पहले सारी दिक्कतों के बावजूद वह कभी कभी हंसता था। अब नजदीक के साथियों के बीच भी डर लगता है। कल रात सोने से पहले उसने झुग्गी के कोने में जमीन पर कुचैली चादर ओढ़कर लेटी अपाहिज मां को बताया था तो उसने गहरी सांस खींचकर कहा था कि यह उसका वहम है। उन जैसे लोगों में भला किसी की क्या दिलचस्पी हो सकती है?

उसके पास राशनकार्ड नहीं है और पिछले साल कंपनी का अस्थायी आईडी कार्ड बनवाने के लिए भी उसे कई पापड़ बेलने पड़े थे। उसकी झुग्गी नाले के पास से गुजरती पुरानी सड़क के किनारे पर है। सड़क पर पुल बन रहा है, जिसकी वजह से सड़क के उस हिस्से का इस्तेमाल बंद हो गया है। सात आठ परिवारों ने इसका फायदा उठाकर पुल की आड़ में झुग्गियां खड़ी कर ली हैं। यह एक कच्चा इंतजाम है, लेकिन जिस सूरत में पुल ठप्प पड़ा है, उसे देखते दो तीन सालों तक झुग्गियां सलामत समझी जा सकती हैं। रामुला अपने घर का सब कुछ है। एक हादसे में पिता नहीं रहे और गठिया से जकड़ी मां को चलने में भी मुश्किल होती है। जिंदगी ने उसे घर बसाने की फुर्सत नहीं दी। पिता के रहते उसने तीन सालों तक सुल्तानपुर के नाइट कॉलेज में पढ़ाई की है, लेकिन उनके गुजर जाने के बाद यह सिलसिला खुद ब खुद बंद हो गया।

किसी वक्त उसकी बस्ती के पीछे दूर तक आक, बबूल और सरकंडों के बंजर जंगल थे। कहते हैं कि यह सारा इलाका महाभारत के वक्त द्रोणाचार्य को पांडवों से गुरुदक्षिणा में मिला था।

इस हिसाब से उसके पुरखे एकलव्य के कटे हुए अंगूठे की राख भी उस धरती में कहीं होगी। पंचायत के सिरफिरे नास्तिक इसे एक सिरे से खारिज करते हुए कहते हैं कि गुरु शुरू कुछ नहीं, यहां गुड़ का बहुत बड़ा बाजार था, जिससे इसको यह वर्तमान नाम मिला। अकबर ने रेवाड़ी, सुहर पहाड़ी और तिजारा की तरह इसे भी दिल्ली का एक सूबा बना लिया था। मगर कई लोगों को तो इतिहास में अकबर की मौजूदगी से भी सख्त ऐतराज है। उनका मानना है कि अकबर से भी पहले के समय में जदुवंश के मेवाती राजपूतों ने मोहम्मद घोर की सेनाओं से यहां लंबी लड़ाई लड़ी थी। बाद में महाराणा प्रताप की तरह इन्होंने मुगलों को भी चुनौती दी। दिल्ली पर राज होने के बाद अंग्रेजों ने सुरजी, अंजीनगांव और सिंधियाओं से समझौता कर इस बंजर जमीन को स्थानीय आकाओं के हवाले कर दिया था। रियासतदार 1857 की गदर में आम जनता के रुख को भांप रातोंरात अंग्रेजों से बहादुरशाह जफर की ओर पलट गए थे। मगर क्रांति के कुचले जाने के बाद ये फिर से अंग्रेजों के पाले में लौट आए। यहां से आगे बदहली का लंबा दौर था जिसमें सूखे और अकाल से पता नहीं कितनों की जानें गईं। प्रदेश के अंग्रेज कमिश्नर फ्रैंक ब्रेयने ने बंजर खेतों में घटिया ज्वार उगाने वाले अनपढ़ मेओ आदिवासियों के बीच कुएं की पनचकियों से खेती में सुधार लाने की नाकामयाब कोशिश की थी, लेकिन आदिवासी खासे काहिल और कूढ़मगज साबित हुए और यूं भी उनके कुओं में दरअसल पानी था ही नहीं। बंटवारे के वक्त दंगाइयों ने पांच मुसलमान गांव जलाकर खाक कर दिए थे तो पालम पर विशेष विमान से माउंटबैटन पति पत्नी नजदीक के अस्पताल में भर्ती आहतों को देखने आए थे। देश की आजादी के बाद यह लड़ाई देवी देवताओं से जवानों की ओर घूम गई थी। दक्षिणी पंजाब के इस इलाके में जब पंजाबियों और गुरुमुखी बोलने वाले सिखों को हिंदूवादी आर्यसमाज और हरियाणवी जाटों के सामने करारी हार का सामना करना पड़ा था तो आखिरकार पंजाब के इस हिस्से को तोड़ एक नए प्रांत की शक्ल दे दी गई थी। लेकिन इससे भी वहां की सांस्कृतिक और भौगोलिक आबोहवा में कोई खास परिवर्तन नहीं आया था। अलस्सुबह सरकंडों के जंगल में रामुला की मां सहित उकड़ू पाए जाने वाले उन झुग्गीवालों को इस धरती के लंबे इतिहास की जानकारी शायद ही हो, लेकिन फिर भी उन्हें इसकी सांस्कृतिक पहचान का एक छोटा सा गैरजरूरी हिस्सा मानने में कोई हर्ज नजर नहीं आता।

मोटे तौर पर आजादी के बाद शहर ने हैरतअंगेज तरक्की की है और इसका श्रेय राजनेताओं से लेकर दूरदर्शी भू मफियाओं, विदेशी निवेशकों और चरित्र निर्माण के लिए राजनीति में उतरे देश उद्धारकों को जाता है। लेकिन बाहरी खोल के भीतर वही पुराना ढांचा है। छोटे मोटे मुजरिमों पर लाठी भांजने वाले तोंदिल पुलिसमैन आज भी उन पुरानी बैरकों के सामने धूप में निठल्ले धूप सेंकते नजर आते हैं। सड़कें पहले से ज्यादा चौड़ी हो गई हैं, लेकिन टोल नाके पर रुकी हुई गाड़ियों की लंबी कतारें अब सुबह शाम राजधानी की सरहदों को छूने लगी हैं। रुकी हुई गाड़ियों के हुजूम में भिखमंगों और मौका ताड़कर खुले शीशे से सामान पार करने वालों के कई जत्ये सक्रिय नजर आते हैं। रातोंरात उग आने वाली चालीस पचास पचास मंजिलों की नीले कांच से ढंकी ऊंची इमारतें अब हर तरफ आ गई हैं, लेकिन इनके साये में अंधेरा घिर जाने के बाद अकेले चलते हुए लोगों को डर लगता है और उनका भय बेवजह नहीं है। रामुला की झुग्गी बस्ती में ही तीन चार लड़कों का गिरोह रात के समय लोगों को छुरा दिखाकर बटुए छीनने के धंधे में है। पुलिसवालों के साथ उसका हफ्ता बंधा हुआ है।

रामुला अपने शहर से हमेशा एक दूरी बनाकर चलता है। शहर के चेहरे पर आ रहे बदलाव में उसका कोई खास लेना देना नहीं है। उसका वास्ता सिर्फ अपने काम और इस काम के बदले मिलने वाले पैसों से है जिनसे उसका घर चलता है। दो हफ्तों में एक बार जब उसके हाथ में पैसे

आते हैं तो वह उन सारे अदृश्य लोगों का शुक्रिया अदा करता है जिनके कारण वह काम पर है। वह उन्हें पहचानता नहीं है और वे भी उससे नावाकिफ हैं, लेकिन फिर भी उनकी टेबलों और दरारों से उसका रोजमर्रा का रिश्ता है। उसके पहुंचने से पहले ही वे जा चुके होते हैं, पर उनकी उपस्थिति का अहसास फिर भी रामुला के साथ रहता है। वह सम्मिलित रूप से उन सबका शुक्रगुजार है क्योंकि उन्हीं के कारण वह और उसकी मां जिंदा हैं...

अंग्रेजों द्वारा 'काहिल और कूटमगज' करार दी गई खलकत ने आजादी के बाद जब अदबी मौलाना आजाद को अपना नेता चुना था तो वहां कुछ समय के लिए एक नयी उम्मीद जगी थी, लेकिन वे ताकतें इस उम्मीद से कहीं बड़ी और ताकतवर थीं। लिहाजा मौलाना की मौत के बाद कुछ ही वक्त में सब कुछ फिर उसी पुराने ढर्रे पर लौट आया था। यही वह समय था जब लुटयेन की दिल्ली में रहने वाले छोटे राजकुमार ने छोटे लोगों के लिए कुछ बड़ा करने की गरज से एक रात छोटी कार का सपना देखा था। सपने में कुछ दैविक जरूर रहा होगा क्योंकि यही सपना उन्हें लगातार कई रातों तक आता रहा था। ऊबड़खाबड़ जमीन की पगडंडियों पर किसान तब भी पुरानी साइकिलों के हैंडल पर ज्वार की रोटियों का थैला लटकाए खेतों पर जाते थे। साइकिल को मोटरकार में बदलने के लिए पहले एक अदद पक्की सड़क की जरूरत थी। लेकिन सड़क तक सिमटने से सपना उतना असरदार नहीं रह जाता। लिहाजा राजकुमार ने एक अदद एलओसी निकलवाकर अपने पुराने दोस्त से इसके लिए जमीन मांगी थी। भिवानी की नामालूम कचहरी के 'फटीचर वकील' से प्रदेश का मुख्यमंत्री बनने वाले दूरदर्शी मित्र ने जमीन देकर एक ही चाल में राजकुमार और रानी, दोनों का विश्वास हासिल कर लिया था। आगे चलकर उन्हें इस वफादारी का ईनाम भी मिला, लेकिन वह दीगर किस्सा है। छोटी कार का नक्शा उसके प्रेरणास्रोत पवनपुत्र की तरह काफी हद तक हवा में था। यूं भी राजकुमार को कारों के साथ साथ हवाईबाजी का भी जुनून था। उड़ने के इसी शौक ने जब एक दिन उनकी जान ले ली तो चंद फिजूल नक्शों, गुलाबी बाग के पिछवाड़े में जंग खाए 'चैसिस', जामा मस्जिद के कबाड़ीखाने से उठाए एक अदद मोटरसाइकिल इंजन और बबूल के कांटों से पटी 297 एकड़ बंजर जमीन के पट्टे के साथ ही छोटी कार का वह सपना भी चुपचाप दफना दिया गया। इसके कई सालों बाद एक शुभचिंतक और सरकार को जब फिर से यह सपना याद आया तो उन्होंने इस बार राजकुमार की स्मृति और अपनी काबिलियत के मद्देनजर जापानियों को सपने का हिस्सेदार बना लिया। संकटमोचक या पवनपुत्र का यह नया अवतार इस बार धरती पर उतरा तो कुछ ही समय में बंजर खेतों में मशक्कत के बाद घटिया ज्वार उगाने वाले किसानों को अपने हाथों में हलों के टूटे हुए फाल की जगह स्पैनर और पेचकस थमे दिखाई दिए थे। अपनी फितरत के मुताबिक जापानियों ने कालांतर में सरकार को बाहर का रास्ता दिखा उद्योग पर अपनी गिरफ्त कस ली और दस बीस मौतों, चंद लंबी हड़तालों, आगजनी, तोड़फोड़ और मारपीट की वारदातों के बाद जापानी आखिरकार उस धरती पर अपनी सल्तनत बिठाने में कामयाब हो गए।

बबूल और सरकंडों के जंगलों के साथ वे झुग्गी बस्तियां भी अब धीरे धीरे पीछे की ओर धकेली जाने लगी थीं। सरकंडों के जंगल जहां नश्वर थे, वहीं झुग्गियां शाश्वत थीं। नीले कांच से ढंकी ऊंची इमारतें उगकर जंगल को खा जाती थीं, लेकिन झुग्गियों का वे कुछ बिगाड़ नहीं पाती थीं। किसी अमीबा की तरह अपना आकार बदलने के बाद वे एक जगह से हट किसी दूसरी जगह उग आती थीं और यह सिलसिला लगातार बना रहता था।

हर दूसरे सोमवार रामुला को पखवाड़े की तनखाह मिलती थी। यह दिन उसके लिए खास होता था। लेकिन इस बार रामुला के भीतर बेचैनी थी। मां के आश्वासनों के बावजूद एक अनकहा

खौफ किसी जिद्दी ततैये की तरह उसके पीछे पड़ा हुआ था। गले में पीले पट्टे का कार्ड टंगा होने के बावजूद उसे डर बना रहता कि किसी दिन कुछ हुआ तो वह धर लिया जाएगा। आम तौर पर सुल्तानपुर से एमजी रोड तक का आठ नौ किलोमीटर का फैसला वह हर रोज सवा घंटा पैदल चलकर तय करता था। लेकिन सुबह घर से निकलते हुए इतनी देर हो गई कि उसे झक मारकर मेट्रो पर पंद्रह रुपए खर्च करने पड़े थे। मेट्रो मॉल के ठीक सामने रुकती थी और ठेकेदार का दफ्तर उसी के भीतर था। मेट्रो की भीड़ में भी कई बार उसे लगता कि कोई अनजान आंखें पीछे से उसकी बदरंग पतलून, टी शर्ट के घिसे हुए कॉलर और रूखे बालों को बहुत ध्यान से देख रही हैं। लगता कि सामने किसी से कुछ पूछता आदमी, जो सादे कपड़ों में मेट्रो का टिकट चेकर या पुलिस का आदमी भी हो सकता था, अभी उसे किसी चीज के लिए टोकेगा। इस ख्याल के आते ही वह कुछ सहमकर खड़ा हो जाता ताकि उसकी कमीज सामने वाले के हाथ की अटैची को न छुए। शहर में कायदे कानूनों के बढ़ने से उनमें से किसी एक में पकड़ लिए जाने का खतरा भी बढ़ गया था।

हर रोज काम शुरू करने से पहले रामुला मेट्रोपोलिटन मॉल के पुरुषों के बाथरूम का इस्तेमाल करता था। उसके लिए मॉल की यही सबसे बड़ी उपयोगिता थी। इस मामले में झुग्गी के बाहर की स्थिति के बारे में न कहना ही बेहतर था। मॉल में कोई रोकता नहीं था, लेकिन सफाई के लिए युनिफार्म में तैनात लड़के, जिनमें से दो उसके ही गांव के थे, हर बार आते जाते उसे काफी हिकारत की नजर से देखते थे। उनकी खुद की हैसियत भी बेहद मामूली थी, लेकिन इसके बावजूद वे रामुला को उन चमकते बाथरूमों का जायज हकदार नहीं समझते थे।

एम डी सर्विसेज के दफ्तर के सामने अनवर मिल गया। वे दोनों कई बिल्डिंगों में जोड़ीदार थे। अनवर का पलवल की मुसलमान बस्ती में पक्का मकान था। रामुला की झुग्गी बस्ती में भी सब उसकी जाति वाले थे। यह नया इंतजाम था जिसमें सुरक्षा की खातिर सब साथ बने रहते थे। पहले ऐसा नहीं था। गरीबों का ले देकर कोई धर्म नहीं होता था। अब रामुला की बस्ती का एक झक्की बुद्धा एक भद्दे शब्द की गाली देते हुए कहता था कि इन्हें यहाँ मत आने दो, वे आए तो हम सब खतरे में पड़ जाएंगे। इत्तफाक ऐसा था कि बुद्धे के उस शब्द के साथ रामुला का निजी वास्ता था। उसकी तकलीफ को भी वह अच्छी तरह पहचानता था। बचपन में पिता की उंगली पकड़कर उसने कई बस्तियां धू धूकर जलती और उनके बाशिंदे इधर से उधर भागते देखे थे। फिर छोटी उम्र में ही जब उसकी 'नोनी' में गंदगी के कारण सड़न हो गई थी तो पिता बस्ती के मुफ्त दवाखाने की सिफारिश पर उसे मुसलमानों की बस्ती में खतना करने वाले के पास ले गए थे। दर्द से कराहता, निक्कर के भीतर पड़ी बंधवाकर वह लौटा था तो उसे समझ में नहीं आया था कि उसके साथ क्या हुआ है, लेकिन कई सालों के बाद आज भी उस छोटे से हादसे को याद कर वह असहज हो जाता है। बहुत सकुचाते हुए उसने एक दिन जब अनवर को इसके बारे में बताया था तो उसने हंसते हुए उसके कंधे को घेर लिया था।

अनवर उसके लिए बड़े भाई की तरह है। उसी की कोशिशों से उसे कंपनी का वह अस्थायी आईडी कार्ड मिल पाया है। उसकी कई दफ्तरों में पहचान है। आज भी ठेकेदार से होने वाली हर तकरार में वह उसी को आगे कर देता है। अनवर ने ही पहली बार उसे अपने भीतर की घबराहट पर काबू करना सिखाया है। ऊंची इमारतों की ओर उंगली उठाते हुए वह उसे समझाता है कि जिंदा रहने के लिए जितनी जरूरत हमें इन सब लोगों की है, उतनी ही जरूरत उन बड़े बड़े दफ्तर वालों को हमारी है। फिर डर काहे का?

दफ्तरों के उस विशालकाय छत्ते में पूंजी के अपार संचय का चौबीसों घंटों का काम

अनगिनत सफाईवालों, चपरासियों, लिफ्ट चलाने वालों, मिस्त्रियों और ड्राइवरों की मदद से संपन्न होता है। कार्बूजिए और हफीज काट्रैक्टर के नक्शों पर बनी आलीशान इमारतों के अधिसंख्य सिपाही और कारिंदे इर्दगिर्द दुबकी अमीबा के आकार की बढ़ती घटती झुगियों से निकलकर यहां काम करने आते हैं। दोनों के तालमेल के बगैर मधुमक्खी के छत्ते में शहद का इकट्ठा किया जाना असंभव है।

पचास साल पहले यहां न ये इमारतें थीं और न झुगियां। बंजर जमीन के विस्तार और कालांतर में सुल्तानपुर फ्लाईओवर पुल के नीचे बनने वाली झुगियों से कुछ ही फासले पर महारानी का 5 एकड़ का फार्महाउस था जहां बड़े राजकुमार अक्सर 'वीकएंड' बिताने जाया करते थे। छोटे राजकुमार की ही तरह बड़े की जिंदगी भी हवाईजहाजों से जुड़ी थी, लेकिन हादसे में छोटे की मृत्यु के बाद बदीनाथ के शंकराचार्य ने उन्हें जहाजों से दूर रहने और राजनीति में मन रमाने की नेक सलाह दी थी। इसी के कुछ दिन बाद एक दोपहर राजकुमार ने फार्महाउस की ओर जाते हुए गाड़ी रोक जिस शख्स से अपनी गाड़ी के गर्म हो रहे इंजन के लिए कुएं से पानी मांगा था, वह एक छोटा मोटा बिल्डर था जो कुतुबमीनार से आगे नये प्रोजेक्ट के लिए जमीन खरीदने की कोशिश में था। इंजन में पानी भरवाते हुए बातों ही बातों में उसने अपनी योजना और उससे जुड़ी मुसीबतों का जिक्र किया था तो राजकुमार ने सहानुभूतिवश जानना चाहा था कि अड़चन कहां है? बिल्डर ने बताया कि वह कई सालों से ऊसर जमीन पर एक अंतर्राष्ट्रीय शहर बनाने का नक्शा ब्रीफकेस में लिए घूम रहा है, लेकिन सरकारी बैंकों की नियमावली जमीन खरीदने के लिए कर्ज देने के सख्त खिलाफ है। जैसे मिल जाएं तो वह पूरे प्रदेश का नक्शा रातोंरात बदल सकता है। राजकुमार को बिल्डर की आंखों में एक अभूतपूर्व चमक दिखाई दी। यूं भी उनकी गाड़ी का इंजन बिल्डर के कुएं से खींचे पानी से काफी ठंडा और तर हो चुका था। उन्होंने वापस लौटकर तथास्तु की मुद्रा में सरकारी बैंकों के सारे नियम बदल डाले ताकि उस दिन के बाद से किसी भी दूरदर्शी बिल्डर के पास जमीन और पैसों की कोई कमी न रहे। वह बिल्डर सच्चा देशसेवी निकला, जिसने दो चार सालों में ही वादे के अनुसार पूरे इलाके को बिल्डिंगों और महंगी आवास योजनाओं से पाट डाला। धंधा इतना फायदेमंद था कि देखते देखते मूच्छकटिकम के 'राजा के साले' सहित कई और बिल्डर भी मैदान में आ गए। उनकी संख्या अब खरीददारों से भी अधिक हो चली थी। राजकुमार ने नियमों को बदलते वक्त हिदायत दी थी कि हर योजना में हाशिए पर जी रहे लोगों का खास खयाल रखा जाए। इसी के तहत इलाके के तमाम पुलों और फ्लाईओवरों के पूरा होने की तारीखें जान बूझकर आगे बढ़ा दी गईं, ताकि उनमें से हरएक के नीचे उन लोगों को अवैध झुगियां बनाने की पर्याप्त सुविधा मिल सके। पैंतीस वर्षों में सरकडे के आखिरी जंगल को भी साफ कर वहां बिल्डिंगें बनायी जा चुकी थीं और झुगियों के साथ उनका लुकाछिपी का खेल हर तरफ शुरू हो गया था। बिल्डरों ने जो कहा था वही करके भी दिखाया। यह और बात है कि नेताओं के सिफारिशी टेलीफोनों पर मिलने वाले कर्जों के गैर भुगतान से कई सार्वजनिक बैंकों का भट्टा बैठ गया। राजस्व बैंक के प्रमुख ने जब ऐसे कर्जों को रोकने की हिदायत दी तो राजनीतिज्ञों ने पलटवार में उस प्रमुख को ही पद से हटाकर अपने अमरीका स्थित गुरुकुल में लौट जाने पर मजबूर कर दिया।

उन सारी आधुनिक इमारतों के लिए अब स्टील से अधिक एलुमीनियम का इस्तेमाल होने लगा था जो सुदूर ओडिशा की बॉक्साइट खदानों से आता था जहां स्याह राख की ढेरियों के बीच खेलते बच्चों में से बहुत से फेफड़ों की बीमारियों और कुपोषण के शिकार थे। खिड़कियों का नीले रंग का कांच और ग्रेनाइट का फर्श एक बहुराष्ट्रीय फ्रेंच कंपनी बनाती थी। इन सबको हर रोज रगड़कर चमकाने की जिम्मेदारी रामुला की थी। एक अलग जल्था अपने जिस्म पर रस्सियां बांधकर

हर महीने इन नीले कांचों को बाहर से चमकाता था।

देश में घटने वाले हादसों का मुकाबला करने के लिए जिस राष्ट्रीय आपदा मोचन बल एन डी आर एफ का गठन हुआ था, उसी ने यहां की ऊंची इमारतों में संभावित दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं से निपटने के लिए आग की एक नकली ड्रिल का आयोजन किया था। इससे क्रूर मजाक और क्या हो सकता था कि नकली ड्रिल के दौरान ही बल का एक अदना सिपाही रामानंद नेगी तेजी से भागते हुए आग बुझाने वाले इंजन के नीचे कुचलकर मारा गया था। लेकिन एन डी आर एफ ने इस घटना पर तुरंत पर्दा डाल दिया था। बल के उपाध्यक्ष जनरल विज ने तो बिना विचलित हुए यह भी कहा कि पुलिस ने मुस्तैदी से पीड़ित को तुरंत वहां से हटा लिया था (यह और बात है कि वह पहले ही मृत हो चुका था) और उसके बाद ड्रिल यथावत चलती रही थी। एन डी आर एफ के प्रमुख ने ड्रिल को पूरी तरह सफल बतलाते हुए कहा कि आपदा मोचन बल अब इन इमारतों में घटने वाली किसी भी दुर्भाग्यपूर्ण दुर्घटना से निपटने में पूरी तरह सक्षम है!

तनखाह के दिन सुपरवाइजर की टेबल तक जाकर रामुला पहले अपना कार्ड कम्प्यूटर पर चलाता था, जिसके बाद सुपरवाइजर 'प्रिंट आउट' निकालकर उसके हिसाब से पैसे देता था। उस रोज प्रिंट आउट के साथ उसे शिकायत भी मिली थी, "फिनिक्स दो नंबर के सात सौ एक से कंप्लेंट आ रही है, उनका बाथरूम हर रोज गीला रहता है!"

"वो मेरा थोड़े ही है!" रामुला ने तुरंत सफाई दी, "पिछले पखवाड़े मुझसे छुड़वाकर आपने फुलवॉन्टी की मां को नहीं दे दिया था? उसी से पूछो! मैं तो वहां सिर्फ लॉबी और आठ सौ ग्यारह करता हूं..."

सुपरवाइजर ने एक नजर उठाकर उसके चेहरे की ओर देखा, फिर कागज पर कुछ लिखने लगा। हिसाब को दुबारा, तिबारा जांच चुकने के बाद उसने रसीद रामुला की ओर बढ़ा दी। तीन हजार चार सौ पचास। संख्या पढ़ चुकने के बाद रामुला ने नोट गिने और फिर घूमकर वह इंतजार में बैठे अनवर की ओर बढ़ गया। "चौदह सौ चार सनराइज के दो दिन के पैसे काट लिए!" उसने कड़वाहट में कहा, "अब दफ्तर बंद था तो यह हमारा कुसूर है?"

सुपरवाइजर कुछ भी कहने की जगह चुप खींच गया। उसे हर रोज इस सबसे निपटना पड़ता था। अनवर उसके कंधे पर हाथ रख उसे दफ्तर से बाहर ले आया, "चल, अपन कल मैनेजर से मिलते हैं, नए काम लगवाने के लिए। कल सुबह जल्दी आएगा?"

आधे महीने के लिए तकरीबन साढ़े तीन हजार की रकम अच्छी नहीं तो बहुत खराब भी नहीं थी। दिक्कत यह थी कि बाजार में मिलने वाली हर चीज इतनी महंगी हो गई थी कि एक पखवाड़े से दूसरे तक खर्च चलाना मुश्किल था। अनवर उसके मुकाबले सात आठ हजार बना लेता था। लेकिन उसका काम बेहद सख्त था। सुबह तड़के चार से आठ बजे तक, दोपहर में तीन घंटे और फिर शाम में सात बजे से काम खत्म होने तक। साबुन, झाड़ू, ब्रश और सारा सामान कंपनी देती थी। अनवर दिन में कहीं किसी कुरियर के दफ्तर में भी जाता था। रामुला खुद भी ऐसे ही किसी मौके की तलाश में है। उसने तय किया है कि दूसरा काम मिलते ही वह अनवर की तरह झुग्गी छोड़कर मां के साथ किसी चाली वाले मकान में चला जाएगा। लेकिन यह इतना आसान नहीं है। जब में पैसे होने पर भी उसकी जात वालों को कोई किराए पर मकान नहीं देता है। और मुसलमानों की हालत तो इससे भी बदतर है। यही नहीं, मकान मिल जाने पर भी उन्हें दूसरों के मुकाबले ज्यादा किराया देना होगा...

रामुला ने यह फर्क बचपन से देखा है। यूं तो उसके पुरखों की जड़ें इसी इलाके की मिट्टी में हैं, लेकिन बहुत कम इसे मानने के लिए तैयार होंगे। गांव के दूसरे हमउम्र अनपढ़ लड़कों के

मुकाबले वह अपनी थोड़ी सी पढ़ाई के कारण खुशकिस्मत है। लेकिन दूसरे लोगों से बराबरी की बात वह सोच भी नहीं सकता। हालांकि टीवी पर पतंजलि वाले बाबा कहते हैं कि हिंदुओं से ज्यादा उदार कौम पूरी दुनिया में नहीं है...

रामुला को अपने वजूद पर गर्व है। जो कुछ थोड़ा बहुत उसे मिला है, उसमें दूसरों की मदद कुबूल करते हुए भी उसे बड़प्पन का अहसास होता है। उसके पिता ने बरसों पहले अपने आपको हिंदू कहलाना बंद कर दिया था। हालांकि उसे पता है कि सदियों पहले उसके ही एक पुरखे ने सबसे बड़ी किताब लिखी थी। वह यह भी जानता है कि देश का वजूद जिस किताब पर टिका है, उसे लिखने वाला भी उन्हीं में से था।

दफ्तर से निकलते ही रामुला सबसे पहले बाथरूम का रुख करता है। संडास के बंद दरवाजों के पीछे वह तनखाहा के पैसों को जांघिये की अंटी में बांधता है। फिर कुछ छुट्टे पैसे जेब में डालकर बाहर निकल आता है। शहर में यह एहतियात उसे जरूरी लगता है, हालांकि अनवर नोटों के बंडल जेब में डालकर बेधड़क निकल जाता है। रामुला अपने मुहल्ले के कई जेबकतरों को पहचानता है जो नियमित रूप से हवालात के अंदर बाहर आते जाते रहते हैं। उनमें से ही एक ने उसे जेब से पैसे चुराने का तरीका भी दिखलाया था। तब से वह पैसे अपनी अंटी में बांधने लगा था। बहुत पहले एक बार ट्रेन में किसी ने उसकी जेब काटने की कोशिश की थी तो रामुला ने उसे पकड़ लिया था, लेकिन वह जेबकतरा बिजली की फुर्ती से हाथ छुड़ाकर चलती ट्रेन से कूद गया था।

जीवित अंगूठे को काटकर गुरु को भेंट देने से लेकर अग्निशामक इंजन के नीचे कुचल दिए जाने की परंपरा तक जो घमासान गांव में आए दिन चलता है, उसका बहुत कम हिस्सा बाहर के लोगों को पता चल पाता है। लेकिन फिर भी ये कहानियां खत्म होने की जगह लोगों के जेहन में सदियों तक जिंदा रहती हैं...

खेतों से आगे, रामुला की बस्ती से कुछ ही मीलों के फासले पर मिर्चीपुर में पुराना शिव मंदिर, गांव के विभाजित कुंओं से घड़े भरती पनहारिनें और पंचायत में चारपाइयों पर हुक्का गुड़गुड़ाते जाट थे। वाल्मिकियों ने भी यहां आजादी के बाद थोड़ी बहुत तरक्की कर पक्के मकान बना लिए थे। उनमें से कुछ के छोटे मोटे कारोबार थे तो कुछ नजदीक के तालाबों से मछलियां पकड़कर बेचते थे। फूलनदेवी मंदिर में हर साल बसंत का मेला लगता था जिसमें दूर दूर से लोग आते थे। उस साल मेले का ठेका कुछ वाल्मिकियों ने जीता था और यह बात जाटों को नागवार गुजरी थी। यूं भी मेले में उनकी औरतों को छेड़ना वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। नरनौंद पुलिस थाने की एफ आई आर नंबर 166 के मुताबिक जाट जमींदार का बेटा राजिंदर उस दिन शराब पिए हुए मोटरसाइकिल पर वाल्मिकियों की बस्ती से निकला तो योगेश की कुतिया रूबी भौंकती हुई उसके पीछे भागी, जिसके जवाब में राजिंदर ने कुतिया पर पत्थर फेंके। योगेश ने राजिंदर को रोका तो बात बढ़ गई। बीच बचाव करने वाले बूढ़ों ने जाटों से माफी मांगी लेकिन वे बदले पर उतारू थे। हमले की आशंका में बस्ती वालों ने पुलिस से मदद मांगी तो उन्होंने पुलिसवालों की जगह स्थानीय एस एच ओ को भेज दिया, समझौता करवाने के लिए। इस बीच कैरोसिन के कनस्तरों, पेट्रोल, लाठियों और औजारों से लैस 300 जाटों की भीड़ ने बस्ती को घेर लिया था। एस एच ओ ने 2002 के गुजरात दंगों की तर्ज पर भीड़ से कहा कि वे सिर्फ एक घंटे के भीतर जो भी कर सकते हैं करें। जाटों ने इशारा पाते ही पहले पानी की टैंकियों को तोड़ा ताकि आग बुझाने का कोई साधन न रहे और फिर संपन्न वाल्मिकियों के 18 मकानों को उनके सामान, कपड़ों, जेवरों, टीवी, कूलर, रेफ्रिजरेटोरों और पंखों सहित जलाकर स्वाहा कर दिया। 17 वर्षीय लड़की सुमन और उसके 60 वर्षीय पिता आग में जिंदा जला दिए गए। वारदात के तीन दिन बाद

ही गांव में जाटों की एक महा ख्याप पंचायत का आयोजन पशुपालन विभाग के अहाते में किया गया जिसमें 43 ख्यापों के 2000 से अधिक प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया, हालांकि कलेक्टर और पुलिस ऐसी किसी पंचायत की जानकारी से इंकार करते हैं। पंचायत ने आह्वान किया कि वारदात के बाद गिरफ्तार हुए 29 जाटों को रिहा और बर्खास्त किए गए एस एच ओ को तुरंत वापस काम पर लौटाया जाए। वारदात की जांच करने आई दलित मानवाधिकार समित के प्रतिनिधि को स्थानीय वकील अर्जुन सिंह ने बेशर्मी से बताया कि पीड़ित परिवारों ने दरअसल मुआवजे के लालच में खुद अपने घरों में आग लगायी थी। 'ये डेड पैसों के लिए कुछ भी कर सकते हैं!'

इत्तफाक की बात है कि ये वही जाट थे जो कालांतर में आर्थिक फायदे के लिए अपने आपको अन्य पिछड़े वर्गों की सूची में शामिल किए जाने के लिए आंदोलन में उतर, सार्वजनिक संपत्ति को तोड़ने फोड़ने और जन जीवन को ठप्प करने पर उतारू हो गए थे। दरअसल ये जाट और मराठे उतने पिछड़े थे नहीं, जितनी उनमें सुविधाओं के लिए उस वर्ग में शामिल होने की राजनीतिक आकांक्षा थी। उनके इस या उस पाले में आ जाने से सदियों से चली आ रही वर्णव्यवस्था को कोई फर्क नहीं पड़ने वाला था। वे महज राजनीतिक मोहरे थे, जिनकी उस पुरानी परंपरा में पूरी आस्था थी।

यही विश्वास सत्ता में भी था जिसने स्वच्छता अभियान के समानांतर किन्हीं खास लोगों के 'शुद्धीकरण' की मुहिम भी उतने ही उत्साह से छेड़ दी थी। काला धन घोषित करने की एमनेस्टी योजना के साथ साथ लोगों को भी अपने ही घरों के पाप धोने के लिए वापस घर बुलाया जा रहा था, क्योंकि गंदा ढोने वाले म्लेच्छों का ईसाई बन, साफ सुथरे कपड़ों में चर्च जाना लोगों की बर्दाश्त के बाहर था। कभी देशभक्ति, कभी देशद्रोह, कभी युद्ध, कभी आतंकवाद, कभी गौमाता, कभी भारतमाता, कभी सिविल कोड, कभी गंगापूजन, कभी पाकिस्तान, कभी बलूचिस्तान, कभी बीफ, कभी संतोषीमाता, कभी सैन्य पराक्रम, कभी सांप्रदायिकता, कभी प्रतिबंध, कभी मारपीट, कभी दंगे, कभी राष्ट्रप्रेम— इन सभी शब्दों का इस्तेमाल अब लोगों को एक खास दिशा में हांकने के लिए होने लगा था। आम सहमति बनाने के लिए स्वच्छता और स्त्री शिक्षा जैसे एक आध तटस्थ मुद्दे भी इसमें डाल दिए गए थे, ताकि आम सहमति बनाने के साथ साथ इनके नाम पर लोगों से हजारों करोड़ का अतिरिक्त टैक्स भी वसूला जा सके। लेकिन मौका आने पर इनमें से किसी पर भी राज्य की कोई जवाबदेही नहीं बनती थी। स्वच्छता के लिए गांधी बाबा का मुखौटा सबसे सुविधाजनक था। लेकिन इस मुखौटे के पीछे भी वर्ण व्यवस्था में आस्था रखने वाले सैद्धांतिक गुरुओं के कद को गांधी से कहीं अधिक ऊंचा दिखाने का प्रयास लगातार चल रहा था। लोगों की छोटी याददाश्त का फायदा उठाकर इतिहास के असुविधाजनक लोकप्रिय चेहरों को हटाकर एक नया इतिहास गढ़ा जा रहा था, जिसमें वर्ण व्यवस्था को देश की गौरवशाली परंपरा के रूप में स्थापित किया जाना था। शुद्धीकरण के बाद गैर हिंदुओं और अछूतों को भी इसमें उचित स्थान दिया जाना था। और देखा जाए तो इसमें गलत क्या था? यही तो कुछ लोग सदियों से कर रहे थे...

बाथरूम के बाहर मॉल का मुख्य गलियारा था जहां ऊपर की मंजिल पर जाने के लिए एस्कलेटर लगा हुआ था। उसी की रेलिंग पर झुका अनवर उसका इंतजार कर रहा था। वे मॉल से बाहर निकले तो बाहर के दरवाजे से सटकर बने 'मेकडॉनाल्ड' रेस्त्रां से एक परिवार निकला और उनके साथ ही आलू टिकिया की सोंधी सोंधी खुशबू का एक झोंका भी बाहर चला आया। "चलना है भीतर?" अनवर ने जानबूझकर उसे चिढ़ाया। रामुला कुछ भी उत्तर देने की जगह चुपचाप मॉल की सीढ़ियों से नीचे उतरता हुआ सड़क पर आ गया। तनखाह में से अस्सी रुपए

कटवा चुकने के बाद 'मैक्डॉनाल्ड' का मजाक कड़वा था। उनके लिए खाने में पिंडी के ढाबे से आगे सोच पाना मुश्किल था।

सड़क पर जहां सिर के ऊपर से बेआवाज सरकती मेट्रो गुजरती थी, वहां नीचे, उसी के समानांतर तीन फुट की दीवार खिंची हुई थी जिसपर मर्दाना कमजोरी के लिए खानदानी शफाखाने से मिलने की पुरजोर सिफारिश करने वाले इशतहार हुआ करते थे। अब उनपर सफेदी पोतकर एक नयी चेतावनी हर जगह दिखाई देने लगी थी— *गौहत्या करने वालों को फांसी दो!*

रामुला कुछ देर तक खड़ा संदेश के संजीदा मतलब को समझने की कोशिश करने लगा। जिन लोगों की फांसी की बात कही गई थी, वे कौन थे? चेतावनी पढ़ने वाले के भीतर एक अनकहा खौफ पैदा करती थी। शहर की सड़कों पर अक्सर सब्जी के ठेलों पर मुंह मारती गायों को लोग बेरहमी से मारकर भगाते थे। कभी कभी वे मिलकर सड़कों के बीच इस तरह पसर जाती थीं कि उन्हें वहां से हटाना भी असंभव हो जाता था। जहां वह रहता था, वहां गंदा हटाने का ज्यादातर काम मुस्तैद थूथनों वाले सुअरों के सुपुर्द था। वह इस सारी बहस से गैरहाजिर था, सिवाए इसके कि बचपन से ही उसे मांस के नाम पर सुअर या बड़े का ही गोशत मिला था, क्योंकि उसके अलावा कुछ भी उनकी हैसियत से बाहर था। जाहिर है कि वह चेतावनी शायद उन तमाम लोगों के लिए थी जिन्हें उस मांस से परहेज नहीं था।

चेतावनी शायद आने वाले दिनों की दिशा भी तय करती थी। राज्य में गोमांस संबंधी नियम पहले ही काफी सख्त थे। मांस के साथ पाए जाने पर गैर जमानती वारंट, दस साल की सजा और एक लाख का जुर्माना। पिछले ही साल प्रदेश के मुख्यमंत्री ने कहा था कि मुसलमान अगर यहां रहना चाहते हैं तो उन्हें गोमांस छोड़ना होगा। बाद में उन्होंने यह बयान वापस ले लिया। और सत्ताधारी दल द्वारा गांधी बाबा के समकक्ष या उससे भी ऊपर समझे जाने वाले जिस 'घृणा के सौदागर' नेता की जन्म शताब्दी इधर देश में मनायी जा रही थी, उसने तो कई साल पहले इसका दूसरा विकल्प भी रखा था कि 'पाकिस्तान से देश की सीमा के समानांतर 10 मील का गलियारा बनाकर सारे मुसलमानों को वहां निष्कासित कर दिया जाना चाहिए!'

यूं भी पूरे देश में इधर युद्ध का भूत किसी क्रिकेट मैच के खुमार की तरह छाया हुआ था और मीडिया पूरे जोर शोर से इसमें आहुति दे रहा था। प्रतिरोध की हर आवाज को दबाने के लिए हजारों गैर सरकारी संस्थानों पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। बोलने की जुर्रत करने वालों पर देशद्रोह के मुकदमे बनाए जा रहे थे।

चौराहे पर खड़े पुलिस वाले ने उन्हें सड़क के बीच जाने से रोक लिया। वहां सब तरफ का ट्रैफिक रुका हुआ था। चौराहे के बीच बहुत से लोग इकट्ठा थे। उनमें से कुछ ने अपनी बांहों में एक कागभगोड़ेनुमा पुतले को पकड़ा हुआ था। डंडों के सहारे पुलिस ने सारे ट्रैफिक को वहीं रोक दिया था। एक पाजामेधारी के निर्देश पर वहां पास के किसी स्कूल की लड़कियां निकलकर आती नजर आईं। उनके आते ही हवा में एक साथ बहुत सारे नारे गूंजने शुरू हो गए। 'भारत माता की जय!', 'हमसे जो टकराएगा, मिट्टी में मिल जाएगा!', 'पाकिस्तान मुर्दाबाद!', 'वीर जवान जिंदाबाद!', 'खून का बदला खून से लेंगे!'

अपने मास्टर्स के प्रोत्साहन पर अब लड़कियां भी नारे लगाने लगी थीं—'वंदे मातरम!', 'धरती मांगे फिर बलिदान!', 'एक के बदले सौ सिर लेंगे!', 'नवाज शरीफ मुर्दाबाद!', 'वीर जवानो आगे बढ़ो, देश तुम्हारे साथ है!' हर नारे के साथ उनकी तनी हुई मुट्टियां हवा में उठ जातीं। कुछ लोगों ने उस बेटे कागभगोड़े को हाथों और पैरों से खींचना शुरू कर दिया था। कुछ लोग आगे बढ़कर उसपर थूक भी रहे थे। एक तमाशबीन ने बताया कि यह नवाज शरीफ का पुतला है।

भीड़ में नारों का एक और दौर चल निकला। इसके साथ ही किसी ने उस पुतले की टांगों में आग लगा दी। कपड़े से बने नवाज शरीफ धू धूकर जलने लगे। पूरी भीड़ में तालियों की एक लहर सी फैल गई। लड़कियों ने एक बार फिर नारों का स्वर उठाया, लेकिन इस बार उनकी आवाजों में पहले वाला उत्साह नहीं था। भीड़ में कुछ लोग अब मां बहन की गालियों पर उतर आए थे। पुतले को राख होने में ज्यादा वक्त नहीं लगा। गालियों की एक आखिरी बौछार के साथ ही भीड़ तितरबितर होने लगी। मौके पर मौजूद एक अखबार वाला तस्वीरें खींच चुकने के बाद अब अपना कैमरा भीड़ से बचा रहा था। पुलिस ने एक सिरे से गाड़ियों के रेले को छोड़ना शुरू कर दिया था।

रामुला को अपनी बगल में खड़े अनवर की आंखों में भय की एक झीनी सी परछाईं सी दिखी। घृणा का वह सार्वजनिक महायज्ञ अब उतार पर था। एक गुस्सैल नेता अचानक तीर की तरह भीड़ से बाहर आया और हर किसी के कंधे झिंझोड़ने लगा, “बोलो, जय श्रीराम, बोलो भारत माता की जय!” बोलते बोलते वह अनवर की ओर बढ़ आया, “...बोलो जय श्रीराम, भारत माता की जय...” वह जोर से चिल्लाया। अनवर घबराकर पीछे हटा, फिर उसके गले से किसी जिबह किए जाने वाले बकरे की सी डरी हुई आवाज निकली, “...जय श्रीराम...”

अपने प्रेरणादायक नारे को अनवर के सुपर्द कर नेता तब तक किसी और व्यक्ति के पास जा चुका था। “...चलो, यहां से चलें!” रामुला ने अनवर की कोहनी खींचते हुए कहा, “ये लोग...” अपनी बात पूरी करते हुए भी उसे कुछ डर सा लगा...

सड़क के चौराहे पर, जहां एक तख्ती पर हर रोज पढ़ने वालों के लिए मुफ्त अखबार चिपकाया जाता था। रामुला को उस वक्त वहां आतंकी हमले में शहीद हुए जवानों की तस्वीरें लगी हुई मिलीं। वहां एक फूलों की माला भी टंगी थी। नीचे किसी ने हाथ से लिखा था, ‘देश की सेवा में शहीद हो जाने वाले वीर नौजवान...’

रामुला ने मन ही मन उन सिपाहियों को सलाम किया। उनमें से ज्यादातर कहीं दूर से अपने परिवारों को छोड़कर मामूली सिपाही की हैसियत से सरहद पर आए थे। उनकी अनुपस्थिति के दुख को लोगों ने सम्मान के साथ कंधों पर उठा लिया था। अगर वे वीर न भी होते, तब भी उनका मारा जाना एक बड़ी त्रासदी थी।

रामुला की झुग्गी बस्ती में ही रहने वाला अट्ठारह साल का भीमा म्यूनिसिपैलिटी में दिहाड़ी पर था। उसकी ड्यूटी उन्हीं चमकदार इमारतों वाले रास्ते पर थी। दो हफ्ते पहले गटर की नालियां साफ करने के लिए हेड जमादार ने उसे जबर्दस्ती मैनहोल से नीचे उतारा था। नीचे जहरीली गैस थी। कोई उसकी मदद के लिए भी नहीं आ पाया था। एक घंटे बाद भीमा की लाश गटर से बाहर निकाली गई थी। क्या भीमा भी उन सिपाहियों की ही तरह देश की सेवा में शहीद नहीं हुआ था? क्यों उसके मां बाप को मुआवजा देने का सवाल तक किसी ने नहीं उठाया था, क्यों उन सबको चंदा इकट्ठा कर उसका अंतिम संस्कार करना पड़ा था? क्या भीमा भी ‘स्वच्छ भारत’ की लड़ाई का एक वीर सिपाही नहीं था?

रामुला ने अपनी फिजूल सोच को बीच में ही रोक दिया। जो लोग सही और गलत का फैसला करते थे, उन तक उसकी कोई पहुंच नहीं थी। शहर के तमाम लोग अभी से एक अनुपस्थित लड़ाई में शरीक हो गए थे। दुश्मन का सिर काटकर लाने और किसी क्रिकेट मैच की तरह दुश्मन के छक्के छुड़ा देने की मांग हर तरफ सुनाई देने लगी थी। हर दूसरा व्यक्ति अब देशद्रोही करार दिया जाने लगा था। सुबह मॉल के बाथरूम में अपना चेहरा देखकर वह स्वयं ही दहशत में आ गया था...

अनवर का चचेरा भाई पिछले हफ्ते कश्मीर के सोपोर में मारा गया। जहां तक रामुला को

मालूम है, वह पुलिस में था। लेकिन न रामुला पूछना चाहता है और न ही अनवर बताएगा कि वह सोपोर में क्या कर रहा था। उसकी ड्यूटी तो कहीं और थी। उसने पिछली शाम मॉल के टी वी पर एक मुसलमान नेता को सुना था। जब उसने जानना चाहा था कि पुलिस पर ढेले फेंकने वाले दसियों निरीह लड़के कश्मीर में छर्रे बरसाने वाली बंदूकों से अंधे कर दिए गए हैं, तो फिर रेलवे और सरकार की करोड़ों की संपत्ति नष्ट करने वाले जाटों पर आज तक इन बंदूकों का इस्तेमाल क्यों नहीं किया गया? सवाल का जवाब बहुत आसान था, लेकिन टीवी वाला कुछ देर बगलें झांकने के बाद पान मसाले के कमर्शियल ब्रेक की आड़ में भाग खड़ा हुआ था। यह तो रामुला जैसों को भी मालूम है कि दुनिया में सब लोग समान नहीं हैं। कुछ हैं, जिन्हें कभी किसी चीज की सजा नहीं मिलती...

मेट्रो के नीचे से जो रास्ता इमारतों के छत्ते की ओर जाता था, उसी के पास से एक कच्ची सड़क बस्ती की ओर निकल गई थी। यह इलाका अभी तक किसी मास्टर प्लैन के घेरे में नहीं आया था। सड़क के मोड़ पर एक टिन के शेड और लंबे फैले तिरपाल के तले पिंडी वाले चाचा का ढाबा फैला था। चाचा का रावलपिंडी से कोई रिश्ता जरूर रहा होगा, जिसके कारण उस ढाबे को यह नाम मिला था। सींखों पर पकने वाले कबाब, नान, बोटी सालन, बिरयानी और एक बड़ी परात में कटे हुए प्याज के छल्ले और कचूमर। सामने सड़क पर हमेशा पांच छः नए से नए मॉडल की गाड़ियां खड़ी रहती थीं। इन गाड़ियों के मालिक शायद सड़क के उस ओर खड़ी इमारतों में ऊंचे ओहदों पर थे और उनके ड्राइवर फुर्सत में गाड़ियां लेकर यहां खाने के लिए आते थे। इनमें से कुछ खास ग्राहकों के लिए पिंडी चाचा के छोकरे साइकिल के रिम से बने मुड़्डे उनकी गाड़ियों के करीब लगा देते थे। ढाबे में शराब पीने या लाने की सख्त मनाही थी, लेकिन गाड़ी में बैठकर खाने वालों पर कोई वश नहीं चलता था। इसके अलावा छोटे कर्मचारियों और मजदूरों का एक हुजूम हमेशा यहां मौजूद रहता था। इलाके में काम करने वालों के बीच ढाबा इस कदर चलता था कि बैठने के लिए कई बार लंबा इंतजार करना पड़ जाता था।

काउंटर पर दो सालन, छः रोटियों और रामुला की मां के लिए बिरयानी के पार्सल का आर्डर लिखवाकर अनवर और रामुला बैठने की जगह तलाशने लगे। तंदूर पर बैठे पसीने से तरबतर दो नौकर हाथ के गोल गद्दीनुमा कपड़े से दनादन रोटियां तंदूर में लगा रहे थे और एक तीसरा बंदा अपने हाथों के लंबे चिमटों की मदद से सिकी हुई रोटियां बाहर निकाल रहा था। दूसरी तरफ दो लड़के लंबे चूल्हों में सींखों पर लगे कबाबों को धीरे धीरे आग पर घुमा रहे थे। उनके पीछे सालन और बिरयानी के बड़े बड़े देग थे। तभी सामने कच्ची सड़क पर अचानक एक सफेद गाड़ी और उसके पीछे पीछे पुलिस की एक वैन झटके से आकर रुकी तो ढाबे की सारी व्यस्तता एक झटके के साथ थम गई। गाड़ी में तीन चार कुर्तधारी सफेदपोश बैठे थे। उनमें से एक ने खिड़की का कांच नीचे कर हाथ से ढाबे की ओर इशारा किया। इसके साथ ही पुलिस वैन के पीछे से एक एक कर छः पुलिस वाले उतरे और सीधे चूल्हे और उन देगों की ओर बढ़ गए। वैन के ड्राइवर की बगल में बैठा पुलिसवाला, जो शायद इंस्पेक्टर था, काउंटर के पीछे बैठे चाचा के भतीजे की ओर बढ़ा और अपने साथ लाए कागजात उसे दिखाने लगा। बाकी पुलिस वालों ने इस बीच चूल्हे और उन देगों को घेर लिया था। एक पुलिसवाले ने अपने बैग में से तीन चार प्लास्टिक की थैलियां निकाल लीं, फिर उसने छोकरे से सालन और बिरयानी के देगों और ठंडे में अधपके कबाबों की देगची पर से ढक्कन हटाने को कहा। इंस्पेक्टर भी इस बीच काउंटर के पीछे बैठे मालिक के प्रतिनिधि के साथ उन देगों के पास चला आया था। पुलिस वालों ने उन देगों और कबाबों की ठंडी देगची में से हरएक में से गोश्त के दो दो टुकड़े निकालकर उन प्लास्टिक की थैलियों में डाले

और उसके बाद वे उन्हें सील करने में व्यस्त हो गए। ढाबे के सारे ग्राहक इस बीच दूर से सारी कार्रवाई को बहुत ध्यान से देखने लगे थे। उनमें से कुछ ने तो खाना बीच में ही छोड़कर अपने दुपहिया वाहनों को कुछ दूर ठेलकर स्टार्ट किया और चुपचाप वहां से निकल गए। वे चारों सफेदपोश कुर्तेधारी गाड़ी से बाहर तक नहीं निकले, लेकिन फिर भी साफ था कि पुलिस इंस्पेक्टर और उन सिपाहियों के साथ उनका एक अनकहा संवाद कायम था। पुलिस वालों ने उन थैलियों को सील करने के बाद उनपर और दूसरे कागजों पर पिंडी चाचा के भतीजे के हस्ताक्षर करवाए। फिर उन कागजों को अपनी जेब के सुपुर्द कर पुलिस इंस्पेक्टर वापस मुड़ गया। उसके पीछे वे पांचों पुलिस वाले थे। जाते जाते इंस्पेक्टर ने एक चेतावनी भरी निगाहें उस भतीजे की ओर फेंकीं, जिसके जवाब में वह सर्पण की मुद्रा में जुड़े हुए हाथ उठाए उस सफेद गाड़ी की ओर दौड़ गया। “कायदे में ही रहणा भैनके...” इंस्पेक्टर ने बावर्ची का कॉलर अपनी मुट्ठी में दबोच लिया था, “इन सारे सैम्पलों की जांच होगी और बीफ निकला ना, तो साले, सब के सब अंदर हो जाओगे!”

कच्ची सड़क पर गाड़ियां घुमाकर काफिला वापस निकला तो काउंटर के पीछे खड़ा पिंडी चाचा का भतीजा अपने चेहरे से पसीना पोंछने लगा था। कुछ देर बाद उसने रोटियां और कबाब बनाने वालों को दुबारा काम शुरू करने को कहा। इस सारे नाटक के दौरान वे सब एक कोने में इकट्ठा हो गए थे। बदमजगी का एक अनकहा अहसास हर तरफ फैल गया था। वे अपने पैसे पहले ही अदा कर चुके थे। छोकरा उनका ऑर्डर लेकर आया तो उन्होंने बैठने की जगह उससे सारा खाना बांध देने के लिए कहा। फिर चुपचाप चलते हुए वे वहां से बाहर आ गए।

मिर्चीपुर से दादरी के लिए कोई सीधी सड़क नहीं है लेकिन फिर भी उसे तय करने में आपको बहुत वक्त नहीं लगेगा। बिसादा के दो मंजिला मकान में उस रात बिजली नहीं थी और कमरों में इनवर्टर की रोशनी थी जब गांव के मंदिर में लाउडस्पीकर पर घोषणा हुई थी कि अखलाक ने गोमांस खाया है। मिनटों के भीतर रुपेंद्र, विवेक, सचिन, हरिओम, श्रीओम, विशाल, शिवम, संदीप, सौरभ, गौरव और कई अन्य लाठियां और लोहे की छड़ें लेकर उनपर हमला करने के लिए आए थे। उन्होंने मुख्य दरवाजा तोड़कर पहले निचली और फिर पहली मंजिल की तलाशी ली थी और उनके अनुसार उन्हें फ्रिज में से मांस का एक पैकेट मिला था, लेकिन एफआईआर में इसका कोई जिक्र नहीं है। घर को तहसनहस करने और घर की औरतों को गालियां देने के बाद उन्होंने अखलाक और उसके बेटे दानिश को घसीटकर घर से बाहर निकाल लोहे की छड़ों से बेतरह पीटा था। पुलिस कोई आधे घंटे के बाद ही पहुंची थी और हत्यारों को पकड़ने से पहले उसने फ्रिज की तलाशी लेना ज्यादा जरूरी समझा था। पुलिस का कहना है कि दो किलो मांस का पैकेट अखलाक के घर से नहीं बल्कि उसके नजदीक एक तिराहे पर से ट्रांसफार्मर पर मिला। लेकिन अधिकांश रिपोर्टों में मांस अखलाक के घर में रेफ्रिजरेटर में मिला बताया गया था। ताज्जुब की बात यह है कि जांच के लिए अस्पताल आने तक यह मांस पांच किलो का बन चुका था। अखलाक ने सिर की गंभीर चोटों से उसी रात दम तोड़ दिया, लेकिन सिर के दो गंभीर ऑपरेशनों के बाद दानिश आज भी जिंदा है। पूरी दुनिया में इस घटना से सन्नाटा आ गया था। लोगों ने अपने अपने ढंग से इसे देश के बैरोमीटर से जोड़कर देखा। कई ने इसकी भर्त्सना की लेकिन गृहमंत्री का कहना था— घटना दुर्भाग्यपूर्ण है लेकिन इसे सांप्रदायिक रंग देना ठीक नहीं होगा। और दिग् दिगंतर घूमने वाले प्रधानमंत्री को तो अफसोस का इकहरा शब्द उच्चारित करने के लिए भी सत्रह दिनों की मोहलत दे दी गई। इस बीच अभियुक्तों ने पलटवार करते हुए अखलाक के परिवार पर गोमांस रखने के अपराध में मुकदमा चलाने की मांग कर दी थी। मथुरा और लखनऊ की दो अलग अलग प्रयोगशालाओं में से एक ने उस मांस को मटन और दूसरे ने बीफ पाया। सुनवाई करने वाला एक

जज पदोन्नति के बाद स्थानांतरित होकर कहीं और चला गया। दूसरे माननीय जज अभी अभी आए हैं। उन्हें मामला समझने के लिए कुछ और समय देना होगा। उधर अभियुक्तों में से तीन को नाबालिग बताकर जमानत दी जा चुकी है, जब कि अखलाक की बेटी शाइस्ता का कहना है कि उनमें से एक उसके साथ कॉलेज में पढ़ता था और सजा से बचने के लिए उसने अपनी उम्र चार वर्ष कम बतायी है। घटना के एक वर्ष गुजर जाने के बाद भी अभियुक्तों पर आरोप तय किया जाना अभी बाकी है। मुकदमा तो उसके बाद ही चलाया जा सकता है। लेकिन बिसादा के लोग बहुत पहले ही फैसला सुना चुके हैं कि इस कांड के लिए अखलाक के परिवार को कड़ी से कड़ी सजा मिलनी चाहिए ताकि आगे से कोई अपने घर के रेफ्रिजरेटर में मांस रखने की जुरत न कर सके...

मुख्य सड़क से दाहिने मुड़ते ही रास्ते के दोनों तरफ ऊंची इमारतों का साम्राज्य शुरू हो जाता है। उस इलाके के दूसरे तमाम लोगों की तरह रामुला और अनवर की रोटी रोजी भी इन्हीं इमारतों पर मयस्सर है। सुबह दफ्तरों के खुलने से पहले और शाम को रिसेप्शन पर बैठी खूबसूरत लड़कियों के घर चले जाने के बाद उनका काम शुरू होता है। वे पहले सफाई के खोखे में से झाड़ू, पोंछे, साबुन, लंबे डंडों वाले झाड़न, बाल्टियां, टॉयलेट पेपर और खुशबूदार झाग वाले लिक्विड निकालते, फिर सारे कंबिनो, उसकी टेबलों, खिड़कियों, उसके कम्प्यूटरों और उसके फर्श को बारी बारी से पोंछते और साफ करते। हफ्ते में एक दिन उन्हें मशीन से कालीनों और दीवारों को भी साफ करना होता था। सारे कूड़ेदानों का कचरा एक जगह इकट्ठा कर वे बाहर आ जाते और फिर किसी दूसरे दफ्तर में यही क्रम फिर से शुरू हो जाता।

रामुला को अनवर के साथ काम करने में मजा आता है क्योंकि वह उसके मुकाबले काफी तजुर्बेकार है। काम के दौरान वह रामुला को दुनिया जहान के पता नहीं कैसे कैसे किस्से सुनाए चलता है। उस तिलिस्मी दुनिया के किस्से जिसे इतना करीब होने के बावजूद रामुला ने कभी नहीं देखा। कभी कभार टेबल पर छूटी किसी चीज, बाथरूम में पाए जाने वाले कंडामों या टेबल पर रखी लिपस्टिक के इर्दगिर्द कोई दिलचस्प फसाना गढ़ देने में अनवर माहिर था, जिससे थका देने वाला उबाऊ काम भी आनन फानन में पूरा हो जाता था।

लिबर्टी की बी बिल्डिंग में दाखिल होने से पहले उन्होंने चौकीदार से अपना आईडी पंच करवाया तो उसने की बोर्ड से 508 की चाबी निकालकर उनके सामने रख दी। फिर वह उनके हाथों में थमे थैलों को बहुत ध्यान से देखने लगा, “यह क्या है?”

“खाना!”

“अंदर कहां ले जा रहे हो?”

“वहां खाएंगे!”

“इसकी इजाजत नहीं है। यहां छोड़कर जाना पड़ेगा!”

“चल, जाने दे यार!” अनवर ने हुज्जत करने की जगह कहा, “यहीं रख देते हैं! लौटकर खाएंगे!” रामुला झट मान गया। यूं भी उसकी भूख जैसे मर सी गई थी। लिफ्ट का बटन दबाकर वे पांचवीं मंजिल पर आ गए। यहां गलियारे के दोनों तरफ दफ्तर थे। 508 नंबर का दफ्तर पहले चौबीसों घंटे खुला रहता था। अब विदेशी कारोबार कहीं और चला जाने के बाद यह रात में बंद रहने लगा था। अंदर अब भी टेबलों की लंबी कतारें थी जिनमें से हरएक पर टेलीफोन और कम्प्यूटर की मशीनें लगी थीं। बाल्टी से साबुन फैलाकर वे लंबे डंडे वाले पोंछे से फर्श साफ करने लगे। अनवर हर टेबल से गुजरते हुए उसपर लगे फोन और कम्प्यूटर को पोंछता जा रहा था। “इतने टेलीफोनो से कहां बात होती होगी?” फर्श पर पोंछा लगाते हुए रामुला पूछता है।

“अमरीका!”

“लेन देन होता होगा, नहीं?”

“एक सैकेंड में लाखों करोड़ों के व्यारे न्यारे! सारा हिसाब कम्प्यूटर पर आ जाता है। माल वहां बिकता है, बिल वहां बनता है, सात समंदर दूर। वही लोग इन ऊंची ऊंची बिल्डिंगों में पैसा लगाते हैं। दुबई में एक बाजार है, वहां खुली दुकानों में आलू टमाटर की तरह सोना बिकता है...”

“अच्छा?...कोई उड़ाता नहीं, चोरी चोरी?”

“नहीं! ज्यादातर दुकानदार हिंदुस्तानी पाकिस्तानी हैं, फिर भी...”

“कैसे?” रामुला को यकीन नहीं होता।

“पकड़े गए, तो वहां हाथ काट देते हैं, समझे?...यहां पर भी ऐसा ही कुछ करें तो...”

“क्यों, यहां भी तो शक पर मार मारकर...वहां मेरठ में...” रामुला का खयाल फिर दीवारों पर पुती उन चेतावनियों की ओर लौट गया है।

अनवर के पास इस सवाल का कोई जवाब नहीं है। वे सारी टेबलों को साफ करते चले जाते हैं। फिर सारे फर्श, फिर चारों बाथरूम। लेकिन दोनों के भीतर कोई बात जैसे बार बार घुमड़ रही है।

“अच्छा...,” रामुला आखिरकार पूछता है, “...वहां दुबई में तो बड़े का गोश्त आम मिलता होगा, नहीं?”

“हां...लेकिन महंगा है बहुत...”

“क्यों?”

“यहां अपने मुल्क से जो जाता है...”

“अच्छा?” रामुला को एक झटका सा लगता है, “लेकिन यहां तो...” वह सवाल करना चाहता है, मगर कह नहीं पाता। क्या उन सारे लोगों को भी...नहीं, ऐसा भला कैसे हो सकता है। ..वह जानता है कि सारे कानून कुछ खास लोगों ने कुछ खास लोगों के लिए बनाए गए हैं...

एक टेबल का फोन अचानक बज उठता है तो वे सकते में आ जाते हैं। पूरे दफ्तर में गूजती फोन की घंटी लगातार बजती चली जाती है। ट्रंग ट्रंग...ट्रंग ट्रंग!...आखिरकार रामुला फोन उठाने को होता है तो अनवर दूर से ही चिल्लाकर उसे मना कर देता है। लेकिन फोन रामुला के हाथ में आ गया है। दूसरी ओर कोई विदेशी भाषा में कुछ पूछ रहा है। रामुला घबराकर फोन रख देता है। थोड़ी देर रुकने के बाद फोन फिर से बजना शुरू हो जाता है। ट्रंग ट्रंग...ट्रंग ट्रंग! जिस दुनिया से फोन आया है, उसमें मौजूद होते हुए भी उनकी कोई हिस्सेदारी नहीं है। फोन बजता छोड़कर वे जल्दी से दरवाजा बंद कर लिफ्ट की ओर बढ़ जाते हैं। लेकिन लिफ्ट के दरवाजे बंद होने तक फोन की आवाज किसी दूर से बजते खतरे के सायरन की तरह लगातार उनका पीछा करती जाती है...

नीचे चाबी वापस लेने से पहले चौकीदार बारी बारी से उन दोनों के जिस्म की तलाशी लेता है। फिर अपने रजिस्टर पर उनसे हस्ताक्षर करवाता है। अनवर लॉबी की सीढ़ियों पर खाने की पोटलियां खोलने लगता है तो रामुला इशारे से उसे रोक देता है। “मैं साथ ले जाऊंगा। यहां खाने का बिल्कुल मन नहीं है!...तू खा ले, खाना है तो...”

अनवर बहुत ध्यान से रामुला के चेहरे की ओर देखने लगता है। उसे अभी साढ़े आठ नौ बजे तक काम करना है। रामुला को बिरयानी, दो नान और सालन देकर वह बाकी अपने लिए रख लेता है, “यह ले जा! मैं भी घर जाकर खाऊंगा!”

अनवर को वहीं छोड़ रामुला बेमन से खाने का पैकेट पकड़ सड़क पर आ जाता है। सर्दियों के इंतजार में दिन अभी से बदलने लगे हैं और एक गहरा धुंआ सड़क पर उतर आया है। इस

धुंए और कोहरे में घर तक पैदल जाने का खयाल दहशत पैदा करता है। रामुला तय करता है कि सुबह की तरह वह शाम को भी मेट्रो ले लेगा।

मेट्रो के आधे रास्ते पर धुंध में पीछे से एक रोशनी उसके जिस्म पर चमकती है तो वह ठिठक जाता है, फिर पीछे से साइरन की डरावनी आवाज सुनकर कुछ और तेज चलना शुरू कर देता है। गाड़ी की रोशनी घूमकर फिर उसके जिस्म पर आ गई है। बिलखता साइरन उसी के लिए बजता महसूस होता है। वह पूरी ताकत के साथ भागना शुरू कर देता है। एक गाड़ी चक्के घुमाकर उसी की ओर आ रही है। गाड़ी की रोशनी अब कुछ और तेज हो गई है। फिर एक जन्नाटे के साथ वह उससे आगे निकलकर उसे काटती है और ब्रेक लगाकर उसे रोक लेती है। उसके माथे से पसीना फूटने लगा है।

खुली जीप से दो पुलिस वाले नीचे उतरते हैं। उनमें से एक के पास बंदूक है, जिसे वह रामुला की ओर तान लेता है। रामुला लड़खड़ाकर नीचे गिरने को होता है तो दूसरा पुलिस वाला पीछे से उसे दबोच लेता है, “भागकर कहां जाता है, मादरचोद...”

“घर...घर...काम से...” वह अपने गले में टंगा कार्ड आगे कर देता है...

“रामुला बाल्मिकी!” पुलिस वाला कार्ड का नाम पढ़ते हुए कहता है, “तुम लोगों के मजे हैं आजकल!...बेटे यह कार्ड तो पुराना है!...कहां से चुराया बे?...सच बता कौन है...कहां से आया है?”

“वहां...वहां सुल्तानपुर एक सेक्टर, पुल के नीचे...”

“पुल के नीचे से!” पहला पुलिसवाला हंसता है, “तलाशी ले साले की...ये हाथ में क्या है?...”

“खाना...खाना...”

“हरामजादे, झूठ बोलता है...” दूसरा पुलिस वाला दहाड़ता है। दूसरा उसके जिस्म को टटोल रहा है, “भाग क्यों था बे...” हाथ की पोटली एक झटके से खुल जाती है तो बिरयानी के चावल और बोटियां अपनी समूची महक के साथ सड़क पर बिखर जाती हैं...

पुलिसवाला कुछ असमंजस के साथ सड़क पर फैले हुए खाने को देखता है। तभी उसके जिस्म को टटोलता दूसरा वहीं से चिल्लाता है, “कुछ है इसकी पतलून में!...अबे चल उतार पतलून!... उतारता है कि दूँ एक...” वह बंदूक उसके चूतड़ पर गड़ा देता है, “अबे ऐसे नहीं मानेगा...चल जाधिया भी उतार...चल!”

रामुला असहाय भाव से तड़पकर हाथ जोड़ने, विधियाने और फिर जार जार रोने लगता है। अंटी में बंधे पांच पांच सौ के नोट अब पुलिस वाले के हाथ में आ गए हैं, “इतने पैसे लेकर कहां भाग रहा था बे मादरचोद?...घुसा दूँ बंदूक तेरे पिछवाड़े में...हरामखोर...” एक आर्तनाद उसके भीतर से फूटने को होता है। लेकिन उससे पहले ही बूट का तेज प्रहार उसे नीचे गिरा देता है। टॉर्च की तेज रोशनी में उसके नंगे जिस्म का हरएक हिस्सा अब उन दोनों के सामने है...

“ये लो जी, ये निकले साले सालिगराम बाल्मिकी महाराज...!” पुलिस वाला ठहाका लगाता है, फिर बेहोशी की सी हालत में उसे एक बार फिर वही बदसूरत विशेषण सुनाई दे जाता है... “सच सच बता, क्या है तेरा असली नाम?...सज्जाद हुसैन...मियां मुशर्रफ कि...साला कायदे आजम...”

“बोल साले!” बंदूक का कुंदा उसकी नंगी पीठ से टकराता है...वह अब कुछ भी कहने या बोल पाने की हालत में नहीं रह गया है...

दूसरा पुलिस वाला उसे कॉलर से पकड़कर उठा लेता है, “चल नाक की सीध में निकल जा!” बंदूक फिर उसकी पीठ पर गाड़ दी गई है, “इधर उधर डोला तो साले इसी से भूनकर रख दूंगा...”

वह गिरता, संभलता चलने लगता है। टॉर्च पीछे से उसके अधनंगे जिस्म पर चमक रही है। वह चलता जाता है। बमुश्किल आगे, एक एक कदम...। फिर टॉर्च अचानक बंद हो जाती है...

इतिहास और परंपरा की खातिर नेताओं ने शहर को नया नाम दे दिया है, लेकिन वक्त के साथ यहां शायद ही कुछ बदला हो। मेट्रोपोलिटन मॉल के 'मैक्डॉनल्ड' ने हाल ही में उन इमारतों के लाखों कम्प्यूटरों पर काम करने वालों के लिए एक नया 'ब्रेकफॉस्ट मीनू' शुरू किया है जिसमें मक्खन में तले जाते 'हैशब्राउन' आलुओं की खुशबू का तो जवाब नहीं। नौजवान एग्जीक्यूटिव अब इसके बाद कॉफी की चुस्कियों के बीच अखबार की रोजमर्रा सुखियां जन्ब कर सकते हैं। चंद हत्याएं, हड़तालें, महंगाई, नए स्वाभिमान अभियान, सरहद पर गोलीबारी में मारे गए दुश्मन और चौथे पन्ने पर शहर में एक आतंकी के मारे जाने की रोजमर्रा खबर। इस नयी पहचान के बावजूद शहर को भीतर से बदल पाना बहुत मुश्किल है। सरकंडों के जंगल के बाद अगली मार अमीबा कोशिकाओं पर होगी। जीवन के शाश्वत प्रतीक अमीबा प्रोटोजोआ, जिनका कोई आकार, कोई वजूद, कोई नाम नहीं होता...न अब, न किसी और युग में...

नागरी सभ्यता

राकेश मिश्र

शिक्षित होने से पहले ही हम शिक्षित बेरोजगार हो गए थे। हमारे शहर में ऐसा ही होता था। इंटर की परीक्षा पास करते करते हमारे परिवारवालों का दम फूलने लगता था। और 'कब तक यूं ही हमारी छाती पर मूंग दलता रहेगा' का भाव स्थायी रूप से हमारे पिताओं की आंखों में बस जाता था, हमारे खीझे और कातर चेहरों से हमारी माएं असमय ही बूढ़ी और लाचार नजर आने लगतीं। हम पिताओं से पहले सहमते। फिर बचते और अंत में ढीठ हो जाते। हम जानते थे हमारे शहर में काम की कोई कभी नहीं है। और देर सबेर हम सबको चुपचाप बेआवाज किसी न किसी काम में लग जाना है। हमारे पिता और परिजन भी जान चुके थे कि हममें से जो कोई भी कंपनी की 'अप्रेंटिस' परीक्षा नहीं पास कर पाया, उसके लिए जिंदगी और जीने का स्तर कई हाथ नीचे गिर गया। वहीं इक्का दुक्का ऐसे भी थे जो यह निहायत अपरिचित और 'खुल जा सिम सिम' वाली परीक्षा पास कर चुके थे। हम सब अपनी सहज बुद्धि और सूचना तंत्र से जानते थे कि ये पास करने वाले कोई बहुत होनहार और पढ़ाकू नहीं थे। बस उनके पिताओं की यूनियन के कमेटी मेंबरान से सही सेटिंग बैठ गई थी। लाख डेढ़ लाख में पर्चा आउट हुआ था, और हमारे देखते न देखते उनके पैर आसमान में कहीं खो गए थे। हम अपने पिताओं के उलाहने के जवाब में अपना यह सामान्य ज्ञान बड़े आत्मविश्वास से दुहराते थे, और हमारे पिता इस जवाब से और अगिया बेताल हो जाते साले! लो तुम भी डेढ़ लाख रुपया और दिखाओ सेटिंग करके। हम अपने ढीठपने में अपनी चुनौती उन्हीं पर दे मारते— कमेटी मेंबरों से उनके बाप की सेटिंग थी उनकी नहीं। रिटायरमेंट की तरफ तेजी से बढ़ रहे हमारे पिता की जलती आंखें धीरे धीरे बुझने लगतीं और फिर धुआंने लगतीं। धुआं धीरे धीरे हमारे छोटे छोटे क्वार्टरों में जहरीली गैस की तरह फैलने लगता, घरों में हमारा दम घुटने लगता और हम अक्सर देर तक घरों से बाहर ही रहने लगते।

वैसे धुआं ही हमारे शहर की पहचान थी। हम देश के सबसे बड़े निजी क्षेत्र की स्टील कंपनी के निर्माता के बनाये शहर टाटा नगर में रहते थे। इसी शहर में उसकी कंपनी थी या यूं कहें कि उसकी कंपनी थी इसलिए यह शहर था। इस शहर की आबोहवा में चाहे जितना धुआं हो, शहर की सड़कें एकदम साफ सुथरी और चौड़ी थीं। कंपनी का चाहे जितना कचड़ा और कूड़ा बगल से गुजरने वाली खरकई नदी में बहता हो, शहर में बिना नागा तीन वक्त स्वच्छ और साफ पानी की सप्लाई थी। हमारा शहर राज्य प्रशासन, नगर निगम, नगर पालिका के भरोसे नहीं बल्कि कंपनी के शहर प्रबंधन के जिम्मे था। हम अपनी लाख शिकायतों और परेशानियों के बावजूद अपने शहर की सुविधाओं पर इठलाते थे। और शहर के आसपास के बसे इलाके जहां की व्यवस्था नगर पालिका या राज्य सरकार देखती थी वहां से गुजरते हुए अपनी नाकों पर रूमाल रख लेते थे। कंपनी ने हमारे लिए, हमारे शहर में क्या नहीं बनाया था। शहर के बीचोंबीच जुबली पार्क था, जिसमें हम तमाम किस्म के गुलाब और फव्वारों के बीच बैठते हुए अपना दिन काट सकते थे, पार्क के बीचोंबीच एक बहुत बड़ा तालाब था, जिसके किनारे पिकनिक मनाते हुए परिवारों को देख अपने सुखद और खुशहाल जीवन की कल्पना कर सकते थे, चिड़ियाघर था जहां देर सवेर हममें से किसी को सुरक्षा गार्ड की नौकरी भी मिल जा सकने वाली थी। सिनेमा हाल थे जिसमें अपने इंटर तक की पढ़ाई के दौरान हमने सबसे अच्छे वक्त बिताये थे, बेल्टबाजी की थी, और थोड़ी देर के लिए ही सही, सिनेमा देखने आई किसी लड़की की नजरों में शाहरुख खान भी हो गए थे। अब नहीं था, तो सिर्फ एक कॉलेज नहीं था, जो टाटा ने बनवाया हो। वैसे एक कॉलेज था, जिसे कुछ पहले के सनकी और खब्ती लोगों ने 'कोऑपरेटिव' की योजना में बनाया था और यही इसका नाम भी था, लेकिन हम भी और हमारे परिवारवाले भी इस पर एकदम मुतमईन थे कि जब इंटर साइंस से पढ़कर हम इंजीनियरिंग, मेडिकल तो क्या अप्रेंटिस तक का कुछ नहीं कबाड़ पाए, तो बी.ए. एम.ए. करके किसका और क्या उखाड़ लेंगे? यह सिर्फ हमारा सोचना भर नहीं था। इसके प्रमाण भी हमारे आसपास ही थे। सबसे जीता जागता और ज्वलंत उदाहरण धीरेंद्र मामा ही थे जो उसी एकमात्र कॉलेज से 'इतिहास' में एम.ए. थे और हमारे मुहल्ले में ही 'कास्मेटिक कॉर्नर' नाम से मनिहारी की दुकान चलाते थे। वैसे धीरेंद्र मामा किसी बहकावे या प्रोपेगंडा के तहत कॉलेज नहीं गए थे बल्कि वे पढ़ने के लिए ही अपने गांव सीवान से यहां आए थे। पहले तो उनके रिश्तेदार को भी लगा कि भला बी.ए. करने के लिए कोई सीवान से जमशेदपुर क्यों आ सकता है, लेकिन बाद में वे समझ गए कि यहां से कॉलेज में बाहर से ही लोग आकर पढ़ते थे। दरअसल उत्तरी बिहार के तमाम छोटे शहर और कस्बे जिस तरीके से जंगलराज में तबदील होते जा रहे थे, उस जंगल में जानवरों को कॉलेज, विश्वविद्यालय अपने सुरक्षित अभयारण्य महसूस होते थे। यहां दाखिला लेने वाले मेमने लड़कों को वे बहुत जल्द अपने पीछे पीछे चलने वाले सियार बना लेते थे। बाद में वे अपनी काबिलियत और सामाजिक जातीय समीकरण से भेड़िया, लकड़बग्घा कुछ भी हो सकते थे। अपनी आंखों के सामने अपनी नस्ल को सियार भेड़िया बनते देख वे तमाम अभिभावक, जिन्हें बच्चे 'गर्जीयन' कहते थे, अपने मेमनों को अपने तमाम नजदीकी दूर दराज, नाते रिश्तेदारों के पास दक्षिण बिहार के इस सम्मोहक तिलिस्म जैसे शहर में पढ़ने के लिए, कुछ कर गुजारने के लिए भेज रहे थे। उस कॉलेज में आधा से ज्यादा लड़के उत्तरी बिहार के उन्हीं शहरों आरा, छपरा, सीवान, नवादा, गया से थे। वैसे हमारे पिता भी बिहार के इन्हीं शहरों में से एक थे, लेकिन हम खुद को इन शहरों का नहीं मानते थे, हम यहीं जन्मे थे, इसलिए हम जमशेदपुरिया थे, क्योंकि हमारे पिता कंपनी के मजदूर थे, इसलिए भी इस शहर पर हमारा ही हक था। भले ही यह हक कंपनी के किसी ठेकेदार के अंदर ठेका मजदूर बन जाने का हो, इस बड़ी

कंपनी की विभिन्न छोटी जरूरतों को पूरा करने वाली किसी छोटी कंपनी में मुलाजिम बन जाने का हो, कंपनी के माल की दुलाई के लिए फ़ैले ट्रांसपोर्ट के जाल में लोडिंग अनलोडिंग एजेंट बन जाने का हो। या किसी छोटे बड़े कांट्रेक्टर का मुंशी बन जाने का हो, और बहुत ही कम हुआ तो अपने पिता के पी.एफ. के पैसों से नई ऑटो खरीद कर खुदमुखार बन जाने का हो, हम जानते थे, हमें यह शहर छोड़ नहीं सकता था, फिर इसे छोड़कर जाने का तो सवाल ही नहीं पैदा होता था।

लेकिन इंटर पास करने के दो साल होने को थे और मैं इसमें से कुछ भी नहीं कर रहा था। मेरे सारे दोस्त धीरे धीरे उन्हीं कामों में जम गए, मैं अपनी ही जगह जाम हो गया। मुझे अपने दोस्तों के नाम से कोई उत्तेजना या प्रतियोगिता नहीं महसूस हो रही थी, बल्कि धीरे धीरे उनसे विरक्ति जैसी हो रही थी। वैसे भी मैं शुरू से ही उनसे कुछ कुछ अलग था। जैसे मैं कविताएं लिखता था, भाषण, वाद विवाद प्रतियोगिताएं जीतता था। अखबारों में पत्र लिखता था। मतलब कुछ अलग तरह के काम करता था। लेकिन यह सब करना, उनसे बहुत अलग हो जाना नहीं था। वो मेरे अलग होने को महसूस करते थे, लेकिन बहुत महत्व नहीं दे पाते थे। मैं भी उनसे महत्व नहीं पाना चाहता था, लेकिन उनसे कुछ अलग करना चाहता था। इसी अलग करने के चक्कर और भ्रम में मैंने वह किया, जो हमारे मुहल्ले में नहीं किया जाता था— कॉलेज में एडमिशन ले लिया। यह बात मेरे पिता के ध्यान में आते ही, जैसे उन्होंने वैराग्य ले लिया। पहले तो कभी कभार डांट डपट भी देते थे, लेकिन मेरे इस कदम से तो जैसे उन्होंने मुझसे हाथ ही धो लिया। धीरेंद्र मामा की मनहारी दुकान पर जब मैंने अपने दोस्तों से इसकी चर्चा की, तो उन्होंने मुझे ऐसे देखा, जैसे मैं चुगद तो पहले भी था लेकिन इतना बड़ा चूतिया होऊंगा, इसकी कल्पना उन्हें नहीं थी। स्याणा पंडित तो बाकायदा हिसाब लगाकर बताने लगा कि तीन साल बाद जब मैं बी.ए. की डिग्री हाथ में लेकर टहलूंगा, तो वह पैसों के कितने बड़े ढेर पर खड़े होकर मुझपर हंसेगा। केवल धीरेंद्र मामा ने मुझे निरुत्साहित नहीं किया। वैसे उन्होंने पढ़ाई को लेकर कोई उत्साहवर्धक हौसला आफजाई भी नहीं की। केवल, सबके चले जाने के बाद मुझे एक अखबार जैसा कागज दिखाते हुए बोले— साला पंडित, अपने आपको बहुत सयाणा समझता है, अब पैसा लगाना, पहले जैसा रह गया है क्या? पैसा लगाने का सारा तरीका बदल गया है। यह देखो, ये है नया तरीका। मैंने अखबार के उस टुकड़े पर यूं ही उचटती नजर डाली, तो उन्होंने इसे मेरी बेरुखी समझते हुए लताड़ा अभी नहीं, लेकिन कुछ पढ़ जाओगे, तो समझोगे ये मामा क्या कहता था। बाबू ये शेयर मार्केट है, इस पन्ने में रोज छपता है, कौन चढ़ा, कौन गिरा, केवल माइंड लड़ाने की जरूरत है। थोड़ा सा लक, और एक चांस। फिर रातोंरात करोड़पति।

मामा ने उस कागज को थोड़ा छिपाते थोड़ा दिखाते हुए जैसा खुलासा किया— ये टाटा कंपनी इसीलिए तो लोगों को कॉलेज नहीं जाने देना चाहती है। नहीं तो सब नहीं समझ जाएंगे कि दुनिया में अभी पैसा कैसे कमाया जाता है? सब यदि ज्यादा पैसा समाने लग जाएंगे तो कंपनी में मजदूरी कौन करेगा?

लेकिन मैं मामा की बातों से ज्यादा प्रभावित नहीं हुआ। मुझे यकीन नहीं था कि अखबार में उन छोटे छोटे छपे आंकड़ों और कूट भाषाओं से कोई पैसा भी कमा सकता है। मेरी शंका पर, मामा ने मुझे लगभग खड़े होकर देखा और कहा— हर्षद मेहता का नाम सुन लो? रेलवे में क्लर्क था। बीवी का गहना बेचकर शेयर मार्केट खेला था, देखो, रातोंरात करोड़पति बन गया।

—लेकिन, वो तो जेल में है। मैंने प्रतिवाद करना चाहा।

—तो कौन सा जन्म भर रहेगा। यूं छूटेगा, वो और फिर राज करेगा, राज! प्रधानमंत्री तक

उसकी मुटठी में है। मामा ने आवेश में अपनी मुट्ठियां लहराईं। वह कुछ और बताना चाहते थे हर्षद मेहता के बारे में लेकिन तभी कुछ लड़कियां उनकी दुकान पर आती दिखीं और वे चुप हो गए। मैं वहां से फूटने लगा तो उन्होंने फुसफुसाते हुए ताकीद की कि मैं इस नये धंधे और ज्ञान की चर्चा किसी से न करूं। मैंने भी उन्हें शेखचिल्ली की तरह देखा, और आंखों से ही आश्वस्त किया— ये भी कोई बताने की बात है? मैंने अभी कॉलेज जाना शुरू नहीं किया है। अभी भी लोग मुझे थोड़ा अलग ही समझते हैं। पागल नहीं।

उस दिन के बाद से 'मामा' को देखने का मेरा नजरिया बदल गया। अभी तक तो मुझे वह हताश, असफल, शिक्षित बेरोजगार का पोस्टर ब्वाय लगते थे, लेकिन किसी को क्या पता कि एक आदमी कंपनी के ठीक नाक के नीचे, उसी के मुहल्ले में अखबार में कुछ अंशों और सूचनाओं की बदौलत उसकी नींव हिलाकर उससे भी बड़ा बन जाने की फिराक में था। मैं कल्पना करता कि एक दिन जब मैं कुछ दिनों बाद अपने मुहल्ले लौटूंगा और किसी से 'कॉस्मेटिक कॉर्नर' का पता पूछूंगा, तो लोग हैरत से मुझे देखेंगे क्योंकि वहां तो एक बड़ी, भव्य और आलीशान इमारत खड़ी है, जहां का दरबान मुझे घुसने नहीं दे रहा, जैसे कंपनी के जनरल ऑफिस का दरबान पचास सवाल करता है, किससे मिलना है? क्या काम है, अपॉइंटमेंट बताइये। इंटरकॉम पर बात कीजिये। मैं धीरे-धीरे मामा का नाम लेता हूं, तो वह अकबका कर ऐसे देखता है, जैसे मैंने रतन टाटा का नाम ले लिया हो। मैं गौर कर रहा था कि शहर में धीरे-धीरे मामाओं की संख्या बढ़ती जा रही थी। हर चौक चौराहे पर लोग शेयर मार्केट की चर्चा करते मिल जाते थे। बाजार में कई ऐसी जगहें खुल गई थीं, जहां लोग एक दो कम्प्यूटर रखकर बाकायदा शेयर ब्रोकर बन गए थे। वहां कम्प्यूटर स्क्रीन पर नजर गड़ाए दर्जनों लोग उजबक की तरह खड़े रहते। किसी को ठीक ठीक नहीं पता चलता था कि क्या हो रहा है, या क्या होने वाला है, लेकिन एक उत्तेजना एक रोमांच बाजार में हमेशा महसूस किया जा सकता था। बाजार के तमाम बनिचों ने चाहे वह किसी का भी व्यापार करते हों, अपने साईनबोर्ड पर 'शेयर ब्रोकर' या 'यहां शेयर खरीदे बेचे जाते हैं' की सूचना जरूर चस्पां कर दी थी। लेकिन कौन खरीददार था कौन विक्रेता इसकी जानकारी किसी को नहीं थी।

बाजार की उत्तेजना के उलट घरों में स्थापा करने जैसा माहौल था। घर घुसते ही एक उदास अनहोनी की आशंका घर कर जाती। पिताजी रोज मां से ई.एस.एस. स्कीम की चर्चा करते। ई. एस.एस. मतलब अर्ली सेपरेशन स्कीम। कंपनी लगातार लालच दे रही थी कि आप अपने रिटायरमेंट तक का सारा हिसाब करके कंपनी से अलग हो जाओ। बिना काम किये, पैसा ले जाओ। कंपनी छोड़ने वालों को कंपनी पुरस्कृत कर रही थी। गृह पत्रिकाओं में उनके फोटो छापे जा रहे थे। यूनिजन उनका अभिनंदन कर रही थी। गले में हार डाले वे मजदूर वधस्थल पर ले जाए जा रहे पशुओं की प्रतिच्छाया नजर आते थे। पिताजी की एक उदास, हताश फुसफुसाहट कमरे में तैरती थी— ठीक ही स्कीम है। अच्छा पैसा मिलेगा। हम सबके कानों में जैसे पिघले शीशे सा सुनाई देता— सब खत्म। हम बर्बाद होने जा रहे हैं। समूचा घर एक दूसरे से छुपता, नजरें बचाता, समय बीत जाने की प्रार्थना करता सा महसूस होता। लेकिन समय अपनी समूची भयावहता से उपस्थित होता था, उसमें धीरे धीरे हम अपनी उम्मीदों, आकांक्षाओं और सपनों के साथ बीत रहे थे।

वैसे मैं तो समय बिताने के लिए ही कॉलेज आता हूं। यह वाक्य मैंने जिस लड़के से कहा, वह मेरे चेहरे को यूं ही बहुत देर तक पढ़ने की कोशिश करता रहा। दरअसल इस कॉलेज में सब मुझे अपरिचित ही लगते थे। ज्यादातर लड़के भोजपुरी और मगही में आपस में चिचियाते और लुलुहाते थे। मैं जमशेदपुरिया था और उनकी चिंताओं एवं उम्मीदों से खुद को जोड़ नहीं पाता

था। यह लड़का अविश्वासी था, और इसका चेहरा जैसे इस्पात के सांचे में ढला हुआ लगता। मेरी तरह शायद इसका भी कोई दोस्त नहीं था, या यह भी किसी से दोस्ती करना नहीं चाहता था।

—तुमने क्या सोच कर यहां एडमिशन लिया है? मैंने उसे यूं ही टटोलते हुए पूछा।

जानने, समझने के लिए। उसने जैसे एक एक शब्द को चबाते हुए कहा। ये कुछ शब्द भी जैसे 'टन्न' से मेरे कानों में बजे थे।

—क्या जानना चाहते हो? मैं दिल्लीगी पर उतर आया।

—यही कि आखिर हमारी जमीनें रातोंरात तुम लोगों की कैसे हो जाती हैं?

—अरे यार, तुम तो पॉलिटिक्स पर उतर आए। मैं बेसाख्ता बोल गया।

—पॉलिटिक्स तो तुम लोग करते हो। मैं तो सच बोल रहा हूं। उसकी आवाज की तुर्शी थोड़ी और बढ़ गई थी।

—अरे यार, तुम समझ नहीं रहे हो...मैंने माहौल को थोड़ा हल्का करने की गरज से कहा।

—हम लोग कहां समझ पाते हैं। समझदार तो तुम लोग हो...वह नरम पड़ने को तैयार ही नहीं था— समझ पाते तो आज तुम लोगों की लूट बरदाश्त करते! अपनी ही जमीन से इस तरह गायब होते जाते?

बातें कैंटीन में हो रही थीं। उसके इस कदर तैश और तेवर में बोलने से कई लोगों का ध्यान हमारी तरफ आकर्षित हो गया था। समय काटने के ख्याल से शुरू की गई बातचीत यहां तक पहुंच जाएगी इसका इल्म मुझे नहीं था। मैं किसी भी तरह बातचीत खत्म करना चाह रहा था।

—अच्छा ठीक है। अब जाओ यहां से...मैंने उसे टालने के से अंदाज में कहा।

—मैं यहां से जाऊंगा? मेरा तो ये घर है। जाना तो तुम लोगों को न पड़ेगा। वह टालने की बजाय बरसने को तैयार बैठा था।

—कहां भेजेगा रे? कहां भेजबट हमनी के? बगल की टेबल से एक बिहारी बांह चढ़ाता उसपर चढ़ने से तत्पर हो आया।

—साला ओंडो। जंगली होके हमनी के बुद्धि दे रहा है रे? एक आध और आवाज आनी शुरू हो गई।

क्या फसाद मोल ले लिया मैंने? मैंने गौर किया कैंटीन में अभी वह अकेला आदिवासी था। यदि मैंने तुरंत कोई एक्शन नहीं लिया तो एक अनहोनी वहां घटित होने को तत्पर दिखाई दे रही थी।

—मैंने तुरंत अपना पैतरा बदलकर बिहारियों को ललकारने वाली शैली में कहा— तुम लोग काहे बीच में बोलता है रे? ढेर रंगबाजी का जरोरत नहीं है यहां पर।

मेरे पैतरे का अपेक्षित असर पड़ा। खासकर उस आदिवासी लड़के पर। उसने भी बातचीत की तुर्शी में कैंटीन के माहौल पर ध्यान नहीं दिया था। अचानक ऐसी स्थिति बन जाने से वह भी थोड़ा सहमा और असहज था। मेरे इस दांव से जैसे वह मेरे प्रति थोड़ा उदार भी दिखा, और जब मैंने उठते हुए कहा— चलो, बहुत हो गई पॉलिटिक्स आज। चला जाए अब, तो वह भी मेरे साथ साथ कैंटीन से बाहर आ गया।

तुमने तो आज फंसा ही दिया था। बाहर निकलकर जब मैंने उसके कंधे पर हाथ रखा, तो वह पहली बार मुसकराया। मुस्कराते हुए उसका चेहरा इतना निश्चल और मासूम लगा कि मैं अब तक कही गई उसकी सारी बातों को जैसे एकबारगी भूल गया। मुझे यकीन ही नहीं हुआ कि इस्पात के सांचे में ढला चेहरा मुस्कराते हुए इतना कोमल और तरल भी हो सकता है।

मैं समझ पा रहा था, कि हम दोनों बस बारूद के ढेर से उठकर आ रहे थे। अभी ही क्यों हमेशा पलीता जैसे सुलगने सुलगने को ही था। पूरा शहर ही जैसे जलने को तैयार बैठा था। झारखंड राज्य बनने का आंदोलन अपने चरम पर था। शेयर मार्केट की तरह यहां भी किसी को पता नहीं था कि राज्य बनने के बाद क्या होगा? हमें तो खुशी से ज्यादा उत्तेजना थी कि होश हवास में हम एक राज्य बनने की घटना को देख रहे थे। वैसे हमारे शहर में इस आंदोलन की तपिश थोड़ी कम महसूस हो रही थी, क्योंकि शहर में आदिवासी नहीं के बराबर दिखते थे और आंदोलन की कमान आदिवासियों के हाथों में थी। मैंने पॉलिटिक्स की बात इसीलिए उठाई थी और उसके हक की बात को मैं इसी चश्मे से देख रहा था। लेकिन उसका कहना था कि वह सचमुच मैं अपने हक की बात कर रहा था। उसने अपना नाम बीर सिंह बोहरा बताया और उसका दावा था कि कंपनी की जमीन का असली वारिस वही है। मुझे उसके दावे पर हंसी आ रही थी और मैं अपने आपको चिकोटी काटकर इस बात के लिए आश्वस्त कर रहा था कि मेरे कान नहीं बज रहे हैं और मेरी आंखें धोखा नहीं खा रही थीं कि वे जिन्हें देख रही थीं, वह कोई मामूली, मरियल, औडो, आदिवासी नहीं बल्कि इतनी बड़ी जमीन की मिल्कियत का वारिस था।

— चलो मान भी लिया कि ये सारी जमीन तुम्हारे दादा परदादाओं की थी, लेकिन उसका मुआवजा तो मिला होगा न तुम लोगों को?

— मुआवजा...उसकी फिर पीसती सी आवाज निकली। मिला था न मुआवजा मेरे परिवार के लोग रातोंरात कहीं गायब हो गए थे।

— गायब! कहां गायब हो गए थे। मुझे झुरझुरी सी हो आई।

और कहां गायब होंगे! जमीन के नीचे। मार के गड़वा दिया पठान लोगों से। केवल मेरा बाबा भागकर बच पाया था। पठानों को मैं जानता था। वे अक्सर काजू, किशमिश, पिस्ता का व्यापार करते, बुलेट पर चलते और उनके बुलेट की आवाज सुनकर मैंने भी गौर किया था, मेरे मुहल्ले में कई लोगों का खून सूख जाता था। वे सूद पर पैसा चलाते थे, और उसमें देरी होने पर साक्षात यमदूत थे। लेकिन जब कंपनी बन रही थी, तो वे उस समय किसे बादाम पिस्ता बेचते होंगे?

मेरी जिज्ञासा के जवाब में उसने अपने बाबा के हवाले से बताया कि कंपनी बनाने वालों के साथ बहुत से पठान मजदूरों की शक्ल में लाए गए थे लेकिन वे सिर्फ नाम के मजदूर थे। उनका असली काम था यहां के आदिवासियों, जो आसानी से अपनी जमीन देने को तैयार नहीं थे, कल्ल करना, उन्हें खत्म करना। उन्होंने हजारों की संख्या में उनका सफाया किया।

— लेकिन तुम लोग भी तो लड़े होंगे? मैंने हल्का सा प्रतिवाद करना चाहा।

— लड़ तो थे ही। अभी भी तो लड़ ही रहे हैं। नहीं तो, तुम क्या सोचते हो, जिन लोगों ने अंग्रेज तक को अपनी जमीन पर नहीं आने दिया, वे आसानी से कंपनी को अपनी जमीनें दे देते? उसके इस ऐतिहासिक और लगभग दार्शनिक से सवाल से मैं निरुत्तर हो गया।

उस दिन के बाद से उससे मेरी दोस्ती जैसी हो गई। उसने अपने बाबा चुमनू बोहरा के बारे में बताया कि किस तरह वो दलया पहाड़ पर एक झोपड़ी बनाकर रहते हैं। जंगल के सारे जानवर खासकर हाथी उनकी सारी बातें समझते हैं। उसकी बातें मुझे किसी दूसरे लोक या ग्रह की बातें लगतीं। मैं उससे अपनी बातें भी शेयर करता। मेरी बातें सुनकर उसने एक बार कहा कि कंपनी ने तो आदिवासियों से केवल जमीन ली थी, लेकिन हम लोगों से तो हमारा जमीर छीन रही है।

जहां तक मैं देख पा रहा था, बीर सिंह सौ प्रतिशत सही था। अपने ही दोस्तों के बीच

मैं अजनबी और अजीब सा होता जा रहा था। अपने छोटे मोटे धंधों और नौकरियों में उन्होंने न जाने कौन सा खुफिया रास्ता तलाश किया था जो किसी खुल जा सिमसिम से खुलता था। वे अपनी कंपनियों से रोज कुछ न कुछ चुरा लाते थे, अपने बेबस दोस्तों को, परिचितों को उधार सूद पर पैसे देते थे और उसे किसी भी तरह वसूलने के लिए 'पठानों' के भी बाप बनते जा रहे थे। पठान तो गाली गलौज, और बहुत हुआ तो मारपीट तक के लिए बदनाम थे। मेरे दोस्त तो अपनी वसूली में मां बहनों की इज्जत तक को देखने लगे थे। उनके घरों में रिटायर हो गए पिताओं के लिए जगह नहीं थी और वे उन्हें जबर्दस्ती गांव छोड़ आए थे। उन्हें यकीन था कि इतने दिनों तक जो आदमी शहर में रह गया, वह गांव जाते ही एकाध साल में मर खप जाएगा। उनका यकीन सच में तब्दील हो रहा था, और वे अपनी योजनाओं पर, सफलताओं पर खुश थे। मैं घर में अपने पिता को देखता था, और महसूस करता था कि वे मेरी आंखों में अपने लिए भय और अनहोनी जैसा महसूस करते। शायद उन्हें यह भी लगता था कि मैं अभी तक अपने जैसा कुछ नहीं कर रहा हूं, इसीलिए वे महफूज हैं। वे जब मुझे सुनाकर मां को कहते कि रिटायरमेंट के बाद वे भी गांव चले जाएंगे, तो मैं भीतर से मर जाने की हद तक कट जाता। मैं उन्हें छूकर, पकड़कर अंकवार में भर लेना चाहता था। उनकी आंखों में आंखें डालकर उन्हें यकीन दिलाना चाहता था मैं नकारा हूं, हत्यारा नहीं। लेकिन मैं ऐसा कुछ कर नहीं पाता था, सिवाय उनसे नजरें चुराने के। मेरा उनसे नजरें चुराना, शायद उन्हें खुद के प्रति, खुद की ताकत के प्रति यकीन दिलाता था।

लेकिन मेरा यकीन अपने दोस्तों से छूटता जा रहा था, उस दिन के बाद से तो एकदम से जब 'स्याणा पंडित' 'मामा' की दुकान पर अपने पिता के अस्पताल में भर्ती होने पर सबको चहक कर बता रहा था—'बुढ़ा यदि नौकरी में रहते टपक गया तो कंपनी में उसके घुस जाने के पूरे चांस रहेंगे। परंतु बीर सिंह बोहरा और उसकी बातों पर मेरा यकीन बढ़ता जा रहा था। उसने बताया कि जहां कंपनी का ब्लास्ट फर्नेस है, वहां उसके कुलदेवता का स्थान है। उसके बाबा चुमनू बोहरा रात में दलया की चोटी पर खड़े होकर अपने कुलदेवता से बातें करते हैं। उसने यह भी बताया कि शुरू में तो कुलदेवता ने कंपनी को माफ कर दिया था, लेकिन वे अभी बहुत गुस्से में हैं, और देखना एक दिन कंपनी नेस्तनाबूद हो जाएगी। पहले का समय होता तो कंपनी के नेस्तनाबूद वाली बात पर मैं बोहरा का गिरेबां पकड़ लेता, लेकिन अभी उसकी बातों से राहत जैसी महसूस हो रही थी।

कंपनी किसी भी कीमत पर अपने कर्मचारियों से छुटकारा पाना चाहती थी। मुख्य कंपनी को छोड़कर उसकी कई छोटी छोटी इकाइयों को वह औने पौने मुआवजे देकर बंद कर रही थी। इसके साथ साथ ही वह और कई छोटी कंपनियां खोलने की घोषणा भी कर रही थी। इन कंपनियों में डिबेंचर और शेयर के फॉर्म के लिए बैंकों के बाहर भारी लाइन लगती थी और कई बार कागज से उन टुकड़ों के लिए लोग एक दूसरे की जान लेने को उतारू हो जाते थे। बंद की गई इकाइयों के क्वार्टरों से अचानक विजली के बल्ब की जगह लालटेन जलने लगती, उनकी महिलाएं हमारे मुहल्लों में सार्वजनिक नलके से पानी भरने लगतीं। उनके बच्चे सरकारी स्कूलों में पहुंच जाते और हम अचानक पाते कि हमारे जगमगाते शहर के बीचोंबीच में टापुओं जैसे पुरापाषाणकालीन गांव आबाद होते जाते थे। शहर में सच और अफवाह के बीच फर्क करना उतना ही मुश्किल होता जा रहा था जितना शेयर मार्केट के दलालों और इन बंद हो गई कंपनी के क्वार्टरों के मुहल्लों में भूख से बेबस, परिवार की चिंता में घुलती मां बहनों के जिस्म के दलालों के बीच।

अपने शहर की जिन सुविधाओं पर मैं रश्क करता था, वो अब मेरी आंखों में चुभने लगी थीं। वे चौड़ी सड़कें जिनपर मैं कभी शान से चहलकदमी करते हुए चलता था, मुझे मेरे भविष्य

की तरह उजाड़ और बियाबां लगतीं। मेरे मुहल्ले में तीन वक्त आनेवाला पानी अब मुझे बेस्वाद ही नहीं खारा भी लग रहा था और जुबिली पार्क, वहां तो जाते हुए झुरझुरी होती थी। एक दिन मैंने अपने पिता को वहां पौधों की निराई करते देखा था। वो लोहे का काम जानने वाले स्किल्ड मजदूर थे। अपने जीवन में तीस साल उन्होंने मशीन पर बिताये थे। मशीन की घरघराहट से वे उसके मिजाज का पता लगा लेते, लेकिन वे जुबिली पार्क में पौधों की निराई क्यों कर रहे थे? रात में मैंने चुपके से मां से पूछा तो उसने बताया कि पिताजी को 'पूल' में डाल दिया गया था। मतलब जो लोग कंपनी नहीं छोड़ रहे थे कंपनी उन्हें जलील कर रही थी। बरसों तक जो लोग अपनी जगह, अपनी मशीनों पर काम कर रहे थे, उन्हें वहां से उठाकर 'पूल' में डाला जा रहा था। मतलब आप अपनी ड्यूटी के समय दिहाड़ी मजदूरों की तरह जनरल ऑफिस से अहाते में खड़े हो जाते फिर आपका सुपरवाइजर, आपको आपकी शिफ्ट में ऐसे ही किसी काम में लगाएगा। पौधों को पानी देने, झाड़ू बुहार करने, नाला सफाई करने, क्रेन की साफ सफाई करने के किसी काम में। आप अपने 'हुनर' को याद कीजिये और आंसू बहाते हुए चुपचाप अपमान सहते जाइये, नहीं तो सम्मानजनक तरीके से कंपनी से बाहर हो जाइये।

'पूल' में एक दिन पिताजी की ब्रांच का कमेटी मेंबर भी डाल दिया गया। पहले तो उसे अपने साथ किया गया यह सलूक समझ ही नहीं आया। वह अपने तई एक ईमानदार और साफ सुथरी छवि का कमेटी मेंबर समझा जाता था। उसने लगभग ललकारते हुए सुपरवाइजर को इस तरह का काम न करने की चुनौती दी। सारे मजदूरों के सामने सुपरवाइजर ने उसे गंदे से लगभग धकियाते हुए क्यारियों की तरफ ठेल दिया—काम करना है तो करो, नहीं तो शाम तक 'चार्यशीट' भर लेना।

वह कमेटी मेंबर था, अपनी ब्रांच के मदजूरों का चुना हुआ प्रतिनिधि। उसने कातर और लाचार निगाहों से अपने साथियों को देखा, लेकिन किसी में भी 'सुपरवाइजर' की इस कमीनगी के विरोध का साहस नहीं था। यह जलालत उससे बर्दाश्त नहीं हुई और उसी दोपहर, उसने जुबिली पार्क के उसी मशहूर तालाब में डूबकर अपनी जान दे दी, जिसके किनारे उस दिन भी लोग पिकनिक मना रहे थे, और कुछ लोग उन्हें देखकर अपने भविष्य के सपने बुन रहे थे। पुलिस को उसके पास से कोई सुसाइट नोट तक बरामद नहीं हुआ। सिर्फ उसकी ऊपरी जेब से एक कागज निकला जिसपर 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद, पूंजीवाद हो बरबाद' जैसा नारा लिखा था।

दूसरे दिन शहर के किसी अखबार में इस घटना की कोई चर्चा तक नहीं थी। उस अखबार में भी नहीं जिसमें मैंने थोड़े ही दिन पहले समय काटने के लिए बतौर 'ट्रेनी' उपसंपादक ज्वाइन किया था। मुझे अपने इस अखबार में कम से कम इस खबर के दिखने की उम्मीद थी, क्योंकि यह अखबार शुरू ही किया गया था—'सनसनी' के लिए। 'सांध्य सनसनी'। दरअसल इस अखबार का मालिक अखबार बेचने का धंधा करता था। कई तरह के अखबार बेचकर उसने काफी पैसा कमाया था, और सिनेमा से कमाया पैसा सिनेमा में बर्बाद होता है की तर्ज पर उसने अपना भी दैनिक सांध्य सनसनी अखबार शुरू कर दिया था। वह निरक्षर था और अपने अखबार का शीर्षक तक नहीं पढ़ सकता था, लेकिन हर खबर पर उसकी पैनी नजर रहती थी, और छपने से पहले हर खबर उसे सुनाई जाती थी। वह समाचार और सनसनी के अंतर को अच्छी तरह समझता था। उस दिन जब मैं सनसनी के तौर पर ही सही इस खबर को देखना चाह रहा था, मेरे अखबार की हेड लाइन थी—'लालू गए जेल'। बिहार के मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव के चारा घोटाले की खबरें उस समय हवा में थीं। बड़े बड़े बोल्ल्ड अक्षरों में इस 'हेडलाइन' ने लोगों में जैसे एकबारगी उत्सुकता और रोमांच भर दिया था, लेकिन अंदर की खबर यह खुलासा करती थी कि दरअसल

कोई 'लालू' नामक जेबकतरा पुलिस के हथै चढ़ा था और उसे ही जेल हुई थी। उस दिन उस एक भ्रामक सत्य ने सच बेचने वाले सारे अखबारों को औकात बता दी थी। उस दिन ही क्यों, आए दिन मेरा यह अखबार अपनी बिक्री संख्या में शहर के सारे अखबारों की कुल बिक्री संख्या पर भारी पड़ता। सिर्फ भ्रामक सत्य या रोमांचक झूठ के बलबूते यह रोज संभव नहीं था। 'आंख के अंधे गांठ के पूरे' हमारा अखबार मालिक इससे भली भांति अवगत था। उसने इस अखबार में 'शहर की सच्ची कहानियां' नाम से एक दैनिक कॉलम शुरू करवाया था, जिसमें शहर के मुहल्लों के वास्तविक नाम के साथ जिस्मफरोशी और ऐय्याशी की वासनात्मक कहानियां छपतीं। इनमें उन्हीं कुछ मुहल्लों के नाम होते जिनमें अब बिजली की जगह लालटनें जलती थीं और जिनकी महिलाएं पानी लेने के लिए हमारे मोहल्ले के सार्वजनिक नलकों तक आती थीं। यह कॉलम हमारे मालिक का जिगरी दोस्त लिखता था जो था तो मालिक के ही धंधे में लेकिन अखबारों के साथ गुप्त रूप से मस्तराम की किताबें भी बेचा करता था। उस कॉलम का छपना शुरू होते ही वह अखबार अखबार नहीं अफीम की डिबिया हो गया था जिसे लिये बिना शहर को नींद नहीं आती थी। नींद तो वैसे कंपनी को भी नहीं आ रही थी। नया राज्य बनने की जिस तपिश को हम नजरअंदाज कर रहे थे वह अचानक तेज लपटों में हमारे सामने था। शहर में ज्यादातर संख्या उत्तरी बिहार के निवासियों की थी और नया राज्य बिहार से ही टूटकर बनना था। जाने कैसी हवा थी कि लगता था कि यदि यह राज्य बना तो सारे बिहारी सड़कों पर भीख मांगेंगे। बिहार के मुख्यमंत्री ऐलानिया बयान दे चुके थे कि बिहार उनकी लाश पर ही बंट पाएगा। कंपनी यह तय नहीं कर पा रही थी कि बदली परिस्थिति वह किसको सपोर्ट करे। नए राज्य के गठन, प्रक्रिया और भविष्य के बारे में आकलन के लिए भी कंपनी के पास कोई दिमाग नहीं था। कंपनी का जनसंपर्क विभाग उत्तरी बिहार के पूर्व आईपीएस के एक बिगडैल तथा ऐय्याश बेटे के भरोसे था जो अधिसंख्य बिहारियों की तरह माने बैठा था कि संभवतः नए बनने वाले राज्य में उसकी कोई जगह नहीं होगी। शहर में बिहारी एकता संघ, बिहार बचाओ समिति, अखंड बिहारी समाज जैसे कई संगठन रातोंरात खड़े हो गए थे और उनके नेता कंपनी के जनसंपर्क कार्यालय में डेरा डाले रहते। जिस कॉलेज पर कंपनी ने कभी ध्यान नहीं दिया और भूलकर भी उसके अस्तित्व को नहीं स्वीकारा, उसी कॉलेज में पढ़ने वाले वे सियार की ट्रेनिंग पाए बेकार और आवारा छात्र कंपनी की उम्मीदों के चिराग हो गए थे। कंपनी की शहर पर कॉलेज में 'अखिल बिहार छात्रसंघ' नामक स्वयं भू यूनियन खड़ी हो गई थी, जो कॉलेज और शिक्षा को छोड़कर हर मुद्दे पर फच्चर फंसाने को तैयार रहती। कंपनी ने 0% ब्याज और बिना डाउन पेमेंट के आसान किश्तों पर उसी कॉलेज के युवाओं के लिए बाइक की योजना लांच की, और देखते देखते लगभग सैकड़ों की संख्या में हीरो हॉंडा सवार लड़कों का एक ऐसा दल तैयार हो गया था जो सौ हॉर्स पावर अपनी जांघों में दबाये कमर में कट्टा खोंसे, कहीं भी किसी भी मामले में वहशी सायरन बजाते हुए पहुंचकर हुड़दंग मचाने को तत्पर रहता।

लेकिन कंपनी मामले के दूसरे पहलू पर भी नजर रखे थी। यदि नया राज्य बन ही गया तो? नये राज्य के संभावित कर्तार्थता को भी वह नजरअंदाज नहीं कर सकती थी। अपनी लगातार गिरती वित्तीय स्थिति और घाटे का रोना रोकर अपने कर्मचारियों, मजदूरों को किसी तरह निकाल बाहर करने को प्रतिबद्ध कंपनी इस मामले में अचानक उदार और शाहखर्च हो गई थी। यह चर्चा आम थी कि वह जनसंपर्क अधिकारी अपने ऑफिस में नोटों के बोरे के साथ बैठता था, और अपने मिलनेवालों में हुड़दंग मचाने की हैसियत के मुताबिक दिन भर नोट बांटा करता था। दरअसल नये राज्य के बनने न बनने से कंपनी को कोई मतलब नहीं था। मतलब था तो इस सवाल से, कि क्या नई परिस्थिति में उसकी हैसियत बरकरार रह पाएगी। हैसियत मतलब स्वायत्त हैसियत

जहां वह बिना नगर पालिका, नगर निगम, जिला परिषद के, कंपनी सोशल रिसर्पांसबिलिटी (सी. एस.आर.) का मुखौटा पहने करोड़ों रुपये के टैक्स की हेराफेरी कर सके। इस शहर का सर्वेसर्वा, नियंता खुश, और खुदमुख्तार की हैसियत में था। उसे अपनी इस हैसियत से प्यार था, उसे अपनी इस नायाब चोरी पर नाज था, और कोई भी राज्य हो उसे अपनी यह स्वायत्त हैसियत कायम रखनी थी।

लेकिन शहर और उसके आसपास के इलाकों से आ रही खबरें कंपनी को बहुत आश्वस्त नहीं रहने दे रही थीं। जुगसलाई, कागल नगर, बिरसा नगर, बागुनहातु जैसे इलाके जहां से पहले हम अपने शहर की सुविधाओं पर रक्षक करते नाक पर रूमाल रखकर चलते थे, अचानक से नई राजनीति के सेतु हो गए थे। इन मोहल्लों में बसने वाले लोगों में एक नई आशा, नई आकांक्षा उभार ले रही थी, और लोगबाग अपनी चर्चा में इस बात पर मुतमईन थे कि नया राज्य बनते ही, कंपनी की लीज व्यवस्था से उन्हें आजादी मिल जाएगी और उनके घर जो अभी तक कंपनी की लीज की मोहलत के मोहताज हैं, अब उनके पक्के मालिकाना हक में आ जाएंगे। दरअसल समूचे शहर की जमीन को कंपनी ने खुद सरकार से अनंत काल की लीज पर ले रखा था, और यहां के वाशिनदों को वह 'सबलीज' पर रहने दे रही थी, मतलब जब भी कंपनी को उन जमीनों की जरूरत हो, वह लीज खत्म होने का बहाना बनाकर उन जमीनों पर कब्जा कर सकती थी। नया राज्य बन जाने से कंपनी की वह जमींदारी नहीं चल पाएगी, इस भरोसे ने आसपास के इलाकों में 'लगभग उलगुलान' जैसा माहौल पैदा कर दिया था। कंपनी का रोज एक नया चेहरा सबके सामने उद्घाटित हो रहा था। लोग यह जानकर हैरान थे कि कंपनी अपने इन आसपास के मोहल्लों में नगर निगम नगर परिषद के अधिकारियों को अपने इलाके में विकास न करने के लिए मोटी रकम देती थी ताकि उनकी बदहाली और बदईंतजामी के बरक्स अपने नियंत्रण वाले हिस्से की चमकदार और रंगीन छवि का ढिंढोरा पीटा जा सके, और यहां के निवासियों में नगर निगम बनने के नाम से ही जड़ैया बुखार आ जाए।

मेरा अखबार सांध्य सनसनी ऐसे रहस्योद्घाटनों का मुखपत्र बनता जा रहा था। बहुत ही कम लागत से निकलने वाला यह अखबार सिर्फ अपनी सनसनीखेज हेडलाइंस के दम पर रातोंरात कंपनी से बारगेन कर सकने वाली स्थिति में आ गया था। अखबार बेचने का धंधा करने वाले मेरे निरक्षर मालिक प्रकाशक को पता था कि शहर के बाहर बड़े शहरों में अखबार मालिकों के बहुत बड़े बड़े धंधे हैं। वे कागज, कोयला, स्टील, तस्करी, कई तरह के उद्योगों में लिप्त उद्योगपति हैं। उसे अब अपना धंधा छोटा लगने लगा था, आखिर वह भी एक अखबार का मालिक था, और उसके चमचे बताते थे कि उन बड़े अखबार के मालिकों ने सरकार के खिलाफ इसी तरह की खबरें छापकर अपने धंधों के लिए सहूलियतें हासिल की थीं। ठीक है कि सरकार उसका अखबार नहीं पढ़ती है लेकिन कंपनी तो पढ़ती है, उसे अब कंपनी से वही सब सहूलियतें चाहिए थीं जो बड़े अखबार के मालिक सरकार से हासिल करते रहे थे। इस 'बारगेन' में वह किसी भी हद तक जाने को तैयार था। कंपनी के खिलाफ या उसे धमकाने वाली किसी भी खबर को छापने के लिए वह कोई भी खतरा उठाने को तैयार था। उसके अखबार में काम करनेवाले मेरे सभी सहकर्मी पत्रकार दिन रात कंपनी के खिलाफ कोई 'स्कूप' निकालने की जुगत में भिड़े रहते। एक तगड़े 'स्कूप' से किसी की भी किस्मत अखबार में रातोंरात पलट जा सकती थी। ऐसे में जब मैंने भी एक दिन लंबी छलांग मारने की जुगत में उसे 'चुमनू बोहरा' का किस्सा बताया कि किस तरह पुरानी जमीन पर ही कंपनी का अधिकांश हिस्सा बना है, तो वह जैसे खुशी से उछल पड़ा। उसने मुझे तुरंत उपसंपादक बना देने का वचन देते हुए 'स्टोरी' लिखने को कहा। विफलताओं के मीलों पसरे उजाड़

और बियाबां में अचानक दिख गए किसी गुप्त खजाने के मार्ग जैसे रोमांच से भरकर मैंने वह 'स्टोरी' फाइल की। उसमें मैंने चुमनू बोहरा की लड़ाई, कंपनी के जुल्म और अभी उसके कुलदेवता से बात करने जैसा सारा रोमांच उड़ेल कर रख दिया। मुझे अब सफलता के खजाने की ओर जाने वाली सीढ़ियां साफ साफ दिखाई दे रही थीं। मामा ठीक कहता था, यह समय कागज के इसी टुकड़े 'अखबार' का समय था। केवल आंकड़ों वाली बात वह ठीक से नहीं समझ पाया था। आज भी अक्षर ही अपनी ताकत से लोगों को उठाते गिराते हैं।

दोपहर में यह खबर छपी जरूर लेकिन मेरी लिखी हुई नहीं। 'चुमनू बोहरा करेगा अपनी जमीन पर दावा' नामक इस शीर्षक से जो खबर छपी थी, उसमें मेरी केवल इस सूचना का इस्तेमाल था कि 'कंपनी की जमीन पहले किसी चुमनू बोहरा के नाम पर थी। बाकी की खबर में यह तफसील थी कि नया राज्य बन जाने के बाद 'चुमनू बोहरा' नई सरकार से अपनी जमीन वापस पाने के लिए नालिश करेगा। उस खबर में 'मंगल भुइयां' नाम के किसी आदिवासी नेता के बयान का बॉक्स भी छपा था कि नया राज्य बन जाने के बाद 'चुमनू बोहरा' के प्रति किये गए अन्याय का हिसाब किया जाएगा। खबर में मेरी लिखी एक भी पंक्ति नहीं थी, लेकिन वह छपी गई थी मेरे ही 'बाय लाईन' से।

मैं थोड़ी नाराज शक्ल लिए जब अखबार के दफ्तर में दाखिल हुआ तो मालिक ने मेरी पीठ पर धौंस जमाते हुए पुचवारा—वाह, पढ़े कमाल कर दिया तूने। मैंने पुनपुना कर प्रतिवाद करना चाहा कि यह सब तो मैंने लिखा ही नहीं। तो उसने जैसे समझाने के से अंदाज में कहा— तुम्हारी खबर थी बेटा। केवल तुमको लिखना नहीं आता था। इसलिए दूसरे से लिखवाया। दुनिया में सूचनाओं की कोई अहमियत नहीं होती, अहमियत होती है उस सूचना में दिये सनसनी की। एक अंगूठा छाप, कबाड़ी बाकायदा मीडिया विशेषज्ञ की तरह का सिद्धांत पेश कर रहा था। मैं विभ्रम में था। ठीक है, खबर मेरी नहीं थी, लेकिन वह छपी मेरे ही नाम से थी। एक बार छपी है तो आगे भी छपेगी। अभी हाल ही कॉलेज में पढ़ाई गई कविता की एक पंक्ति जैसे मेरे सामने मूर्तिमान हो उठी थी— वसंत सेना! तुम्हें सीढ़ियों का रहस्य मालूम नहीं। ये एक बार शुरू होती हैं तो खत्म होने का नाम नहीं लेतीं।

लेकिन मैं चाहे जितना खुश होना चाहता था, अंदर से एक कचोट सी भी उठती थी। यह मैंने बीर सिंह के साथ अच्छा नहीं किया। एक शर्म, एक झिझक सी भी मचलती थी कि कॉलेज में उससे नजरें कैसे मिला पाऊंगा? अपने तई एक तर्क सा गढ़ता कि आखिर इस खबर में कुछ गलत तो नहीं ही है, यह तो उसके हक की लड़ाई की ही बात है। जब मैं कॉलेज पहुंचा, तो बीर सिंह पहले की ही तरह मिला। उसने वह खबर पढ़ी ही नहीं थी, वह खबर ही क्यों, वह जहां रहता था, वहां कोई अखबार पहुंचता ही नहीं था और वहां कोई अखबार पढ़ता भी नहीं था।

मैं बेकार ही डर रहा था। उस खबर को पढ़ा तो कई लोगों ने था, लेकिन मेरे नाम को शायद ही किसी ने नोटिस किया हो। यहां तक कि मेरे घर और मोहल्लेवालों ने भी। वैसे भी उस अखबार की मियाद दो घंटे की थी। मैं मन ही मन मुस्कराया, जिन खबरों के बलबूते मेरा मालिक कंपनी से बारगेन कर उसका कोई बड़ा ठेका या ऑर्डर हथियाना चाहता था, उस खबर के छपे हुए अखबार पर वहां शायद ही ही कोई भजिया भी खाता होगा।

लेकिन यहां मैं गलत था। कंपनी अपने खिलाफ छपे एक एक अक्षर के प्रति चौकस थी। वह अपने पक्ष विपक्ष में छपी खबरों का रिकार्ड भी रखती थी, लेकिन मीटिंग अपने विपक्ष में छपी खबरों पर करती थी। वैसे, इस सूचना या खबर में कोई दम नहीं था। चुमनू हो या झुंझनू कंपनी ने जमीन ली होगी, तो बाकायदा कागज पत्तर भी तो बनवाये होंगे। फिर लगभग सत्तर साल पहले

के किसी दावे पर कंपनी को आज या भविष्य में किसी परेशानी का सामना करना पड़े, इसकी कल्पना कोई मेरे मालिक जैसा पागल ही कर सकता था। लेकिन बात नफा नुकसान की नहीं थी। बात उस सूचना की थी कि कोई 'चुमनू बोहरा' है, जिसका दावा था कि कंपनी उसकी जमीन पर 'अवैध अतिक्रमण' से बनी है। मतलब कंपनी की बुनियाद, उसका अस्तित्व ही अन्याय और लूट से निर्मित है। ऐसे में कंपनी के किसी वेलफेयर, किसी कल्याणकारी योजना, या उसके सामाजिक उत्तरदायित्व का क्या अर्थ रह जाता था? सवाल जमीन के मालिकाना हक से विवाद का नहीं कंपनी के 'एथिक्स' का था, और यह बात कंपनी के ध्यान में थी। यदि मूलवासियों, आदिवासियों के अस्तित्व और उनकी अस्मिता के नाम पर नये राज्य का गठन होना था, तो इस तथ्य के स्थापित होने के बाद, उस संभावित राज्य में कंपनी की उपस्थिति ही 'अनएथिकल' हो जाती थी।

साथ ही कंपनी अपने पैसों से उत्तर बिहार के लोगों को तो साथ ले रही थी और इस मामले में वह सरकार की आंख का तारा थी, लेकिन यदि ऊंट गलत करवट बैठ गया तो वह नई सरकार की आंख की किरकिरी हो जाती। इस आशंका के मद्देनजर वह चाहती थी कि उसकी चांदी जूते की मार कुछ आदिवासी भी खाएं। आदिवासी नेता कंपनी की चमकदमक और चकाचोंध से उस तक पहुंचने की हिम्मत नहीं जुटा पाते और कंपनी के पास आदिवासियों तक पहुंचने की कोई ठोस योजना नहीं थी।

ऐसे में इस खबर ने कंपनी के लिए 'अंधे के हाथ लगी बटेर' का काम किया था, और उसने बाकायदा उस बटेर की दावत परोस दी। उसने एक प्रेस कांफ्रेंस आयोजित की और इस बात का ऐलान किया कि कंपनी के दस्तावेजों में इस बात के सबूत हैं कि वाकई जमीन अधिग्रहण के समय घोषित मुआवजे के कई लाभार्थियों तक वह रकम नहीं पहुंच पाई थी। कंपनी अपने काफी प्रयासों के बावजूद उन लोगों तक उनका हक पहुंचाने में नाकाम रही। इसलिए उन लाभार्थियों का कोई भी वारिस यदि कोई प्रमाण प्रस्तुत करता है तो कंपनी उसका आज की कीमत में मुआवजा भरने को तैयार है।

उस प्रेस कांफ्रेंस में अपने मालिक के साथ मैं भी मौजूद था। मालिक के उकसाने और सिखाने पर मैंने उस अधिकारी से पूछा कि आखिर इतने वर्षों बाद कंपनी की नींद क्यों खुली है? पहले उसने ऐसा कोई प्रयास क्यों नहीं किया। तो वह अधिकारी मेरा और मेरे अखबार का परिचय जानकर हमें धन्यवाद और शुभकामनाएं देने लगा। भरी प्रेस कांफ्रेंस में यह ऐलान किया कि हमारी खबर पढ़कर ही कंपनी ने एक उच्चस्तरीय बैठक में यह फैसला लिया गया है, और इस खबर के लिए कंपनी वाकई हमारा शुक्रगुजार है। अधिकारी की ऐसी आत्मस्वीकृति और साफगोई से मेरा मालिक अकबका गया। कहीं भरी प्रेस कांफ्रेंस में उससे ही चुमनू बोहरा के बारे में जवाब तलब न होने लगे, इसी आशंका से वह 'बाकी तुम देख लेना।' फुसफुसाता हुआ वहां से खिसक लिया।

लेकिन वहां ऐसा कुछ नहीं हुआ, बल्कि कांफ्रेंस खत्म होने के बाद वह अधिकारी बड़ी गर्मजोशी से मुझे से मिला और बड़ी आत्मीयता से मेरी निजी मालुमात हासिल करने लगा। यह जानकर कि मेरे पिताजी इसी कंपनी के वर्कर हैं, वह और दुगुने उत्साह में आ गया और अपने मातहतों से, मुझे 'घर का आदमी' कहकर मिलवाने लगा। वह जिस आत्मीयता से मेरा कंधा पकड़े मुझे जिन ऑफिसर्स से मिलवा रहा था, उसके प्रताप से, मिलने वाले अधिकारी मेरे सम्मान में दुहरे हुए जा रहे थे। वे अधिकारी उस जनसंपर्क अधिकारी के मातहत थे जरूर लेकिन अपनी हैसियत में वे इतने बड़े थे कि मेरे पिता वर्षों कोशिश कर भी इनमें से किसी से नहीं मिल पाते। काश! मेरे पिता यह दृश्य, यह जलवा देख पाते। मैं एक दीर्घ नशे और उसके भारी खुमार में घर पहुंचा।

क्या वाकई वसंत सेना के लिए सीढ़ियां शुरू हो गई थीं।

सीढ़ियां तो शुरू हो ही गई थीं, लेकिन वे ऊपर जा रही थीं या नीचे, मैं तय नहीं कर पा रहा था। मेरे अखबार में उस प्रेस कांफ्रेंस के बावत कोई खबर नहीं छपी। बल्कि अगले दिन 'खैरात नहीं, हक लेंगे : बोहरा की चुनौती' शीर्षक से हेडलाइन छपी जिसका क्रेडिट लाइन भी मुझे ही दिया गया था। उस खबर में चुमनू बोहरा के हवाले से यह दावा किया गया था कि मुआवजा देने की घोषणा कंपनी की नौटंकी के अलावा कुछ नहीं है। साथ ही हक नहीं मिलने की सूरत में कंपनी को देख लेने की बात भी उसमें कही गई थी। मैं लगभग प्रतिवाद करने जब मालिक के पास पहुंचा तो उसने बड़ी मुलायमियत से कहा कि दरअसल एक ही संवाददाता के नाम से जब खबरें छपती हैं, तो खबर की विश्वसनीयता बनती है। इससे लोगों को खोजी पत्रकारिता का अहसास होता है और उन्हें लगता है कि खबर की सही फॉलोअप की गई है।

अखबार की विश्वसनीयता के चक्कर में मेरी विश्वसनीयता की धज्जियां उड़ रही थीं। ठीक है, बीर सिंह ने आज का भी अखबार नहीं पढ़ा होगा, लेकिन फॉलोअप वाली बात से तो जाहिर था कि यह सिलसिला थमने वाला नहीं है। बोहरा के रूप में मालिक को जैसे कोई मोहरा मिल गया था, जिससे वह किसी कीमत पर कंपनी को मात देना चाह रहा था। मामला वाकई मोहरे जैसा ही था। कंपनी में एक से एक तीसमार खां बैठे थे। उनके दिमाग और षडयंत्र के आगे मेरे अनपढ़ मालिक की क्या बिसात? लेकिन अब तक के अपने दांव से मालिक ने भी अपने अनाड़ी होने का सबूत नहीं दिया था। कंपनी जब अपने सभी जी हुजूरों को टुकड़े फेंक रही थी, तो मालिक को भी उसका चाहा मिल जाने में उसे कोई उज्र नहीं होता, लेकिन मालिक के तरीके संभवतः कंपनी को रास नहीं आ रहे थे। कंपनी को देने से शायद गुरेज नहीं था, लेकिन वह मांगने वाले को देती थी। यहां तक कि सरकार भी अपने नुमाइंदे भेजकर उससे कुछ मांगने के ही जुगाड़ में रहती। और यहां मालिक न जाने किस गुंताले में कंपनी से कुछ छीनता चाह रहा था।

मैं दम साधे इस खेल का दर्शक बना रहना चाहता था, लेकिन मैं तो स्वयं एक प्यादा बन गया था। वो तो अच्छा हुआ था उस दिन कि मैंने उतावलेपन और जोश में उस अधिकारी को अपने पिता का डिपार्टमेंट और नाम नहीं बताया था नहीं तो आज हम सब सड़क पर होते। एक अनहोनी जैसे सिर्फ छूकर निकल गई थी। मेरा दिल बैठा जाता था। कंपनी के लिए कुछ भी मुश्किल नहीं था। वह चाह ले तो, पाताल से लोगों को ढूंढ़ ले। फिर मेरे पिता की पहचान उसके लिए क्या मुश्किल थी। वह तो चुमनू बोहरा को भी अब तक ढूंढ़ निकाल चुकी होगी।

लेकिन ये खेल इतना सीधा और सरल नहीं था। कंपनी शायद इसमें मजा लेने लगी थी। वह इसे और जटिल और मसालेदार बनाना चाह रही थी। थोड़े दिनों की चुप्पी के बाद शहर के दूसरे अखबारों की हेडलाइंस थी— 'कंपनी ने चुमनू बोहरा के बेटों को नौकरियां दीं। साथ में कंपनी के जनरल मैनेजर की मुस्कराती फोटो थी, जिसमें वे दो लगभग अंधेड़ आदिवासियों को नियुक्ति का प्रमाणपत्र सौंप रहे थे। उस दिन उन अखबारों में और कोई खबर नहीं छपी थी। सारे पन्नों पर कंपनी का 'कस्टर फर्स्ट' का विज्ञापन छपा था। अंदर की खबर थी कि उस दिन विज्ञापनों की दर आम दिनों से दोगुनी थी।

कंपनी के इस दांव से मेरा मालिक सनाके में था। दिमाग तो मेरा भी चक्कर खा गया था। मैं जानता था कि कंपनी झूठ बोल रही थी। चुमनू का एक ही बेटा था— बीर सिंह बोहरा का बाप और वह बीर सिंह के मुताबिक मर चुका था। यहां उसके दो दो जिंदा जवान बेटे कंपनी से अपना मुआवजा ससम्मान वसूल रहे थे। झूठ तो हमने भी बोला था, लेकिन हमारा झूठ सच की थोड़ी परछाईं लिए था। कंपनी साफ और खुला झूठ बोल रही थी, लेकिन वह ताकतवर थी, इसलिए

उसका झूठ भी हमारे झूठ से ताकतवर था।

मालिक का दिमाग काम नहीं कर रहा था। बोहरा के हवाले से अब कोई और खबर छपने का मतलब था कंपनी से सीधे युद्ध का ऐलान करना। मालिक जानता था कि कंपनी ने ऐसा जाल बुना होगा कि अब एक भी खबर छपने से अखबार पर सीधा मुकदमा और मुकदमा भी क्या सीधे मुकदमे का फैसला। अखबार का शटर बंद और मालिक सीखवों में।

एक ही तरीका था कि असली चुमनू बोहरा हाथ आ जाए तो बाजी पलट सकती थी। लेकिन चुमनू तक पहुंचने का जरिया केवल वीरसिंह बोहरा था। और अब तक की मेरी कारस्तानी मुझे उससे नजरें मिलाने की इजाजत नहीं देती थी। उसने बताया जरूर था कि उसका बाबा दलया पर कहीं झोपड़ी बनाकर रहता है, लेकिन इतने बड़े पहाड़ पर, इतने घने जंगलों में उसकी झोपड़ी कहां होगी, यह शिनाख्त मुश्किल थी। कंपनी पर मेरा गुस्सा भी कम नहीं हो रहा था। एक तरफ तो वह मेरे पिता जैसे वर्करों को बिना मुआवजा धक्के देकर निकाल बाहर करने पर उतारू थी, वहीं झूठ मूठ के मुआवजे का स्वांग रचकर न जाने किसे मालामाल करने पर तुली थी। उसकी ऐसी डिठाई बर्छी बनकर चुभ रही थी। बीर सिंह मुझे इस पीड़ा, बदले की इस आग से निजात दिला सकता था। यदि केवल एक बार वह अपने बाबा को लेकर हमारे अखबार के दफ्तर में चला आए। बस कंपनी की निजामशाही जाते देर नहीं लगेगी। कंपनी का झूठ उसके ही मुंह पर थूक बनकर गिरेगा।

बहुत सोच विचार कर मैंने बीर सिंह से सब सच सच बताने का ठान लिया। क्या होगा? अधिक से अधिक नाराज होगा? लेकिन किस बात पर? ठीक है, मैंने उसे यह सब बिना बताये किया, लेकिन वह भी तो आखिर अपने हक की ही बात करता था। मैंने भी तो उसके हक की ही बात उठाई थी। अब जब हक मिलने की बात थी, तो कंपनी अपनी असली औकात पर उतर आई है। चलो हम आगे बढ़ते हैं और कंपनी से अपना हक ले लेते हैं।

अपने मन में यही सब तर्क वितर्क करता हुआ मैं कई दिनों तक बीर सिंह को कॉलेज में ढूंढता रहा। लेकिन उसका कहीं पता नहीं चल पा रहा था। मेरी तरह कॉलेज में उसका भी कोई दोस्त नहीं था, जिससे उसके बारे में कुछ पूछा जा सके। मन में कई तरह की शंकाएं पनपती थीं कि कहीं मुआवजे के चक्कर में उसका कुछ हो हवा न गया हो। यदि ऐसा कुछ था तो इसके लिए सीधे सीधे मैं ही जिम्मेवार था। मैं यह भी नहीं जानता था कि वह रहता कहां है, ताकि उसके घर पर ही उससे मिल लूं। कॉलेज के ऑफिस से उसका पता मिल सकता था। पूछने पर पता चला कुछ दिन पहले उसने अपना टी.सी. निकाल लिया। रिकॉर्ड में उसका स्थायी पता लिखा था—‘बुं तमाड़। मैं जानता था, यह बिरसा मुंडा का पता था।

बीर सिंह से मिलने की तमाम उम्मीदें टूट चुकी थीं। मैं भी धीरे धीरे अपने पुराने ढर्रे में लौटने लगा। मेरा मालिक अब किसी नये स्कूप की तलाश में था। वह कंपनी के हर नुक्स को हेडलाइन बनाकर छपता था। लोगों की रुचि धीरे धीरे उस अखबार में कम होने लगी। एक दिन तो हमारे अखबार में यह भी हेडलाइन बनकर छपा—‘कंपनी का हूटर खराब, जनता की नींद हराम। दरअसल कंपनी हर साल 31 दिसंबर को नये साल के आगमन पर रात के बारह बजे अपना टूटर बजाती थी, लेकिन एक दिन अचानक एक बजे उसके ब्लास्ट फर्नेस का हूटर जोर जोर से बजने लगा। लोग किसी अनहोनी की आशंका से हड़बड़ा कर जाग गए थे। लेकिन थोड़ी ही देर में सब शांत भी हो गया था। कंपनी हमारे अखबार के प्रति कुछ ज्यादा ही संवेदनशील हो गई थी। अगले दिन सभी अखबारों में छपा था कि ‘हूटर बजने की जांच की जा रही है, लेकिन प्रारंभिक जांच में हूटर में कोई खराबी नहीं पाई गई थी। शहर को इन बातों से कोई मतलब नहीं था। मेरा और

मेरे शहर का रोमांच धीरे धीरे यूँ ही खतम हो रहा था, और मैं अब एक दिन यूँ ही अपने मालिक के साथ बैठकर कंपनी के खिलाफ किसी नये स्कूप पर मगजमारी कर रहा था तो अचानक से मैं जैसे उछल पड़ा। सामने बीर सिंह बोहरा खड़ा था। उसकी हालत देखकर एकबारगी मैं सहम गया। उसका आबनूसी रंग जैसे और स्याह हो गया था, उस पर उसकी जलती हुई लाल लाल आंखें जैसे 'जलते कोयले' का आभास दे रही थीं। उसकी सांसों की तेज तपिश से मेरा अस्तित्व जैसे झुलस रहा था।

— ये क्या किया तुमने? उसकी आवाज ऐसी कातर, ऐसी करुण, ऐसी हताश लेकिन ऐसी कड़क थी कि मेरी धिग्वी बंध गई। उसके हाथ में मेरे नाम से छपे अखबार के पन्ने फड़फड़ा रहे थे।

— मैंने...मैंने तो तुम्हारे हक की बात...मैंने हकलाते हुए कहना चाहा।

— हक? अरे जब तुम लोकोन का जमीर ही नहीं है, तो तुम लोग हक का बात कैसे करता हे रे? हक जानता है तुम लोग? तुम लोग केवल हत्यारा है...मेरे बाबा को भी मार डाला तुम लोगों ने। वह अचानक सुबक पड़ा। मैं उससे जबरदस्ती लिपट गया। बड़ी मुश्किल से उसने बताया कि उसके बाबा इस खबर को सुनने के बाद उस रात बड़ी देर तक अपने कुलदेवता से बात करते रहे थे, और बात करते करते ही खून की उल्टियां करते हुए मर गए। मेरे साथ साथ मेरे मालिक के भी रोएं खड़े हो गए। यह जानकर कि यह वही रात थी जब कंपनी के हूटर अपने आप बजने लगे थे।

मैंने मालिक से कभी बीर सिंह का जिक्र नहीं किया था, लेकिन वह पलक झपकते ही सब समझ चुका था। वह लगभग बीर सिंह को पकड़कर गिड़गिड़ाने लगा था—एक बार तुम हमारा साथ तो दो। देखो हम क्या करते हैं। तुम्हारे हक की लड़ाई...

मालिक के शब्द उसके मुंह में ही रह गए थे। 'साला तुम दिक्कू लोग हमारा हक का बात करेगा? हम लोकोन को पता है अपना हक किससे और कैसे लेना है। थू है रे साला तुम लोकोन पर। वह लगभग हमारे वजूद पर थूकता वहां से चला गया।

अगले दिन मालिक मुझे लेकर कंपनी के जनरल ऑफिस पहुंचा। वहां उसने उस अय्याश और डरपोक जनसंपर्क अधिकारी से 'चुमनू बोहरा' के बारे में तफसील से चर्चा की। मुझे गवाह की तरह पेश किया। हूटर वाली घटना की तरफ उसका ध्यान दिलाया। मैं गौर कर रहा था, मालिक के बयान से उस अधिकारी का रंग उड़ता जा रहा था। अंत तक उसने मालिक की शर्तों पर घुटने टेक दिये, मुझे भी कुछ हिस्सा देने की बात उठी, तो मैंने अपने पिता को 'पूल' में डाले जाने का जिक्र किया। उसने मुझे आश्वस्त किया और एक सप्ताह के भीतर भीतर मेरे पिता न सिर्फ अपने डिपार्टमेंट में वापस थे, बल्कि अच्छे स्वास्थ्य के आधार पर एक साल का एक्सटेंशन भी उन्हें दिया गया था। पिताजी इसे अपने पूजा पाठ का प्रताप मान रहे थे, केवल मां ही थी जो मुस्कराकर उन्हें समझा रही थी कि यह सब अच्छे कर्मों का फल है, तभी तो हमारा छोटा इतना संस्कारी और गुणी है।

हम सबने जैसे अपना हक प्राप्त कर लिया था। लेकिन थोड़े ही दिनों में कई ऐसी घटनाएं घटीं जो कंपनी के हक में अच्छी नहीं थीं। कंपनी में अधिकारियों का एक दल दलया में चुमनू उरॉव के ठिकाने की तलाश में गया था, ताकि वहां कंपनी उसकी याद में एक भव्य स्मारक बनवा सके, लेकिन वहां हाथियों के एक झुंड ने उन्हें खदेड़ डाला। कंपनी के दो अधिकारी हाथियों द्वारा कुचलकर मार डाले गए। वे 'बोहरा' जो मुआबजे के तौर पर कंपनी में नियुक्त हुए थे, उनमें से एक दिन दहाड़े साक्वी गोलचक्कर पर चाकुओं से गोद डाला गया। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार, उसे

मारने वाला कोई नहीं था, वह खुद ही चौराहे पर अपने शरीर में सपासप छुरे घोंप रहा था, और लोगों से खुद को बचाने की प्रार्थना कर रहा था।

मेरा मालिक इस अफवाह से इत्फाक नहीं रखता था। उसने अपने अखबार में 'मुआवजे के लिए हुई हत्या' शीर्षक से इसे हेडलाइन के तौर पर छापा था, और इसके लिए 'बीर सिंह बोहरा' को जिम्मेवार बताया था। उस खबर के मुताबिक कोई बीर सिंह बोहरा था, जो असली बोहरा होने का दावा करता हुआ इस तरह का वहशी कारनामा करने पर आमादा था। वह इस खबर में भी मेरा नाम डालना चाहता था, लेकिन मैं अखबार से इस्तीफा दे चुका था। मेरी स्थिति लगभग सुधर चुकी थी और पिताजी इस बात पर राजी हो गए थे कि मैं आगे की पढ़ाई के लिए बनारस चला जाऊँ।

इस खबर के बाद उस अखबार का ग्राफ फिर से बढ़ गया था। इसके बाद तो शहर में जो भी घटनाएं, दुर्घटनाएं हुईं, उस अखबार ने उसके लिए सिर्फ और सिर्फ 'बीर सिंह बोहरा' को जिम्मेवार बताया। मेरे बनारस जाते जाते उस शहर में पांच हत्याएं हुईं, जिसमें एक यूनिचन लीडर भी था। 'सांध्य सनसनी' के मुताबिक सब हत्याएं 'बोहरा' ने की थीं। धीरे धीरे अन्य अखबारों में भी बोहरा फोबिया चढ़ गया। समूचा शहर जैसे शाम को अखबार की ओर टकटकी लगाए देखता रहता कि आज बोहरा ने क्या किया?

'बोहरा से ही पुलिस ने पूछा बोहरा कहां है?' 'नहीं लौटेगा बोहरा का भूत', 'व्यापारी को किसी बोहरा की धमकी' जैसे शीर्षक एक दूसरे से होड़ लेते थे।

बोहरा हमारे शहर की रगों में अफीम का नशा बनकर दौड़ रहा था। उसके कारण दूसरे तरह की राजनीति और सनसनी बाधित हो रही थी। शेयर मार्केट लुढ़का या उछला, नया राज्य बनने की संभावना, नये राज्य की नीतियां, बिहारी कहां जाएंगे जैसे अन्य रोमांचक सवाल हाशिये पर जा रहे थे। ऐसे में, बहुत मंत्रणा के बाद अखबारों में खबर छपी—'मारा गया बोहरा'। एक आदिवासी नेता को टपकाने के लिहाज से उसके घर में घुसा बीर सिंह बोहरा, आखिर उसके अंगरक्षकों द्वारा मार डाला गया था। अखबार में मरे हुए बीर सिंह बोहरा की तस्वीर भी थी। जो कुचले गए किसी चेहरे की थी। खबर रोमांचक थी, क्योंकि पुलिसवाले बोहरा की लाश को हताशा में बूटों से रौंद रहे थे— बहुत तड़पाया था साले ने। मैं आश्वस्त था कि बीर सिंह को कुछ नहीं हुआ है, क्योंकि अब रात हूटर बजने जैसी कोई घटना नहीं हुई थी। बनारस में रहते हुए भी मैं मां से अक्सर पूछ लिया करता हूँ कि क्या कभी रात में अचानक जोर जोर से 'हूटर' बजने की आवाज आई थी? वह जब तक मना करती है, इस सभ्यता की, इस कंपनी सभ्यता की नींव के हिलने की संभावना उतनी ज्यादा बढ़ती जाती है।

टीस

मनोज कुमार पांडेय

उस दिन सुबह उठा तो दाहिनी कांख में हल्का सा दर्द था। यह ऐसा दर्द नहीं था कि पूरा ध्यान अपनी तरफ खींच ले पर ऐसा भी नहीं था कि उसका एहसास ही न हो। हाथ उठाने पर या हिलने पर उसमें एक अजीब सी चिलकने वाली टीस उठ रही थी। मां को बताया तो उसने हाथ उठाकर देखा पर उसे कुछ भी समझ में नहीं आया। उसने कहा सोते समय हाथ सिर के नीचे देर तक दबा रह गया होगा। या कोई नस इधर उधर हो गई होगी। शाम को मैं मालिश कर दूंगी ठीक हो जाएगा।

मैंने सुबह के अपने हिस्से के काम निपटाए और नहा धोकर स्कूल चला गया, जहां मैं छठी कक्षा का छात्र था। स्कूल कुछ खास नहीं रहा। वैसे ही रोज की तरह नीरस और उबाऊ। मैंने श्यामपट से सब कुछ ध्यान से उतारा। गणित के गृहकार्य में एक गलती रह गई थी जिसके लिए बेहया की चार टहनियां उलटे हाथ पर खाईं। दर्द की एक लहर जैसे पूरे शरीर में फैल गई। इस लहर को हमेशा जब्त कर लेना होता था पर जब्त करते समय भी एक संतुलन साधकर रहना पड़ता था। अगर इस हद तक जब्त किया कि मार की पीड़ा का कोई चिह्न ही चेहरे पर न दिखाई पड़ा तो अध्यापक की निगाह में यह मोटी चमड़ी या बेहयाई का एक नमूना था। और अगर चेहरे पर मार के निशान कुछ ज्यादा दिख गए या कि रुलाई ही आ गई तो यह नौटंकी मानी जाती थी। दोनों ही स्थितियों में और पिटने के लिए तैयार रहना पड़ता था। शाम को हाथ में तो मां से तेल लगवाया पर हाथ के दर्द के सामने कांख का दर्द इतना मामूली था कि उसे भूल ही गया था।

अगले दिन थोड़ी सूजन के साथ कांख का दर्द बढ़ गया था। हाथ से कुछ भी करने पर दर्द की एक हल्की सी लहर पूरे हाथ में दौड़ जाती। कांख में सूजन थी ही सो मैंने सोचा कि आज इस सूजन का फायदा उठा लेते हैं और इस तरह से गणित का गृहकार्य करने में आलस कर गया।

यह पूरी तरह से आलस की बात भी नहीं थी। सूजन और दर्द था ही कांख में। गणित वाले पंडिज्जी को यह बात पर्याप्त नहीं लगी। उन्होंने मेरी कमीज उतरवाकर कांख देखी पर उन्हें सूजन कहीं नहीं दिखाई पड़ी। वे मेरी बात को गलत नहीं साबित होने देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने मुझे गिराकर मेरी कांख में दो डंडे और एक मुक्का मारा। यह वैसे भी न्यायसंगत बात थी। कांख के बहाने की सजा हाथ को कैसे दी जा सकती थी।

शाम तक कांख की सूजन इतनी बढ़ गई कि हाथ ऊपर ही टंगा रह गया। उसे नीचे तक ला पाना पूरी तरह से असंभव हो गया। दर्द भी इतना बढ़ गया कि वह चेहरे पर साफ साफ दिखने लगा और कई बार रोकते रोकते भी मुंह से आह सी निकल जाती। मां के चेहरे पर चिंता की हल्की सी छाया थी। मैंने रोते रोते उसे सब कुछ बता दिया था। तब इस तरह की बातों पर अध्यापक की शिकायत करने का कोई चलन नहीं था बल्कि इस तरह की कोई भी शिकायत अक्सर खुद पर ही भारी पड़ जाती थी। मैंने मां को मना कर दिया कि वह इस बारे में बाबू को कुछ न बताए।

शाम को मेरे पड़ोस के पंडिज्जी जिन्होंने चौथी और पांचवीं कक्षा में मुझे भी पढ़ाया था बाबू से मिलने आए। मैं एक कोने में अपने दर्द के साथ लेटा हुआ था। उनके पूछने पर बाबू ने दर्द की बात बताई तो पंडिज्जी ने कहा कि जरूर मैंने किसी से झगड़ा या मारपीट की होगी। उसी खिंचातानी में मेरे हाथ की कोई नस इधर उधर खिंच गई होगी। उन्होंने बाबू को सलाह दी कि मेरे चूतड़ पर चार छह डंडे लगाए जाएं तो मैं उसी तरह से सब कुछ सच सच बकने लगूंगा जैसे किसी काबिल ओझा के सामने भूत बकते हैं। बाबू उस दिन अच्छे मूड में थे। उन्होंने पंडिज्जी की सलाह पर अमल नहीं किया।

यह ठीक था कि मैं बाबू की मार से बच गया पर यह सब मुझे बहुत बुरा लग रहा था। दर्द जो था सो था ही झूठा समझे जाने का अपमान अलग से दर्द दे रहा था। अगले दिन तक दर्द बहुत बढ़ गया था। मेरा पूरा दिन कांखते हुए बीता। दोपहर में मेरा दोस्त विजयराज मुझसे मिलने आया। उसने देखा और कहा कि शायद यह फोड़ा है। उसने बताया कि मैं सुबह उठते ही हनुमान जी का नाम लेकर कांख में खूब जोर से मुक्का मारूं तो यह बैठ जाएगा। उसने बताया कि एक बार उसको भी ऐसे ही हुआ था और यह करने से फोड़ा बैठ गया था। हनुमान जी पर मुझे पूरा भरोसा था कि वे ऐसा कर सकते हैं पर अपनी ही सूजी और दर्द भरी कांख में मुक्का मारने की ताकत मुझमें नहीं थी।

अगले दिन बाबू मुझे कस्बे के अस्पताल ले गए। वहां डाक्टर ने बताया कि यह फोड़ा है। औंधा फोड़ा, जिसका मुंह भीतर की तरफ होता है। उसने एक पीला लसलसा सा मलहम लिखा। उसे रोज दिन में कई कई बार फोड़े पर लगाना था। डाक्टर ने बताया कि इस मलहम से अगर फोड़ा दबने लायक होगा तो दब जाएगा नहीं तो पक जाएगा। फिर वे चौरा लगाकर भीतर का पस निकाल देंगे। बाबू ने दवा ले ली और मुझसे कहा कि चलो तुमको तुम्हारे मामा के यहां छोड़ देता हूं। वहां से तुम्हें डाक्टर के यहां आने में आसानी होगी। मामा के घर जाने की बात सुनते ही मैं खुश हो गया। मामा का घर कस्बे से जुटे हुए गांव में था।

करीब हफ्ते भर मैं डाक्टर द्वारा दिए गए उस लसलसे मलहम को लगाता हुआ उस फोड़े के दब जाने का इंतजार करता रहा। पर फोड़ा दबने को तैयार नहीं था। वह पक जाना चाहता था। बल्कि वह अपने ऊपर की जाने वाली तमाम टीका टिप्पणियों से आहत होते होते पक ही गया था। सूजन बहुत बढ़ गई थी। लगता था कि जैसे यह मधुमक्खियों का कोई छत्ता हो जिसमें बहुत सारी मधुमक्खियां लटकी हुई हों और न जाने क्यों हमेशा डंक मारती रहती हों। हमेशा एक

तीखा टपकता हुआ दर्द बना रहता। मुझे खाना खाने, पिछवाड़ा साफ करने या कि एक बनियान पहनने जैसे मामूली कामों में भी बहुत दिक्कत पेश आ रही थी। हाथ नब्बे अंश के कोण पर हमेशा उठा रहता था, न जाने किसको बुलाता हुआ।

हफ्ते भर बाद बाबू फिर आए। वे मुझे लेकर डाक्टर के पास गए। डाक्टर ने देखा तो अचरज से उसकी आंखें फैल गईं। डाक्टर ने कहा कि इतना बड़ा फोड़ा उसने कभी नहीं देखा। फोड़ा भी ऐसा उल्टे मुंह वाला। फोड़े के ऊपर की चमड़ी तनकर चिकनी हो गई थी और हल्की लाल दिख रही थी। एकदम ऐसे जैसे ततैयों के डंक मारने पर दिखती है। डाक्टर को ऐसा फोड़ा पहले कभी नहीं मिला था इसलिए वह उसे देर तक दबाकर सहलाकर देखता रहा। वह इस तरह से मुस्करा रहा था जैसे उसे यह करने में बड़ा मजा आ रहा हो। फिर उसने कुछ दवाएं दीं और आपरेशन के लिए अगले दिन आने को कहा।

इसके पहले मैंने आपरेशन का बस नाम भर सुना था। कुछ फिल्मों में जरूर आपरेशन के दृश्य देखे थे पर एक फोड़े के आपरेशन से उन दृश्यों की क्या तुलना हो सकती थी। फिर भी मैं डरा हुआ था। मुझे मां की याद आ रही थी। नानी ने रात में मुझे अपनी बगल सुलाया और सुबह खाने के लिए बेसन के लड्डू दिए। जब मैं आपरेशन के लिए बाबू और नाना के साथ निकलने लगा तो वे मुझे घर के सामने के हनुमान मंदिर में ले गईं और मुझसे हनुमान जी के आगे सिर झुकाने को कहा। यह करना मुझे आता था। मैंने हनुमान जी के सामने हाथ जोड़े और प्रार्थना की कि मेरा फोड़ा आपरेशन के पहले ही फूट जाय। हनुमान जी ने मेरी प्रार्थना में कोई रुचि नहीं दिखाई और आखिरकार मैं डाक्टर के हवाले कर दिया गया।

डाक्टर ने कहा कि सुन्न करने वाली सुई की व्यवस्था नहीं हो पाई नहीं तो वह सुन्न करके आपरेशन करता। वैकल्पिक स्थिति में उसने नाना और बाबू से मुझे कसके पकड़ने को कहा। डाक्टर की मदद के लिए एक नर्स थी जो मुझे सपनों में डराने वाली चुड़ैल की तरह दिख रही थी। वह तमाम औजारों के साथ डाक्टर की मदद के लिए हाजिर थी। डाक्टर ने बाबू और नाना को इशारा किया। नाना ने मुझे सिर और कंधे से कसकर पकड़ लिया। बाबू ने पैर की तरफ से पकड़ा। अभी डाक्टर ने अपना काम शुरू भी नहीं किया था कि मैं चिल्ला चिल्लाकर रोने लगा और बाबू, नाना तथा डाक्टर से छोड़ देने की मिन्नतें करने लगा। किसी ने मेरी इस चीख पुकार पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया। बल्कि प्रतिक्रिया में उनके हाथ मेरी गर्दन, कंधे और पैरों पर और कस गए।

डाक्टर ने जब फोड़े में चीरा लगाया मैं गला फाड़कर चिल्लाया। चमड़ी कच्ची थी और मुझे सचमुच बहुत तेज दर्द हो रहा था। इसी के साथ पस की एक तेज धार निकली जो नाना के कुर्ते और मुंह तक गई। उसके छींटे डाक्टर पर भी पड़े। मुझे उस दर्द में भी बहुत मजा आया। पस के बाहर निकलते ही कई दिनों से लगातार बना हुआ दर्द जैसे किसी चमत्कार से गायब हो गया। हालांकि जहां चीरा लगा था वहां दर्द था पर यह फोड़े के दर्द से अलग और इतना कम था कि उसकी तरफ ध्यान देने का मन नहीं कर रहा था।

पस निकलने से भीतर बहुत सारी जगह खाली हो गई थी। डाक्टर ने उसे अच्छी तरह से साफ किया, उसमें दवाई लगाई और किसी दवा में भिगोकर भीतर बहुत सारी रुई की पट्टियां भर दीं। इसके बाद उसने पहले तो घाव पर पट्टी बांधने की कोशिश की फिर उसमें असफल होकर टेप से चिपका दिया। इसके बाद डाक्टर ने मुझे खाने के लिए कुछ दवाइयां दीं, जिससे कि घाव जल्दी सूखता और उसमें नए सिरों से पस न बनता। दवाइयां लेकर और उन्हें खाने का तरीका समझकर मैं नाना और बाबू के साथ बाहर निकल आया। नाना को कस्बे में कुछ काम था। वे

वहीं रुक गए। बाबू अपनी साइकिल के कैरियर पर मुझे बिठाकर मामा के यहां छोड़ने ले चले। रास्ते में बाबू ने मुझसे कहा कि अभी आठ दस दिन मुझे और तकलीफ सहनी होगी। पट्टियां बदलते समय और भीतर नई पट्टियां डालते समय थोड़ा दर्द बर्दाश्त करना होगा। मैं फोड़े का दर्द भूल गया था। बाबू की इस बात ने मुझे फिर से उसकी याद दिला दी। नतीजा यह रहा कि दो दिन बाद जब मैं नाना के साथ पट्टियां बदलवाने गया तो डाक्टर ने जैसे ही टेप निकालने शुरू किए मैं फिर से चिल्लाने लगा। डाक्टर ने पूछा कि अब क्यों रो रहे हो तो मैंने कहा कि अभी फिर से दर्द होगा। उसने कहा कि चुप रहो, अब तुम्हें कोई दर्द दर्द नहीं होगा। मैंने डाक्टर से जिरह चालू रखी कि बाबू कह रहे थे कि अभी आठ दस दिन दर्द होगा। डाक्टर ने कहा कि तुम्हारे बाबू इडियट हैं। डाक्टर की यह बात मुझे बहुत बुरी लगी पर नाना इस तरह से मुस्कराए जैसे उनकी डाक्टर से पूरी सहमति हो।

डाक्टर सही था। मुझे बिल्कुल भी दर्द नहीं हुआ। बल्कि पट्टी डाले जाते समय हल्की सी गुदगुदी ही हुई। मुझे बड़ा मजा आया। बाबू को इडियट कहने से डाक्टर के ऊपर मुझे जो गुस्सा आया था वह खत्म हो गया। मैंने कुछ कहा नहीं पर मन ही मन मेरी भी डाक्टर से सहमति बनी। दरअसल मैं बेवजह अपने रोने धोने को लेकर शर्मिदा हो रहा था। लौटते हुए रास्ते में नाना ने मुझे अनरसे खिलाए। इसके बाद मैं अकेले ही जाकर पट्टियां बदलवाता रहा और एक दिन पूरी तरह से अच्छा होकर बाबू की साइकिल पर बैठकर अपने घर लौट आया।

अगले दिन जब मैं स्कूल गया तो पंडिज्जी ने कड़कते हुए पूछा कि मैं इतने दिनों से कहां गायब था? मैंने मिनमिनाते हुए जवाब दिया था कि मेरी कांख में फोड़ा हुआ था इसलिए मैं नहीं आ पाया। ये वही पंडिज्जी थे जिन्होंने मेरी कांख में डंडा और मुक्का मारा था। उन्हें लगा कि जैसे मैं उनके ऊपर कोई इल्जाम लगा रहा हूं। उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और मेरा कान उमेठते हुए बताया कि यह बात उन्हें मेरे बाबू ने बताई थी पर छुट्टी के लिए मुझे खुद प्रार्थनापत्र देकर जाना चाहिए था। इस गलती के लिए मुझे देर तक मुर्गा बनकर रहना पड़ा। इसके बाद पंडिज्जी ने मुझे माफ कर दिया।

आए गांधी, छाए गांधी

अरविंद मोहन

गांधीवादी परिवार में जन्मे पत्रकार अरविंद मोहन का बचपन और कैशोर्य उस वृंदावन क्षेत्र और कुमारबाग पोस्ट बेसिक स्कूल के परिसर में गुजरा जो पहले नील की खेती और बाद में गांधी के रचनात्मक कार्यों का सघन क्षेत्र बना। 'प्रयोग चंपारण' नाम से अरविंद की एक किताब शीघ्र प्रकाश्य है। चंपारण आंदोलन के शताब्दी वर्ष में पाठकों के लिए यह खास प्रस्तुति।

गांधी 15 अप्रैल को मोतिहारी पहुंचे थे। और 22 जुलाई को जब वे चंपारण के दूसरे शहर बेतिया जाने वाले थे तब कल्क्टर हेकाक ने कमिश्नर मोर्सहेड को जो रिपोर्ट भेजी उसकी पहली पंक्ति है— मिस्टर गांधीज विजिट हैज आक्युपायड द अटेंशन आफ एवरीवन, अर्थात आज श्री गांधी के आने की चर्चा ही हर जुबान पर है। और आठ जून को जब बिहार सरकार ने चंपारण के खेतिहरों की समस्या के अध्ययन और मुश्किलों का हल सुझाने के लिए एक आयोग के गठन का फैसला किया तो उस गांधी को किसानों का एकमात्र प्रतिनिधि बनाया गया जिसे डेढ़ पौने दो महीने पहले तक नक्शे में भी चंपारण का पता नहीं था और जिसे यह भी नहीं मालूम था कि कपड़े की चमक बढ़ाने के लिए जिस नील का इस्तेमाल होता था वह किसी पौधे से बनता था। उस पौधे को देखने और पहचानने का तो सवाल ही नहीं था। हैरानी नहीं कि अंगरेजों के समर्थक अखबार स्टेट्समैन में 22 जून को जे.डब्ल्यू. जेम्सन की चिट्ठी छपी जिसमें कहा गया था कि जांच समिति में श्री गांधी को सदस्य बनाने के लिए उनकी योग्यता समझ नहीं आती। प्रदेश के लिए वे सर्वथा अजनबी हैं और यहां की जटिल काश्तकारी व्यवस्था की जानकारी उनको नहीं है। ऊपर से देखने में ये दोनों ही बातें सही लगती हैं पर बिहार के एक्जक्युटिव कौंसिल के सदस्य विलियम माड ने गांधी

से तीन दिनों की जिस लंबी बातचीत और उनकी चंपारण संबंधी प्रारम्भिक रिपोर्ट के आधार पर उनको सदस्य बनाने का फैसला किया था उसे सही साबित होने में ज्यादा वक्त नहीं लगा। गांधी ने अपने तर्क, तथ्य और व्यावहारिकता से आयोग में वह सब कुछ हासिल कर लिया जो वे और चंपारण के किसान मजदूर चाहते थे। इसके साथ ही गांधी ने अपने पहले भारतीय प्रयोग में ऐसी धमाकेदार जीत हासिल कर ली जिसकी कल्पना शायद उन्होंने भी नहीं की थी। एक झटके में उन्होंने ब्रिटिश शासन और गोरी चमड़ी के खौफ को गायब करा दिया। उनके आगे शासकीय अनुभव वाले अंगरेज अफसर तो सबसे पहले झुके, स्थानीय जमींदारों के प्रतिनिधि भी उनकी बातों से हामी भरते नजर आए। और जिन निलहों ने शुरू से आखिर तक उनका विरोध किया वे भी शरहबेशी की वसूली गई रकम वापसी के सवाल पर गांधी को हल्का झुकाने भर के अलावा कुछ भी नहीं कर पाए। पर एक बार तिनकठिया प्रणाली खत्म होने, निलहों द्वारा वसूले लाखों रुपए की वापसी और सबसे बढ़कर उनके खौफ की समाप्ति के बाद इन बातों का भी कोई मतलब नहीं रह गया क्योंकि फिर तो निलहों को अपना बोरिया बिस्तर बांधने में देर नहीं लगी।

जाहिर है प्रयोग चंपारण का यह पक्ष जादू वाला लगता है कि हफ्ते भर में गांधी घर घर में चर्चा का विषय बन गए। जहां जाएं वहीं लोगों का रेला उमड़ने लगता था, जिस स्टेशन पर उनकी रेल रुकती थी, वहीं लोगों का मेला लग जाता था। सरकारी दफ्तर चले जाएं तो सरकार के लिए भी भीड़ को संभालना मुश्किल हो जाता था। और लोग इस कदर गांधी के रंग में रंग गए थे कि हफ्ते भर बाद से ही वे भीड़ से जो चाहे करा लेते थे। और चाहे भीड़ दस हजार की हो, बीस हजार की हो उसने कभी गांधी की बात और इच्छा से विपरीत आचरण नहीं किया। उनके आने के बाद पूरे जिले के किसानों में अलग तरह की ताकत और जोश दिखाई देता है और कई बार ज्यादा सख्ती करने वाले निलहों या उनके अमलों से टकराव की स्थिति भी बनती लगती है पर जैसे ही गांधी का संदेश आया लोग एकदम शांतिप्रिय और अहिंसक लगने लगते हैं। दस महीने चले प्रयोग चंपारण में गांधी या उनके सहयोगियों की तरफ से हिंसा की तो छोड़िये गरमा गरमी वाली भी कोई बात नहीं हुई। और अगर कभी शासन और निलहों की तरफ से रैयतों पर जुल्म हुआ या रैयतों ने अति उत्साह में कुछ मनमानी की भी तो गांधी और उनके सहयोगी एक शीतल फाहे की तरह मामले को ठंडा ही करते दिखते हैं। कभी किसानों की गवाहियों के समय खुफिया पुलिस की मौजूदगी को लेकर किसान और गवाही लेने वाले सहायक असहज हुए भी तो गांधी बड़े प्रेम से दखल देकर सारा तनाव पल भर में दूर कर देते हैं। जब उनके सहयोगी एक गोरे मित्र चार्ली एंड्रज को जिले में रखना चाहते हैं कि उनके रहने से उन्हें कुछ लाभ होगा तो गांधी उन्हें गोरी चमड़ी के डर से परेशान बताकर अपने इस मित्र को मारिशस भेज देते हैं। गांधी अपने सहयोगी पलानी को सिर्फ इसलिए जेल जाने देते हैं कि चंपारण के लोगों के अंदर बैठा जेल और पुलिस का डर खत्म होगा। चंपारण को, उसके किसानों मजदूरों की समस्याओं को जानने समझने और चंपारण के हर व्यक्ति के मन तक पहुंचकर उसका भरोसा जीतना और इसके बल पर शासन और उससे भी बढ़कर नील की खेती और तरह तरह की वसूली कर रहे निलहों को अपनी बात के लिए राजी करना, लोगों को संगठित करके अहिंसक ढंग से इतना दबाव बनाना कि निलहों के साथ प्रतापी और आधी दुनिया पर राज करने वाली ब्रिटिश हुकुमत की नींव हिलाने की शुरुआत हो जाय, इन सबके पीछे गांधी की समझ, मानसिक और दूसरी तैयारियों के साथ उनका कम्युनिकेशन कौशल भी था। सबसे उल्लेख की बात है कि गांधी न तो भोजपुरी जानते थे और न ही हिंदी ही विधिवत बोल पाते थे। दस महीने में भी उन्हें भोजपुरी के बहुत कम शब्द समझ आए। उनकी तुलना में बा काफी कुछ भोजपुरी समझने लगी थीं। गांधी को कैथी लिपि

भी नहीं आती थी जिसमें चंपारण के अधिकांश भूमि दस्तावेज थे। कुछ शुरुआती प्रयोगों की चर्चा पहले की जा चुकी है। हम पाते हैं कि गांधी ने आने के साथ खुद से सूचनाएं देने लेने के जो काम किए उसके साथ ही पारम्परिक संचार व्यवस्थाएं भी अचानक गांधी के पक्ष में हवा बनाती हुई लगती हैं और शासन के लोग साधुओं फकीरों और मेले ठेले की बातचीत से भी परेशान हो जाते हैं, खुफिया पुलिस लगाते हैं। और जो शासन वाले पहले पीर मुहम्मद मुनिस, हरबंश सहाय, गोरख प्रसाद और राजकुमार शुक्ल जैसे स्थानीय लेखक पत्रकार एक्टिविस्ट लोगों पर अफवाह फैलाने, हवा बिगाड़ने बनाने का आरोप लगाते थे वे खुद अफवाहों का सहारा लेने लगते हैं। संचार संबंधी नया अध्ययन करने वालों का यह निष्कर्ष है कि जो पक्ष कमजोर होता है, वही ज्यादा अफवाहों का सहारा लेता है। अगर एक महीने के अंदर ही अंगरेज अधिकारी, खुफिया पुलिस और निलहे गांधी और उनके सहयोगियों की शिकायत करने लगते हैं, उनके खिलाफ झूठ फैलाते हैं, उनको लेकर अफवाह उड़ते हैं तो यह सीधे सीधे सत्ता समीकरण के पलट जाने का प्रमाण है। और यह काम जांच आयोग बनाने, सुनवाई करने, बहस करने, सर्वसम्मति से रिपोर्ट बनाने और अधिसूचना जारी करने से काफी पहले ही हो गया। और शायद पहले झटके में अदालती बाजी मार लेना इससे भी ज्यादा तेज काम हुआ था।

गांधी और चंपारण के कम्युनिकेशन कौशल पर कुछ चर्चा हुई है और विस्तार से चर्चा आगे होगी पर उस पिट जाने वाले इम्पीरियल और पश्चिमी कम्युनिकेशन नेटवर्क पर भी थोड़ी चर्चा कर लेनी चाहिये। आधुनिक भारत के प्रतिभाशाली युवा इतिहासकारों में एक चंद्रिका कौल ने इस विषय पर सबसे अच्छा और विस्तृत काम किया है और उनकी पहली किताब रिपोर्टिंग द राज समेत अन्य काम इस एक बड़ी परिघटना, ब्रिटेन भारत के बीच कम्युनिकेशन पर जबरदस्त जानकारियों और उसके विभिन्न पहलुओं को सामने लाते हैं। और वही यह उदाहरण देती हैं कि राज के समय में ही संचार का काम कहां से कहां पहुंचा। यह दिलचस्प तुलना तब के अखबार 'ऑबजर्वर' में छपी थी कि 1875-76 में जब प्रिंस ऑफ वेल्स भारत आए थे तो उनकी यात्रा से जुड़ी खबरें चार हफ्ते बाद इंग्लैंड पहुंचती थीं और जब उनके पोते ने 1921 में भारत की यात्रा की तो शाही परिवार से हर घंटे उनकी बात होती थी या उनकी खबर दी जाती थी। 1865 में समुद्र के नीचे बिछे इंडो यूरोपियन केबल नेटवर्क ने एकदम सब कुछ बदल दिया। फिर और कम्पनियां आ गईं और यूरोप तीन तरफ से भारत से जुड़ गया। पहले तीनों रास्तों के बीच जल्दी सूचना भेजने की होड़ शुरू हुई तो बाद में उसी तरह प्रति शब्द तार भेजने की कीमत घटाने की मारामारी शुरू हुई। जैसे आज मोबाइल और नेट कम्पनियों के बीच है। फिर लगता है कि उन्नीसवीं सदी के आखिरी और बीसवीं सदी के शुरुआती 25-25 साल उसी तरह से संचार क्रांति के लिए महत्वपूर्ण हैं जैसे कि बीसवीं सदी के आखिरी और इक्कीसवीं सदी के एक एक दशक—जब हम नेट, कम्प्यूटर और मोबाइल क्रांति से जुड़ रहे हैं। और यह दिलचस्प चीज भी ध्यान देन की है कि तब का साम्राज्यवाद संचार क्रांति को इस भरोसे से आगे बढ़ाने में लगा था कि वह उसके उपनिवेशों के शासन और आर्थिक हितों को सुरक्षित रखेगा, पर ऐसा हो न सका। और आज की संचार क्रांति खुलेपन और उदारता के नाम पर अमेरिका केंद्रित विश्व व्यवस्था को इतना मजबूत कर रही है और इसके खिलाफ की आवाजें भले इसी संचार क्रांति से एकजुट होती लगती हैं पर किसी तरह की चुनौती संभव नहीं दिखती। पर आज यह बात समझना समझाना ज्यादा आसान है कि संचार के पूरे खेल की राजनीति, आर्थिकी और समाजशास्त्र भी होता है और इसके संचालन में शासन, बाजार और समाज की अपनी अपनी भूमिकाएं हैं जो बदलती भी रहती हैं और आम तौर पर बाजार ही सबसे शक्तिशाली साबित हुआ है।

चंद्रिका कौल ने बहुत तरह से बताया है कि संचार तकनीक के बदलावों के साथ किस तरह ब्रिटिश साम्राज्य की संचार व्यवस्था बदली, किस तरह समाचार एजेंसी नामक बिजनेस शुरू हुआ, किस तरह दस लाख तक प्रसार संख्या वाले अखबारों और पत्रिकाओं का विकास हुआ, उनके और साम्राज्य के ही नहीं ब्रिटेन की विभिन्न पार्टियों और राजनैतिक दर्शनों से उनका क्या रिश्ता था, उनके प्रतापी संपादक और दिल्ली रिपोर्टर किस तरह साम्राज्य के हितों और नीतियों से प्रभावित थे और वे भी इन्हें किस तरह प्रभावित करते थे। और किस तरह इंग्लैंड में अपना कारोबार फैला रहे लोकतंत्र को इनसे मदद मिली या राजनीति वाले लोग पब्लिक ओपिनियन की परवाह करने लगे। वे यह भी बताती हैं कि किस तेजी से शासन और उसके दावेदार प्रेस की महत्वपूर्ण होती भूमिका के मद्देनजर मीडिया मैनेजमेंट को महत्व देने लगे। इस क्रम में वे 1909 में लार्ड कर्जन द्वारा केंब्रिज यूनिवर्सिटी में किये गए पहले प्रेस कांफ्रेंस का हवाला भी देती हैं और ब्रिटिश अखबारों द्वारा साम्राट के मुकुट के सबसे चमकदार हीरे अर्थात् भारत की रिपोर्टिंग तक भी आती हैं। हमारे ज्यादा मतलब की बात यह है कि गांधी ने दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए इस नेटवर्क का इस्तेमाल किया और उसकी सीमाएं समझ आने पर एक समांतर नेटवर्क भी खड़ा करने की कोशिश की। पर इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि चंपारण आंदोलन के समय उन्हें, शासन, और निलहे, तीनों को इस नेटवर्क की ताकत, चरित्र और सीमाओं का अंदाजा था और तीनों ने उसका अपने अपने ढंग से प्रयोग किया।

जब गांधी दक्षिण अफ्रीका में ताल ठोक रहे थे, जब भारत आकर गोखले की सलाह पर देश देख रहे थे, जब अचानक चंपारण पहुंचे और फिर असहयोग आंदोलन और नागरिक अवज्ञा आंदोलन के जरिये पूरे देश को हिलाने की स्थिति में आ गए तब भी वे अपने ढंग से इस संचार प्रणाली का उपयोग कर रहे थे, बल्कि ऐसा आंदोलन खड़ा करने में इस नेटवर्क की भूमिका थी। और संचार का जो वितान तब पश्चिम ने अपने मतलब से रचा और खड़ा किया था उसका होशियारी से प्रयोग करके गांधी और उन जैसे अन्य नेताओं ने उपनिवेशवाद की ही जड़ खोद दी। संचार और खासकर जनसंचार के मामले में सच सबसे बड़ी चीज है, यह गांधी का जीवन और राजनीति बता देती है। पर उनका काम यह भी बताता है कि जनसंचार के हिसाब से मशीनों और हार्डवेयर की जगह साफ्टवेयर अर्थात् अकल का काम ज्यादा महत्वपूर्ण है। अगर यह सीखना हो तो गांधी के प्रयोगों से बढ़िया उदाहरण नहीं मिलेगा। पर यह भी ध्यान में रखने की चीज है कि इस प्रयोग में गांधी ने अपना क्या क्या कुछ दांव पर लगाया, किस जुनून से काम किया और कितनी सच्चाई तथा नैतिकता रखी।

जहां तह मीडिया की अपनी बात है तो मोटे तौर पर अंगरेजी अखबार ही पश्चिमपरस्त और ब्रिटिश हुकुमत के प्रति पूरी निष्ठा रखने वाले थे। यह काम वे कोई छुपाकर भी नहीं करते थे। पर जब गांधी चंपारण गए तब तक हिंदी और भाषायी अखबार भी आ गए थे और अंगरेजी अखबारों में भी कुछ कुछ चीजें शासन के खिलाफ छपने लगी थीं। कुछ देसी नजरिये वाले अंगरेजी अखबार भी आ गए थे। पर इन सब और समाचार एजेंसियों पर ही नहीं, परचे से लेकर किताबों तक की छपाई बाइंडिंग वितरण पर भी कड़ी नजर रखने वाले कानून और शासन तंत्र खड़ा किया गया था। यह कुछ मजाक सा लगेगा कि कोई भी नाटक बिना अनुमति के नहीं खेला जा सकता था, हर पर्चे में प्रिंटर का नाम देना अनिवार्य था, हर किताब की कितनी प्रतियां छपीं इसके लिए बाइंडर का प्रमाणपत्र देना अनिवार्य था। और तब भी लोग एक पैर जेल में एक पैर बाहर रखकर अखबार निकालते थे और अपने मन की बात लिखते थे। अपनी आदत से मजबूर और हुकूमत डगमगाने के खतरे के मद्देनजर शासन ने सारे अखबारों पर नजर रखने, खिलाफ बात आने पर

अखबारों का गला दबाने लायक, कानून और तंत्र बना रखा था। और चंपारण मामले में तो दरभंगा महाराज के 'बिहारी' अखबार में रैयत समर्थक रिपोर्ट और आलेख छपने के 'जुर्म' में इसके संपादक महेश प्रसाद की किस तरह छुट्टी की गई वह किस्सा तब काफी चर्चित हुआ था। पीर मुहम्मद मुनिस की स्कूल मास्टर की नौकरी का जाना और हरबंश सहाय की राज स्कूल से विदाई भी चंपारण आंदोलन के कम्युनिकेशन प्रयोग का ही एक हिस्सा हैं। प्रताप अखबार के गणेश शंकर विद्यार्थी को क्या क्या भोगना पड़ा वह सब इतिहास का हिस्सा है। पर इस स्थिति को बदलने में गांधी और स्थानीय कम्युनिकेशन प्रणाली ने जो चमत्कारी काम किए उसका विवरण काफी बड़ा और व्यापक है और इसके सूत्रधार बहुत कम समय में गांधी ही हो गए थे। निलहों के अत्याचार, अंगरेजी शासन के दोष, बेतिया राज के साथ शासन द्वारा किये धोखे की चर्चा के साथ किसान अपने जीवन में आए बदलावों की चर्चा पहले भी कई तरह से करते थे और 'अब कैसे जीयबु बकरियो, भइले निलहवा के राज' और 'राम नाम भइल भोर गांव निलहा के भइले, चंवर दहे सब धान गोएँडे नील बोअइले' जैसे गीत वगैरह प्रचलित हो चुके थे। पर जैसे ही गांधी एक धूमकेतु की परिदृश्य पर तरह आए तो पूरा राग बदल गया।

1. परल बा टिकसवा के बोझ, धरमवा के खून भइल,
चलीं चलीं गांधी महाराज अजब कानून भइल।
2. भारत के हरले पीर हो बाबा गांधी महात्मा
3. ए बाबा गांधी, कहिया मिली आजादी,
एतना दिन हो गइल, पहिरत खादी
4. उ दिन परेला इयाद नयन भर आवेला रे भाई।
हाथ गोड़ में बान्हल रसरिया,
लाठिन देह थुराई। नयन भर आवेला रे भाई।
5. गांधी तू हिंद देश की इक शान बन गया
सारी मनुष्य जाति का अभिमान बन गया।

पर यह नहीं भूलना चाहिये कि गांधी से भी दस बीस वर्ष पहले जब किसान इन सबके खिलाफ संगठित होने लगे थे तो उन्होंने अपने संचार नेटवर्क खड़े किये, कुछ पुरानी प्रणालियों की मदद ली, राष्ट्रप्रेम और विदेशी गुलामी से परेशान साधु संतों और फकीरों की बिन मांगी सेवा का लाभ लिया, मेलों की श्रृंखला का लाभ पुलिस की नजरों से बचकर आपसी मेल मिलाप बढ़ाने और सभा करने के लिए किया। गांधी को चंपारण आने के पहले से इस पूरे नेटवर्क का लाभ मिला क्योंकि 1908 के आंदोलन और हिंसक टकरावों के बाद लोगों को बहुत कष्ट तो हुए थे पर उनके अंदर निलहा राज खत्म होने के लिए बेचैनी भी बढ़ गई थी। और जब राजकुमार शुक्ल, मुनिस, गोरख प्रसाद, बैद्यनाथ मिश्र, और हरबंश सहाय जैसे लोग स्थानीय समस्याओं को बिहार स्तर पर और कांग्रेस के जरिये देश के स्तर पर उठाने का प्रयास करने लगे तो लोग उन कोशिशों की तरफ भी टकटकी लगाकर देखने लगे। मुनिस और सहाय जी लिख पढ़कर कोशिश कर रहे थे तो शुक्ल जी भागादौड़ी करके। मिश्र जी का किसानों पर असर था तो गोरख बाबू अदालती लड़ाई जानते थे। और शुक्ल जी तथा गोरखप्रसाद ही चंपारण के मामले को ब्रज किशोर प्रसाद तक ले गए जिनके माध्यम से यह मसला अदालत के साथ बिहार लेजिस्लेटिव एसेंबली और कांग्रेस के राष्ट्रीय अधिवेशन तक पहुंचा। और फिर चंपारण चल सकने वाले नेता की तलाश शुरू हुई।

अर्थात् चंपारण के लोग एक उद्धारक की या बाहरी दखल की प्रतीक्षा कर रहे थे और जब उन्हें गांधी के आने की स्वीकृति की सूचना मिली तो उन्होंने उनके स्वागत के साथ उनको सहयोग

देने का मन बना लिया था। इससे पहले के किसी भी स्थानीय या बाहरी नेता को पूरे चंपारण की ऐसी स्वीकृति कभी नहीं मिली थी। बल्कि राजेन्द्र प्रसाद तक हैरान हुए कि गांधी का जादू इतनी तेजी से कैसे फैला। उन्होंने लिखा है कि मेरे लिए यह हैरानी की चीज है कि लोगों को यह भरोसा कैसे हो गया कि उनका उद्धारक आ गया है। बेतिया के एसडीओ लेविस ने लिखा है कि 'हम अपने अपने हिसाब से उन्हें आदर्शवादी, अतिवादी या क्रांतिकारी मान सकते हैं पर रैयतों के लिए तो वे उनके मुक्तिदाता हैं। वे उनको तरह तरह की शक्तियों से लैस मानते हैं।' पर सच कहें तो स्थानीय लोगों को भी यह उम्मीद न थी कि कोई बाहरी नेता इस तरह आएगा, इस तरह दस महीने के लिए जम जाएगा और निलहों का राज खत्म करने साथ ही उनके जीवन को बदलने के अनेक प्रयोग उनके साथ मिलकर करेगा। अभी गांधी चंपारण पहुंचे नहीं थे तभी से उनका इंतजार होने लगा था अर्थात् पुराने कम्युनिकेशन नेटवर्क ने अपना काम जारी रखा था। इस नेटवर्क पर दक्षिण अफ्रीका के गांधी नहीं रहे थे। तिलक, गोखले, मालवीय जी ही नहीं सच्चिदानंद सिन्हा, मजहरुल हक, अली इमाम, हसन इमाम, ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद जैसे बिहारी नेता भी नहीं थे जो तब स्वदेशी के पक्ष में और ब्रिटिश हुकुमत के खिलाफ बन रही जनभावना के साथ थे। पर जैसे ही गांधी ने राजकुमार शुक्ल को चंपारण आने की स्वीकृति दी इस नेटवर्क ने यह खबर चंपारण के काफी सारे लोगों तक पहुंचा दी थी। लोग उनका इंतजार करने लगे थे। खुद शुक्ल जी ने काफी भागदौड़ की गांधी के स्वागत और उनको जिले की असली हालत बताने के लिए। इसमें एक ओर मोतिहारी में कानून के जानकार गोरख प्रसाद और रामनवमी प्रसाद से लेकर पटना में ब्रजकिशोर प्रसाद और राजेन्द्र प्रसाद तक को सारी गतिविधियों से अवगत किये रखना भी शामिल था और दूसरी ओर जिले के पुराने बने कम्युनिकेशन नेटवर्क के माध्यम से सभी सचेत किसानों और अंगरेज विरोधी जमात को सूचित करना शामिल था। और गांधी कौन हैं, क्या हैं इस बारे में भी मुनिस और हरबंश सहाय जैसों के साथ जानकारियां जुटाना और आम लोगों तक फैलाना भी था।

और गांधी महात्मा हैं, कर्मवीर हैं, देवता हैं, दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने किस तरह अंगरेजों के 'छक्के छुड़ाए' जैसी कहानियां इसी क्रम में प्रचलित हुईं। बाद में यही चीजें गांधी को किसी जेल में न बांधा जा सकने वाला दिव्य पुरुष, वायसराय समेत सारे अधिकारियों की शिकायत सुनने के लिए ब्रिटेन के महाराजा महारानी द्वारा नियुक्त व्यक्ति जैसे मिथकों में बदलीं। यह चर्चा आम थी कि गांधी अजानबाहु हैं और उन्हें कोई पराजित नहीं कर सकता। अजानबाहु मतलब घुटने तक आने वाले हाथों वाला व्यक्ति। यह धारणा है कि राम भी अजानबाहु थे। वे राम की तरह रावण की लंका जलाने आने वाले माने गए और अंगरेजों से राज लेकर बेतिया या बनारस महाराज को सौंपने वाला भी। गांधी ने अगर किसी की जब्त बंदूक दिला दी, किसी की छीन ली गई जमीन वापस करा दी, उनको सजा देने के लिए बैठी अदालत के दरवाजे टूट गए तो इन सबको एक नाटकीय रूप देकर कहानियां प्रचलित करना लुटे पिटे लोगों की कल्पना में ही सही, ताकतवर अंगरेजों से बदला लेने की भावना का प्रतीक था तो उसने कमजोर जमात के गिरे मनोबल को बढ़ाने और गिरे शासन के इकबाल को खत्म करने का काम भी किया। और ऐसी कथाओं के बारे में यह भी उल्लेखनीय है कि एक कथा दूसरे को जन्म देती है और अगर थोड़ा थोड़ा भी काम दिखता है तो लोगों की कल्पनाओं के पंख निकल आते हैं।

इस प्रकरण में फरवरी मार्च 1916 में चंपारण और आसपास के जिलों में बटे एक परचे का किस्सा दिलचस्प है और प्रचार के तत्कालीन तरीके को बहुत अच्छी तरह बताता है। 15 फरवरी 1916 को मोतिहारी में एक साधु प्रताप प्रेस कानपुर से छपा एक परचा बांटते पकड़ा गया। परचे

में चंपारण के लोगों से आग्रह किया गया था कि वे जिले में गोरे निलहों के अत्याचार की प्रकाशित होने वाली कहानियों को सही साबित कर सकने वाले दस्तावेज, फ़ैसलों की नकल के साथ, अखबार के पास भेजें। गिरफ्तार साधु से पूछताछ हुई तो उसने दूसरे साधु से परचा मिलने की बात कही। इस दूसरे साधु ने 1909 के किसान आंदोलन के नेता रहे शीतल राय के पास से परचा लाने की खबर दी। घूम फिर कर शीतल राय, पीर मुहम्मद मुनिस और बेतिया थाना के बथुआ गांव के निवासी पशुपति लाल का नाम आया और ये तीनों ही प्रताप को खबर देते थे। ज्यादा परचे पशुपति लाल के घर से मिले। पुलिस रिपोर्ट के मुताबिक गोरखपुर जिले के कहलू जोलहा भी धनहा थाना इलाके में इस मामले में दिलचस्पी लेते देखे गए।

स्पेशल ब्रांच की जिस रिपोर्ट में इस परचा प्रकरण पर काफी कुछ लिखा गया है और सारे सूत्रधारों की पहचान हो जाने की खबर दी गई है उसी में सबसे पहले इस बात का जिक्र है कि गांधी चंपारण आ सकते हैं। एक अफवाह का जिक्र करते हुए कहा गया है कि दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों का आंदोलन चलाने वाले गांधी यहां भाषण देने आ रहे हैं। इससे पहले इसी तरह की एक छोटी पुस्तिका भी पकड़ी गई थी जिसमें नील की खेती से हो रहे शोषण का चित्रण था। उसे एक आर्य समाज के प्रचारक सन्यासी के ठिकाने से पकड़ा गया था।

एक अन्य प्रकरण में भी, शुक्ल जी के न्यौते और गांधी जी की स्वीकृति से पूर्व, गांधी के चंपारण आने की चर्चा दो तरह से सुनाई देती है। पिपरा कोठी के मजबूत किसान लोमराज सिंह और अन्य जो शरहबेशी के मुकदमे हार चुके थे। जब मुंसिफ मजिस्ट्रेट की अदालत में मोतिहारी ले जाए गए तो ब्रज किशोर प्रसाद, गोरख प्रसाद, बाबू देव लाल और ललित बाबू जैसे लोग उनकी पैरवी कर रहे थे। यह लड़ाई मूछ की भी हो गई थी और किसानों के लिए तो जीवन मरण का प्रश्न था ही। निलहों के पक्ष में बार ऐट ला मुनाक समेत बड़े वकीलों की पूरी फौज थी। और यह उम्मीद की जा रही है कि अगली सुनवाई के समय गांधी भी किसानों की पैरवी के लिए आ सकते हैं। इसकी भनक भी खुफिया रिपोर्टों में सुनाई देती है। इसी क्रम में सुनवाई के दौरान जब खुफिया पुलिस के लोग मुक्किलों और गवाहों के इर्द गिर्द डोल रहे थे तब उन्हें मदनमोहन नामक मुक्किल ने बताया कि बनारस के जमनानंद इन लोगों के मुख्य मददगार हैं। जमनानंद उर्फ जमना प्रसाद चंपारण के नहीं थे। वे मूलतः देवगांव, कुढ़नी, मुजफ्फरपुर के थे और ज्यादातर समय बाहर ही रहते थे। उनका पंजाब बहुत आना जाना था और वे आर्य समाज आंदोलन से भी जुड़े रहे थे। संभवतः वे सर्वेट्स ऑव इंडिया के सदस्य भी थे। वे तब 4-5 साल से दरभंगा के एक अनाथालय में रह रहे थे। माना जाता है कि उन्होंने ही 'चंपारण के प्रजाओं पर अत्याचार' शीर्षक वाली पुस्तिका छपवाकर बंटवाई थी। यह परचा भी कानपुर के प्रताप प्रेस से छपा था। खुफिया पुलिस की रिपोर्ट के अनुसार यही जमनानंद एक पखवाड़े पहले मोतिहारी डाकघर से मि. गांधी को बुलावे का तार करते देखा गया था। जब डाक विभाग के अधिकारियों ने बंबई भेजे जा रहे इस तार को संदिग्ध बताकर भेजने से मना कर दिया तो उन्होंने अपने किरानियों के मार्फत मुजफ्फरपुर से गांधी के पास उसे भिजवाया था। लखनऊ अधिवेशन में भाग लेने के बाद राजकुमार शुक्ल इलाहाबाद और कानपुर भी गए थे— गंगा स्नान करने के साथ अभ्युदय, भारत मित्र और प्रताप जैसे अखबारों के संपादकों से मिलकर अपने जिले के मसले को उठाने में उनकी मदद लेने। ये तीनों हिंदी अखबार, पटना से प्रकाशित अंगरेजी दैनिक बिहारी और मैथिली साप्ताहिक मिथिला मिहिर के साथ ही चंपारण में नील की खेती से हो रही परेशानियों को दो साल से उठा रहे थे और इनके लेख भले सीधे बहुत लोगों तक न पहुंचते रहे हों पर पढ़े लिखे लोगों से लेकर नीचे तक बात पहुंचाते ही थे और इससे किसानों का हौसला बढ़ता था। इन तीनों अखबारों से पीर

मुहम्मद मुनिस और गोरख प्रसाद जैसे लोग भी जुड़े थे और लिख रहे थे। संभव है कि वे मुनिस जी का पत्र संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी जी के नाम ले गए हों क्योंकि वहां जिस तरह की बातचीत की खबरें आईं और विद्यार्थी जी ने जिस तरह की मदद की और आगे भी करने का भरसा दिया वह एक अनजान आदमी से पहली मुलाकात में हासिल कर पाना कठिन होता है। यहीं गांधी जी भी दो बार टकराए क्योंकि वे भी संपादकों से मिलने आए थे और शुक्ल जी ने उन्हें अपना न्यौता दोहराया और गांधी ने आने का वायदा। दूसरी ओर सरकारी खुफिया विभाग के लोग भी कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन से ही शुक्ल और अन्य लोगों के पीछे लगे थे। यह अधिवेशन दो धड़ों में बंटी कांग्रेस की एकता बनने के बाद बहुत शोर शराबे के साथ हुआ था और बिहार से भी 'करीब' 81 लोग गए थे। यह 'करीब', असल में कांग्रेस का कोई औपचारिक रूप न होने का प्रमाण है और सम्भवतः बिहारी प्रतिनिधियों में एकाध घुसपैठियों के होने की वजह से लिखा गया शब्द है। 13 जनवरी 1917 को दी गई स्पेशल ब्रांच की खुफिया रिपोर्ट में काफी विस्तार से राजकुमार शुक्ल की वहां की गतिविधियां और उनकी पृष्ठभूमि की चर्चा हुई है, बेलवा कोठी के मैनेजर एम्सन से उनके टकराव की कहानी दी गई है। उसी इलाके के खैरकटिया गांव में बाबूलाल मिश्र की भी जमीन थी जिनकी गोरों से ठनी रहती थी और इस चलते शुक्लजी से उनकी दोस्ती थी। फिर 16 मार्च की पाक्षिक खुफिया रिपोर्ट बताती है कि राजकुमार शुक्ल के लखनऊ से लौटकर आने के बाद कुछ भाषण हुए हैं। दस अप्रैल को चंपारण के एस.पी.सी. मार्शमैन द्वारा स्पेशल ब्रांच को भेजी गई रिपोर्ट में बताया गया है कि गांधी के सात तारीख को ही बेतिया पहुंचने की उम्मीद थी और इसी उम्मीद से काफी सारे लोग स्टेशन पर पहुंचे भी थे। पर वे नहीं आए और लोग निराश होकर लौटे। उनके आने की तारीख गुप्त रखी जा रही है। साथ ही यह भी कहा गया है कि अगर वे अभी आए तो निलहों के खिलाफ बोलेंगे ही और उनके भाषण ज्वलनशील स्थिति में माचिस लगाने जैसा साबित हो सकते हैं।

इसके साथ ही इस अधिकारी ने अपने बड़े लोगों से यह भी पूछा था कि गांधी की विचारधारा क्या है और अगर वे आते हैं तो उनके साथ क्या बर्ताव किया जाना चाहिए? उल्लेखनीय है कि गांधी पर बिहार और मुल्क की खुफिया पुलिस की नजर बहुत पहले से थी। 11 अप्रैल 1916 को बिहार के मुख्य सचिव एच. मैकफर्सन को लिखे अपने पत्र में क्राइम और रेलवे पुलिस के डीआईजी, ई. सी. रेले कहते हैं कि चूंकि गांधी के भाषण आपतिजनक बातों से मुक्त नहीं होते इसलिए पंजाब सरकार ने फैसला किया है कि सरकार से अनुमति लेकर ही उन्हें भाषण करने दिया जाए। इन अफवाहों के मद्देनजर कि वे चंपारण आने की मंशा रखते हैं (जैसाकि मैंने अपने 13 मार्च 1916 के मेमो में रिपोर्ट किया है) इसलिए स्थानीय शासन भी निश्चित रूप से विचार करेगी कि उसी तरह के आदेश यहां भी दिये जाएं। एस.पी. को कह दिया गया है कि अगर गांधी चंपारण जाते हैं तो वे जिला मजिस्ट्रेट को सूचित करने के साथ इस दफ्तर को भी तार से खबर करें।

यह कमाल के सरकारी और खुफिया कम्युनिकेशन का ही प्रमाण है कि जब गांधी के चंपारण जाने की हमें बाकी कोई भनक नहीं लगती तब भी शासन ने उनकी इस संभावित यात्रा की मंशा को सूंघ लिया था और अपने हिसाब से तैयारी शुरू कर दी थी। गांधी की ऐसी किसी तैयारी या इच्छा की जानकारी अन्य किसी जगह से नहीं मिलती। और जो भी चर्चा हुई वह किसी संन्यासी के तार करने या अदालत में जुटे लोगों की आपसी बातचीत और अफवाह पर आधारित है। पर यह भी उल्लेखनीय है कि जब आने का फैसला हो गया और सभी ओर इंतजार होने लगा तब भी शासन की तरफ से जो तैयारियां दिखती हैं वे चंपारण की विस्फोटक स्थिति को ही ज्यादा

बताती हैं, गांधी के खौफ को कम। और इस क्रम में शासन की तरफ से लाभ देने वाली चीजें कम हुईं, नुकसान देने वाली ज्यादा। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो कमिश्नर मार्सहेड द्वारा गांधी को गिरफ्तार करने और जिला छोड़ने का आदेश देना ही था जिसकी बाद में खुद शासन के अन्य लोगों ने काफी छिछालेदार की। पर जिस स्तर पर खुफिया, प्रशासनिक, पुलिस और फौजी तैयारी दिखती है उसमें तो कमिश्नर का यह आदेश एकदम तार्किक लगता है।

ऐसा इसलिए भी कहा जा सकता है क्योंकि तब भी शासन के असली कर्तार्थता लोगों को यह पता नहीं था कि गांधी असल में क्या चीज हैं? स्पेशल ब्रांच को लिखे पत्र में चंपारण के एस. पी. ने उनके साथ क्या बर्ताव किया जाए यह तो पूछा ही था, यह भी साफ पूछा था कि उनकी राजनैतिक पोजिशन क्या हैं। पर यह उल्लेखनीय है कि एक बार गांधी का कार्यक्रम तय हो जाने पर शासन और उसका खुफिया तंत्र एकदम सक्रिय हो गया था और छोटी से छोटी चीज पर इस तरह नजर रखी जा रही थी जिसकी जरूरत नहीं थी। आज यह पढ़ने में बहुत मजेदार लगता है कि खुफिया रिपोर्ट में गांधी का नाम लेने की जगह उन्हें 'व्यक्ति' कहा जा रहा था। और कमिश्नर मार्सहेड ने कलक्टर को आधिकारिक सलाह के साथ अर्ध सरकारी एक व्यक्तिगत नोट भी भेजा कि अगर गांधी बिना बताए आ जाएं तब क्या करना। इसके साथ यह सलाह दी गई है कि इस व्यक्तिगत सलाह को जरूरत पड़ने पर ही सामने लाना वरना गोपनीय रखना।

प्रशासनिक कम्युनिकेशन तब तक पर्याप्त तेज हो गया था। चंपारण के अंदर भी तार और डाक की व्यवस्था के साथ रेल और रोड का जाल बिछ गया था। दिल्ली से लेकर हर थाने तक से सीधा संपर्क करना सम्भव था। वैसे यह अलग बात है कि मुख्यतः अंगरेजी व्यवस्था की मदद और उसके व्यावसायिक हितों को बढ़ाने के लिए शुरू हुई यह व्यवस्था आंदोलन के लोगों को भी लाभ देने लगी थी मीडिया की तरह ही। और भले हमें आजादी न मिली हो और इंग्लैंड में भी मतदान का अधिकार सीमित था पर यह पुराने राजतंत्र की जगह बहुत सारे लोगों की राय से चलने लगा था और इसमें पब्लिक ओपिनियन महत्वपूर्ण हो गया था। प्रसिद्ध इतिहासकार बी.बी. मिश्र की संपादित भारी भरकम किताब 'सेलेक्ट डाक्युमेंट ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चंपारण 1917-18' इस सरकारी पत्राचार और खुफिया रिपोर्ट की चुनी हुई चीजों का अच्छा संग्रह है और इससे अंदाजा लग जाता है कि तब प्रशासन के स्तर पर क्या चल रहा था, कितनी गहमागहमी थी और किस तरह फैसले लिए जा रहे थे। और इनसे भी लगता है कि अधिकारी जन भावनाओं के एकदम खिलाफ जाने की हिम्मत नहीं कर रहे थे, वे उसे संभालने, बरगलाने और दूसरी दिशा देने की कोशिश जरूर कर रहे थे पर सीधे विरोध करना नहीं चाहते थे। गांधी अगर अधिकारियों, बेतिया राज के मैनेजर या निलहों के प्रतिनिधियों से मिले हैं तो भेंट के समय हुई बातों का संक्षिप्त रूप भी इन सरकारी फाइलों में मिलता है। उनके लिखे पत्रों की प्रति या उसकी बातें तो इनका अनिवार्य हिस्सा हैं ही। लगभग रोज ही प्रशासनिक मशीनरी गांधी के कामों की चिंता करते हुई उठती जागती सोती दिखती है। उसके जिम्मे शासन और लाखों लोगों के जीवन का जिम्मा है यह लगता ही नहीं। पर वे जनभावनाओं से बेखबर नहीं थे।

गांधी के दस महीने के प्रवास के दौरान यह प्रशासनिक बेचैनी कई अवसरों पर एकदम आसमान पर पहुंच गई लगती है और कम से कम दो अवसरों पर तो फौज बुलाने तक की तैयारी कर ली गई थी जबकि गांधी और उनके साथियों ने एक चींटी भी नहीं मारी थी। सबसे बड़ा अवसर गांधी के बेतिया आने, जो निलहों के ज्यादा अत्याचार वाले इलाके के केंद्र में था, के एक महीने से भी कम समय बाद आया था जब पहले ओलहा और फिर ढोकराहा नील कोठी का एक हिस्सा जला दिया गया था। शुरू की अदालती लड़ाई हारने के बाद अधिकारियों ने गांधी को नील की

खेती के चलते चंपारण के किसानों की मुश्किलों की जांच की इजाजत दे दी थी। पर जब जांच शुरू हुई और बेतिया तथा मोतिहारी दोनों जगहों पर रोज हजारों किसानों का रेला उमड़ने लगा, सैकड़ों गवाहियां लिखी जाने लगीं तो निलहों को अपना सारा खेल खत्म होता लगा और अंगरेज साहबों को भी अपनी साहबी का इकबाल घटता लगा। जब हर रैयत गांधी और उनके लोगों को ही बड़ा मानेगा तो सरकार को क्यों मानेगा। यह बात बार बार सरकारी पत्राचार में आई है कि शासन का इकबाल गायब हो रहा है। तब चल रही अफवाहों से हवा भी पलटती जा रही थी। अधिकारी तो गांधी की जांच की जगह आधिकारिक आयोग बैठाकर इस मामले में बढ़ते गांधी के प्रभाव की सीमा बांधना चाहते थे पर निलहे दोनों ओर से अपनी मौत आती देख रहे थे। सो उन्होंने बेचैनी में गांधी और उनके सहयोगियों को बदनाम करने के लिए तरह तरह के हथकंडे अपनाने शुरू किये जिनमें धोकराहा में अपने ही दफ्तर के एक हिस्से और कुछ बेकार कागजात जलाकर गांधी के आंदोलन के सिर दोष मढ़ना शामिल है।

ऐसा दो अन्य जगहों पर भी हुआ और हर बार शासन हरकत में आया पर गांधी की टोली की सक्रियता से न आरोप टिके न भारी तनाव के बावजूद स्थिति बिगड़ी। लेकिन जब यह घटना घटी तब तो फौज को भी सतर्क करने का काम हुआ। उस दौर का सरकारी पत्राचार देखने पर लगता है कि शासन गांधी के हाथों हुई अदालती हार का बदला भी लेना चाहता है। और इस समय की चिट्ठियों से यह भेद करना मुश्किल हो जाता है कि निलहे ज्यादा बेचैन थे या अधिकारी। पर शायद जनांदोलन और उस पर शासन के रुख के हिसाब से यही निर्णायक मोड़ था। एक बार जब गांधी के लोगों ने मुस्तैदी से अपनी निर्दोषता साबित कर दी और तनाव के हर बिंदु को खूबसूरती से संभालते हुए उनको टकराव में नहीं बदलने दिया तब शासन का रुख बदला। उसने खुद को निलहों से अलग करना और दिखाना शुरू किया। और निलहे अपना कुकर्म सामने आने पर और अकेले हुए।

अब हम निलहों को प्रशासनिक समूह का हिस्सा मानें न मानें पर गांधी के चंपारण आने तक तो वे कहीं से इससे अलग न थे। उनका व्यापार कारोबार अपनी जगह है पर वे अक्सर जमींदारी के अधिकार के तहत लगान वसूलने, उसे जुड़े मसले निपटाने के लिए कचहरी लगाने, कई बार अपनी गुंडावाहिनी के सहारे कानून व्यवस्था संभालने और सबसे बढ़कर रैयतों को तुरंत सजा देने में आगे थे और सरकार इन सब कामों में उनकी मदद करती थी। कई बार उनको विशेष मजिस्ट्रेट वाले अधिकार मिलते थे तो कई बार उनकी बनाई फौज को गोली चलाने तक का अधिकार। उनकी बनाई फौज और गुंडावाहिनी की सेवाएं शासन भारत में अपने काम के लिए लेने के साथ विदेशों में भी लेता था और पुरस्कार समेत तरह तरह की शक्तियों से लैस करता था। अंगरेज अधिकारियों से उनके सामाजिक और निजी ताल्लुकात तो थे ही। पर जैसे गांधी चंपारण आए और उनके आंदोलन ने जोर पकड़ा निलहों और हुकूमत के गोरों के बीच फांक बढ़ने लगी। जैसे ही शासन में ऊपर से यह संकेत आने लगा कि निलहों के सारे पाप और गैर कानूनी कामों को डिफेंड करने की जरूरत नहीं है शासन गांधी के आंदोलन को भाव देने लगा। और हवा का रुख भांपते ही निलहों की बौखलाहट बढ़ जाती है।

शुरू में प्रशासन और उनका स्वर एक ही है पर गांधी के आने के पखवाड़े भर में शासन का रुख बदला लगता है और निलहों के बौखलाने तथा गांधी के खिलाफ हर स्तर पर सक्रिय होने के प्रमाण मिलते हैं। यह चंपारण को लेकर कृषि संबंधी आयोग के बनने, रिपोर्ट आने और लागू होने तक दिखता है और बीच में इसने वह रूपांतरण किया जिससे लगा कि यह अब हारा हुआ दल है। अफवाह उड़ाने के मामले में यह माना जाता है कि अक्सर कमजोर जमात अफवाहों का

सहारा लेता है। पहले मुनिस, लोमराज सिंह, खेंधर राय, सरजुग उपाध्याय, सीताराम तिवारी, संत राउत और साधुओं पर खबर फैलाने, हवा बनाने, हवा बिगाड़ने, अफवाह उड़ाने के आरोप लगते थे; अब सीधे सीधे निलहे यह करने लगे। उस समय क्या कुछ लोक चर्चा में है और निलहों की क्या इच्छा है यह उस हर पत्र में मौजूद है जिसे समझदार माने जाने वाले इर्विन जैसे निलहे तब लिख रहे थे या प्लांटर्स एसोसिएशन के पत्रों में यह देखा जा सकता है। बाद में तो अखबारों में लेख और संपादक के नाम पत्र के माध्यम से यह काम खुलेआम किया गया जो बेचैनी को और भी दिखाता है। इस बदलाव के पहले से भी एक चीज खास ध्यान देने की है कि शायद ही किसी अंगरेज अधिकारी ने गांधी की सीधी आलोचना की हो या उनकी मंशा पर शक किया हो। इसमें वह कमिश्नर मोसहेड भी शामिल है जिसे गांधी संबंधी अपने फैसले को लेकर चौतरफा आलोचना का सामना करना पड़ा। अंगरेजी शासन तंत्र में पहले बेतिया के एसडीओ रहे विलियम राबर्ट गोल्ले और गांधी के दौर में एसडीओ रहे विलियम हावथोर्ने लेविस तो अपने संतुलित नजरिये के लिए प्रसिद्ध थे पर ऐसे अधिकारियों ने भी गांधी के लिए बहुत अच्छे शब्द लगातार इस्तेमाल किये जिन्हें इस आंदोलन से कोई सहानुभूति नहीं थी और जिन्हें लगता था कि गांधी और उनके सहयोगी चंपारण के लोगों की नाराजगी को हिंसक मोड़ देकर शासन के लिए मुश्किलें खड़ी करेंगे।

जिले के एस.पी. सी.एम. मोर्शम ने लिखा था कि एक हफ्ते पहले उनका नाम यहां अज्ञात था। आज वे पूरे जिले के गुरुजी हैं। पूरा जिला उनके बोलने पर टिका है। सैकड़ों लोग रोज सिर्फ उनके पांव छूने आते हैं। लोग उनके एक इशारे पर सरकार के खिलाफ बगावत कर सकते हैं। एसडीओ लेविस ने लिखा है, हम अपनी अपनी खास राय से उन्हें आदर्शवादी, धुनी या क्रांतिकारी कुछ भी मान सकते हैं लेकिन रैयतों के लिए तो वे मुक्तिदाता हैं और वे मानते हैं कि उनकी शक्तियां असीम हैं। बेतिया राज के अंगरेज मैनेजर, जिनकी नियुक्ति शासन की ओर से थी, जान टेरियान व्हिटी ने तो एक कदम और आगे बढ़कर लिखा है— वे अपने विचारों को लागू करने के लिए किसी हद तक जा सकते हैं। उन्हें आसानी से शहीद तो बनाया जा सकता है लेकिन उनको दबाया नहीं जा सकता। लेविस ने सरकारी पत्राचार में एक और जगह लिखा है— गांधी में हम पूरब और अश्चिम का अजीब मिश्रण देखते हैं। वे मानते हैं कि उनके विचार काफी हद तक रस्किन और टालस्टाय, खासकर टालस्टाय के विचारों पर आधारित हैं और वे इन्हें जोगियों के आचरण से जोड़ते हैं। अगर वे सिर्फ पूरब के विचारों से चलते तो सन्यासी बनकर कहीं एकांत में ध्यान लगाने निकल गए होते। पश्चिम की शिक्षा ने ही उन्हें सक्रिय सामाज सुधारक बनाया है। एक दो लंबी मुलाकातों और हफ्ता पंद्रह दिन की गतिविधियों को देखकर किए गए ये मूल्यांकन बहुत महत्वपूर्ण हैं— इन अधिकारियों की निजी समझदारी और शासन के रवैये के हिसाब से। अगर शासन ज्यादा उल्टा रुख रखता तो इस स्तर के अधिकारियों के लिए अपनी रिपोर्ट या पत्राचार में गांधी को लेकर ऐसी बातें करना सम्भव न रहता। पर यह भी सही है कि चंपारण की स्थिति संबंधी अपनी जिस पहली रिपोर्ट में लेविस ये बातें लिखते हैं उसी में गांधी द्वारा जब्त बंदूकें छुड़वाने की चर्चा फैलाने का दोष उन पर मढ़ते हैं और बाद में गांधी इस प्रकरण को बात का बतंगड़ बनाना बताते हैं। इसी रिपोर्ट में एसडीओ लेविस ने यह भी लिखा है कि अभी बेसिर पैर की अफवाहें उड़ी हुई हैं और लोग उन पर भरोसा भी कर रहे हैं। इनमें एक अफवाह यह भी है कि मई के मध्य तक गांधी सभी नील फैक्टरियों का काम तमाम कर देंगे। खैर इन चीजों पर नजर रखना उनकी सामान्य प्रशासनिक जबाबदेही रही होगी। पर निलहों का तो यह मुख्य काम हो गया लगता था। उनकी तरफ से अफवाहों की शिकायत की जा रही है या खुद से अफवाह उड़ाकर गांधी को जिले से बाहर करने की जमीन तैयार की जा रही है, यह भेद करना मुश्किल हो जाता

है। गांधी का नाम, काम और असर जिस तेजी से चंपारण में फैला वह किसी भी व्यवस्थित सूचना तंत्र के वश की चीज नहीं है। पर आप जब कभी भी उस समय चली चर्चाओं, अफवाहों, प्रचारों, दुष्प्रचारों और हवाओं का अध्ययन करने निकलेंगे आपको उनका सबसे भरोसेमंद स्रोत निलहों का पत्राचार या फिर खुफिया पुलिस की रिपोर्ट ही मिलेगी। बाकी किसी ने इनका लिखत पढ़त में रिकार्ड नहीं बनाया। अफवाहों के बारे में तो यह माना ही जाता है कि जो इनका जनक होता है वह भी नहीं चाहता कि इनसे उसका नाम जुड़े और जब एक बार उसके पास से कहानी आगे बढ़ती है तो वह स्वतंत्र हो जाती है। वह फिर कैसा रूप लेती है यह उसे हर सुनने वाले और आगे बढ़ाने वाले पर निर्भर करती है। और कई बार जब कहानी अपने मूल लेखक या जन्मदाता के पास आती है तो उसे भी पहचानने में मुश्किल होती है।

और इसी ढंग से देखें तो पदुमकेर नील फैक्टरी के मैनेजर हरबर्ट काक्स की चिट्ठियां उस समय की अफवाहों और दुष्प्रचार की कहानियों का सबसे अच्छा संग्रह हैं। काक्स चंपारण प्लांटर्स एसोसिएशन के सचिव थे और उस हैसियत से बार बार गांधी और सरकार को लंबे लंबे पत्र लिख रहे थे, स्मरणपत्र सौंप रहे थे। उनकी बेचैनी कुछ और थी पर दोष गांधी और उनके आंदोलन के मध्ये डालना उनकी मजबूरी थी और जरूरत भी। कमिश्नर के नाम 28 अप्रैल 1917 की अपनी पहली चिट्ठी में ही वे तीन बड़ी अफवाहों की लिस्ट पेश करते हैं। पहली अफवाह तो गांधी को वायसराय द्वारा भेजे जाने की थी। दूसरी चर्चा अंगरेजों के जाने और गांधी को राज सौंपे जाने की है। तीसरी अफवाह थी कि अब किसी को निलहों के लिए काम करने की जरूरत नहीं है। पर अफवाह बटोरना और उन्हें शासन या दुनिया के सामने लाना उनका काम नहीं था। उनका काम निलहों के हितों की रखवाली करना था जिस पर गांधी अंतिम चोट करने आए थे। सो हर पत्र में वे शिकायत, कोई दोष, गांधी नहीं तो उनके सहयोगियों पर चोट, और कुछ न हो तो शासक गोरों के अपनी निलहा बिरादरी से दूर न जाने का प्रयास करते दिखते हैं। शासन वाले किसी अधिकारी की तरफ से इस बात का जिक्र नहीं है कि जब गांधी का आंदोलन शुरू हुआ तब इंग्लैंड विश्वयुद्ध में फंसा था। पर काक्स की चिट्ठी में साफ कहा गया है कि युद्ध के समय ऐसे विवाद के मसले नहीं उठाने चाहिये। साथ ही उन्होंने यह भी लिखा है कि गांधी तो अच्छी मंशा वाले हैं पर उनके सहयोगियों के बारे में यही बात नहीं कही जा सकती।

काक्स अपना सामान्य काम कर रहे थे, नील फैक्टरी के मैनेजर और निलहा संघ के पदाधिकारी के रूप में। और वे जिस पक्ष में थे उसका गांधी विरोध कर रहे थे। अक्सर उनका या उन जैसी स्थिति वाले का कड़वा होना या कुछ ओछा हमला करने का तर्क समझ में आता है। ऐसे काफी मामले निलहों की तरफ से सामने आए भी। पर कई बार ये हमले अमर्यादित हुए और खेल के सामान्य नियमों से बाहर निकले। ऐसा ही एक समाचार बिहार हेराल्ड नामक अखबार में 28 अप्रैल को छपा जिसमें कहा गया था कि गांधी के खिलाफ फौजदारी मामले भारत सरकार के आदेश से वापस लिए गए हैं। इस खबर का खंडन बिहार के मुख्य सचिव मैकफर्सन को करना पड़ा। माना गया कि इसे भी किसी बहुत उस्ताद निलहे ने छपवाया था।

पर अधिकारी और खुफिया पुलिस के लोग भी अफवाहें समेट रहे थे या फैला रहे थे यह कहना मुश्किल है क्योंकि अफवाह तो ऐसी चर्चाओं के साथ ही चलती है। वह हवा बनाने का काम करती है या बिगाड़ने का इसका इल्म तब इसे एक से दूसरी जगह पहुंचा रहे व्यक्ति को कहां होता है। गांधी की हवा बनाने का काम स्थानीय सक्रिय लोग, जिनका निलहों से विरोध और लड़ाई थी, जरूर कर रहे होंगे पर शिकायत करते करते शासन के लोग और निलहे भी यही कर रहे थे। वे शायद हवा बिगाड़ना या थामना चाहते थे पर काम गांधी और आंदोलन का ही होने

लगा था। बारह जून की अपनी डायरी में एस.पी. ने पांच प्रमुख अफवाहों का लिखकर जिक्र किया है। एक अफवाह थी कि कमिश्नर से लेकर एस.पी. तक सारे अधिकारियों को इंग्लैंड वापस भेजा जा रहा है क्योंकि उन्होंने गांधी को परेशान किया था। दूसरी चर्चा थी कि जिस मजिस्ट्रेट ने गांधी को धारा 144 वाला गलत आदेश दिया था उस पर 1500 जुर्माना हुआ है जो वह गांधी को देगा। तीसरी अफवाह थी कि बेतिया के एसडीओ लेविस को मजिस्ट्रेट बना दिया गया है और मजिस्ट्रेट को एसडीओ। एक अफवाह यह भी थी कि राज के मैनेजर आईसीएस व्हिटी को हटा दिया गया है। एक चर्चा यह भी थी कि गांधी से विश्वयुद्ध खत्म होने तक आंदोलन रोकने को कहा गया है जिसे उन्होंने इस शर्त के साथ मान लिया है कि प्लांट अपनी फैक्टरी छोड़ देंगे।

अब इन अफवाहों की ज्यादा चर्चा या विश्लेषण की जरूरत नहीं है पर यह झलक तो मिलती ही है कि लोगों की सामान्य इच्छा क्या थी। गांधी को अवतार और रामचंद्र मानने वाली चर्चाओं को छोड़ दें तो भी उन चर्चाओं से शोषण से मुक्ति की इच्छा, मुक्तिदाता के रूप में गांधी को देखने की असलियत और उनके प्रति भरोसे का अंदाजा तो लगता ही है। प्लांटर्स एसोसिएशन ने 30 सितंबर को मुख्य सचिव को जो शिकायती पत्र दिया था वह काफी बड़ा होने के साथ ऐसी काफी चीजें समेटे हुए है। उसमें गांव बाजार में साधुओं द्वारा तरह तरह की चर्चाएं फैलाने की शिकायत है। जगह जगह मीटिंग होने की शिकायत भी है। रैयतों के हर कदम को गांधी से जुड़ा बताया गया है। गांधी को तावन और शरहवेशी खत्म कराने का श्रेय दिया जा रहा है। उनकी शिकायत है कि गांधी ने रैयतों को आदेश दिया है कि नील की खेती नहीं करें और अगर करना भी है तो प्रति बीघा 60 रुपए, जो अभी के भुगतान से तीन गुना ज्यादा है, का हिसाब मिलने पर करें। गांधी ने तय किया है कि कोई भी रैयत फैक्टरी में काम नहीं करेगा। पेड़ काटने पर जमींदार को आधा हिस्सा देने की जरूरत नहीं है। मवेशी किसी भी जमीन पर चर सकते हैं और लोग फसल भी चराने लगे हैं। बैलगाड़ी कहीं से भी आ जा सकती है। मजदूर बुलाने जाने वालों को खदेड़ दिया जाता है। जाहिर है ये चीजें सच और अफवाह के बीच की हैं और अनिवार्यतः गांधी ही सब करा रहे थे यह कहना गलत होगा। पर ये शिकायतें करते करते निलहे कुछ बहुत ही दिलचस्प नतीजों तक पहुंच जाते हैं जिनकी चर्चा जरूरी है। पत्र में लिखा गया है कि 'यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि गांधी स्पष्टतः एक डिवटेटर बन गए हैं और वे सिर्फ अपनी इच्छा से अपना सुपरपावर दिखाते हैं। और हर कोई, चाहे वह अधिकारी हो या गैर अधिकारी, गोरे हों या हिंदुस्तानी, जल्दी से जल्दी उनकी इच्छा को पूरा कर देता है। यह कहना सही होगा कि ये विचार ही उनकी शक्ति हैं जिसे जिले के अधिकांश हिस्से के अज्ञानी रैयत मानते हैं और जो लोग इसे बेहतर जानते हैं वे इस चीज का उपयोग करते हैं। शिकायत के रूप में इस पूरे आंदोलन की और इस परिधटना की इतनी सही व्याख्या अनजाने में ही हुई है पर काफी हद तक सही है। और गांधी ने यही स्थिति बना ली। इसमें संगठन नहीं था, साधन नहीं था, भौतिक ताकत नहीं थी लेकिन काफी कुछ ऐसा था जिससे लड़ने में सर्वशक्तिमान अंगरेज और निलहे भी खुद को असमर्थ पाते थे। जाहिर है यह काम कम्युनिकेशन के जादू से हुआ।

अधिकारियों और खुफिया पुलिस की रिपोर्टों में अफवाहों की चर्चा तो भरपूर है ही गांधी के हर करीबी का सारा इतिहास भूगोल खंगाल लिया गया है। किंतु पहले गांधी और बाद में उनके सहयोगियों के खिलाफ सारी भिड़ई के बावजूद भी कुछ ठोस हासिल हुआ हो ऐसा सामने नहीं आया। रचनात्मक कामों के दूसरे दौर में एक सहयोगी कुंडलिक जी को जरूर भारत रक्षा अधिनियम के तहत बाहर किया गया पर वह मामला भी बहुत खुला नहीं। अगर उनके खिलाफ कुछ ठोस मामला बनता तो अंगरेजी हुकुमत उसका लाभ लेकर सारे आंदोलन को बदनाम करती। पर गांधी

ने इसे ही मसला बनाकर रचनात्मक कामों की रफ्तार नहीं रुकने दी और आंदोलन को दूसरी दिशा में नहीं मुड़ने दिया। पर खुफिया रिपोर्टों में इस अफवाह का जिक्र है कि गांधी बेतिया राज को वापस लेकर बनारस को देने वाले हैं। यह अफवाह भी थी कि निलहों के दिन लद गए हैं और सब कुछ गांधी के हाथ में हो जाएगा। फिर सोनपुर मेले में साधुओं की बैठक और गांधी के आंदोलन को बढ़ाने का फैसला वाली खुफिया खबर कितनी सच थी इसका पता नहीं चला क्योंकि खुद गांधी ही आंदोलन को अन्य जिलों में एक साथ ले जाने के पक्ष में न थे। इसकी मांग तो सारण, मुजफ्फरपुर और शाहाबाद से आई भी थी। खुद कमिश्नर मोर्सहेड ने गवर्नर मैकफर्सन को लिखी चिट्ठी में गांधी पर कांग्रेस का एक्रिडेटेड एजेंट होने का आरोप लगाया था।

जिले के निलहों में सबसे समझदार माने जाने वाले इर्विन ने तो इसी दौर में एक ऐसा काम किया जिसकी चर्चा तब हो गई होती तो उनका क्या सारे गोरों के लिए आफत आ जाती और घटनाक्रम क्या दिशा लेते इसकी आज भी सहज कल्पना नहीं की जा सकती। जब गांधी मोतिहारी में थे तो उनकी जान लेने की साजिश भी रची गई थी। यह साजिश निलहों की तरफ से रची गई लेकिन इसमें शासन की भी हामी थी इसका पता नहीं चला। साजिश के एक पात्र या शिकार तो अपनी कहानी सुनाते सुनाते चले गए पर जब देश के पहले राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू ने इस पर अपने चश्मदीद होने की मोहर लगाई तब जाकर बाकी दुनिया को इसका भरोसा हुआ। वैसे राजेंद्र प्रसाद ने जो किताबें लिखी हैं उनमें या खुद गांधी ने अपनी आत्मकथा या किसी पत्र में इसका जिक्र नहीं किया है।

यह साजिश रची थी मोतिहारी नील फैक्टरी के मैनेजर डब्ल्यू. एस. इर्विन ने जिन्हें निलहों में सबसे चालाक और अक्लमंद माना जाता था। उनकी कोठी का इलाका भी सबसे बड़ा था। उन्हीं के घर पर अकवा परसौनी के बत्तख मियां कुक थे। कई रसोइयों और सेवकों में उन्हें सबसे भरोसेमंद माना जाता था। एक शाम इर्विन ने गांधी और उनके साथियों को बातचीत और भोजन के लिए बुलाया और बत्तख मियां को यह जिम्मा सौंपा गया कि वे गांधी को दिये जाने वाले दूध के गिलास में जहर मिला दें। इर्विन ने सामने खड़े होकर जहर मिलवा तो दिया पर दूध लेकर गांधी के कमरे में बत्तख मियां ही गए। राजेन्द्र बाबू भी तब वहां थे। बत्तख मियां भले कोठी की नौकरी करते थे लेकिन उनका ईमान बड़ा था। उनके मन को यह कबूल नहीं हुआ कि वे गांधी को जहर दे दें। सो उन्होंने गांधी को दूध देते हुए यह बता दिया कि वे इसे न पीएं। जहर जानकर गांधी ने दूध नहीं पीया और एक बड़ी दुर्घटना घटते घटते रह गई।

बत्तख मियां की नौकरी गई, बहुत कष्ट हुए, संपत्ति का नुकसान उठाना पड़ा। गांधी ने जिले के हालात और अपने उद्देश्य की पूर्ति को सर्वोच्च मानते हुए इस मामले का जिक्र न खुद किया न किसी सहयोगी को करने दिया। उन्हें साफ लगा कि यह प्रकरण सारे आंदोलन की दिशा को दूसरी ओर मोड़ देगा। वे अपने काम में लग गए और बत्तख मियां भी अपने गांव चले गए। वर्षों बाद जब देश आजाद हुआ और राजेंद्र प्रसाद राष्ट्रपति हो गए तो अपने एक रिश्तेदार की मौत पर उसके घर मोतिहारी आए। भीड़ में एक बूढ़ा आदमी सुरक्षा घेरा तोड़कर आगे आने की कोशिश कर रहा था। जैसे ही राष्ट्रपति की नजर उस पर पड़ी वे उठकर गए और उसे अपने साथ ले आए। सिर्फ ले ही नहीं आए उसे अपने साथ बैठाया और फिर सारी भीड़ को यह कहानी सुनाई और बत्तख मियां से उनकी जरूरत पूछी। स्थानीय सांसद और स्वतंत्रता सेनानी विभूति मिश्र के आर्थिक इतिहासकार पुत्र गिरीश मिश्र तब छात्र थे और उस अवसर पर उपस्थित थे। राष्ट्रपति की कहानी पर कौन अविश्वास करता।

संदर्भ

1. डॉ. बी.बी. मिश्र, सेलेक्ट डाक्युमेंट्स ऑन महात्मा गांधीज मूवमेंट इन चंपारण 1917-18, डायरेक्टरेट ऑव आर्काइव्स, बिहार सरकार, 2013
2. डॉ. राजेंद्र प्रसाद, चंपारण में महात्मा गांधी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, पांचवां संस्करण, 2014
3. डा. राजेंद्र प्रसाद, सत्याग्रह इन चंपारण, नवजीवन, अहमदाबाद।
4. रमेशचंद्र झा, स्वाधीनता समर में सुगौली, अंतिका प्रकाशन, गाजियाबाद, 2016
5. डॉ. राजेंद्र प्रसाद, आत्मकथा, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
6. एरिक स्टोक्स, द पीजेंट एंड राज : स्टडीज इन पीजेंट सोसाइटी एंड एग्रेरियन रिबेलिएन इन कोलोनियल इंडिया, केंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1978
7. चंद्रिका कौल, रिपोर्टिंग द राज : द ब्रिटिश प्रेस एंड इंडिया, 1880-1922, मैन्चेस्टर युनिवर्सिटी प्रेस, मैन्चेस्टर, 2003
8. अरुण कुमार, रिराइटिंग द लेंगेज आफ पोलिटिक्स : किसांस इन कोलोनियल बिहार, मनोहर, दिल्ली, 2001
9. जैक सुडोपडस, चंपारण एंड गांधी, अनुवाद : जेम्स वाकर, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1999
10. शाहिद अमीन, गांधी ऐज महात्मा, रंजीत गुहा द्वारा संपादित सबाल्टर्न स्टडीज 111 में, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1984
11. बेंडिक्ट एंडरसन, इमेजिंड कम्युनिटीज : रिफ्लेक्संस ऑन द ओरिजिन एंड स्प्रेड ऑफ नेशनलिज्म, वेर्सो, लंदन, 1983
12. ए. एल. बाशम, ट्रेडिशनल इंप्लुएंस ऑन द थॉट ऑफ महात्मा गांधी, रवींद्र कुमार द्वारा संपादित एसेज ऑन गांधियन पोलिटिक्स, आक्सफोर्ड, क्लेरेंडन प्रेस, 1971
13. जॉन हेबरमास, स्ट्रक्चरल ट्रांसफॉर्मेशन ऑव पब्लिक स्फेयर, केंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केंब्रिज, 1989
14. एस. एच. रुडाल्फ और एल. रुडाल्फ, गांधी : द ट्रेडिशनल रूट्स ऑफ करिश्मा, ओरिएंट लांगमैन, दिल्ली, 1987.
15. एरिक स्टोक्स, द पीजेंट एंड द राज : स्टडीज इन एग्रेरियन सोसाइटी एंड पीजेंट रिबेलियन इन कोलोनियल इंडिया, केंब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, 1978
16. डॉ. गिरीश मिश्र, एग्रेरियन प्राब्लेम्स आफ पर्मानेंट सेटलमेंट : ए केस स्टडी आफ चंपारण, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1978
17. डॉ. गिरीश मिश्र, गांधीज चंपारण स्ट्रगल, मेनस्ट्रीम, वाल्युम LIII, न.1, 27/12/14
18. संपूर्ण गांधी वांगमय, खंड 13 14, प्रकाशन विभाग, दिल्ली
19. अनुग्रह नारायण सिन्हा, मेरे संस्मरण, बिहार राज्य अभिलेखागार, पटना, 2012

प्रलय

अरुण कमल

यह तुम क्या कर रही हो
मैं अभी से चावल दाल जमा कर रही हूं
थोड़ा नमक
लगता है घनघोर बारिश होगी
लगता है लड़ाई होगी
बोलते बोलते वह चली गई दूर अंधेरे में
बस उसकी आवाज आती रही
जैसे अंधेरी रात में बिजली चमकती है
और एक क्षण को नींद से जगती है धरती
ज्यों किसी ने खींच दी हो देह पर से चादर

उस रात लगातार चमकती रहीं बिजलियां
पूरा आकाश बेंतों के नीले निशान से विकृत
इतने सुखाड़ इतने रौद्र घाम के बाद
बिरवों के घास बन जाने के बाद
रक्त का सारा जल भाप बन जाने के बाद
चमकीं बिजलियां
और फिर धारासार वर्षा जो शुरू हुई शनि की शाम

लगातार गिरता रहा पानी
तुमने ठीक कहा था बारिश होगी
पहाड़ी नदियां लाल हो जाएंगी— कहती है दया नदी
मुर्दों के टीलों पर अमर शिलालेख

चाहे कितना भी मातम हो
हर साल सेब के बगान जैसे ही लद जाते हैं फूलों से
आम में मोंजर आते हैं टिकोले करते हैं इंतजार
उन बच्चों का जो ढेला उठाएंगे
वे बच्चे नहीं आते वे बच्चे कहीं गुम हो गए
इस बार मैं अपने गांव जाऊंगा
धान के खेतों से अपने मुंदा रास्ता आंख का कोआ
अभी भी मुझे जगाता है नींद से
नहर के किनारे एक पतली सी सड़क कुछ टूटी
वहां न अपना कोई खेत है न पेड़ पात
न कोई घर फिर कैसा अपना गांव और देश
एक घर था कभी मिट्टी का
हर घर की इच्छा है झुकते झुकते मिट्टी बन जाने की
पता नहीं किस हाल में होगा वह घर
पता नहीं किसका ताला होगा दरवाजे पर
कोई नहीं रहता यहां कहा किसी औरत ने एक दरवाजे से झांककर
कोई पहचानता नहीं मुझे
मैं कोई शहरी कोई अनजान बाहरी
घर पहचानता है रहनवार को
घर को सबसे प्रिय है शाम की बत्ती
वृंत पर कली

इसी जगह को लेकर
दो खून हुए इस साल कहता है एक बूढ़ा
ऐसा क्यों लग रहा है कि मेरा घर सीमा पर है
और मैं हर आवाज पर बाहर आ जाता हूं कमीज के बटन लगाता
बज रहे हैं ढोल नगाड़े
रात्रि जागरण अखंड जैकारे
पूरा देश वधस्थल की ओर जा रहा है
तुम क्या करोगी घर में बैठकर
मेरा तो यही वधस्थल है कहा उसने
और भंसार में चली गई
लगता है लड़ाई होगी

तुमने आधार बनवा लिया?
 मैं भी दसों उंगलियों के छापे दे आया
 परदे पर आंख की पुतली की छाप
 जरूरी है पहचानपत्र
 इसके बिना न घर में रह सकते हो न बाहर
 कहीं भागकर जा भी नहीं सकते
 न राशन न पानी न गैस न दवा न सफर न सराय
 न बैल न गाय—(जहां न जाय रवि वहां भी आधार छवि)—
 इसी के खिलाफ इसी छापे इसी पहचानपत्र के खिलाफ
 गांधी ने (कौन एम.के.?) शुरू किया था अफ्रीका में संघर्ष
 गांधी का नाम मत लो
 गांधी तो अब एक झाड़ू का नाम है
 नोट रुपइये पर आश्रम है धाम है
 कब की सूख चुकी साबरमती
 वे सब भी पोपले हो चुके हैं
 झड़ चुके हैं उनके दांत
 पर उनसे मुझे कुछ नहीं कहना
 मैं तो पूछ रहा हूं उनसे जो हर बार खाने के बाद
 जतन से धोते हैं अपने दांत अगले भोज की प्रत्याशा में
 दांतों का पहला काम काटना था आदिम युग में
 तभी किसी ने हाथ में पर्चा थमाया
 पूरी हिदायत है पक्की सूची
 क्या करना क्या न करना
 क्या खाना क्या न खाना
 क्या पीना क्या न पीना
 क्या पहनना कितना ढंकना
 ऐसे रहो जैसे तुम्हारा पूरा शरीर जला हो
 क्या बोलना क्या सोचना
 घर से निकलते कौन पैर पहले उठाना
 सावधानी हठी दुर्घटना घटी
 जो कहें वो करो
 करो या मरो
 दिल्ली दूर नहीं
 हर घर है दिल्ली के घेरे में
 हर घर प्रक्षेपास्त्र के घेरे में
 कहां जा रही है यह भीड़
 इतने लोग कभी नहीं देखे एक साथ सड़क पर

वो बच्ची एक पांव की टूटी चप्पल ठीक कर रही है झुकी
 कहां जा रहे हैं ये लोग
 किसके घर बधावा है किसके घर मातम
 कितनी लाशें आई इस बार इस शहर में
 युद्ध सिर्फ वही नहीं होता जो मोर्चे पर होता है
 युद्ध लगातार चल रहा है हर घर हर जीवन में
 कत्ल कर देना मुझे पर रहम करो
 मेरे खांसते बच्चे को पी लेने दो शीरा
 मेरी बेटी को मच्छरदानी गिराने दो
 हर जगत मृत्यु का अनुष्ठान करने वाले सबसे गरीब लोग क्यों हैं
 त्यज्य अंत्यज उच्छिष्ट
 वो मुअज्जिन वो बेवा का बेटा
 वो पुरोहित अनाथाश्रम से लापता
 रात भर तीन ही लोग जागते हैं— वर, वधू और पुरोहित
 तुम कभी किसी ईसाई मुसलमान हिन्दू या पारसी की
 शादी में गई हो
 तुम किसी मैय्यत में
 उस लड़की का फिर कुछ सुनने में नहीं आया जो
 एक आदमी का खून कर
 नकाब लगाए निकल गई थी एक मकान से
 वे सारे लोग कहां चले जाते हैं
 एक हत्या वारदात एक खबर के बाद
 फिर कोई कुछ नहीं बताता
 जेलें कम पड़ रही हैं
 योजना है कि हर मुहल्ले में एक पक्का जेलखाना हो
 आशा है कि अगले पंद्रह अगस्त तक यह संकल्प अवश्य पूरा होगा
 लड़ाइयां इतनी होंगी कि हर व्यक्ति एक राष्ट्र होगा
 सब अपने अपने तलवे की जमीन पर लड़ते
 हर व्यक्ति का एक ध्वज होगा और अपना कवि अपनी जाति का
 खून होगा
 एक मूली उखाड़ने पर
 खून होगा किसी के सामने खांसने पर
 जम्हाई देशद्रोह है
 रोना देशद्रोह
 खून होगा एक निवाले पर
 डूबेगा देश गंगा के चुल्लू भर
 मां मेरी गंगा

बहुत दोष हैं मुझमें पर संतोष है यही कि
हम तुम्हारे पड़ोस में हैं
यही अपराध है मां क्षमा करो
कि हमने तुम्हारा स्पर्श किया पैर से

जब पवित्रता के लिए स्थान न बचे
जब कठिन हो जाए ईमान से जीना
तब मुझे बचाना मेरी मां
मैं बार बार आऊंगा तुम्हारे किनारे धधकती चिता से उठकर
ओ धवल केशों वाली मां
तुमसे पुरातन कुछ भी नहीं मेरी मां
तुम्हारी ही गोद में सो रहे हैं मेरे पितर मेरे पूर्व जन
उन्हें अतीतभक्षियों से बचाना मेरी मां

अगर यह गांव आज खाली है
तो शहर कहीं भर गए होंगे
एक किशोर रिक्शावान पानी में भींगता खींचे जा रहा है सवारी
चिड़िया की छाती वाला किशोर
एक लड़की जिसकी देह ने अपनी अभी अभी
छोड़ी है बाढ़
मांज रही है जाने कब से जूठे बर्तन
हर साल नया खून चाहिए इस शहर को
हर साल इस कारगिल को नया ऑक्सीजन
और फिर हम घूरा बन जाते हैं
और फिर हम पोंछना बन जाते हैं
एक जैसे ही तो हैं हमारे हाथ पांव हमारे शरीर
वो मालिक हम दास बन जाते हैं
किसने किया यह सब
वो देह हम सांस बन जाते हैं
कभी आराम नहीं
आराम कभी था भी नहीं
जो था भी वो भी लगता है खतम हो गया
चंद्रमा इसीलिए सुंदर है कि एक वही है
बाकी पूरा आकाश खाली अवकाश
पता नहीं क्यों अचानक इतनी बेचैनी
कहीं भी बैटूं वो जगह तुरत गर्म हो जाती है
इतना अनिश्चय इतना भय
कहीं भी चैन नहीं जैसे मैं तपती रेत पर धा रहा हूं

मैं एक क्षण में नहीं संपूर्ण काल में जीना चाहता हूँ
भविष्य इस तरह मेरे हाथ हो जैसे पीठ पर खेलता बच्चा
अतीत इस तरह मेरे साथ जैसे माथे पर पके बाल
सबसे सुंदर संसार है वो जहां भविष्य का भय नहीं
मैं आज सोकर कल जगूं ओस और ज्योत्स्ना से सिक्त

कोई भागता है लूटकर सोये भिखारी का कटोरा
एक भिक्षु का चीवर
एक अंधे को रास्ता दिखाने के बहाने
छीनकर भागता है उसकी छड़ी
बाढ़ का पानी नदियों से होकर
पोखरों नालों नलियों तक फैलता है
कटोरों प्यालों रक्त तक में
जब लुटने लगे वेश्याएं यतीम बूढ़े अपंग बेवाएं
तब समझो आ गया प्रलय का दिन
प्रलय परतंत्रता फासिज्म फासिज्म
सबकी जेब से पैसे खींचता जन धन
मैं चंद्रमा की तरह लगातार घिसता जा रहा हूँ
चंद्रमा की तरह लगातार बढ़ता जा रहा हूँ
मुझे खुद नहीं पता मैं असल में क्या हूँ
ऐसा अनिश्चय ऐसी बेचैनी
आकाश की पीठ पर तारों की घमौरियां
सब चले जा रहे एक एक कर
इस शहर को छोड़कर
जिसे जहां ठौर मिला
जिसे जहां कौर मिला
पर जाएंगे कहां वे पेड़ इतने नीड़ लिए
कहां जाएंगी वे बिल्लियां इन छप्परो को छोड़कर
कुत्ते भी इन्हीं घूरों पर देह मोड़ सोएंगे
नीचे धाह ऊपर शीत
अभी तो कार्यनीति यही है
कि गणना ऐसी बिठानी है
कि किसमें किसको जोड़ दें
तो योगफल हर बार सत्ता हो
मेरा तो मानना है अध्यक्ष जी
कि जाति एक दुधारू नहीं दुधारी तलवार है
और विभाजन असमाप्त कार्यक्रम

इसमें किसी भ्रम का प्रश्न नहीं
सात पुश्त बैठे खाएगा

मैं गोपालगंज के गांव से बोल रही हूं
मेरे पति को खाड़ी गए तीन साल हो गए
कोई खबर नहीं
मैं भोजपुर के एक गांव से बोल रही हूं
मेरे बबुआ को काम पर गए डेढ़ साल हो गए
कोई संदेश नहीं
मैं खगड़िया के एक गांव से बोल रही हूं
इतना तो जानती हूं कि वो इस दुनिया में नहीं हैं
लेकिन उनकी लाश

1,250,000,000 के देश में अगर 1,25,000
गुम भी हों तो क्या फर्क पड़ता है
फर्क तब पड़ता है जब तुम उसमें से किसी भी एक के घर
जाते हो
एक फूटी हांडी की तरह घर
ग्रहण के दिन की तरह घर
तब लगता है जीवन मतलब एक एक जीवन तन तन तृण तृण
तब लगता है हर शहादत अंततः एक मौत होती है
एक उजाड़
भयंकर हैं वो गहर जहां कल तक एक वृक्ष था
बताना कहीं कोई खाली मिले तो बताना
दाई का काम खोजती उस युवती ने अपनी सखी से कहा
कुछ भी मिल जाए तो कर लूंगा
कुछ भी अरुन बाबू
कहा रास्ता रोककर उस अधेड़ मजदूर ने
आपने मेरे अब्बू को देखा है
कल शाम से घर नहीं आए
इतना डर क्यों लग रहा है
इतनी रात ऐसा सन्नाटा दूर कहीं अजीब हूल चीत्कार
पक्षी पेड़ों से सटे
धूर थम निस्संग
एक झड़ता पत्ता भी भारी है हवा को
एक अजीब भयानक सपना था वो
रात का या दिन का याद नहीं

एक चील के मुंह में सांप
सांप के मुंह में मेढक
मेढक के मुंह में एक कीट
उड़ी जा रही है चील नीले स्वच्छ आकाश में
नीचे पानी केवल पानी पानी पानी
कहीं नहीं धरती न पर्वत न हिमालय
प्रलय प्रलय प्रलय।

कालिदास का अपूर्ण कथागीत

सुधांशु फिरदौस

युवा कवि सुधांशु फिरदौस का कविता कहने का अलहदा ढंग है। उनकी एक काव्य पंक्ति के मार्फत कहें कि उनके यहां 'अनुभव एक दूसरे से चिपके हुए अपने अलग अलग आकाश को खोलते हुए' अभिव्यक्त होते हैं।

मूढंबुद्धमिवात्मानहैमीभूतमिवायसम् ।
भूमेर्दिवमिवारुढंमन्येभवदनुग्रहात्॥
अद्यप्रभृतिभूतानामधिगम्योऽस्मिशुद्धये ।
यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धितीर्थप्रचक्षते॥

—कुमारसंभवम् 6.55.56

एक समय था जब ऋतुओं के आगमन को लेकर
कितनी उत्सुकता रहती थी मन में

प्रत्येक नक्षत्र का अपना विधान अपना पकवान
ऋतुओं में छुपा होता था जीवन का सारा अनुष्ठान और मिष्ठान
कैसे मेघाच्छादित नभ देख हर्षोल्लास से भागते थे आम्र उपवन की ओर
वर्षात में जब पशुओं की महामारी को भगाने के लिए उठता था हरका
गोबर लाठी के हड़बोंग को छोड़

उत्साह में चिल्लाते दौड़ते कैसे करते थे ग्राम प्रदक्षिणा
हटती ही नहीं थीं प्रीतिस्निग्ध आंखें मेघों से होड़ लेते बलाकाओं के झुंड से
आम्र मंजरियों और बकुल पंक्तियों के खिलने की कैसी रहती थी प्रतीक्षा
दृश्यों को अनावृत्त करने का कौतूहल नहीं दबता था दबाए
गूलर के फूल या तेरह धारी वाले मक्के के बाल के स्वामित्व की चाह जैसी
कैसी निष्कपट जिज्ञासाएं उन्मत्त कर रात्रिचर निडर बना भटकाती थीं निर्जन ग्राम
प्रांतर में

दादुर, मीन, धेनु, वृषभों से कैसा रहता था अनुप्राणित
कितना रोया था एक बार कदंब की छांव में बैठा मृत तितली को करके जलाप्लावित

दूर नदी मंझधार में नौका पर झिझिया खेलती स्त्रियों द्वारा गाए जाते
हलकी पुरवा बयार के साथ ग्राम में पहुंचते गीतों की मद्धम स्वर लहरियां
कीर्तनियों के झाल, करताल, मुदंग के आरोहावरोह की मादक ध्वनियां
रेत पर सूर्य किरण के साथ दौड़तीं निश्छल सुबहें
चंद्रछवि के साथ नदी में तैरतीं शीतल रातें
किसी पूर्वजन्म की स्मृति लगती हैं

अब तो अपने ही हृदय के यक्ष और यक्षिणी की विरह में घुलता
ऋतुओं की टोका टाकी से वीतराग
कमल, कुंद, लोध्र, कुरबक, शिरीष, कदंब कुसुमों को
खिलते और मुरझाते निर्लिप्त देखता हूं

लेना ही पड़ता है कालिदास को एक न एक दिन संन्यास
'ऋतुसंहार' से 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' तक आते आते वह मांग ही लेता है मुक्ति
नंदीग्राम के त्याग का उज्जैन के त्याग से होता है उपसंहार
मल्लिका का सान्निध्य हो या प्रियंगुमंजरी का सहवास
विरह हो या संसर्ग एकाकी कालिदास
एकाकी ही रहता है

अवशेष से उत्पन्न हूं
एक दिन अवशेष छोड़ चला जाऊंगा
उससे पहले संतप्त हूं
भाषा भाषा
शब्द शब्द
देह देह
भटकने के लिए

भटकना होता है अकेले ही प्रत्येक प्रतिभा को अपनी त्रासदी में
 सब कुछ झेलते हुए बिना किसी प्रचलित आस आकांक्षा के
 देना ही होता है अवदान
 रचना ही होता है सबसे छुपाकर
 जीवन की संपूर्ण मसि का उत्सर्ग कर एक प्रेमपत्र
 क्या पता कैसा हो इसका भवितव्य
 पहुंचे या न पहुंचे वह प्रेमिका तक
 पहुंच भी जाए तो वह उसे पढ़े या न पढ़े
 पढ़ भी ले तो उसमें निहित भावनाओं व्यंजनाओं को समझे या न समझे

अक्षर अक्षर और सांस सांस बना रहता है शक्ति, व्युत्पत्ति और अभ्यास पर एक संशय
 मन बैठ बैठ जाता है देख कि कितना व्यापक है शब्द ध्वनि का यह फैला हुआ पारावार
 हिमालय के उच्च शिखर से होड़ लेती है पूर्ववर्ती कवियों की कीर्ति पताका
 जब भी सोचता हूं वाल्मीकि या वेदव्यास को तब बोध होता है अपनी अपूर्णता का
 दुविधाएं उड़ंड मेघ की तरह मन को घेर लेती हैं बार बार
 करता हूं इष्ट का स्मरण
 कहता हूं जला दी है मैंने अपनी नौका
 मिटाता आया हूं अपने पदचिह्न
 पीछे हटने का रखा ही नहीं कोई विकल्प
 तैरना ही मुक्ति इस निदाघ सिंधु में
 नहीं चाहता कोई अनुकंपा या वरदान
 मृत्यु कवि के लिए एक छंद से दूसरे छंद में लगाई गई छलांग है

कोरे पृष्ठ पर जब भी उतरता है कोई शब्द
 असंगत हो जाती है हृदय की चाल
 कानों की शिराएं होती हैं तप्त
 एकाग्र हो करता हूं शब्द का अनुसंधान

एक प्रवाह एक छंद है जो करता है अग्रसर
 प्रत्येक क्षण नए नए अनुभवों से होता है पुनः पुनर्जन्म

कविता से काव्येतर अभिलाषा
 प्रेम से प्रेमेतर अदेशा
 अपमान नहीं तो और क्या है प्रेम और कविता का
 मिल जाए कुछ मनोनुकूल दान, भोजन और भोजनोपरांत दक्षिणा

भिक्षाटन नहीं है कोई भी कलाकर्म

न ही ब्राह्मण वृत्ति या कर्मकांड
 कविता तो नितांत विरोधी रही है इस लोकोपवादी याचक वृत्ति की
 कवि में उपस्थित रहना ही चाहिए एक शालीनता से भरा औद्धत्य
 नहीं मिलता भिखारियों को सरस्वती का आशीर्वाद
 एक बिल्कुल नए अनुसंधान के लिए
 एक आधी अधूरी कल्पना जो क्या बनेगी इसका नहीं अभिज्ञान
 सारी भौतिक लालसाओं और तृष्णाओं को त्याग
 जल, रक्त, मांस, अस्थि को एकत्र कर देनी ही होती है आहुति

यहां से दिखती है दूर कीर्ति की एक चमक एक आभा
 जो हो सकती है मरीचिका भी कोई नहीं जानता
 आंखें बांध अपने भीतर की कौंध को संभाले चढ़ना होता है
 उपत्यका की चढ़ाइयों पर मृत्युपर्यंत
 बहुत ही साधारण घटना है पथ से चूक खाई में गिर जाना
 गिर ही जाते हैं लोग शुष्क जीवनानुभव और मलिन मन लेकर
 ऐसे ही खाई में गिरे दादुरों की क्षुद्रतापूर्ण वक्रोक्ति से आक्रांत है समस्त कला जगत

कला का इतिहास पदाक्रांत है दुर्भिक्ष और अकाल मृत्यु से
 मरणोपरांत कीर्ति का इतिहास जीवन भर घिसे असंख्य पत्थरों में से
 किसी एक सौभाग्यशाली को स्पर्श मणि का प्राप्य स्पर्श है
 दुर्निवार है कला कर्म
 कवि होना और भी प्रिय भोज्य होना है मृत्यु का
 अकालमृत्यु से लब्ध अस्थियों के ढेर के ऊपर
 कालिदास के आराध्य नटराज करते हैं नृत्य
 भरत मुनि बजाते हैं वीणा
 काव्य पुरुष करते हैं आराधना
 सरस्वती के हाथों से अपने इन दुस्साहसी पुत्रों के लिए बरसते हैं स्नेह कुसुम
 सृष्टि की असफलता की शल्य चिकित्सा के प्रयास का एक और मर्मांतक अंत देख
 ब्रह्मा की आंखों से टपक जाते हैं आंसू
 जिससे कवि लेते रहते हैं पुनर्जन्म
 विष्णु देख ब्रह्मा की विस्वलता स्मृतियों में झांक मंद मंद मुस्काते हैं

प्रत्येक क्षण कोई न कोई कवि नंदीग्राम से होता है विस्थापित
 लेकिन युग लग जाते हैं किसी कालिदास को उज्जैन पहुंचने में
 कश्यप ने विनता से कहा था कि अधैर्य सबसे बड़ा पाप है
 कला क्षेत्र में अधैर्य पाप नहीं महापातक है
 यदि नहीं है साहस अपना सर्वस्व दांव पर लगाने का

तब भलाई है प्रतिभा को कहीं और ही लगाने में
क्योंकि यहां सत्ता है अनंत अनिश्चितताओं, विडंबनाओं और प्रवंचनाओं की

बहुत व्यस्त और निर्मम समालोचक है समय
बेध्यानी में खारिज करता समग्र जीवन संघर्ष

अमर्ष से भरे कुटिल प्रपंचों का प्रदर्शन अशोभनीय बनाता है कला कर्म को
उज्जैन के कला मठों में बैठे लोग संभवतः ही कभी समझ पाएं कि कविता नहीं है
ज्ञान का आतंक

ज्ञान ही नहीं अर्जित करना होता
बचानी होती है स्निग्धता और प्रांजलता भी
कला कर्म की शुरुआत होती है सबसे पहले सहृदयता से
कवि न रचे एक भी मूल्यवान पंक्ति
लेकिन सहृदयता का त्याग कवि के स्वत्व का त्याग है
कोई नहीं जानता प्रसिद्धि गजराज पर चढ़कर आएगी या गर्दभ पर

रचनात्मक जीवन समुच्चय है अंतर्विरोध का
जितना सिमटता उतना ही फैलता
बिना किसी अपराध के अपराधबोध से संतप्त जीवन
कई व्यक्तिगत स्वार्थ या भौतिक लालसा नहीं मात्र कलात्मक महत्वाकांक्षा
फिर भी देखते ही देखते जो है सबसे पास वही हो जाता है सबसे दूर
क्या अनुठा दैत है

सत्य को बरतना कभी भी नहीं रहा सहज
लेकिन काल की गति ऐसी है कि अब इसे देखना
दीठ में चमकते झीने तार की तरह दुर्लभ है

नींद में आए व्यवधान का परिणाम है सृष्टि
बनाने वाले की चूक का अवदान है सृष्टि
इसलिए कहीं से भी देखो अपूर्ण है सृष्टि
इसी अपूर्णता का विस्तार है यह जीवन उज्जैन से कश्मीर तक
कालिदास केवल एक इकाई भर है इस अपूर्णता की

महत्वाकांक्षाएं अंततः पूर्ण होती हैं शून्यता में
कालिदास ने अंततः अनुभवगत कर लिया था इसे पर रचा नहीं
तथागत ने अपने अनवरत अनुदर्शन से जान लिया था इसे पर मौन ही रहे
आनंद रूपक भर है इस शून्यता का

यह तो बहुत बाद की बात है जब नागार्जुन ने इसे कहा
और हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा 'सब हवा है'

अपूर्णता दौड़ाती है सबकुछ पाने की ओर
फिर लौटाती है सबकुछ छोड़ने की ओर
अपूर्णता कारण और आदमी लोलक है
जो डोलता रहता है चाह और त्याग के बीच
यह दोलन ही जीवन का काव्य है

बहुत दुष्कर है ढूंढ पाना
इस खंडित महाद्वीप के मानचित्र पर कालिदास का जन्मस्थल
क्या कोई पूछता भी है कालिदास की जाति

कोई नहीं जानता कहां से आता है कालिदास
कोई नहीं जानता कहां को चला जाता है कालिदास
हर कालिदास के जीवन में आता है एक उज्जैन
जहां पहुंच वह रचता है अपना सर्वश्रेष्ठ
वहीं उतरती हैं पारिजात सी सुगंधित
स्वर्ण पंखुड़ियों सी चमकतीं
मेघदूत की पंक्तियां
उसके बाद केवल किंवदंतियां
जनश्रुतियां...

दीघा : आठ कविताएं

एकांत श्रीवास्तव

एक

यह रास्ता समुद्र को जाता है
यह रास्ता भी समुद्र को जाता है
वह रास्ता समुद्र को नहीं जाता
लेकिन आगे मुड़कर
वह भी उसी रास्ते में मिलता है
जो समुद्र को जाता है

समुद्र से बचना यहां संभव नहीं
समुद्र तुम्हें घेर लेता है
कि पोखर हो गए हो तुम जाने कब से
काला पड़ चुका है तुम्हारा जल

अपने पोखरपन से घबराकर मैं भागता हूं
लेकिन जिस भी रास्ते पर कदम रखता हूं
वह समुद्र को जाता है
समुद्र से बचना यहां संभव नहीं।

दो

बूढ़ा हाथी है समुद्र
अपनी सूंड में भर भरकर जल
तुम पर फेंकता है फव्वारे की तरह
कि तुम आए हो
कितनी दूर से
उसे देखने।

तीन

धरती गाती है यहां – समुद्र
पक्षी गाते हैं
आकाशमणि, केजोरिना और पेड़ नारियल के
गाते हैं – समुद्र
चट्टानें तट की और रेत गाती है – समुद्र

हमें याद आता है यहां अपना पत्थर होना
कब से कोई लहर दौड़ती हुई नहीं आई
कब से हम समुद्र नहीं हुए;

चार

पत्थर जब भीग जाते हैं
तो पत्थर नहीं रह जाते
उनमें जाग जाती हैं लहरें
पानी की संगत में समुद्र हो जाते हैं पत्थर
पानी से दूर पत्थर होने लगते हैं हम

पांच

समुद्र में नमक है
हमारे रक्त और पसीने और आंसू में नमक है
समुद्र से हमारा नमक का रिश्ता है
हम समुद्र को भूल नहीं सकते
हमने समुद्र का नमक खाया है

जो धरती के नमक को भूल जाता है
वही तो नमक हराम

हम धरती को याद रखते हैं
और समुद्र को कभी नहीं भूलते।

छह

कौन गांव से आए हो तुम
नगर, सूबा, देश कौन सा?
तुम्हारा कौन समुद्र?
हवा आती है हींड़ती हुई
कैसे मनुख हो तुम
किसका नमक खाया तुमने
कि तुम्हारा कोई समुद्र नहीं!

सात

हवा की भाषा में बोलता समुद्र
हवा समुद्र की भाषा है

यहां रस्सियों पर सूखते कपड़े
पताकाओं की तरह फहराते हैं

और तट पर बंधी नाव की तरह
दिन रात
हिलता रहता है यह नगर।

आठ

नदियां उसमें गिरती हैं
वह कहीं नहीं गिरता
कहीं नहीं गिरने के कारण वह, समुद्र है।

जितेंद्र श्रीवास्तव की कविताएं

बुद्धं सरणं गच्छामि

मैं पूना में हूं
पूना पैक्ट के लगभग चौरासी वर्ष बाद

बुद्ध के लोक में पैदा हुआ
विचार रहा हूं आंबेडकर के लोक में
वहां कुशीनगर में असीम शांति में लेटे बुद्ध
यहां कार्ला की गुफा में
बिराज रहे हैं मुक्ति के इतिहास का दर्पण बने हुए

लोग कहते हैं विचार खुशबू की तरह होते हैं
यहां चारों ओर फैली हुई है
स्वाधीन विचारों की खुशबू

मेरे साथ भटक रहे शिवदत्त कहते हैं
बुद्धं सरणं गच्छामि

धम्मं सरणं गच्छामि...

दो

मैं बैठा हूँ पूना के एक सुंदर सरोवर के घाट पर
शायद कभी इसके जल को छुआ होगा मुक्तिमना भीमराव ने
इन्हीं क्षणों में मुझे याद आ रही है सूखती आमी नदी
जिसके अंतस में सुरक्षित है गौतम का स्पर्श

जल सरोवर में है
जल आमी में है
जल जीवन में है
जीवन में जल ही जल है
जल में स्मृति है बुद्ध की आंबेडकर की मुक्ति की

शिवदत्त कहते हैं
बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि...

तीन

यहां ज्योति है ज्योतिबा की!
पत्तियों के हरेपन में
पत्थरों की दृढ़ता में
सुरुचि में जागरण में शहर की सुगंध में
ज्योतिबा हैं साबित्री बाई हैं भीमराव हैं

ओ कवि! यह मुक्ति की धरा है
रुको झुको धारण करो

जो हवा उठी थी लुंबिनी में हजार साल पहले
वह पिछली सदी में
पूना आकर मलय समीर बन गई

बाबा साहेब को मुक्ति का सूरज कहने वाले
प्रिय शिवदत्त कहते हैं
देखिए पूना का आसमान देखिए
उधर देखिए नागपुर की ओर
और सुनिए यह गूंजती हुई आवाज

बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छामि

एक एस्प्रिन मुझे भी दे दो!

भयंकर जुकाम से जूझते हुए
आज मैंने पढ़ी फर्नादो पेसोआ* की कविता
और याद किया
कि मेरे पिता को भी होता था तेज जुकाम
वे छींकते थे तो मुन लेता था
गांव के दूसरे छोर पर बैठा चौकीदार

अक्सर हंसते हुए कहता था वह
मुंशी जी हर काम कलेजे से करते हैं
वह छींकना हो या लड़ना हो मुकदमा
तबियत में आने नहीं देते कोई भेद

वैसे छींकते तो मेरे नाना भी थे
और मेरा पड़ोसी भी छींकता है दम लगाकर
और पड़ोसी का पड़ोसी भी कम नहीं है छींकने में
जाहिर है, मेरे इस जुकाम में कोई नयापन नहीं है कहीं से भी
बस इसके अलावा कि इस समय
नाक मेरी लाल है और गले में बर्छियां
न पड़ोसी के चल रही हैं न मेरे किसी पूर्वज के

आज रात जगूंगा मैं ही अकेले
चांद के साथ साथ
यह कविता भी सो जाएगी थोड़ी देर के लिए
आज तारे भी नहीं उतरेंगे नापने मेरा बुखार
और यह जो चल रही है पुरवाई लोगों में भरती हुई उन्माद
रात भर तोड़ेगी मुझे

मेरे एक करवट बबूल है
दूसरे करवट भटकोइया

इस समय लिखते हुए यह दुःख

* बीसवीं सदी का महान पुर्तगाली कवि

मेरी कलम उगल रही है स्याही
और मेरी आंखों से लगातार गिर रहा है गरम पानी

ओ फर्नादो!
एक एस्पिरिन मुझे भी दे दो!!

अकेले किसी एक का

दाल का स्वाद अकेले दाल का स्वाद नहीं होता
कुछ हल्दी का होता है कुछ नमक का
कुछ उस पानी का जिसका स्वाद
शब्दों में समा नहीं पाया अब तक
और सबसे अधिक उन हाथों का जो पकाते हैं उसे

दाल का रंग भी
अकेले दाल का रंग नहीं होता
जैसे प्रेम का रंग
अकेले किसी एक का रंग नहीं होता।

नए कबीर की प्रतीक्षा

कभी कबीर ने याद दिलाया था
'एक लाख पूत सवा लाख नाती
ता रावण घर दिया न बाती'

पर लोग हैं
कि अक्सर भूले रहते हैं

कभी कभी याद करते हैं राम को रावण को युद्ध को विनाश को
कभी कभी किसी शवयात्रा में जाते हैं श्मशान की ओर
वहां से लौटते हैं छाटांक भर वैराग्य लेकर
जो बिला जाता है कहीं रास्ते में ही

स्थाई सी लगती
आत्मा पर त्वचा की तरह चढ़ी हुई उदासी
केंचुल की तरह उतर जाती है घर पहुंचते पहुंचते
वे फिर डूब जाते हैं अपने अपने गोलक में

सिद्ध करने लगते हैं शक्ति के नए प्रमेय

वे भोग लगाते हैं दिखावे के प्रेम का
और डुबकी लगाते हैं
भीतर तक बजबजाते घृणा के सरोवर में

वे याद नहीं करना चाहते सबसे पुराना सबक :
'एक दिन सब चले जाते हैं
कोई नहीं बचता
राजा रंक फकीर'

अजर अमर दिखने वाली चीजें रीत जाती हैं एक दिन
धराशायी हो जाते हैं शक्ति के सारे समीकरण
समय की आंच पर गल जाते हैं स्वर्ण प्रमेय
बीत जाता है सब कुछ
बस नहीं बीतते प्रेम के कुछ पदचिह्न

किसी सूखती नदी के घाट पर
वे प्रतीक्षा करते हैं एक नए कबीर की।

जनतंत्र में जनता

धूप तेज है माहौल सर्द
सन्नाटा पसरा है गांव में
सब न जाने कहां गए!

मां बीमार है मन अशांत
कभी अपने वैभव से चकित करने वाली नदी
अब रेख की तरह बची है

चीजें जहां तहां बिखरी हैं
कुछ लूट रहे हैं कुछ सहमे हैं बेतरह
अजब सा माहौल है
न आंखों में उतर रहा है रक्त
न खुलकर बह रहे हैं आंसू!!

जो जल रहे हैं

मेरे पैर जल रहे हैं सर!
खड़ा रहना मुश्किल है मेरे लिए
मेरा हवाई चप्पल अंततः टूट गया है घिसटते घिसटते
अब मेरे पास न चप्पल है न जूता
मैं खुद को संभालूं या निहारूं इंडिया गेट?

कृपया मुझे पंक्ति से बाहर
उधर जाने दें जिधर दूब है

वह दूब ही काम आएगी हमारे
यह चमाचम फर्श उनके लिए है
जिनके पांवों में लिबर्टी है श्रीमान

गुरुवर, सुनिए न गुरुवर!
ये बार बार मुझे चुप रहने का संकेत
क्यों कर रहे हैं आप?
देखिए न, आपके पांवों में शानदार जूता है
मन में तरक्की की ख्वाहिश है
जो बिलकुल गलत नहीं है लेकिन मुझे भी तो देखिए!

किसी तरह पढ़ते पढ़ते पहुंचा हूं दसवीं तक
आज पड़ गए जो पैरों में छाले
स्कूल आने जाने के पड़ जाएंगे लाले
आजाद भारत में भी हम वही पुराने काले

कुछ तो नहीं बदला हमारे लिए!

सर, भव्य है इंडिया गेट
उससे भी भव्य राष्ट्रपति भवन
और सबसे अधिक चमक रहे हैं
नार्थ ब्लॉक और साऊथ ब्लॉक
और यह सब मैं जानता हूं बिना देखे ही

शक्ति को देखने जाने की जरूरत नहीं होती सर
उसका अनचाहा बोझ अपनी छाती पर लिए फिरते हैं हमारे जैसे लोग

देखिए, इस समय पैरों के साथ आंखें भी जलने लगी हैं मेरी
सहन नहीं हो रहा है मुझसे
अब और खड़ा नहीं रह पाऊंगा इस तरह
मैं जा रहा हूं दूब की शरण में
इससे टूट रहा है आपका अनुशासन तो टूट जाए
उसकी टूटन बड़ी नहीं मेरी टूटन से

महोदय, आपका अनुशासन मुबारक आपको!!

महेश वर्मा की कविताएं

नई सदी के दूसरे दशक में कविता के दृश्यपटल पर महेश वर्मा की खास जगह है। वह बगैर शोर के सुने पढ़े गए हैं। कविता संग्रह प्रकाशक और प्रकाशन की प्रतीक्षा में।

रविवार

रविवार को देवता अलसाते हैं गुनगुनी धूप में
अपने प्रासाद के ताखे पर वे छोड़ आए हैं आज
अपनी तनी हुई भृकुटि और जटिल दंडविधान

नींद में मुस्कराती किशोरी की तरह अपने मोद में है दीवारघड़ी

खुशी में चहचहा रही है घास और
चाय की प्याली ने छोड़ दी है अपनी गंभीर मुखमुद्रा

कोई आवारा पहिया लुढ़कता चला जा रहा है
वादियों की ढलुआ पगडंडी पर

यह खरगोश है आपकी प्रेमिका की याद नहीं
जो दिखा था, ओझल हो गया रहस्यमय झाड़ियों में

यह कविता का दिन है गद्य के सप्ताह में

हम अपनी थकान को बहने देंगे एड़ियों से बाहर
नींद में फैलते खून की तरह

हम चाहेंगे एक धुला हुआ कुर्ता पायजामा
और थोड़ी सी मौत।

बुझे हुए सब तारे

अपने होने में जो सितारे
कब का बुझ चुके
उनकी रोशनी में जो टिमटिम है
वह रास्तों के मोड़ों की है

यहां प्रेमीजन जो सितारे
अपनी प्रेमिकाओं की नजर कर रहे हैं
हो सकता है ये वही सितारे हों
जो हैं ही नहीं

प्रेमिकाओं की चमकती आंखों के
सितारा उपमान तभी बुझ चुके हों
जब पहले मनुष्य सीख रहे थे प्यार करना
मरते सितारों की चीख सुनने की उनको फुर्सत नहीं थी
तो यहां धरती पर मरना भी कोई चीज नहीं थी

धरती के भीतर और बाहर
जितना बाकी हैं
बहुत पहले मर चुके पूर्वजों की हड्डियां
उनके बनाए चित्र और पत्थर के हथियार

राह बताने के ये सितारे हैं
जो बुझे नहीं हैं।

दरख्त

यह रात है
और पतझर की नींद में भी

हवा में घूमकर नीचे गिरते पत्ते हैं

यह वृक्ष का सपना नहीं है
उसकी नींद के पत्ते भी गिर रहे हैं अंधेरे में
इस तरह अंधेरे में कि अंधेरे का हिस्सा हैं
पत्ते की शक्ति का एक अंधेरा
बाहर के अंधेरे के भीतर गिर रहा है

अंधेरा कोई वृक्ष है
तो उसके भी पत्ते गिर रहे हैं रात में

रात खुद एक दरख्त है।

हमारे कवि

क्या कर रहे हैं
क्या उन्होंने लिख लिया यह अंधेरा
जो हमारे भी बीच फैला है।

उन्होंने आंखें ढांप तो नहीं ली थीं हाथ से
जब आया था प्रकाश।

वे लिख पाए क्या धूप से भी सुंदर हंसी
जो फैली हुई थी आकाश पर। उस समय वे
धरती की भीतरी तहों को तो नहीं सोचते थे।

क्या वे लिख पाए दुःख
जो अब भी आंतरिक से अधिक वाह्य बचे हुए हैं चारों ओर
ठोस शारीरिक दुःख जो छूकर
देखने की जद में हैं—जैसे अपने ही माथे का खुला घाव।

अभी इस वक्त जब
हौले हौले हिल रही है रात

कवि क्या कर रहे हैं।

घर

घर वैसा ही होगा जब हम लौटेंगे
जैसे शताब्दियों तक वैसे ही रहते हैं घर किताबों में

हम किताबों की धूल झाड़ेंगे
और घर में प्रवेश करेंगे
वहां चूल्हा वैसे ही जल रहा होगा
जैसा कहानी में जलता था और
लकड़ी बुझने से पहले शुरू हो गया था दूसरा दृश्य
वह बुढ़िया अभी भी आरामकुर्सी में
सो रही होगी जो कुछ सौ साल पहले
ऊंच गई थी आंच से गर्म कमरे के विवरणों के बीच
इसे एक गोली की आवाज ही जगा सकती है
लेकिन मालूम नहीं कब

हम चाहते भी थे कि दुर्भाग्य का वह पन्ना उधड़कर
उड़ता चला जाए किसी रहस्य कथा में

हम चांदनी से भी आरामदेह एक बिस्तर पर लेट जाएंगे
जहां नींद की उपमा की तरह आएगी नींद
और हमें ढक लेगी

हम सपना देखेंगे एक घर का या किताब का।

होली

वहां मनुष्यों के धड़ खड़े थे
किसी ने रंग से उनके चेहरे बनाए, बाल
हरे गुलाल से
कुछ पड़ जाने के मले जाने से बेतरह लाल बनाई आंखें,
आवाज बनाई एक फोहश गाली से।

कोई होली नहीं खेलना चाहता था
सब चाहते थे खेलना होली

वहां कुछ सिर लटकते थे हवा में

एक शराबी आलिंगन ने उनके लिए
धड़, यौनिकता और लड़खड़ाहटें बनाई,
लड़खड़ाहटों से टांगें और आलिंगनों से उत्तेजनाएं बनाईं

आगे के एक बरस के लिए
इस तरह यह तैयार हुई देह

कल रात ही उसको राख होता देखा था सम्मत में
जर्जर देह पिछले साल की।

अंतिम रात

अंतिम वाक्य बोला जा चुका
अंतिम प्रश्न के अंतिम उत्तर में

आखिरी दरवाजा बंद हो चुका

उधार की शराब और उधार की रात के लिए ये शहर जैसे है ही नहीं
इतना ज्यादा नहीं है यह शहर
कि अंतिम सीढ़ियां जो मैं उतर रहा हूं के बाहर
कोई पृथ्वी नहीं होगी पांव रखने को
अंधेरे की गहराई होगी बाहर उसके अतल में गिरने को

घटिया टाकीज के अंतिम शो के घटिया दृश्य में
गिरते हुए चीखने की आवाज मद्धम पड़ती हुई अस्त हो रही
मध्यांतर रात का है

अंतिम सपनों के बदले मिली अंतिम लकड़ियों की
अंतिम राख को अंतिम हवा उड़ा के ले जा चुकी

सपने दर्ज करने का कागज सट्टा पट्टी लिखने के लिए दे चुके बहुत पहले ही

मैं बराबर तेरह के अंक पर दांव लगाता था
वहां तो मेरी नास्तिकता ने भी साथ नहीं दिया कहते कहते
पागल होने वाला मेरा दोस्त जमीन पर कोयले से लिख देता है 13 हिंदी अंकों में
इस तरह कि तीन की पूंछ लहराकर घूमती हुई, सूर्य को सही दिशा बता देती है
पागल तो वह भी हुआ जो अपना नंबर तोते से पूछता था, फिर तोता किताब से

ना नौ, न सात, न तेरह, न तीन
धार्मिक भी मारे गए अधार्मिक भी

अंतिम संदूक समुद्र में फेंका जा चुका जिसमें अंतिम किताबें थीं
आखिरी सिक्के के बदले मिला नमक का अंतिम कण
आंसुओं के नमक से महंगा है, इसके बाद नमक
सिर्फ जिंदगी के बदले मिलेगा प्राचीन तुला पर तौलकर।

अंतिम स्मारक ढहाया जा चुका इतिहास का
मिथक के अंतिम नायक का देवालय गढ़ रहा शिल्पी
मरकर किसी पत्थर पर ढह चुका है।

आओ

कोई दिन ऐसा नहीं आएगा जिसकी धूप
आज की धूप में शामिल नहीं है
आने वाले दिनों की हवा कुछ इस हवा में भी है
कुछ इस धूल में अगले बरस की धूल
ऐसे ही घंटे का अनुरणन*
इसमें आगे की आराधनाओं की भी ध्वनियां हैं
कि कोई किसी भविष्य के मंदिर में प्रवेश करेगा।

आज की सुबह में भविष्य के पक्षी चहचहा रहे हैं
इस इस्तरी की हुई कमीज में भविष्य की कलफ है
आज का भोजन करके आचार्य भविष्य की सींक से निकाल रहे हैं
दांतों में फंसा दाना।

इसी चांद के पास है भविष्य के प्रेमियों का उन्माद
इसी समुद्र के पास भविष्य की गर्जना है और भविष्य का नमक
यह पर्वत बहुत दिनों तक भविष्य का भी पर्वत रहेगा
हस्तरेखाशास्त्री की हथेली पर नहीं आज की जमीन पर।

भविष्य की ध्वनियां और चित्र
इस कविता में आओ।

*घंटे का अनुरणन कवि विनोद कुमार शुक्ल की पंक्ति है, उनसे क्षमापूर्वक।

सामाजिक भाषा में रोना

और जबकि किसी को बहला नहीं पाई है मेरी भाषा
एक शोकगीत लिखना चाहता था विदा की भाषा में और देखो
कैसे वह रस्सियों के पुल में बदल गया

दिशाज्ञान नहीं है बचपन से
सूर्य न हो आकाश में
तो रूठकर दूर जाते हुए अक्सर
घर लौट आता हूं अपना उपहास बनाने

कहां जाऊंगा? तुम्हें तो मालूम हैं मेरे सारे जतन
इस गर्वीली मुद्रा के भीतर एक निरुपाय पशु हूं
वधस्थल को ले जाया जाता हुआ

मुड़ी भर धूल से अधिक नहीं है मेरे
आकाश का विस्तार—तुम्हें मालूम है ना?

किसे मैं चांद कहता हूं और किसको बारिश,
फूलों से भरी तुम्हारी पृथ्वी के सामने क्या है मेरा छोटा सा दुःख?

पहले सीख लूं एक सामाजिक भाषा में रोना
फिर तुम्हारी बात लिखूंगा।

सुजाता की तीन कविताएं

प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओं और ई पत्रिकाओं में सुजाता की कविताएं, लेख, समीक्षाएं प्रकाशित होती रही हैं। तद्भव में पहली बार।

झांकती है देह आंखों के पार

...और इस दूसरे जाम के बाद मुझे कहना है
कि दुनिया एकदम हसीन नहीं है तुम्हारे बिना
हम तितलियों वाले बाग में खाए हुए फलों का हिसाब
तीसरे जाम के बाद जरूर कर लेंगे...

हलकी हो गई हूं संभालना...
मौत का कुआं है दिमाग, बातें सरकस
बच्चे झांक रहे हैं खिलखिलाते
एक आदमी लगाता है चक्कर लगातार
धम्म से गिरती है फर्श पे मीना कुमारी
'न जाओ सैंया...कसम तुम्हारी मैं रो पडूंगी...'
और सुनो—
जाना, तो बंद मत करना दरवाजा।
आना, तो खटखटा लेना।

मौत के कुएं पे लटके, हंसते हुए
बच्चे ने उछाल दिया है कंकड़
आंखें मधुमक्खियां हो गई हैं
आंखें कंकड़ हो गई हैं
आंखें हो गई हैं बच्चा
आंखें हंसने लगी हैं
झांक रही हैं आंखें
अपने भीतर!

बच्चे काट रहे हैं कागज कैसे आकारों में
कि औरतों की लड़ी बन जाती है मानो
दुख के हाथों से बंधी एक से चेहरों वाली
एक सी देह से बनी
झांकती है देह आंखों के पार!

अरे...देखो! उड़ गई मधुमक्खियां शहद छोड़
जीने की लड़ाई में मौत का हथियार लेकर

आंसू कुआं हैं, भर जाता है तो
डूब जाती है आवाज तुम्हारी
सूखता है तो पाताल तक गहरा अंधेरा!
बहुत हुआ!

तुम फेंकते हो झटके से बालटी डोरी से बंधी
भर लेते हो लबलबाता हुआ, उलीचते हो
रह जाती हूं भीतर फिर भी उससे ज्यादा

उफ! दिमाग है कि रात की सड़क सुनसान
जिन्हें कुफ्र है दिन में निकलना
वे दौड़ रहे हैं खयाल बेखटके

इंतजार रात का
इंतजार सुबह का

बहती है नींद अंतरिक्ष में, आवारा होकर
भटकती है शहरजाद प्यार के लिए
अनंत अंधेरों में करोड़ों सूर्यों के बीच
ठंडे निर्वात में होगी एक धरती

हजारों कहानियों के पार!

एक अबाबील उड़ी
दो अबाबील उड़ीं
तीन अबाबील उड़ीं
चार...पांच...
सारी
फुर्र!

पुर ते निकसीं रघुवीर वधू

बेमतलब सी बात की तरह होती है सुबह
नीम के पेड़ पर कमबख्त कोयल बोलती ही जाती है
उसे कोई उम्मीद बची होगी

सारी दोपहरें आसमान पर जा चिपकी हैं आज, उनकी अकड़!
एक शाम उतरती है पहाड़ से और बैठ जाती है पांव लटकाकर, जिद्दी बच्ची!
ढलने से पहले झांकना चाहता है नदी में कहीं कोई सूरज
सिंदूरी रेखा खिंचती है
जैसे छठ पूजती स्त्रियों की भरी हुई मांग
पूरा डूबा है मन आज
आधी डूबी हैं मछलियां
मल्लाह पुकारता है—हे हो!
आज और गहरे जाएंगे पानी में...

यह लौटने का समय है
समय...प्रतीक्षाओं की लय...

झूठ बोलकर खेलने चले गए बच्चे पहाड़ी के पीछे
तितलियां साक्षी हैं उनके झूठ की
अभी साथ में करेंगे धप्पा और चांद को आना पड़ेगा बाहर मुंह लटकाये
ये देखो आज शिकारी छिपा है आसमान में, एक योगी भी है
छिप छिप के रह रह टिमकते तारे...चोर हैं चालीस
कहानियों की सिम सिम...नींद का खजाना...लो...सो गए...

अब सब काम निबट गए
पांव नंगे हैं मेरे
बच्चों ने छिपा दी होगी...

या रख दी होगी मैंने ही कहीं
मेरे नाप की कोई चप्पल नहीं है भैया?
—आपको कुछ पसंद ही नहीं आता
हम्म...

सपनों के लिए बुलाया गया है आज मुझे कोर्ट...
अचानक लगता है खो गई हूं
यहां वह पेड़ भी नहीं है बरगद का चबूतरे वाला
किसी हत्या के भी निशान नहीं हैं मिट्टी पर
चौकीदार कहता है
पूजा करनी होगी आपको, गलत गेट से आ गई हैं आप, दूसरी तरफ है बरगद, सही
सलामत।

एक प्रेम को भर देना चाहती थी आश्वासनों से, मीलॉर्ड!
फुसफुसाता है कोई—झूठ!

शब्दकोश से मेरे गायब हो रहे हैं शब्द जजसाहब—
गट्टे बन गए हैं जहां से उखड़े हैं वे...मैं गिरती हूं रोज किसी गट्टे में
फुसफुसाता है कोई—झूठ!

मैं धरती से बहिष्कृत थी...
कोई बोला—झूठ!

मैं कविता लिखती थी...मैंने लिखा था सब...ये देखिए
मेरी ही हस्तलिपि है...मेरी..
वह छिनते कागज उठ खड़ा हुआ है—झूठ!

मैं तब भी थी...अनाम...मैं भटक रही थी अंधेरी गुफाओं में
चलती रही हूं रात रात भर...दिन भर स्थिर...
बड़बड़ाती रही हूं नींदों में...दिन भर मौन...

मीलॉर्ड! मुझे सुना नहीं गया मेरे कातिलों को सुनने से पहले
वह चिल्ला पड़ा है—चुप्प प!!

आप पर अनुशासनहीनता का आरोप है
अदालत की तौहीन है...

होती हूं नजरबंद आज से...अपने शब्दों में...कानों में गूंजता है—झूठ है!

होती हूं मिट्टी...हवा...आंसू...

मुझे उनके जागने से पहले पहुंचना है
चीखता है ऑटो वाला—हे हो!
मरने का इरादा है क्या!

डरती हूं, डरता है मुझसे डर भी

सामने खाई है और मैं
खड़ी हूं पहाड़ के सिरे पर
किसी ने कहा था
शापित है रास्ता
पीछे मुड़कर न देखना
अनसुनी करना पीपल की सरसराहट
किस दिशा को हैं
देखना पांव उसके जो रोती है अकेली इतना महीन
कि पिछली सदियों तक जाती है आवाज
दर्द यह माइग्रेन नहीं है
उठा लाई हूं इसे अंधेरे की पोटली में बांध
वहीं से
बच्चों के चुभलाए टुकड़े टूटे हुए वाक्य गीले बिछौने
सारे टोटके बांध लाई हूं

संबोधन तलाशती हूं
मुंह खोलते अंट जाती है खुरचन पात्र में
मेरे स्वामी
प्रभु मेरे!
मुट्टी में फंसे मोर पंखों की झपाझप सर पर...
नहीं, खाई में कूदना ही होगा
तो मुड़ ही लूं एक बार?

नहीं दिखते दूर दूर भी
पिता
मां
बहन
साथी
देखती हूं अपने ही पांव उलटे!

यह जमीन की बात है

प्रदीप भार्गव

भारत की पार्लियामेंट में एक लाइब्रेरी है। उसमें किताबें हैं, छपी हुई। आज तक पार्लियामेंट में जितनी बातें कही गई हैं, वहां लिपिबद्ध उपलब्ध हैं। वहां के एक कोने में एक पांडुलिपि मिली। कागज देख लगता है पचास साल पहले लिखी गई थी। कागज पीले पड़ चुके थे। पर पाती पर स्याही नई थी। कागज लम्बे थे, जो आमतौर पर वकील काम में लेते हैं, वकालतनामा या पिटिशन लिखने के लिए। पांडुलिपि पर न लाइब्रेरी की मुहर थी, न लिखने वाले का नाम पता। हां, उसमें लोबान के धुएं की गंध थी, मादक। कोई एक साल इंतजार के बाद, उसे लाइब्रेरी स्टाफ ने कूड़ेदान में डाल दिया था। हमने पांडुलिपि उठाई और हर पेज को स्मार्ट फोन में कैद कर लिया। कुछ सफे भरे थे, कुछ खाली। कानून की पेचीदगियों से भरी पूरी कहानी, जैसी मिली, वैसी सुधी पाठकों के हवाले।

एक समय की बात है...

एक समय की बात है। एक राजा ऊंची चोटी पर चढ़ गोल गोल घूम दूर दूर तक फैले अपने राज्य को निहार रहा था। ऊंचे ऊंचे पहाड़, जलाशय, घने जंगल, फिर छोटे छोटे...बड़े बड़े खेत झोपड़ी, पक्के मकान, फिर चिमनी से धुआं उगलती फैक्ट्रियां, फिर हाइवे, शहर की ऊंची अष्टालिकाएं, कूड़े के ढेर, और एल्यूमिनियम की केतली में चाय बेचता लड़का। आ, हा, हा, ये मेरा राज्य है। ये राज्य, और मैं इस समस्त भूमि का अधिपति हूं। वो एक दूरबीन ले आया, दूर तक देखने के लिए। जो दिख रहा है, वो तो मेरा है ही, और जो नहीं दिख रहा है, वो भी मेरा हो जाए। ऐसा सोच सोच राजा मुदित हो रहा था।

वैदिक काल में राजा के पूर्वज गो चराते थे और उनका राजा गोपति कहलाता था।¹ गोपति किसी एक जनजाति समूह का नेता होता था। ऋग्वेद में उसे जनराजन कहा गया। राजन जो लोगों

का रंजन करता था। राजा बलशाली और सौष्ठव होने के साथ बुद्धिमान और भावनात्मक होता था। जन की रक्षा करना उसका कर्तव्य होता था। हमारे राजा ने अपने शरीर को देखा और सोचने लगा कि निश्चित वो श्रेष्ठ ही नहीं सर्वश्रेष्ठ है और उसे ऐसा बने रहना होगा। तभी ऋग्वेद के अनुसार वह राज्य का स्वामी अर्थात् राष्ट्रपति बना रह सकता है। वह सोच रहा था कि राज्य की सारी भूमि राजा की ही होनी चाहिए। भूमि के बिना उसका विकास का एजेंडा कब से स्थगित था। और राजा अपने को विकास पुरुष मानता था। इंडस्ट्री लगाने के लिए जमीन और पानी की व्यवस्था होनी थी। विकास में शहरीकरण आवश्यक है। शहर तो गांव की भूमि पर ही बनने थे। राजा का एक ही मंत्र, एक ही यंत्र और एक ही तंत्र था—विकास। और विकास के लिए भूमि चाहिए थी। और भूमि, और और भूमि। भूमि अर्जन में कानून आड़े आ रहे थे, तो कानून ही बदल डालने की सोच रहा था। पर रह रहकर इतिहास उसके सामने आ खड़ा होता था। ये कहानी राजा को इतिहास से रूबरू कराती है और राजा स्वयं अपने को इतिहास गढ़ते मढ़ते देखता है।

हुआ यह कि, परवर्ती वैदिक काल में जनजातियां शनैः शनैः कुटुंबों में बंट गईं। राजा को बलिहृत या विशमन्ता अर्थात् कृषकों से कर वसूलने वाला या भक्षण करने वाला कहा जाने लगा। कृषक कर वसूली का विरोध करते थे पर उन्हें संरक्षण की जरूरत थी। उत्तर वैदिक काल में सिद्धांत बना कि संरक्षण मिलने की एवज में राजा कर लेने का अधिकारी है। धीरे धीरे जनजातीय समूहों के स्थान पर वर्ण आधारित समाज बना और राजा वर्ण विभाजित समाज का नृप या नरेन्द्र आदि नामों से जाना जाने लगा। पर यह सवाल खड़ा हो गया कि क्या राजा भूमि का स्वामी भी है? या समस्त भूमि गोपाल की, या अन्नदाता किसान की, जंगल में आदिवासी की? पर हमारे राजा ने तो मान लिया है कि वही भूपति है। वो चाहे जिससे छीन ले, चाहे जिसे दे दे। पर यही सवाल आज भी हमारे राजा को सोने नहीं देता। जो चाहता है, करने नहीं देता।

काश! अभी जमीन जमींदारों के पास ही होती

कालांतर में मुगलों के राज में कर इकट्ठा करने के लिए जमींदारों और अन्य बड़े जमीन मालिकों की सामंती व्यवस्था बनी, जो सीधे सीधे जमीन के मालिक तो न थे, पर कर इकट्ठा कर मुगलों को देते थे और एक हिस्सा अपने पास रखते थे। किसको कितनी जमीन काश्तकारी के लिए दी जाए, इसमें उनका बड़ा दखल होता था। अंग्रेजों ने इस व्यवस्था को कहीं कहीं बनाए रखा और कहीं पर अपनी व्यवस्था लागू की जैसे रैयतवाड़ी जो सीधे अंग्रेज शासन को कर चुकाती थी। जमींदारी व्यवस्था में जमींदार कमोवेश जमीनों पर मालिकाना और खानदानी हक जताने लगे। अंग्रेजों ने उनका ये हक कबूल भी किया क्योंकि शासन करने के लिए उन्हें इंग्लैंड जैसी व्यवस्था बनाने का रास्ता सरल और सही जान पड़ता था। वहां के विधिशास्त्र में व्यक्ति का मालिकाना हक होना जरूरी था। इस विधि से अधिकांश देश में जमींदार अब जमीन के मालिक बन गए। स्वतंत्रता के समय 43 प्रतिशत भूमि जमींदारों के पास थी।¹ राजा सोच रहा था कि अभी भी भूमि जमींदारों के पास होती तो विकास हेतु बड़ी कंपनियों के लिए भूमि जुटाना आसान रहता। वो नहीं जानता था कि जमींदारों की भूमि के लिए संसद में बड़ी लड़ाई हुई थी। पटेल और आंबेडकर एक तरह से जमींदारों के पक्ष में और नेहरू विपक्ष में।

तो राजा ऊंची चोटी पर चढ़ सोच रहा था कि वह समस्त भूमि का अधिपति है। उन्माद में बोला समस्त भूमि मेरा एमिनेंट डोमेन² है। *नेसिसिट्यास पब्लिका मेजर एस्ट कुआम प्राइवटा*⁴, अर्थात् लोक की जरूरतों निजी जरूरतों से अधिक हैं। सभी निजी भूमि का भी मैं मालिक हूं। लोक की भलाई के लिए मैं निजी भूमि किसी से भी छीन सकता हूं। *सलूस पोपुली एस्ट सुपरीमा लैक्स*⁵।

लोक कल्याण की जय हो। लोक की आवश्यकता निजी आवश्यकता से अधिक है। पर मैं निजी भूमि की चार गुना कीमत चुकाऊंगा। अगर बाजार में कोई जमीन पच्चीस हजार की है तो एक लाख दूंगा। पच्चीस लाख की है तो एक करोड़ दूंगा। चोटी पर घूम घूम के चिल्ला रहा था एमिनेंट डोमेन एमिनेंट डोमेन। राजा हृष्ट पुष्ट और सुदर्शन था, डिजाइनर कपड़ों में और भी सुंदर लग रहा था। लोग अपने प्रिय राजा को बड़े ध्यान से देख रहे थे। पहाड़ के चारों ओर करोड़ों किसान मजदूर इकट्ठा थे। सूर्यास्त होने को था, राजा के श्री डी पोलिग्राफ में उसके सिर के पीछे सूर्य के आभामंडल ने उसे और देदीप्यमान बना दिया था। लोग उसे मन ही मन प्रणाम कर रहे थे। यह देख पढ़े लिखे लड़कों को याद आया कि शायद हेगल ने इसीलिए कहा था स्टेट इज द मार्च ऑफ गॉड ऑन अर्थ। इसे संभव होते प्रत्यक्ष देख समझ रहे थे। हट्टे कट्टे लड़कों का एक समूह राजा राजा कर रहा था।

राजा की माहवारी

सूर्य अस्ताचल में चले गए थे। तभी आकाशवाणी हुई।⁶ सभी किसान ध्यान से सुनने लगे। आकाशवाणी बहुत ओजस्वी थी। महीने में एक बार होती थी, अर्थात् माहवारी : मुझे गांव के लोगों और किसान लोगों ने पाती लिखी है। उन्हें गांवों के दबंगों, माफियाओं, छोटे मोटे व्यापारियों से परेशानियां हैं। गांव गंदा पानी पी रहा है, मरे पशु पड़े हैं, बीमारी फैल रही है। बेमौसम बारिश से, ओले से, देश के हर कोने में किसान परेशान हैं। छोटा किसान तो बेचारा, इतनी कड़ी मेहनत करके साल किसी तरह जिंदगी गुजारा करता है उसका तो सब तबाह हो गया है। मेरे मंत्री बारीकी से इस तबाही का अध्ययन कर रहे हैं। किसान सिर हिला रहे थे।

मुझे मालूम है, किसान परेशान है, सिंचाई की चिंता है, सड़क न होने का आक्रोश है। खाद की कीमत बढ़ रही है। बिजली नहीं मिल रही। बच्चों को पढ़ाना है, अच्छी नौकरी दिलवाना है। गांव में नशाखोरी है, तम्बाकू है। किसान ये भी कहता है कि हम मेहनत करते हैं, लोगों का तो पेट भरते हैं, लेकिन हमारी जेब नहीं भरती। हमें पूरा पैसा नहीं मिलता है। जब माल बेचने जाते हैं, तो लेने वाला नहीं होता। कम दाम में बेच देना पड़ता है। ज्यादा पैदावार करें तो भी मरते हैं, कम पैदावार करें तो भी मरते हैं। तेज गति से इन समस्याओं के समाधान के रास्ते खोजने का प्रयत्न करूंगा। किसान सिर हिला रहे थे।

अब मैं आपको ये भी बताऊंगा कि मैं आपके भले के लिए आपकी भूमि के अधिग्रहण हेतु कानून लाना चाहता हूं। पर कानून ऐसा हो जो किसान के साथ धोखा न करे। राजा सोच रहा था कि अगर किसान खेती करना ही छोड़ दें, विकास के लिए अपनी भूमि दे दें, उनको लाखों रुपया मिल जाए, एक बच्चे को नौकरी भी मिल जाए, भूमि पर कल कारखाने लगे तो नौकरी ही नौकरी, किसानों की परेशानियों से मुक्ति। आकाशवाणी जारी थी: भूमि अधिग्रहण कानून 120 साल पहले आया और तब से न बदला। एक नया कानून 2013 में आनन फानन में आया पर उसमें किसानों के साथ धोखा हुआ। हमने मुआवजा चार गुना किया है। चाहे जमीन किसी भी कानून के तहत लें, मुआवजा चार गुना ही होगा। शहर बनाने के लिए ली गई भूमि में विकसित भूमि का 20 प्रतिशत मालिकाना हक भी मिलेगा। परिवार के एक युवक को नौकरी मिलेगी, जिसकी जिम्मेदारी जिला के एक अधिकारी की होगी। अब सोशल इंपैक्ट असेसमेंट न होगा, न सालों साल किसान सोचेगा कि निर्णय कब आएगा, अपनी फसल उगाए या न उगाए। हम जो कानून में सुधार कर रहे हैं कमियां दूर कर रहे हैं, किसान की भलाई के लिए ही उसकी जमीन ले रहे हैं। जो विरोध करते हैं वे गरीब किसान को गरीब रखने का षड्यंत्र कर रहे हैं। अब गांव के किसानों के बेटों

को नौकरी चाहिए। चाहिए कि नहीं चाहिए? सारे किसान बोले, चाहिए, चाहिए, जरूर चाहिए।

2013 के कानून में भी सरकार ने जिन योजनाओं के लिए जमीन मांगी है, उसमें सहमति का कानून नहीं है। मैं आज भी कहता हूँ कि निजी उद्योग के लिए, कारपोरेट के लिए, प्राइवेट कारखानों के लिए ये 'सहमति' का कानून चालू है, है...है।

अगर हम कोई रोड बनाते हैं और रोड के बगल में सरकार इंडस्ट्रियल बरामदा बनाती है, प्राइवेट नहीं। मैं एक बार फिर कहता हूँ प्राइवेट नहीं, पूंजीपति नहीं, धन्ना सेठ नहीं, सरकार बनाती है, ताकि जब बरामदा बनता है पचास किलोमीटर लम्बा, 100 किलोमीटर लम्बा तो जो रोड बनेगी, रोड के एक किलोमीटर बाएं, एक किलोमीटर दाएं, नजदीक में जो गांव आएंगे 50 गांव, 100 गांव, 200 गांव उनको वहां कोई न कोई रोजी रोटी का अवसर मिल जाए, उनके बच्चों को रोजगार मिल जाए। किसान सिर हिला रहे थे।

सब झूठ बोलते हैं, भ्रमित न हों। हम किसान को ताकतवर बनाएंगे। हमारा किसान जो मेहनत करता है, उसको सही पैसे मिलें, अच्छा बाजार मिले, जो पैदा करता है, उसको सही पैसे मिलें, रखरखाव के लिए अच्छा स्टोरेज मिले।

राजा सोच रहा था कि सबसे बेहतर तरीका एबीसीडी कंपनियों के करार करने का है। जो न केवल बाजार बल्कि स्टोरेज आदि की समस्या से निजात दिला सकती हैं। ये कंपनियां हैं आर्चर डेनियल मिडलैंड, बुंगे, कारगिल और ड्रेफस। ये कंपनियां अगर उचित वातावरण मिले तो उत्पादन का काम भी कर सकती हैं या करवा सकती हैं। काश, इस समय बड़े जमींदार होते तो काम आसान हो जाता। इन छोटे छोटे किसानों की बड़ी बड़ी समस्याएं हैं।

आकाशवाणी आगे बढ़ी : किसान की भलाई, गांव की भलाई। मैं सरकार को हिलाऊंगा। आपकी फसल का भी अच्छा दाम और भूमि का भी अच्छा दाम दिलाऊंगा। न्याय करूंगा। किसान सिर हिला रहे थे।

आकाशवाणी समाप्त हुई। राजा ने सुनी, स्वतः फिर फिर सुनी। जुझारू किसानों ने बहुत ध्यान से मन की बात सुनी। कुछ देर सन्नाटा रहा, और एकाएक राजा राजा की स्वरलहरी ने पूरे क्षेत्र को गुंजायमान कर दिया और राजा प्रसन्न था कि आकाशवाणी ने उसके विरोधियों के झूठ को झुठला दिया था और अपने सच को स्थापित कर दिया था। राजा सातवें आसमान पर था, बादलों के बीच। उसका मनमयूर नाचने को उद्धत था। तभी बेताल उसके कंधों पर आ बैठा।

बेताल बोला, मैंने भी ओजस्वी आकाशवाणी सुनी। किसानों के लिए इतना दर्द, इतनी सहानुभूति! हे राजन् किसानों की परेशानियों की तेरी इतनी गहरी समझ, इतनी संवेदनाओं से मैं अभिभूत हूँ। पर सच और झूठ साथ साथ रहते हैं राजन्। बहुत समय से, महाभारत के काल से।

बेताल बोला, सच तो यह है कि तेरी संवेदनाओं के रहते हुए भी किसान सूखकर ठठरी हो रहे हैं। उनकी आंख का पानी भी सूख गया है। आत्महत्या कर रहे या भीमाकार नीतियां उनकी हत्या कर रहीं। राजन् उनको उनकी मेहनत का पूरा दाम क्यों नहीं मिलता? हमारी भारतमाता अपने भूमिपुत्रों को लेकर वैसे ही आहत होती है जैसे धृतराष्ट्र, दुःशासन के वध से हुए हैं।⁷

कल्पित कर सकता नहीं।

कैसे दुःशासन की आहत छाती से

रक्त उबल रहा होगा

कैसे क्रूर भीम ने अंजुली में

धार उसे

ओठ तर किये होंगे।

आकाशवाणी भूल गई थी कैसे सूदखोर मानुस, न्यूनतम समर्थन मूल्य⁸ या राजा का बैंक लील जाता है—कर्ज में डूबे किसान को।

टूटी जांघों, टूटी कोहनी, टूटी गर्दन वाले
दुर्योधन के माथे पर रखकर पांव
पूरा बोझ डाले हुए भीम ने
बाहें फैलाकर पशुवत् घोर नाद किया
कैसे दुर्योधन की दोनों कनपटियों पर
दो दो नसें सहसा फूलीं और फूट गईं
(पता नहीं भूख से या कर्ज के बोझ से)
कैसे होंठ खिंच आए। टूटी हुई जंघा में एक बार हरकत हुई
आंखें खोल दुर्योधन ने देखा,
अपनी प्रजाओं को।
(या अपने भूखे परिवार को)

थोड़ी देर के लिए बेताल भी सन्न रह गया था। इस कल्पना मात्र ने कि एक सूखे, असमय वृद्ध, कृशकाय कृषक की नसें फूलीं और फूट गईं। कोई भीमकाय सूदखोर या सरकार ने...। शायद राजा भी सिहर गया था, शायद नहीं, या कि जैसे महाभारत जीतने के बाद युधिष्ठिर स्थितप्रज्ञ हो गए थे, शायद नहीं।

पर हे राजन् तूने ये सब जाना समझा है, अब किसानों को किसी बात की चिंता न रहेगी। उनकी दुःशासन या दुर्योधन जैसी हालत न होगी। न तो उन्होंने दुःशासन की तरह सरकार का चीरहरण किया, न दुर्योधन की तरह भूमि देने से इनकार। तू तो सरकार को हिला देगा। तू उनकी भूमि का दाम, परिवार को नौकरी, लोगों को काम दिलवा रहा है। किसानों की पीड़ा से मुक्ति दे रहा है। तेरी प्रजा बहुत प्रसन्न लगती है राजन्। विरोधियों के झूठ तो अनंत हैं। प्रजा को तुझमें अटूट आस्था है। तेरे भूमि अर्जन करने से पहले, चल मैं तुझे भूमि अधिग्रहण के कानून की कहानी सुनाता हूँ, बीच में बोला, तो तेरे सिर के टुकड़े टुकड़े हो जाएंगे। चल।

राजा चलने को हुआ, तभी काले बादल छाए, बिजली कड़की, तेज हवाएं चलीं और पुनः आकाशवाणी हुई।¹⁰

युधिष्ठिर की घोषणा

कि 'अश्वत्थामा मारा गया' शस्त्र रख दिए थे
गुरु द्रोण ने रणभूमि में
उनको थी अटल आस्था
युधिष्ठिर की वाणी में
पाकर निहत्था उन्हें
पापी धृष्टद्युम्न ने
अस्त्रों से खंड खंड कर डाला
भूल नहीं पाता हूँ
मेरे पिता थे अपराजेय
अर्धसत्य से ही
युधिष्ठिर ने उनका
वध कर डाला।

...धर्मराज होकर वे बोले
'नर या कुंजर'

अश्वत्थामा हतो हतः नरो वा (जोर से), कुंजरोवा (धीरे से)।

(ये भूमि अधिग्रहण कानून किसानों से (जोर से) कारपोरेट को (धीरे से))।

आकाशवाणी सुन राजा के पैर डगमगाए। वो लड़खड़ाया। बेताल मुस्कराया और बोला डगमगा क्यों रहा है, राजन्, तुझे तो प्रसन्न होना चाहिए, तेरी तुलना तो सत्यवादी युधिष्ठिर से की है, लोगों की तुझमें अटल आस्था है। अपने मार्ग पर अडिग रह। अश्वत्थामा जैसे नराधम को तो मरना ही है। वह नर भी है और कुंजर भी। किसानों के लिए कुछ करो तो मुसीबत, न करो तो मुसीबत। विकास के दर्शन में डैवलपमेंट में कृषि का महत्व कम होना ही है और कृषक का भी। चल विश्वास से आगे चले। तू कहता है ये भूमि, नहीं पृथ्वी तेरा एमिनेंट डोमेन है, कि तू सोवरेन है, अधिराजा है, संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न। क्या ऐसा ही है राजन्? बेताल की माया ऐसी, कि उसने सभी किसानों को मूर्त कर दिया। अंग्रेजी में कहें, तो वहीं फ्रीज कर दिया।

आगे दूर कहीं धुआं था। सुगन्धित, घना धुआं। राजा खिंचता सा चला गया। वहां काली कमली में धूनी रमाए हाथ में बड़ा चिमटा लिए अवधूत बैठा था।

देसी सोवरेन, अंग्रेजी सोवरेन एंड कंपनीज

अलख निरंजन, सोवरेन राजा का अभिनंदन, अवधूत बोला। चम्मल में लोबान डाल धुआं किया। हमारे संविधान में भी, हे राजन्! सोवरेन, संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न को लेकर बहुत धुंआ धुआं है। संविधान का प्रारम्भ होता है—'हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा समस्त नागरिकों को...अवसर की समता प्राप्त करने के लिए...संविधान को अंगीकृत...करते हैं। तब 'संपूर्ण प्रभुत्वसंपन्न' में प्रभुता राज की होती है या लोगों की? अगर राज की प्रभुता लोगों पर होती है, तो क्या राज का लोगों पर असीमित अधिकार होता है? या फिर कहने भर को लोग प्रभुत्वशाली हैं, जैसे जय किसान, जय किसान! व्यवहार में नहीं। क्या लोगों को हक नहीं, कि वे अपनी जमीन सरकार को देने से मना कर दें? कहीं राज, प्रभुता का दामन थाम, असीम सत्ता अख्तियार तो नहीं कर लेता है? नहीं नहीं तेरे रहते ऐसा तो नहीं होगा राजन्। राजा का अंतरमन सोच रहा था कि ये अवधूत तो भिगो भिगो कर मारता है।

अवधूत बोला, पर न्यायपालिका तो शायद जमीन पर राज का सोवरेन अधिकार मानती है। यही समझती है। 2004 में सर्वोच्च न्यायालय ने नागालैंड में जमीन के स्वामित्व और पानी के स्रोत के उपयोग के झगड़े पर एक फैसला 2004 में दिया। कहा, हम नागाओं के अपने कस्टमरी कानून को मान्यता देते हैं, पर स्वामित्व का विवाद तो बेकार है क्योंकि राज ही सोवरेन है।¹¹ तो देसी सोवरेन का रास्ता क्लीअर, अलख निरंजन!

प्रश्न फिर भी अपनी जगह है। स्वाधीन देश में सोवरेन किसके लिए है? राज के लिए या लोक के लिए? अगर लोक के लिए है, तो निश्चित उनके लिए तो नहीं जिनकी जिंदगी छिनी जा रही है। संपत्ति के अधिकार का कानून बहुत विवाद का विषय रहा और आज भी है। सोवरेन डोमेन का इतिहास बहुत पुराना है। आज इतिहास दोहरा रहा है राजन्। अवधूत ने चम्मल में लोबान डाल बहुत सा धुआं किया और बोला, देख बारीकी से, जो करीब दो सौ साल पहले हुआ, वो फिर हो रहा है। पहले पर्दे के बाहर था, अब पर्दे के अंदर। देख।

सन् 1824 बंगाल में अंग्रेज अपनी जड़ें 50 से अधिक सालों से जमा चुके थे, तब बंगाल कोड का रेगुलेशन वन पास किया। इस रेगुलेशन से रोड, कैनाल और अन्य (लोकहित पब्लिक

पर्पज) हेतु राज उचित कीमत चुका भूमि अधिग्रहीत कर सकता था। इसी कानून का इस्तेमाल कर अंग्रेजों ने नमक उत्पादन के लिए भूमि पर भी कब्जा कर लिया। नमक बहुत महंगा और जनता से दूर हो गया। जिसके चलते 1930 के दांडी नमक सत्याग्रह से महात्मा ने अंग्रेजों की चूल्हे हिला दी थीं। वो महात्मा था, आज समय ने उसे स्वच्छता का झंडा (झाड़ू) बरदार बना दिया है। राजा मुस्कराया। मन ही मन कह रहा था अभी देख आगे क्या बनाता हूँ।

सड़क, नहर के साथ रेलवे को भी लोकहित में जोड़ा गया। तब रेल निजी कंपनियों के हाथों में थी। अंग्रेजों ने नया कानून बनाया, तो आज जो हो रहा है, उसका सही नामकरण उसमें मिलता है—‘द लैंड एक्विजिशन ऐक्ट ऑफ 1870 : ऐन ऐक्ट फॉर द एक्विजिशन ऑफ लैंड फॉर पब्लिक पर्पज एंड फॉर कंपनीज’। तब कानून का हिंदी तर्जुमा नहीं होता था। साफ था कि कानून सरकारी और प्राइवेट दोनों के लिए बना था। अंग्रेज विदेशी शासक थे, नंगे हो सकते थे। देसी राज्य को तो डिजाइनर कपड़ों में छुपे रहना है और कानून को भी डिजाइनर पर्दे में रखना है। एक ऐसा अंजन (काजल) बनाना था जिससे दिखे पारदर्शी पर्दा। पारदर्शी पर्दा, ऐसा कि जो राजा चाहे दिखाई दे, जो न चाहे न दिखे। फिर भी डंका बजा सके पारदर्शी गवर्नेंस का। अलख निरंजन। अलख निरंजन। लगा ले अंजन, सब दुःख भंजन सब दुःख भजन। अलख निरंजन। अवधूत ने चम्मल में लोबान डाल बहुत धुआं किया और गायब हो गया।

144 खम्भे का लोकतंत्र

राजा सोच रहा था कि, वो क्या करे? उसे तो कानून से चलना है। सोवरेन बने रहना है। बेताल ने कहा चल पार्लियामेंट में चल। राजा ने सोचा, चलो वहां तो अपना राज है, बेताल क्या उखाड़ लेगा? बेताल की माया, क्षण भर में संसद पहुंच गया। पर वहां भी राजा की न चली। दिन था 2 मई, 1947। यह समय राजा की पकड़ से बाहर था। मूल अधिकारों के लिए बनी कमेटी की मीटिंग चल रही थी। क्या, यहां तो सरदार पटेल थे। राजा की बांछें खिल गईं।

मूल अधिकारों की अंतरिम रपट पर चर्चा हो रही थी। अनुच्छेद 19 में प्रावधान था कि कोई भी संपत्ति लोकहित के लिए ली जानी है, तो कानून बिना मुआवजे के नहीं ली जाएगी। स्मरण रहे, ये वह समय था जब जमींदारों का बोलबाला था और उनके उन्मूलन के लिए राज्यों में कानून बन रहे थे, मुआवजा तय हो रहा था। ऐसे समय में संपत्ति के अधिकारों पर चर्चा जमींदारी उन्मूलन की छाया में हो रही थी। कहा जाता है, कि इस छाया ने अनुच्छेद 19 को एकतरफा सोच वाला बना दिया था।

सरदार पटेल ने अनुच्छेद 19 की प्रस्तावना में कहा कि आशा है कि इस प्रावधान में कोई संशोधन न होगा।¹² जमींदारों के हिमायतियों और विरोधियों में जमकर बहस मुबाहिसे हो रहे थे। राजा जगन्नाथ बख्श सिंह बोले :

राजा जगन्नाथ सिंह : मुआवजे के पहले न्यायोचित (जस्ट) शब्द लगाना उचित होगा। अमरीका, आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, डेनमार्क, बुल्गेरिया आदि देशों में न्यायोचित मुआवजे का प्रावधान है।

सरदार पटेल और कई अन्य सहमति में सिर हिला रहे थे।

एस. नागप्पा : मुआवजा अगर जमींदार को दिया जा रहा है, तो जो वो मांगे, या बाजार दर पर नहीं दिया जाना चाहिए। बस इतना भर मिले कि उसकी एक दो पुश्त खा पी सकें। कांग्रेस ने अपने मेनिफेस्टो में इतना ही प्रोमिस किया है। अगर किसी गरीब की संपत्ति ली जा रही है, तो मुआवजा न केवल बाजार दर पर हो, पर उससे कहीं ज्यादा हो।

राजा मन ही मन सोच रहा था, भाड़ में जाएं ऐसे कांग्रेसी, क्यों जमींदारों से जमीन ले रहे

हैं, ले रहे हों, तो मुआवजे में कंजूसी क्यों? वो तो चार गुना दे रहा है। नागप्पा बोल रहे थे :

एस. नागप्पा : सरकार जमींदारों की जो संपत्ति मद्रास में ले रही है, उससे सामूहिक खेती को बढ़ाएं और काश्तकार को काम का पूरा दाम मिले। इसी तरह उद्योगों का भी राष्ट्रीयकरण होना चाहिए।

राजा तिलमिलाया, सोचा ये कम्यूनिस्ट उस समय भी कांग्रेस में थे। मुझे विश्वास है सरदार पटेल इसकी न चलने देंगे। राजा ने फिर गाली दी। अगर अंग्रेज न आते तो, उद्योग ही न लगते। अभी भैंसागाड़ी की चरमरर चरमरर, चूं चरमरर चूं चरमरर...का युग होता। ये उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करना चाहते हैं। लोग इतनी मेहनत से उद्योग लगाते हैं।

बहस आगे चली।

अजीत प्रसाद जैन : उत्तर प्रदेश में जमींदार अपनी जमीन का बाजार दर पर मुआवजा मांग रहे हैं। इनमें वो जमींदार भी हैं जिन्होंने 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में लोगों से दगा कर अंग्रेजों का साथ दिया था और जमींदारी हासिल की थी। अगर बाजार दर पर मुआवजा दिया गया तो सरकार का खजाना खाली हो जाएगा। हमें इस पर पुनर्विचार करना चाहिए।

विश्वंभर दयाल त्रिपाठी ने भी उचित मुआवजे वाले प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा कि ये जमींदार 90 साल से लगान वसूल कर रहे हैं और किसी मुआवजे के अधिकारी नहीं है। आर. के. सिधवा तो इस कानून के ही खिलाफ थे और बोले कि जब राज्य सरकारें जमींदारी उन्मूलन कर रही हैं बिना या थोड़े मुआवजे के साथ, तब ऐसा कानून केंद्र में लाया जा रहा है। सरदार पटेल को ये मसौदा वापस लेना चाहिए।

राजा फिर बुदबुदाया। इसके कहने से मान लेंगे कि ऐसे जमींदार भी थे। अरे, पहले इन्व्वायरी बिठाओ। जैसे हमने दूल्हे राजा के लिए बिठाई है। सिद्ध करो।

सिधवा के बाद अनेक लोगों ने राय रखी। अंत में पटेल बोले।

सरदार पटेल : ये कानून बनने तक जमींदारी उन्मूलन हो चुका होगा। ये कानून उनके लिए नहीं है। इसलिए इस विवाद में जाना कि जमींदार देशभक्त थे या नहीं जरूरी नहीं। भूमि को सरकार कई लोकहित कार्यों के लिए लेगी, जिसका मुआवजा देना चाहिए। ये मुआवजा न्यायोचित (जस्ट) या काफी है या नहीं ये विवाद का विषय नहीं।

राजा सोच रहा था, पटेल ने कैसे कानून पास कराया। जमींदारों के मुआवजे का सवाल अधर में ही छोड़ दिया। बात भी बन गई। कम्यूनिस्ट पस्त हो गए। और मुआवजा जितना चाहें दें, न दें। वाह, सरदार वाह।

अंतरिम रपट में स्वीकृत अनुच्छेद 19 ड्राफ्ट संविधान का हिस्सा बन गया। 10 सितम्बर 1949 को आर्टिकल 24 का संशोधित रूप जवाहरलाल नेहरू ने प्रस्तुत किया (बाद में आर्टिकल 31 के नाम से स्वीकृत संविधान में निरूपित हुआ)। इस कानून में यह व्यवस्था है कि किसी भी व्यक्ति की संपत्ति बिना कानूनी आज्ञा के नहीं ली जाएगी। वह केवल लोकहित के लिए ली जा सकती है। और ऐसी संपत्ति बिना किसी मुआवजे के नहीं ली जाएगी। और कानून ये मुआवजा निश्चित करेगा, या ऐसे सिद्धांत बनाएगा।

पार्लियामेंट में नेहरू को बड़े ध्यान से सुना जाता था। उनके विरोधी थे, वे भी उनकी बातों और बात रखने की कला के कायल थे। वे बोलते थे तो एक सनसनी सी फैल जाती थी। लोग मंत्रमुग्ध हो जाते थे। कानून विश्व इतिहास और राजनीति सभी अचिरल बहते आते थे।

जवाहरलाल नेहरू ने अनुच्छेद 24 (बाद में 31) का प्रारूप¹³ प्रस्तुत करते हुए कहा :

नेहरू : इस मुद्दे पर बहुत बहस हुई है पार्लियामेंट में और बाहर भी। इसमें दो सीधी

रिवायतें हैं। पहला, संपत्ति पर व्यक्ति का अधिकार और दूसरा सामुदायिक अधिकार।

इनमें थोड़ा बहुत ही फर्क है और हमने इस कानून में दोनों को साधने की कोशिश की है। अगर संपत्ति की जरूरत जन को है, तो राज का काम है कि उसे हासिल करे, अगर जोर जबर से भी लेना पड़े तो ले, मुआवजा देकर ले। अब हम सोशल रिफॉर्म और सोशल इंजीनियरिंग की बड़ी स्कीम लागू करना चाहते हैं, अगर ये लागू न हों तो करोड़ों लोग इससे प्रभावित होंगे, राज्य की नींव हिल जाएगी। अगर कोई संपत्ति ली जानी है तो व्यक्ति को माकूल (फेयर) और न्यायोचित (इक्विटेबिल) मुआवजा मिलना चाहिए। पर निष्पक्षता या बराबरी, इंसाफ (इक्विटी) की बात करें तो, बराबरी की अवधारणा व्यक्ति पर ही लागू नहीं होती, समुदाय पर भी लागू होती है। किसी समुदाय को भी किसी व्यक्ति के अधिकारों पर नजर नहीं डालनी चाहिए, जब तक कि जिंदगी मौत का सवाल न हो।

पर इनके बीच में संतुलन कैसे बनाया जाए? कुछ तो कानून अपना काम करेगा, पर असल काम तो सोवरेन पार्लियामेंट का है। उसे तमाम पक्षों, यथा जनता, राजनैतिक तबकों और सामाजिक समूहों को साथ लेकर चलना है। इस अनुच्छेद में कई विचारों का समझौता दिखाई देगा (ये वक्त और मौके की बात है) मुआवजा किसको कितना मिलना चाहिए, ये तय करना या उसके सिद्धांत तय करने का काम पार्लियामेंट का है। और कई कानून जानने वाले कहते हैं कि जैसा इस अनुच्छेद में कहा गया है, वैसे में कोर्ट कचहरी न होगा। बस एक सूरत में लोग कचहरी जा सकते हैं, जब कानून का बहुत बेजा इस्तेमाल हो, जहां संविधान के साथ ही फ्रॉड किया गया हो। पर ये तो माना ही जा सकता है कि कानून बनाने वाले कम से कम संविधान के साथ फ्रॉड नहीं करेंगे।

संपत्ति का अर्थ समय के साथ बदलता है। कभी राजा के पास भूमि, गाय बैल, और दास भी हुआ करते थे। पहले जिसके पास गाय बैल ज्यादा हों, वो ज्यादा अमीर। फिर भूमि संपत्ति का मानक बनी। आगे आने वाले समय में भूमि और महत्वपूर्ण हो जाएगी। पर औद्योगिक देशों में जिसके पास जितना मोटा कागजों का बंडल होगा, वो ज्यादा अमीर होता है। इस बंडल में करोड़ों की सिक्क्यूरिटी, प्रोमिसरी नोट होते हैं। यही संपत्ति की अवधारणा है और यही करोड़पति की। यह बात अजीब नहीं लगती कि संपत्ति कागजों में सिमट जा रही हैं। संपत्ति अब साख की बात है। जिसके पास साख है, वह संपत्ति बना सकता है और साख से वन्डर्स कर सकता है। पर जिस आदमी के पास साख नहीं, वह कुछ भी नहीं है। संपत्ति के विचार में औद्योगिक क्रांति और अन्य क्रांतियों से परिवर्तन आ रहे हैं।

(राजा सोच रहा था कि अगर 'कागजों के बंडल' के एवज में किसानों की भूमि मिल जाए तो देश कितना) प्रगति करेगा। किसानों को खेत में काम न करना पड़ेगा और डिविडेंड उनके बैंक खातों में पहुंच जाएगा।

फिर यह भी है, कि संपत्ति तो संपत्ति रहती है, पर उसके स्वामित्व में विस्तार हो रहा है। पहले आदमी का उस संपत्ति में थोड़ा हिस्सा होता है, फिर धीरे धीरे उसकी हिस्सेदारी बढ़ती रहती है, पर वह संपत्ति का पूरा मालिक कभी नहीं होता। अब संपत्तियां थोड़े हाथों में सिमट रही हैं। अभी भारत में ऐसा नहीं हुआ है, क्योंकि अभी इस दिशा में हम नहीं बढ़े हैं। अब औद्योगिक देशों में पूंजी पर एकाधिकार (मोनोपली) बढ़ रही है। तो जो पुराना सोच संपत्ति और फ्री एंटरप्राइज को लेकर था, वह तेजी से बदल रहा है। अब छोटे दुकानदार को बड़ी पूंजी रखने वाले लोग आसानी से नेस्तनाबूद कर सकते हैं। संपत्ति की नई अवधारणा में थोड़ी संपत्ति रखने वाले के लिए कोई जगह नहीं।

तो जैसे मैंने बात शुरू की हम व्यक्ति की और समुदाय की रिवायतों की बात कर रहे थे।

आज की तारीख में व्यक्ति की संपत्ति की रक्षा कैसे की जाए? उसके लिए संपत्ति शून्य हो सकती हैं क्योंकि न जाने कब कोई मोनोपली आकर उससे छीन ले। संपत्ति पर हकदारी कोई भी ताकत छीन सकती है : पूंजीवादी हो या समाजवादी!

(राजा सोच रहा था, ये नेहरू कैसे जानता था कि 70-80 साल बाद ऐसा होगा। राजा पानी पानी हो रहा था।)

ये बड़े सवाल समझना जरूरी है क्योंकि कानून के दावपेचों में कभी बातें उलझ के रह जाती हैं। आज जब हम भूमि का प्रश्न उठाते हैं, तो पाते हैं कि ये सवाल बहुत गतिशील, गतिमान, परिवर्तनशील और क्रांतिकारी हैं। ये भारत की तस्वीर बदलने वाला है। कानून और पार्लियामेंट इसको पूरी तरह अपने नियंत्रण में नहीं ले सकता। इस सवाल को पूरे विश्व में और एशिया में हो रहे परिवर्तनों के बीच समझना होगा।

इस समस्या को बहुत संकीर्ण, कानूनी और न्यायिक अवधारणाओं में नहीं समेटा जा सकता। यहां जो मेम्बरान हैं वे अधिकतर सर्वप्रथम जमीनों और जमींदारियों के मालिक हैं। इस कानून का उन पर असर पड़ना लाजिमी है। ये कानून बनाते समय उन्हें लग भी रहा होगा कि सब कुछ उनके साथ ठीक नहीं हो रहा। पर ये एक बेहतर रास्ता है और न्यायोचित रास्ता है, बनिस्पत इसके जो बाद में आने वाला है। और वो तरीका फिर कानून का न होगा। वो दूसरा ही होगा, दूसरे तरीके से निपटा लिया जाएगा। अगर पूरी दुनिया और खासकर एशिया को देखें तो समझ आ सकता है कि बड़ी एस्टेट के सवाल कैसे हल किए जाते हैं।

ये सुनकर हमारे राजा की तो रूह कांप गई। नेहरू तो माओइस्ट है। देशद्रोही है। विप्लव कराना चाहता है। मेरा राज होता तो कन्हैया¹⁴ की तरह नेहरू को भी दिखा देता। राजा की आंखें सरदार को दूढ़ रही थीं। सरदार स्थितप्रज्ञ थे। तभी नेहरू की आवाज ने राजा को झकझोर दिया।

नेहरू : राष्ट्रीय कांग्रेस जमींदारी उन्मूलन करके रहेगी और कानून को आड़े नहीं आने दिया जाएगा। दायरों में रहते हुए कोई जज या सर्वोच्च न्यायालय निर्णय का तीसरा चैम्बर नहीं बन सकते। सोवरेन पार्लियामेंट की इच्छा, सारी कम्प्यूनिटी की इच्छा है। और अंततोगत्वा जब कम्प्यूनिटी के भविष्य का सवाल हो तो कोई न्यायालय बीच में नहीं आ सकता।

पर हम न्यायालयों का भी सम्मान करते हैं। कभी भावातिरेक में अगर पार्लियामेंट गलती करे, तो उसे देखना चाहिए कि हम कुछ भी संविधान के विरुद्ध तो नहीं कर रहे।

प्रस्तुत अनुच्छेद में व्यक्ति और समुदाय, दोनों को प्रोटेक्ट किया गया है। इसमें अंतिम अथॉरिटी पार्लियामेंट की है, कोर्ट कचहरी तब होंगे जब हम कोई बड़ी गलती करेंगे।

पार्लियामेंट के मेम्बरान ने बड़े ध्यान से नेहरू की बात सुनी थी। न कोई टीका न टिप्पणी। उसके बाद बहस तीन दिन तक चली। इस अनुच्छेद पर कुछ बहस और मुबाहिसे पहले हो चुके थे, कुछ होने थे। ये बहस वाम से दक्षिण और दक्षिण से वाम के बीच घंटे की तरह झूलती थीं। और अंत में कहीं बीच में ही आकर टिकना होता था। यही संविधान की और राष्ट्र निर्माण की नियति थी। पुनःस्मरण, संपत्ति के अधिकारों पर बात करते हुए जमींदारी उन्मूलन हावी रहा था।

बहस में भाग लेते हुए दामोदर स्वरूप सेठ ने कहा कि वे नहीं मानते कि संपत्ति पर आदमी का प्राकृतिक अधिकार है। जमींदारों को उनकी संपत्ति का बाजार मूल्य पर मुआवजा देना असंभव है। और थोड़ा आधा भी नहीं जाना चाहिए अगरचे हमें समाजवादी दिशा में बढ़ाना है। रेनुका रे ने जोड़ा कि कानून में यह स्पष्ट होना चाहिए कि मुआवजे के सिद्धांत और मुआवजे की रकम को नाकाफी बताते हुए, कोर्ट कचहरी में नहीं घसीटा जाएगा। के.टी. शाह का कहना था कि पार्लियामेंट को मुआवजे का सिद्धांत गढ़ने का अख्तियार होना चाहिए और कुछ परिस्थितियां ऐसी

भी होंगी जिनमें मुआवजा दिया ही न जाए, जैसे ऐसी कृषि भूमि जिस पर दस साल से खेती न की गई हो, शहरी भूमि जिस पर पंद्रह साल से निर्माण न हुआ हो, ऐसी कृषि भूमि जो किसी के पास पच्चीस वर्ष तक लगातार रही हो, ऐसे खदान और जंगल जो बीस साल से निजी संपत्ति हों, ऐसे स्टॉक और शेयर जो किसी जोइंट स्टॉक की कंपनी के पास दस साल से हों।

राजा को जोर का झटका धीरे से लगा। वो फिर बुदबुदाया, ले भाई शाह सा'ब तो शेयर बाजार की भी पूंजी पर नजर रखते थे। अच्छा हुआ अरब सागर में डूब गया समाजवाद।

इन समाजवादियों के साथ कई लोग थे जो कोई भी मुआवजा देने के पक्ष में नहीं थे। इनसे पलट कई सदस्य सरदार पटेल के साथ खड़े थे। पटेल पार्लियामेंट में इस पर बेबाक राय नहीं रखते थे। पर उनकी बात और चाहत सबको मालूम थी। बेताल को मालूम था कि आंबेडकर ने उनके बारे में और इस तमाम परिस्थिति के बारे में राज्यसभा में जो बताया वो विचारणीय है। बेताल ने सोचा कि इसकी चर्चा सही समय पर करेगा। बहरहाल पटेल के साथ खड़े लोगों ने अपनी बात रखी। ठाकुरदास भार्गव, अहमद इब्राहिम, नजीरुद्दीन अहमद और जसपत राय कपूर का कहना था कि मुआवजे के अधिकार को जस्टिसिएबिल फेयर और इक्विटेबल बनाना चाहिए। यानि पार्लियामेंट के कानून पर अमल को कोर्ट कचहरी में चुनौती दी जा सकती हो।

जुलाई 1949 झपिटिंग कमेटी, राज्यों के प्रीमियर, और केंद्र सरकार के कतिपय मंत्री इसी मुद्दे पर बात कर रहे थे। आंबेडकर का कहना था कि ये मुद्दा कमेटी के लिए सिरदर्द बना है। उनका कहना था कि इस अनुच्छेद को हटा ही देना चाहिए। और इसे लेजिस्लेटिव लिस्ट में डाल दें और ऑस्ट्रेलियाई संविधान के सेक्शन 51 (terms) से हूबहू ले लें। 'संपत्ति का अधिग्रहण न्यायोचित शर्तों पर किसी राज्य या व्यक्ति से किया जाए जिसके संबंध में पार्लियामेंट को कानून बनाने का अधिकार दे।'

नेहरू : जमींदारी उन्मूलन में इतना नकद या बॉंड के रूप में पेमेंट करना संभव न होगा। सरकारों के पास इतने संसाधन न अभी हैं, न निकट भविष्य में हो पाएंगे।

गोविन्द बल्लभ पंत : बहुत वाद हुआ है। पर अधिकांश का मत है कि मुआवजा नकद या बॉंड के रूप में दिया जाए और ऐसा कोई भी कानून जो मुआवजे को लेकर किया जाए, उस पर कोर्ट कचहरी में सवाल न उठाया जाए।

अय्यर : ये तो राज्यों को संपूर्ण अधिकार (कार्ट ब्लांश) मिल जाएगा। इससे तो बेहतर है कि अनुच्छेद 24 को हटा ही दिया जाए।

आंबेडकर : हमारे कानून के पीछे सिद्धांतों को कोर्ट कचहरी में नहीं सुना जा सकता है। ऐसा हुआ तो गलत होगा।

पार्लियामेंट के अधिसंख्य सदस्य जमींदारों को मुआवजा देने के पक्ष में थे। नेहरू और कुछ अन्य लोग अलग थलग पड़ गए थे।

जैसे जैसे संपत्ति के आधार का अनुच्छेद 31, संविधान सभा में 26 नवम्बर 1949 को पारित हुआ था। इसमें जस्ट मुआवजा या फेयर और इक्विटेबल मुआवजा की बात नहीं थी। पर ये जुड़ गया कि मुआवजा न सिर्फ तय होगा बल्कि दिया भी जाएगा। और साथ ही ये कानून भी बना कि राज्यों ने अगर अपने तरीके से अब तक कानून बना लिया है और राष्ट्रपति की सहमति से लागू भी कर दिया है तो उस पर ये क्लॉज लागू न होगा। पं. गोविन्द बल्लभ पंत इस कानून से प्रसन्न थे क्योंकि यूनाइटेड प्रोविंसिज में यह कानून लागू हो चुका था।

हमारा राजा सोच रहा था। अब मैं भी तो यही कर रहा हूँ। फिर काहे काल का बेताल मुझ पर सवार है?

इस बहस के बीच एक आवाज एस. नागप्पा की 2 मई, 1947 की उठी थी, जिसको नजरअंदाज कर दिया था। एस. नागप्पा ने कहा था कि मुझे लगता है कि जब जमींदार से जमीन ली जाए तो उसे पूरा मुआवजा नहीं मिलना चाहिए। हमें बस इतने मुआवजे की व्यवस्था करनी चाहिए कि वो अपने परिवार का एक दो पीढ़ियों तक काम चला सके। कांग्रेस ने अपने मेनिफेस्टो में यही प्रॉमिस किया है। अगर किसी गरीब की भूमि लोकहित के लिए ली जाती है, तो उसको न सिर्फ पूरा मुआवजा मिले पर उससे थोड़ा अधिक मिले। और जमींदारों को पूरा मूल्य भी देने की जरूरत नहीं है। जमींदारों से ली गई जमीन को जो जोतता है उसके नाम जमीन की जाए।

बेताल राजा को पार्लियामेंट से बाहर ले आया। राजा हतप्रभ था। इतिहास की कुछ परतें ही इतनी देर में खुल पाई थीं। कई तो अभी भी दबी रह गई थीं। वह काफी कन्फ्यूज भी था कि इतनी बातों का क्या सार निकाले। बेताल उसे समय ही नहीं देता था, कि वह कुछ सोचे और आज के समय के लिए वो कोई तोड़ निकाल सके। बाहर आया तो बहुत धुआं धुआं था।

धुएं के उस पार, कानून की धार और आंबेडकर

ध्यान से देखा तो फिर वही अवधूत दिखाई दिया। अवधूत बोला, देखा राजन् पहले कैसी बहसें हुआ करती थीं। पर सब पर काल का साया रहता था। काल के परे कोई नहीं देख पाता था। संपत्ति के अधिकार के जो कानून बने थे, वो जमींदारी व्यवस्था को देखते हुए बने थे। जो भूमि जमींदारों के पास नहीं थी, उसके बारे में सोचा ही नहीं गया। नागप्पा जैसी आवाजें दब गईं। इस प्रकार अगर आज छोटे काश्तकार से जमीन ली जाए, तो ली भी जाए कि नहीं, कैसे, कब और कितने मुआवजे पर ली जाए, नहीं सोचा गया था। संविधान सभा में कुछ अपवादों को छोड़कर कभी भी यह नहीं कहा गया कि जमींदार नाजायज हैं। और एक कानून के तहत इन्हें खत्म कर देना चाहिए। ऐसा इसलिए हुआ कि कई सदस्य जमींदारों का प्रतिनिधित्व करते थे। कानून बनाना एक नटनी के रस्सी पर चलने के समान है। हर वर्ग के विचार और चाहतों के बीच हवा के रुख के साथ कलाबाजियां करनी पड़ती हैं। बहस इस बात पर सिमट गई कि मुआवजा न्यायोचित और समुचित होना चाहिए। कोर्ट कचहरी का दखल हो भी और नहीं भी। यही इस कानून की नियति थी।

मामला एक बार ये भी उठया गया कि भूमि अगर सरकारी कामों के लिए ली जाए तो उचित मुआवजा मिले और अगर लोकहित के लिए तो कोई मुआवजा न दिया जाए। पर ऐसा न हुआ। जीत उनकी हुई जो संपत्ति के अधिकार के लिए एक ही कानून की वकालत करते थे। वे कहते थे कि यह न्यायसंगत नहीं कि जमींदारों को न्यायोचित मुआवजा न दिया जाए, सिर्फ ये मानकर कि उन्होंने गलत तरीके से संपत्ति अर्जित की है। पटेल ने समन्वय बिठाते हुए सहमति बनवाई कि सरकार लोकहित के लिए भूमि अर्जित करे। साथ ही उन्होंने आश्वस्त किया कि जमींदारों से भूमि लेने में बरसों नहीं लगेंगे। इस प्रकार संपत्ति के अधिकार को बुनियादी अधिकार बनाया गया और मुआवजे का नियम भी साथ जोड़ दिया गया। नेहरू और अन्य को लगा कि इस कानून से भूमि सुधार हो सकेगा। पर इससे जमींदारों को फायदा हुआ और वे सीधे सर्वोच्च न्यायालय में अपने अधिकारों के लिए दस्तक देने पहुंच गए। कालांतर में पाया गया कि जमींदारों को इतना मुआवजा देना संभव न था। इस क्रम में भूमि सुधार रुक गए।

आंबेडकर इस डिवेट में बहुत कम बोले थे। पर उन्हें अंदरखाने की सब बातें मालूम थीं। उन्होंने कई वर्षों बाद राज्यसभा में खुलासा किया कि¹⁵ “संपत्ति के अधिकारों को लेकर बहुत विवाद था, विशेषकर जमींदारों के मुआवजे को लेकर। पटेल जमींदारों को पूरा मुआवजा और उस पर 15 प्रतिशत और देना चाहते थे। नेहरू कुछ भी मुआवजा देने के पक्ष में नहीं थे। गोविन्द

बल्लभ पंत अपने राज्य का कानून पास कराना चाहते थे।”

काल, त्रिकाल, भौकाल

बेताल रुक सकता था, राजा सो सकता था, प्रजा निश्चेष्ट हो सकती थी, पर समय को कौन रोक सकता था! काल को कौन थाम सकता था!! जो आया है, उसका जाना भी तय था। समय के साथ कुछ काम रुकने थे, कुछ रुके काम होने थे।

यह बीसवीं शताब्दी के मध्य का समय था, 1950। पाया गया कि जमींदारों के पास बहुत विशाल भूखंड थे, और उन्हें इतना मुआवजा देना संभव न था। भूमि सुधार रुक गए थे। किसान परेशान थे। सरदार पटेल का देहांत 1950 में हुआ। संविधान में पहला संशोधन 1951 में हुआ। नेहरू बोले :

नेहरू : अनुच्छेद 31 के संबंध में कई ऐसी मुश्किलें खड़ी हो गई हैं, जिनके बारे में सोचा नहीं गया था। राज्यों ने भूमि सुधार के जो कानून बनाए वे पिछले तीन सालों में कोर्ट कचहरी में घसीटे गए। लोकहित में लिए जा रहे काम कानूनी दांवपेचों में अटक गए हैं। इस बिल का मुख्य उद्देश्य ऐसे प्रावधान रखना है, जिससे, जमींदारी उन्मूलन को कानूनी मान्यता मिले।¹⁶

संविधान के पहले संशोधन में अनुच्छेद 31बी को डाला गया, जिसके तहत, एक शिड्यूल में स्टेट ऐक्ट्स डाले गए। इस अनुच्छेद से जमींदारी उन्मूलन को ज्यूडिशियल रिव्यू से बाहर कर दिया गया। पर सर्वोच्च न्यायालय में फिर भी विवाद उठे। संविधान के चौथे संशोधन 1955 में यह जोड़ा गया कि ऐसे किसी भी कानून को आधार नहीं बनाया जा सकता, जो कहे कि मुआवजा नाकाफी है।

तीस साल तक सर्वोच्च न्यायालय में विवाद चलते रहे। उनका पटाक्षेप जनता सरकार ने 1978 में किया। जनता सरकार आपातकाल के बाद जनता को अपनी शक्ति वापस करने के वादे पर आई थी। शांति भूषण संविधान का 44वां संशोधन पेश कर रहे थे।

शांति भूषण : हाल के अनुभवों से स्पष्ट है कि संविधान प्रदत्त बुनियादी अधिकार जिसमें जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार भी हैं, पार्लियामेंट का आता जाता बहुमत छीन सकता है। ऐसा फिर कभी न हो इसके लिए काफी सेफगार्ड की जरूरत हैं। लोगों के पास अपनी जोरदार आवाज हो जिससे वो अपने लिए उचित सरकार चुन सकें। यही इस बिल का मूल उद्देश्य है।...इस बिल से संपत्ति पर अधिकार मौलिक अधिकार न रह जाएगा और मात्र एक कानूनी अधिकार होगा। अनुच्छेद 19 में संशोधन किया जा रहा है और अनुच्छेद 31 को हटाया जा रहा है।

इस प्रकार अनुच्छेद 300A जोड़ा गया, जिसमें कहा गया कि किसी भी व्यक्ति की संपत्ति बिना किसी कानून सम्मत नियम के नहीं ली जाएगी। पर अब इस कानून से 1894 के भूमि अधिग्रहण कानून का रास्ता साफ हो गया।

अगर बहुत धुआं हो तो अवधूत ही उसे साफ कर सकता है। वह धुआं करता भी है और साफ भी। अवधूत बोला...संसद ने कभी ये नहीं कहा कि जमींदार नाजायज हैं और एक कानून के तहत उन्हें खत्म कर देना चाहिए। बहस इस बात पर हुई कि मुआवजा न्यायोचित और काफी होना चाहिए। एक बड़े समाजशास्त्री हुए हैं। वो बताते हैं, बाबू मोशाय, भारत का या भारत में लोगों के जीने का तरीका उनका अपना है। और अपनी जीवन पद्धति से ही भारत की राजनीति गढ़ती है और ऐतिहासिकता बनती है।¹⁷ पर देश के समाजशास्त्री यूरोप के सोचने के तरीकों से ही हमारे समाज की राजनीति और ऐतिहासिकता रचते हैं। समाज की दशा दिशा को यूरोपीय इतिहास से जोड़कर देखते रहते हैं। आधा उधर से लेते हैं, आधा इधर से। कन्फ्यूज हैं। अवधूत आगे बोला कि

यही सोच हमारे कानूनों में दिखाई देती है। अंग्रेजी राज को बनाए रखने के लिए, यूं कहें कि एमिनेंट डोमेन को बनाए रखने के लिए भूमि, राज्य, नागरिक, कारपोरेशन और समाज के संबंध जो सौ साल पहले थे, वही आज के जनतंत्र में हैं। क्या ये सामाजिक न्याय से प्रतिबद्ध हो सकते हैं?

अलख निरंजन, अवधूत बोला, तू भी राजन् यही सोच रहा था कि भूमि पर राजा के अलावा किसी और की सत्ता न हो। जमींदारों की भी नहीं। एक जमींदार से भूमि लेकर कारपोरेट को देना आसान होता बनिस्पत सैकड़ों छोटे छोटे किसानों के। अंग्रेज भी जमींदारों के पक्ष में इसीलिए थे। सोवरेन सत्ता किसी छोटे समाज के अपने कस्टमरी कानून को भी नहीं मानती, समाज और प्रकृति के रिश्ते को भी नहीं। यूरोपी आधुनिकता का यही तकाजा है। सर्वोच्च न्यायालय भी व्यक्ति की प्रधानता अधिक स्वीकार करता है, समाज की कम। अगर कानून बनाने वाले ये सोचते कि समाज नागरिक, राज्य और भूमि के बीच क्या अंतर्संबंध हों, तो भूमि स्वामित्व का कोई और मॉडल बनता। इस मॉडल में पहले एमिनेंट डोमेन को तिलांजलि दिया जाता। सरकार फिर कौन भूमि कैसे अर्जित करे, ये बताते। पर राज्य को ही सर्वे सर्वा बना दिया। लोक और लोक की आवाज कहीं किसी कोने में दब गई। कभी कभी हिचकियां सुनाई देती हैं। ऊं चैतन्य गोरक्ष नाथाय नमः।

1978 के संशोधन के बाद संपत्ति पर मौलिक अधिकार भी चला गया। पर लोग तो भूमि का उपयोग कर ही रहे थे। काश्त कर रहे थे। मजदूरी कर रहे थे। पशु चरा रहे थे। भूमि पर एक व्यक्ति का अधिकार (स्वामित्व) भी था और अनेक का भी। फिर कानूनी दृष्टि से मान्य अधिकारपत्र कितने लोगों के पास थे? मुआवजा तो उसे ही मिलना था, जिसके पास प्रपत्र हों। ये कितनों के पास थे? 1978 के समाजवादी दौर में भी ऐसे लोगों की चिंता न की गई। अब भूमि अधिग्रहण कानून को खुली छूट मिल गई थी। भूमि गरीब से लेकर अमीर को देने की खुली छूट थी। अब सर्वोच्च न्यायालय के पास भी नहीं जा सकते थे, क्योंकि संपत्ति का अधिकार भी नहीं था।

इस कानून ने सरकारी अफसरों को अधिकार दिए हैं कि वे जमीन का अधिग्रहण कर सकें। पहले नोटिफिकेशन फिर आपत्ति, फिर अफसर कह देते हैं (डिक्लेयर करते) हैं कि भूमि लोकहित (पब्लिक पर्पज) या कंपनी के लिए चाहिए। इस कहने (डिक्लरेशन) में शक्ति निहित है कि यही अंतिम साक्ष्य है कि भूमि लोकहित या कंपनी के लिए चाहिए और इसके बाद सरकार भूमि अधिग्रहीत कर सकती है। लोकहित का अर्थ कानून में है कि जिस किसी सरकारी या प्राइवेट प्रोजेक्ट से रोजगार सृजित होता हो, वो लोकहित है। इसे किसी न्यायालय में विवाद नहीं किया जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने तस्दीक कर दी है कि लोकहित वह हित है, जिसमें समाज के किसी छोटे से हिस्से का भी फायदा होता हो।¹⁸ इस प्रकार सेज, खानों, मॉल, फैक्टरी, डैम और बड़े प्रोजेक्ट का रास्ता निकल आया।

अब भले ही लोग जमीन न देना चाहें, तो भी बिना लोकतांत्रिक तरीके के बगैर लोगों की इच्छा के जमीन उनसे ली जा सकती है। न्यायालय में भी वाद नहीं उठाया जा सकता। कांग्रेस पार्टी में जमींदार कम से कम अपनी बात तो रख पाते थे पर नेहरू उनकी ज्यादा चलने न देते थे। पर अब छोटे किसान अपनी बात कहां और कैसे रखते?

पर लोगों ने अपनी बात रखी, और जोरदार तरीके से रखी। यही लोकतंत्र का मजा है। फायदा है। अपनी बात संसद में न रख पाए, तो सड़क पर रखी। हमारा समाज समझौते से चलता है, किसी एक की धमक से नहीं। इसमें गलतियां भी होती हैं, पर रास्ता निकल आता है।

ऊं आं क्री क्रों। अं यं रं त्रं वं शं क्रां हंकां क्षं अः।। अवधूत ने धुआं किया और गायब हो गया।

और अब 29 मौजों की लड़ाई

राजा चलते चलते बेताल को कंधे पर उठाए एक श्मशान में पहुंच गया। रात भयंकर थी। सुलगती चौदह चिताएं और चार लोग। उनकी दो बोतल शराबे खत्म हो चुकी थी। अभी और शराबे बाकी थी। कपाल क्रिया होनी बाकी थी। बहुत समय था। चौदह चिताएं भूमि उच्छेद प्रोतिरोध शोमिति के मेंबरान की थीं। चार लोगों में एक प्रतिरोधी था, एक पुलिस था, एक हरमद वाहिनी¹⁹ का सदस्य, और एक सरकार था।

अपनी भूमि को बचाने के लिए नंदीग्राम के 29 मौजों जिनमें केंदेमारी जलपाई, कंचनगर जलपाई, सोनचूरी जलपाई, बोली, बृन्दाबनपुर, बोलीपोटा, साहिबनगर, गोकुलनगर, कालीचरणपुर, दीनबंधुनगर, नीलपुर शामिल थे के बाशिंदों ने ऐसा घेरा डाला कि सरकार वहां पहुंच ही न पाए। इन मौजों की उपजाऊ, पानी से सराबोर भूमि, तालाबों की दस हजार एकड़ जमीन पर सलेम ग्रुप मैगा कैमिकल हब बनाने की योजना थी। ढाई हजार एकड़ रुईया जहाज के कारखाने और दो हजार एकड़ हल्दिया डॉक से निकली सिल्ट के लिए सरकार ले रही थी। सरकार तमाम सामदामदंडभेद लगा रही थी और दूसरी तरफ इन मौजों के किसान मजदूर थे और कई राजनैतिक पार्टियां जिन्होंने मिल कर भूमि उच्छेद प्रोतिरोध शोमिति बनाई थी।

प्रतिरोधियों ने गर चक्रबेरिया बाजार में कालीचरणपुर पंचायत आफिस तक पहुंचने वाली सड़कें खोद दी थीं, पेड़ उखाड़ डाले दिए थे। बड़े पत्थरों से ऐसी बेरिकेडिंग की थी कि पुलिस की जीप न आ पाए। ऐसे में उन्होंने इसे नाम दिया—प्रोतिरोधी सरकार। प्रोतिरोध कमेटी की 'सरकार', सरकार को मंजूर न थी। ये सरकार जिसने आपरेशन बर्गा में लाखों अधिया पर खेती करने वालों को बटाईदारी अधिकार दिलाए थे। आज उन्हीं किसान मजदूरों से भूमि छीनना चाह रही थी। उस पर विकास का भूत सवार था। जैसे, मैं तुझ पर सवार हूं राजन्। बेताल बोला।

राजा सोच रहा था ऐसा उपाय कि इस शिकजे से ऐसा निकलूं कि इसे पता ही नहीं चले; चाहे कुछ देर के लिए ही। शायद इस श्मशान में कोई रास्ता निकल आए।

तारा तारा मां के उद्घोष के साथ, नई बोतल खुल चुकी थी। दो बोतलें चढ़ चुकी थीं।

प्रतिरोधी : ये शॉरकार, दौरकार नेई। नहीं आजादी छीनती है...। जॉय नंदीग्राम, जॉय खेजेरी। अंग्रेजों भारत छोड़ो, ये सरकार, नंदीग्राम छोड़। 1942 तहभागी मूवमेंट नेशनल गवर्नमेंट ऑफ नंदीग्राम। ताम्रलिप्त जातीयो सरकार, जिंदाबाद, जिंदाबाद। 17 महीने तक अंग्रेज, उसका पिट्टू सोनचूरी जलपाई से आउट, गेट आउट। हमारी भूमि...गेट आउट, हमारा गांव, गेट आउट, हमारे मौजे से गेट आउट। यू मेक नंदीग्राम, जलियांवाला, मेरी जमीनें, नहीं दूंगा, नहीं दूंगा, नहीं, नहीं, नहीं। प्रतिरोधी की मुट्ठियां तन गई थीं। गले की नसें फूल गई थीं। उसे चढ़ गई थी। गिलास उठा के बोला, तारा तारा काली ब्रह्ममयी मां।

पुलिस : ए शाला ऐकटा बोकाचोदा प्रोतिरोधी। इनके लिए ईस्टर्न फ्रंटियर राइफिलस लाया, माओवादी मारने वाली इंडियन रिजर्व बैटेलियन लाया, बीस हजार पुलिस²⁰ लाया। प्रहरी ग्रेनेड चलाया जो एक मिनट तक धुआं देता है। प्लास्टिक के कनिस्टर जो फूटने का साथ गल जाता है, 51 एमएम के स्मोक बम जो 800 मीटर तक जाता है, अग्निवर्षा जो लगातार सात बम छोड़ सकती है, बड़ी भीड़ को हटाने के लिए सभी हथियार थे²¹। ए शाला गोली चलाया वो भागा। हमें गांव में नहीं घुसने दिया। हम शाला सब घुसा दिया।

हरमद वाहिनी : बुद्धेव कामरेड ने कहा था नंदीग्राम में जो जमीन न देना चाहे उससे नहीं ली जाएगी। या कहा कि बिना सहमति के नहीं लेंगे।

प्रतिरोधी : दूसरे दिन एम.पी. लक्ष्मण सेठ बोला कि हल्दिया विकास प्राधिकरण का नोटिस सही है। जमीन ली जाएगी। हमें लग रहा था कि 14 मार्च को पुलिस आएगा। शोमिति ने निर्णय लिया कि पूजा और कुरान के लिए सब जमा होंगे और महिला बच्चे आगे रहेंगे जिससे पुलिस कुछ न कर पाए। पर पुलिस ने बेरहमी से सबको मारा। क्या क्या न किया। बच्चों को पीटा, औरतों को लाठियों से मारा। ये हरमद भी पुलिस वर्दी में चप्पल पहन कर आया। ये शाला क्या क्या न किया। तारा तारा मां सबको सजा देगा। सिंगूर में लोगों से छीना। हम नहीं देंगा। नहीं देंगा।

हरमद बाहिनी : ये प्रतिरोधी हमें हमारे गांव से बाहर निकाले। हमने इनकी झोपड़ी तोड़ी इन्होंने हमारी में आग लगाई। हम लड़े, पुलिस के साथ लड़े। आज लगता है पता नहीं हम सही थे या गलत। प्रतिरोधी ने सब रास्ते रोक दिए। हमारी सरकार अंदर कैसे आती? ये भूमि देता, फैक्ट्री बनता, विकास होता। ये शाला भूखा बंगाली। प्रतिरोधी। (कुछ देर बड़बड़ाता रहा, फिर बोला) पर मेरा भी भूमि है, नहीं देना चाहिए। भूमि देगा, तो मैं क्या करेगा?

सरकार : ये हरमद कभी सही बोलता, कभी गलत बोलता।

तभी एक तांत्रिक श्मशान में आया। लाल कपड़े पहने था। चेहरे पर घनी दाढ़ी, माथे और चेहरे पर भभूत और उस पर लाल टीका। सरकार ने उसे प्रणाम किया। सरकार गद्गद था कि तांत्रिक आ गया था। सभी सत्तानशीं इससे बहुत सीखते थे। बहुत काम का आदमी था।

चार दिन बाद अमावस्या थी। बड़ी साधना का दिन था। इस दिन अघोरी की साधना होनी थी। अघोरी कहीं बाहर गया था, देर रात तक उसे वापस आना था। तभी तो तांत्रिक की श्मशान आने की हिम्मत हुई। आज 14 चिताएं एक साथ जलने का दिन था। अगर उसे ये 14 नरमुंड मिल जाते तो वो तांत्रिकों में श्रेष्ठ हो सकता था। तांत्रिक ने इन चार लोगों को घूरा। तभी चमत्कार हुआ। एक युवती निःवस्त्र अपनी चिता से कूदी, मानो बिजली कड़की। आजानुविलबिलत केश उसकी छाती पर छा रहे थे। अति सुंदर युवती। सरकार और पुलिस की टकटकी बंध गई थी। हवा के झोंके का इंतजार करने लगे। इधर चिताओं की लपटें आसमान छूना चाह रही थीं। उतने ही जोश के साथ, जिस जोश से प्रतिरोधियों ने अपनी लड़ाई लड़ी थी।

युवती : मैं वियतनाम की माई लार्ड हूं।²² कई दशकों से भाग रही हूं, बस भाग रही हूं। अमरीकी मरीन मेरे पीछे लगे हैं। वे आसमान से उतरे और जब वियतकांग ना मिले तो उन्होंने बूढ़ी औरतों, आदमियों और बच्चों को भून डाला। ये क्रिस्तान सभ्यता के एक सिंबल है। वे कई देशों में जाते हैं। मुझे इनसे भागना पड़ता है। अब यही मेरी नियति है। कोरिया, वियतनाम से कांगो, अफ्रीका, और सीरिया, ईराक, अफगानिस्तान और अब इंडिया।

अरे ओ मिस्टर सरकार बता तो, इन मौजों के लोगों ने क्या किया था? कोई पंचायत आफिस, कोई थाना, कोई तोपखाना, कोई सरकारी खजाना लूटा था? स्कूलों में पढ़ाई हो रही थी, कॉलेज खुले थे, लोग काम कर रहे थे। तब तेरी पुलिस और हरमद ने मुझे फिर मारा, फिर पीटा, त्रास दिया। क्यों? मौजों के लोग तो मुझे बचा रहे थे, मैं ही अन्नदात्री, मैं ही धात्री हूं, मैं ही भूमि हूं। ऐतरेय ब्राह्मण की भूमि²³ भी मैं ही हूं, राजा जिसका सौदा करना चाहता है। निषिद्ध है। अवनि हूं, अवनि कुमारी हूं। मैं ही छिन्नमस्ता हूं, मैं ही तारा...

सभी : तारा, तारा मां, तारा, तारा मां, तारा तारा काली ब्रह्मययी मां

चिताओं से उठने वाली लपटें, एकाएक मानो आसमान छूना चाह रही थीं। युवती के चारों ओर लाल तरुण लपटें थीं। तभी उसे तांत्रिक दिखाई दिया। तांत्रिक से उसकी आंख मिली। युवती बोली :

युवती : ए तांत्रिक समझ ले, वियतनाम की ये लड़की अब बरसों अग्नि में तपकर तरुणी बन चुकी है। कोई तांत्रिक न मुझे वश में कर सका है, न कभी कर पाएगा।

तांत्रिक ने सोचा इससे उलझना ठीक नहीं। ये इंडिया के तांत्रिकों की शक्ति, मंत्र शक्ति नहीं जानती। अभी इसे और गरम होने देता हूँ।

युवती : बता ये सरकार ऐसा क्यों करती है। अमरीकी तो फिर भी बाहर के थे, ये तो अपने हैं। अपने ही क्यों अपनों को मारते हैं? क्यों बातचीत से मसला नहीं सुलझाते।

तांत्रिक : ऊं हां ह्रीं क्रोम, ऊं हां ह्रीं क्रोम,।

सरकार सोचने लगा, कैसे बात बनाएं? ये नियोलिबरल जमाना है। कैसे हमें इनसे नहीं व्यवहरना है, नंदीग्राम हमें सिखाता है। सिंगूर में कुछ डरा धमका के, कुछ समझा के, कुछ लालच से 927 एकड़ टाटा के लिए ले लिए। नंदीग्राम में भी सोचा था, बहला लेंगे फुसला लेंगे। पर बात न बनी। इतने में लड़की श्मशान के गहरे अंधे कुएं की मुंडेर पर जाकर बैठ गई। प्रोतिरोधी उसे दूर से निहार रहा था। सरकार जानता था कि उसे वश में करना जरूरी है, ऐसे लोग बहुत उत्पाती होते हैं। इनको कंट्रोल में रखना जरूरी है। ये उपद्रव करा सकती है। इस इंटरनेशनल चुड़ैल को बांधना ही होगा देशी मंत्र से। सरकार ने तांत्रिक से बात की। तांत्रिक ने अघोरियों का एक मंत्र काम में लिया। तांत्रिक ने एक हाथ में फूल लिया और इसे मंत्र से बांधा :

तांत्रिक : फूल फले फूलों की डाल, वो फूल बीने लोना चमारिन,
एक फूल हंसे, एक फूल नैह्या नरसिंह के बसे,
जो कोई ले फूल की बांस, वो आए हमारे पास,
डगर कुंआ पनघट बैठी, हो उठो ला,
सोवत हो जला ला, ठाढ़े हो चला ला,
मोह के मेरे पास न लाए, ना लाए तो सच्ची मोहनी न कहाए,
दुहाई लोना चमारिन की, आन वीर मसान की।

ऐसा बोल तांत्रिक ने वो फूल कुएं की डगर पर बैठी युवती के पास फेंका। युवती ने फूल उठाया, सूंधा और थोड़ी ही देर में मोहित सी चली आई तांत्रिक के पास। तांत्रिक जाप कर रहा था :

तांत्रिक : ऊं ह्रीं श्रीं क्लीं चामुंडाय नमः। ऊं ह्रीं श्रीं क्लीं चामुंडाय नमः॥

युवती पास आई तो अघोरी बोला, आ पास आ! तू अति सुंदर है, तीक्ष्ण है। आज की भाषा में बोल्ड एंड ब्यूटिफुल है, ब्यूटी विद ब्रेन है। बैठ। मेरी साधना में हिस्सा ले। तुझे दुःखों से सदा के लिए मुक्ति मिलेगी, मेरी होकर। न चाहते हुए भी युवती बैठ गई थी। तांत्रिक ने ना ट्वीट किया, ना फेसबुक। पर वो आ गई थी। ट्वीट, ईमेल, फेसबुक, वॉट्स एप वशीकरण के नए उपाय हैं। पर श्मशान में फोर जी भी नहीं चलता।

तांत्रिक : ये प्रोतिरोधी तुझे घूर रहा था। इससे दूर रहना। बहुत बदमाश है, खून खराबा करवाता है। लड़ना तो जानता है, पर जीतना नहीं। तहबागा की लड़ाई 17 महीने चली, फिर अंग्रेज वापस। इनकी ये लड़ाई कितने दिन की। हे सुंदरी तू क्यों मारी मारी फिरती है। देख बहुत किसान स्वयं अपनी भूमि देना चाहते हैं। सेज तो बनने ही हैं। इंडिया का विकास होना ही है। बड़ी बड़ी इमारतें, फैक्ट्रियां बननी ही हैं। हल्दी नदी के पार हल्दिया देख कितनी तरक्की किए है और इस दक्षिणी छोर के मौजे कितने गरीब हैं। सेज आएंगे ही। किसानों को पैसा मिलेगा। हे सुंदरी, हे रमणी कितना अच्छा नाम है सेज। ए माई लाई, मैं तुझे नया नाम देता हूँ—मालती। चल, सेज की दुनिया लुभावनी है। सेज लुभावनी है।

क्लीं क्लीं क्लीं श्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं त्रिपुरसुंदरी सर्वजगन्मम वशं कुरु कुरु महां बलं देवी स्वाहा।

युवती : मैं माई लाई, नहीं मालती। नहीं माई मालती।

मालती पर मोहिनी का जादू चलने लगा था। प्रोतिरोधी अपनी जीत के नशे में था। उसे

लग रहा था कि विरोधी चित्त हो चुके हैं। कुछ महीने और लड़ाई चलेगी फिर सब शांत²⁴। उसे लगा कि ये युवती उसकी तरफ है। पर नशे में उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। उसे पता ही नहीं चला ये तांत्रिक क्या कर रहा है। उल्टे वो भी उसके पास पहुंचा और बैठ गया। तांत्रिक ने उसे दूसरा ही पाठ दिया।

तांत्रिक : अरे तू बहुत लड़ा, अच्छा किया पर तुझ जैसे नौजवान को आगे देखना चाहिए। सेज आएगा, बड़ी बड़ी कंपनियां आएंगी, बड़ी बड़ी नौकरी, हरेक की जेब भरी फूली होगी। बर्गर, पिट्टा खाएगा माछेर झोल भात की जगह। सब आनंद रहेगा। ऊं ह्रीं श्रीं क्लींनमः, ऊं ह्रीं श्रीं क्लींनमः :

सरकार ने तांत्रिक को ब्लैक लेबिल की बोटल दी। सब पी रहे थे। मालती को भी पिलाई। सब मगन थे। किसी को पता भी न चला कि बोटल कब खत्म हो गई। बस तांत्रिक नशे में होते हुए भी होश में था। उसने मालती और प्रोतिरोधी को खाली बोटल में बंद किया। सरकार से मुद्रा ली, और चलता बना। वो सुलगती चौदह चिताओं की लपटों से घिरा, फिर बाल बाल बचा था।

भले ही बेताल राजा के कंधे पर सवार था पर उसका काम तो तांत्रिक कर रहा था। बेताल को एक पल लगा कि कहीं राजा तांत्रिक की काया में तो नहीं। बेताल ने राजा को चुटकी काटी, कोई हरकत न हुई। थोड़ी देर में फिर काटी तो राजा में हरकत हुई। तो क्या कुछ पल के लिए ही कहीं वो तांत्रिक की काया में था? बेताल कन्फ्यूज हो गया। बेताल असमंजस में! तो क्या तांत्रिक ने बेताल को बस में कर लिया था? (तो क्या अब राजा बेताल को संचालित करेगा?)²⁵

कालांतर में प्रतिरोधियों की जमीन की लड़ाइयां जारी रहीं, कुछ जीतों कुछ हारों। एनटीपीसी के खिलाफ छोटे छोटे संघर्ष चले।²⁶ अधिकतर मुआवजे बढ़ाने के थे, जमीन बचाने के लिए कम थे। सरकारें सीख रही थीं वशीकरण के मंत्र। सरकार और पुलिस भी श्मशान से सरक लिए। उन शवों की कपालक्रिया न हुई।

नए तंत्र, मंत्र, यंत्र और इस सदी के नियोलिबरल तांत्रिक

नए आंध्र प्रदेश की नई सरकार ने नया तंत्र अपनाया। नए आन्ध्र की राजधानी होगी अमरावती। तीन गांवों को उजाड़कर बनने जा रहा है चमकदार नया शहर। उदानदरायूनिपलम, लिंगयापलम, थलयापलम गांव में इरुवक त्रौहार अब कभी न होगा। न बैलों को, न ही हलों को सजाया जाएगा। न ही नौ प्रकार के बीज बोकर नवधान्य मनाया जाएगा। न केले हैं, न गन्ने के खेत, न फूल, न सब्जी, न हलवाहे। कुछ 29 गांव के 33,000 एकड़ के किसान अब सरकार के पार्टनर हैं लैंड पूलिंग प्रोजेक्ट में। इनकी एवज में हर किसान को हजार गज का एक प्लॉट रहने के लिए और 250 या 400 गज (एक फसली या दो फसली) कमर्शियल प्लॉट दिए जाएंगे, जहां किसान व्यापार करेंगे। अगले दस सालों तक चालीस हजार रुपया सालाना मिलेगा। तीन गांवों के किसान दो मंजिले फ्लैट में रहते हैं, कार रखते हैं और उनकी सुविधा के लिए शराब की दुकानें भी खुल गई हैं। किसान राजी सरकार राजी, अब क्या करेगा काजी, दबाए बगल में कानून पाजी।

आंध्र प्रदेश के अलावा दिल्ली मुम्बई के औद्योगिक बरामदे में 10 लाख एकड़ जिस पर कम से कम 10 लाख किसान बसते होंगे—किसान मजदूर मिलाके एक करोड़ लोग जल्द विस्थापित होंगे। कई फैक्ट्रियों के पास हजार एकड़ भूमि है, जिस पर दो या दो हजार करोड़ के प्रोजेक्ट हैं पर कुछ सौ रोजगार देते हैं। पर अब विस्थापित किसान भी बहुत हल्ला करने लगे हैं। बेताल बोला, अब हे राजन् अगर तू अश्रमधे यज्ञ कर राष्ट्र के बाहर भूमि जीत ले, तो विस्थापित किसानों को वहां भेजा जा सकता है। एक समय इंग्लैंड ने अपने किसानों को अमरीका, आस्ट्रेलिया और अन्य कालोनियों में बसाया। तू तो विश्व में छा रहा है, हथियार देश में बना रहा है। इन किसानों के

लिए अन्य देश में आक्रमण कर भूमि जीत, और किसानों को वहां बसाकर उद्धार कर। राजा ने मन ही मन सोचा ये तो राष्ट्र का सर्वनाश कराएगा। उसने नई नई गाली सीखी थी, जो उसने बेताल को दी। ऐ शाला एकटा बोकाचोदा...

आगे चलने से पहले राजा ने मुड़कर श्मशान को देखा। चौदह चिताओं के बीच एक अघोरी खड़ा था। कपालक्रिया न हुई थी। तो क्या ये अघोरी मेरा कुछ बिगाड़ सकता है। राजा को चिंता हुई। फिर राजा धीरे से मुस्कराया, उसने प्रोतिरोधी और माई लाई उर्फ मालती को पोटा में बंद करवा लिया था। बेताल ने राजा को चलने को कहा। अब आगे चल। चल दिल्ली चल। दिल्ली में किसानों के उग्र होने से भयभीत और विस्थापितों के प्रदर्शनों से परेशान सरकार 2013 में एक कानून पास कराने का जतन कर रही थी। श्मशान से राजा बेताल को कंधे पर उठाए पार्लियामेंट की ओर चला। अब बोलो तो, श्मशान से निकलने के बाद लोग स्नान करते हैं। पार्लियामेंट भी तो बहुतें के अरमानों का श्मशान है और कुछ के अरमानों को परवाज चढ़ाता है। रास्ते में बेताल बोला...

बेताल : भारत देशवासी भारत भूमि पर गर्व करते हैं। वे इसकी वंदना करते हैं, शश्य श्यामल भूमि, ऋषि मुनियों की पावन वनस्थली, लहलहाते खेत, अमृत समान गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा और सुजलां सुफलां मलयज शीतलां का आनंद लेते हैं। किसान अपनी भूमि पर नाना प्रकार के अन्न, फल, सब्जी उगाते गुनगुनाता है। मेरे देश की धरती सोना उगले, उगले हीरे मोती, सुन के रटंत की आवाजें, यूं लगे कहीं शहनाई बजे। पर जब उसकी पावन भूमि का अर्जन होता होगा, वो क्या सोचता होगा राजन्?

स्वर्ग में बैठे वेद रचयिता ऋषिगण क्या सोचते होंगे जब उनके जंगल काटे जाएं और भूमि को चीर पाताल से कोयला निकाला जाए? समय बदल गया है। राजन्। अब पावन भूमि पर आच्छादित वनस्पतियों की जगह चिमनियां, अमृत समान औषधियों के स्थान पर विष वमन करते रसायन उद्योग, उर्वर खेतों में चमकते मॉल, और ऊंची अट्टालिकाएं हैं। समुद्र किनारे जहाजों के बेड़ों के मालिकों पर ऋषि मुनियों को स्वर्ग से पुष्पवर्षा करते सुना नहीं। पर जो राजा इसे संभव बनाए उस पर आज के भगवान गौरांग प्रभु अवश्य फूलों की बरसात करते हैं। अगर ये चिमनियां गौरांग पूंजी की हों, तो फूल भी वहीं से आते हैं। देसी मालनों से नहीं।

राजा को उस पर बरसे फूल अब शूल की तरह चुभने लगे थे। दिन में 18 घंटे देश के लिए काम करने वाले नियोलिबरल राजा को कई गुत्थियों को सुलझाना पड़ता है : एक ओर पूंजी बढ़ाने के लिए भूमि की मांग है और दूसरी ओर किसान की ओर से भूमि की 'बेलोचदार' पूर्ति। अर्थात् दाम बढ़ाने पर भी भूमि की पूर्ति में विशेष बदलाव नहीं होता। कोई देशी विदेशी सेठ गांव में पूंजी का बड़ा थैला लिए पहुंचे तो भी बमुश्किल कोई किसान मिलेगा जो अपनी भूमि बेचे। सेठ पूरा थैला भी खाली करे तो भी मनमाफिक भूमि नहीं मिल पाएगी। बेताल राजा के मन की बात जान रहा था। तपाक से बोला, तब एक बिचौलिया की जरूरत होती है जो सामदामदंडभेद से गरीब की भूमि सस्ते में दिलवा सके। ये बिचौलिया चाहे किसानों की सहमति ले, सहमति 'बनवा' ले, या जोर जबरदस्ती से। उस पर इंडिया में मेक करने आए विदेशी पूंजी डालर, पाउंड, येन की बरसात होगी।

बेताल बोला, मुक्त बाजार के हिमायती, नियोलिबरल को जब बाजार में सीधे से सस्ती भूमि नहीं मिलती, तो कहता है, बाजार फेल हो गया (मार्केट फेलियर)। छोटी छोटी काश्त हैं, पता ही नहीं चलता किसके पास जमीन है, किसके नहीं। किस नाम से चढ़ी है? रिकार्ड ही नहीं है। चारागाह, तालाब, ओरण आदि भूमि को बेकार (वेस्टलैंड) कह दिया जाता है। अगर बड़ा भूखंड चाहिए तो मिलता नहीं। नियोलिबरल का मूल सिद्धांत है कि कीमत बाजार निर्धारित करता है।

लेकिन इस सिद्धांत को यहां किनारे कर दिया जाता है। वह मांग करता है कि राज्य बिचौलिया बन, भूमि का प्रबंध करे। तभी भूमि पूंजी उद्योग विकास पर्व का रिश्ता फलता फूलता है और गौरांग भी प्रसन्न होते हैं। ये प्रक्रिया इकानोमिक रिफार्म का अहम हिस्सा है। भूमि अर्जन के बाद किसान सब कुछ खो दिव्यांग हो घूमा करें, किसको चिंता है।

नियोलिबरल राज्य अब पब्लिक सेक्टर के उद्योग नहीं लगाता और देशी विदेशी पूंजी के साथ पूंपाड़ी बजाना चाहता है, अंग्रेजी में कहें तो पीपीपी। या फिर जमीन की दलाली करता है। स्वतंत्रता के बाद के एक दो दशक तक राज्य ने भारी उद्योग खदानों, सड़क और रेल पथ के लिए जमीन दी। डैम के लिए तो पिछले दशक तक जमीनें ली गईं इनसे सरकारी संपत्तियां बनीं।

1947 से 2004 के करीब तक आठ करोड़ लोग विस्थापित हुए।²⁷ नंदीग्राम में तो लोगों ने अपनी जमीन न दी पर नर्मदा बांध के लिए जबरन छीनी गई। उसका पानी साबरमती भी पहुंचा, वहां के संत को श्रद्धांजलि देने। नर्मदा के विस्थापित अभी भी इसी संत की जयकार कर रहे हैं। उनके पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन (सरल शब्दों में उनको फिर से कहीं रहने और उनके काम धाम की व्यवस्था) का मुद्दा दुनिया भर में उठा। नंदीग्राम में तो ऐसा लड़े कि राज्य को पीछे हटना पड़ा। सिंगूर से टाटा को गुजरात जाना पड़ा। वहां भूमि (और जगह के मुकाबले अनुपजाऊ होने के कारण) सस्ती है। उस पर उगने वाली बाजरी सस्ती है, उससे कम लोगों की आजीविका जुड़ी है। तो भूमि भी सस्ती है। नंदीग्राम में जनसंख्या घनत्व भी अधिक है और किसान मजदूर अधिक संगठित भी हैं। पर वे भी, कोई भी नियोलिबरल देवी को बोटल में बंद न कर पाए, जैसे तांत्रिक ने मालती को किया। किसी के पास मंत्र नहीं है। या है, पता नहीं, बेताल को ही नहीं क्या अघोरी को पता हो सकता है, जो श्मशान साधना की तैयारी कर रहा है?

तो किसान की भूमि लेकर पूंजीपति को देने के लिए कानून बनाने और पार्लियामेंट से पास कराने का सिलसिला सालोंसाल चला। सन् 2010-2016 के बीच भूमि अर्जन कानून पार्लियामेंट में घूमता रहा, इस घाट से उस घाट। ये सिलसिले हमारे लोकतंत्र की संभावनाएं और सीमाएं बताते हैं।

पार्लियामेंट के गलियारों, बैठकों, सेंट्रल हॉल जहां मेंबरान बैठते हैं, मंत्रियों, पार्टियों के कमरे, कैंटीन और वे कक्ष जहां बड़े उद्योगपतियों के नुमाइंदों की पहुंच होती है, तरह तरह की सियासी बातें होती हैं। कितना भी गूढ़ विषय हो, हास्य विनोद और हर्ष उल्लास का वातावरण अक्सर रहा है। गंभीर बातें भी होती हैं। वाद विवाद भी। अकसर बहुत भाईचारा होता है।

‘ना’ कानून, फिर ‘हां’ कानून

2012 में ग्रामीण विकास की स्टैंडिंग कमेटी भूमि अधिग्रहण बिल 2011 पर चर्चा कर रही थी। कानून के प्रीएम्बिल पर चर्चा का दौर था। प्रीएम्बिल स्वयं ही बोल उठा।

प्रीएंबिल : सुनो लोगो, उद्योग लगने, सड़क नहर बनाने और शहर बसाने के लिए सबको साथ लेकर और कुछ भी छिपाए बिना, सबको सब बातें बताकर, किसानों और अन्य प्रभावित कुटुम्बों को बाधा पहुंचाए बिना भूमि अर्जन का मानवीय कानून हूं मैं।

बेताल सोच रहा था, ये तो कोई महानायक है जो दिन दहाड़े सब बता समझा के, मानवीय तरीके से किसान की भूमि ले लेगा और किसान उफ भी न करेगा। चलो आगे सुनता हूं।

प्रीएंबिल : हे नागरिकों में श्रेष्ठियो, भूमि का अर्जन पंचायतों के परामर्श से होगा। जिन भूस्वामियों की भूमि ली जाएगी उन्हें न्यायोचित और उचित मुआवजा मिलेगा और उनके रहने और आगे काम मिल जाने की व्यवस्था करते हुए विकास में पार्टनर बनाऊंगा।

प्रीएंबिल बोले और अवधूत न आए, ऐसा कैसे हो सकता है। अवधूत के सवाल सीधे किंतु

सटीक होते थे। सवाल तो जरूर समझ में आता। जवाब की कोई गारंटी कैसे लेता? अवधूत सबके पहले स्टैंडिंग कमेटी की कुर्सी सुमित्रा महाजन से मिला। अरे हां, ये तो बताएं कि अवधूत पार्लियामेंट में अंदर कैसे पहुंचा। अवधूत के पास अद्भुत शक्ति थी। वो जिसे चाहे दिख सकता था औरों को नहीं। पार्लियामेंट के मेटल डिटेक्टर उसे न पकड़ पाए।

अवधूत सुमित्रा महाजन जो भूमि अर्जन बिल 2011 के लिए बनी स्टैंडिंग कमेटी की अध्यक्ष थीं और आज लोकसभा अध्यक्ष थीं से मिलने पहुंचा और उनसे पूछा :

अवधूत : ये राजा और उसके खजाने के मंत्री एमिनेंट डोमेन कहते रहते हैं और लोक कल्याण (पब्लिक पर्पज) की बात करते हैं। आपकी कमेटी क्या कहती है, क्या सरकारों को भूमि अर्जन करना चाहिए?

ये कहने के साथ ही लोबान से धुआं किया। जिसमें फंस सुमित्रा महाजन बोलीं:

सुमित्रा महाजन : एमिनेंट डोमेन सोवरेन पावर एक अधिकार है, जिसमें राज्य निजी संपत्ति ले सकता है, सिर्फ पब्लिक के काम के लिए और इसमें संपत्ति मालिक को उचित मुआवजा मिलना चाहिए।

अवधूत : तो क्या राजा किसी किसान की भूमि ले मुझे दे सकता है कोई इंडस्ट्री लगाने के लिए?

सुमित्रा : एमिनेंट डोमेन के सिद्धांत से तो नहीं पर 2011 के बिल में यही प्रावधान था। पार्लियामेंट में डिसकशन के बाद ऐक्ट में पब्लिक पर्पज की गोलमोल व्याख्या कर दी। अरे भई सरकार जमीन ले हाइवे, डैम कैनाल, स्कूल अस्पताल बनाए तो बनाए पर जमीन लेकर पूंजीपति को दे, ये ठीक नहीं। प्रीएंबिल में इतनी बड़ी बातें कीं। पर कानून की धाराओं में पूंजी से साठ गांठ, ये तो ठीक नहीं।

अवधूत : और देश भी तो ऐसा करते होंगे?

सुमित्रा : अजी नहीं साहब। अमरीका के राज्यों के सर्वोच्च न्यायालयों ने फटकार लगाई कि प्राइवेट पार्टियों के फायदे के लिए सरकार को भूमि अर्जन नहीं करना है। अभी 2006 की ही बात है। कनाडा और यूरोपीय यूनियन में भी ऐसा ही है। जापान में तो सरकार किसी नियम से नहीं पर निजी संपत्ति मालिकों से हवाई अड्डे की जमीन तक के लिए भी मोल भाव करती है।

अवधूत : तो किसी देश में ऐसा कानून नहीं है कि वो किसान से ले और पूंजीपतियों को भूमि उपलब्ध कराए।

सुमित्रा : हां, ऐसा ही है। सिर्फ पाकिस्तान, बंगलादेश और भारत में।

आगे सुनो, इसी जमीन को लेकर स्टैंडिंग कमेटी में क्या बात हुई।

दिल्ली मेट्रो रेल कारपोरेशन : प्राइवेट कंपनियों के लिए सेज जैसी व्यवस्था नहीं होनी चाहिए।

श्रमिक क्रांति संगठन : प्राइवेट कंपनियां मुनाफे के लिए काम करती हैं। कुछ उत्पादन होता है तो लोक कल्याण तो होगा, पर मुनाफा तो प्राइवेट कंपनी का है। राज्य क्यों सहायता करे मुनाफा कमाने के लिए।

अखिल भारतीय किसान सभा : सरकार निजी उद्योग का एजेंट क्यों बन रही है। अगर उन्हें आवश्यकता है तो वे खुद बाजार से खरीदें।

भूमि संसाधन विभाग : जैसे सड़कें पीपीपी में बनती हैं, तो उनसे पब्लिक का ही फायदा होता है। हम प्राइवेट सेक्टर को मदद इसलिए कर रहे हैं कि प्राइवेट सेक्टर भी कमोबेश वही सर्विस उपलब्ध करा रहा है, जो पब्लिक सेक्टर, जैसे स्कूल और अस्पताल।

सुमित्रा : भूमि संसाधन विभाग ने 11वीं पंचवर्षीय योजना के भूमि संबंधों पर बने वर्किंग

गुप (वंदोपाध्याय कमेटी) की इस अनुशंसा पर विचार नहीं किया : 'पब्लिक पर्पज के नाम पर भूमि अधिग्रहण सड़क, सीवेज आदि सीमित रहना चाहिए।

अवधूत : तो फिर स्टैंडिंग कमेटी ने क्या अनुशंसा दी?

सुमित्रा : हमने कहा कि भई उत्पादन के तीन साधन होते हैं, भूमि, श्रम और पूंजी। अब राज्य श्रम और पूंजी का तो अधिग्रहण नहीं कर रहा, तो भूमि का ही क्यों कर रहा है, जबकि भूमि ही सबसे कम और कीमती है? किसी विकसित देश में ऐसा नहीं है, तो 21वीं सदी के भारत में ही क्यों? इसलिए भैया, लोक कल्याण, सिंचाई, डैम, स्कूल, अस्पताल, पीने के पानी आदि तक ही भूमि अर्जन सीमित हो, ये सब सरकारी इमदाद से बनते हैं। और सबको उचित मुआवजा मिले। रहने और रोजगार की व्यवस्था हो।

इसके अलावा हमने ये भी कहा है कि ग्राम सभा से सिर्फ कंसल्ट नहीं करना चाहिए। इन संस्थाओं को ब्यूराक्रेसी और तकनीकी एक्सपर्ट के साथ मिलकर भूमि अर्जन, और विस्थापितों के रहने और रोजगार का दायित्व उठाना चाहिए। ये बताएं कि क्या वास्तव में पब्लिक पर्पज है? इसके अलावा भी बहुत कुछ है, नमस्कार।

अवधूत : पर ऐसा कुछ हुआ नहीं, अनुशंसाएं तो धरी रह गईं। आपकी पार्टी तो आगे होकर पूंजी की सेवा...

सुमित्रा : मिस्टर अवधूत मैं अब किसी पार्टी में नहीं, लोकसभा की अध्यक्षा...

अवधूत को सुमित्रा जी का उत्तर पहले से मालूम था। वो तो गायब हो गया। सुमित्रा जी को समय, या अवधूत किसी का भी स्मरण न रहा, या रहा, वो कन्फ्यूज थीं कि पिछले आधे घंटे वो क्या कर रही थीं। जो हुआ था, वो मुंह से निकल गया था। पर वे वही बोलीं जो उन्होंने रपट में लिखा था।

चित भी मेरी, पट भी मेरी, अंटा मेरे बाबा (राजनाथ) का

पार्लियामेंट में भूमि अधिग्रहण बिल 2011 पर बहस चल रही थी। श्री राजनाथ सिंह ने बहस की शुरुआत की थी। राजा के कान खड़े हो गए थे।

श्री राजनाथ सिंह (गाजियाबाद) : अध्यक्ष महोदया, सबसे पहले मैं आपके प्रति आभार व्यक्त करना चाहता हूं कि आपने इस देश के अत्यधिक संवेदनशील सवाल भूमि अधिग्रहण पर अपने विचार व्यक्त करने का अवसर दिया है। लम्बे इंतजार के बाद भूमि अधिग्रहण से संबंधित बिल संसद के समक्ष विचार के लिए आया हुआ है।...हम भूमि को केवल एक कमोडिटी नहीं मानते हैं और भूमि से हम केवल आर्थिक गतिविधियों को ही जोड़कर नहीं देख सकते हैं। भूमि का जहां तक प्रश्न है, इसके साथ किसान का भावनात्मक रिश्ता भी जुड़ा हुआ है, भूमि के साथ उसका एक सांस्कृतिक रिश्ता भी जुड़ा हुआ है। मैं भी किसान परिवार से हूं, मैं जानता हूं कि जिस दिन अपनी जमीन दूसरे के हाथों बेचनी पड़ती है, भले ही उसके कारण पैसा हासिल होता है, लेकिन अपने मन को अच्छा नहीं लगता है, यह कदम किसान को मजबूरी में उठाना पड़ता है, इस सीमा तक भावनात्मक रिश्ता उस जमीन के साथ होता है। सांस्कृतिक रिश्ता भी...(व्यवधान)

श्री लालू प्रसाद : इसके कारण महाभारत भी तो हुआ।

श्री राजनाथ सिंह : जहां तक सांस्कृतिक रिश्ते का प्रश्न है, आप जानते हैं कि हम भूमि को एक साधारण जमीन का टुकड़ा नहीं मानते हैं, बल्कि इस भूमि को, पृथ्वी को हमने माता तुल्य माना है। इस प्रकार का एक सांस्कृतिक रिश्ता इस भूमि के साथ हम लोगों का है।

राजा सोच रहा था, ये जरूर अवधूत की चाल है। वो परकाया प्रवेश की विद्या जानता है।

जरूर बेचारे राजनाथ से ये सब बुलवाया होगा। किसको याद रहता है, बाबा बोलने दो, विपक्ष को तो बोलना ही है। राजनाथ कहां रुकने वाले थे। उनका बोलना जारी रहा।

...चूंकि भूमि किसान का एकमात्र सहारा होता है, इसलिए भूमि के प्रश्न को लेकर जब कभी कोई विवाद खड़ा होता है तो स्वाभाविक रूप से किसान एकजुट होकर आंदोलन करता है, उसके लिए लाठियां खाता है, गोलियां खाता है, लेकिन फिर भी भूमि को बचाने के लिए अपनी तरफ से भरपूर कोशिश करता है, लेकिन विडंबना यह है कि 1894 में, जब अंग्रेजों की हुकूमत इस हिंदुस्तान में थी तो भूमि अधिग्रहण से संबंधित एक बिल तैयार किया गया था। उस समय भी यह भूमि का अधिग्रहण थोड़ी बहुत मात्रा में होता था, तब भी किसानों के अंदर असंतोष पैदा होता था, किसान आंदोलन करता था, लेकिन जिस निर्ममतापूर्वक ब्रिटिश हुकूमत द्वारा उसके आंदोलन को दबा दिया जाता था तो फिर ब्रिटिश हुकूमत के सामने वह उफ करने का साहस नहीं जुटा पाता था...मैं समझता हूं कि यह बिल पूरी तरह से अपने मूल उद्देश्य से भटक गया है।

महोदया, इस विधेयक में तो निजी क्षेत्र के लिए भी भूमि अधिग्रहण का एक रास्ता निकाल लिया गया है। वैसे निजी क्षेत्र के लिए भूमि अधिग्रहण अंग्रेजों की हुकूमत में भी होता था।

...सोशल इंपैक्ट असेसमेंट भूमि अधिग्रहण का प्रोसेस प्रारंभ होने के पहले होना चाहिए। इनवायरमेंटल इंपैक्ट असेसमेंट भी भूमि अधिग्रहण का सिलसिला प्रारम्भ होने के पहले होना चाहिए। इसके पहले यह संभव नहीं है। सोशल इंपैक्ट असेसमेंट और इनवायरन्मेंटल इंपैक्ट असेसमेंट, जब यह सिलसिला प्रारंभ हो तो यह टाइम बाउंड होना चाहिए। कहीं ऐसा नहीं होना चाहिए कि सोशल इंपैक्ट असेसमेंट और साथ ही इन्वायरन्मेंटल इंपैक्ट असेसमेंट आपने प्रारम्भ कर दिया और साल डेढ़ साल तक यह असेसमेंट का सिलसिला चलता रहे, तो मैं समझता हूं कि इसका जो परपस है, वह परपस पूरी तरह से समाप्त हो जाएगा।

एक तरफ कहा गया है कि मल्टी क्रॉप लैंड अथवा इरीकेटेड लैंड का एक्विजिशन नहीं होना चाहिए, लेकिन दूसरी तरफ उसका रास्ता भी खोल दिया गया है। हमारा मानना है कि जब तक किसान सहमति न दे तब तक कृषि योग्य भूमि का किसी भी सूरत में अधिग्रहण नहीं होना चाहिए।

राजा बड़बड़ा रहा था। अरे बसकर राजनाथ, अगर कृषि भूमि पर चिमनियां नहीं ठोकेगा तो क्या हवा में बनाएगा? बोले जा रहा है। अब चुपकर। राजनाथ कहां रुकने वाले थे, किसानों के हितैषी बोले : जिस खेत में फसल पैदा होती है, उसे एकवायर मत कीजिए। काम चलाना है तो बहुत सारी बंजर भूमि पड़ी हुई है, उससे काम चला लीजिए। लेकिन खेती योग्य भूमि का अधिग्रहण किसी भी सूरत में नहीं होना चाहिए, यह मैं आपसे अनुरोध करना चाहता हूं। इस संबंध में पार्लियामेंट की स्टैंडिंग कमेटी ने भी अपनी रिपोर्ट में इस बात की चर्चा की है और साफ साफ कहा है कि किसी भी सूरत में ऐसा नहीं होना चाहिए।

...अध्यक्ष महोदया, मैं आपके माध्यम से इस सरकार से विनम्र अनुरोध करना चाहता हूं कि भूमि अधिग्रहण बहुत ही संवेदनशील प्रश्न है, बहुत गंभीरतापूर्वक लिया जाए...किसानों के लिए यह बिल हितैषी बन सके, उसके लिए आप भरपूर कोशिश कीजिए।

2011 के विधेयक पर और बहस मुवाहिसे हुए। और भारत गणराज्य के चौसठवें वर्ष में संसद ने 26 सितम्बर, 2013 में भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकार और पारदर्शिता अधिकार अधिनियम, 2013 पारित किया। स्टैंडिंग कमेटी की अधिकतर अनुशांसाएं फाइल में ही बंद कर दी गईं। वह चंद दिनों में ही एक ऐतिहासिक दस्तावेज बन गया। नई सरकार 2014 में आई और जो श्री राजनाथ सिंह के उद्धृत संबोधन में कहा गया है, ठीक उसके उलट एक ऑर्डिनेंस 2014 में लाई जिसे 10 मार्च, 2015 को लोकसभा में पारित किया। सुमित्रा महाजन

स्टैंडिंग कमेटी की अध्यक्षता अब लोकसभा की अध्यक्ष थीं।

काजल की कोठरी में, दूध से नहाया कौन?

10 मार्च, 2015, अवधूत पार्लियामेंट के बरामदे में टहल रहा था, किसी को ढूंढते हुए। स्मरण हो वो किसी को दिख नहीं रहा था। उसके पास से सीताराम येचुरी अकेले ही कुछ सोचते कुछ अपने को ही कहते चले जा रहे थे अवधूत उनके पास से गुजर गया। पर सीताराम को कौन पार पा सका है, अवधूत की तो क्या मजाल। उन्हें अहसास हुआ था कि अवधूत है। ऐसा अहसास कुछ ही लोगों को हो पाता है, जो अपने विचारों को लेकर समझौता नहीं करते।²⁸ उन्होंने अवधूत को पुकारा।

सीताराम : क्यों अवधूत, कहां चले? मिलना नहीं चाहते?

अवधूत सकपका गया था। कुछ कहते न बना, चुप रहा। सीताराम भी चुप थे। दोनों काफी पीने चल दिए। काफी के बाद एक कोने में सीताराम ने सिगरेट²⁹ निकाली और अवधूत ने अपनी चिलम। जब कुछ धुआं हुआ, तब सीताराम बोले³⁰ :

सीताराम : कंपनी राज फिर आ गया है। 1894 के भूमि अधिग्रहण कानून की धरवापसी हो रही है। राजनाथ जी अभी दो साल पहले बोले थे कि जब प्राइवेट कंपनियों के भूमि अर्जन के लिए 80 प्रतिशत और पीपीपी के लिए 70 प्रतिशत किसानों की सहमति ली जा रही है, तब बाकी प्रोजेक्ट के लिए भी ली जानी चाहिए। अब उनकी सरकार ने सहमति की धारा ही समाप्त कर दी। चाहे पब्लिक सेक्टर हो या प्राइवेट—डिफेंस, पावन, इंफ्रास्ट्रक्चर, गरीब के लिए घर, इंडस्ट्रियल कॉरिडोर और पीपीपी के लिए सहमति आवश्यक नहीं।

अवधूत ने अपनी चिलम से ढेर सा धुआं किया और बोला :

अवधूत : इन्हें इतिहासबोध नहीं। नंदीग्राम में बिना सहमति के जमीन लेने की परिणति देख चुके हैं।

सीताराम को नंदीग्राम का शूल रह रहकर चुभता था, मानों सीता और राम बिछुड़े हों। सीताराम जो भी सोच रहे थे, धुएं के गोल छल्ले नहीं बना पा रहे थे। एक दो कश के बाद संभले तो इत्मीनान से छल्ले फिर छोड़े, इस बार दूर तक गए। वेदना भरी मुस्कान के साथ बोले :

सीताराम : अब जमीन बिना किसान से पूछे ले ली जाएगी चाहे पब्लिक के लिए हो या प्राइवेट के लिए। एमिनेंट डोमेन और सोवरेन पावर अंग्रेजी राज से भी अधिक क्रूरता से आ खड़ा हुआ है। इस कंपनी सरकार में पूंजी को बिना लगाम के घोड़े की तरह पैसा कमाने का मौका मिलेगा।

अवधूत : पूंजी फिर विकास पर्व मनाएगी। राजनाथ ने तो भूमि लेने से पहले इनवायरन्मेंट असेसमेंट और सोशल इंपैक्ट असेसमेंट की जोरदार वकालत करते हुए कहा था कि ये देखना चाहिए, कि ये काम जल्द पूरा करें।

सीताराम : कारपोरेट ने इसका जोरदार विरोध किया था। क्योंकि इसमें भी पूछा जाता था कि कितने परिवार बेदखल होंगे, कम से कम कितनी जमीन प्रोजेक्ट के लिए चाहिए और क्या कोई अन्य स्थान मिल सकता है? अब तो एक नया अध्याय 3 ए जुड़ गया है जो पांच केटिगरी को इस प्रक्रिया से मुक्त करता है। इसी अध्याय में बहुफसली सिंचित जमीन को लेने के नियम पर भी पाबंदी में भी ढील दी है।

अवधूत : ये ऑर्डिनेंस तो निजी अस्पताल और निजी शैक्षणिक संस्थाओं के लिए भी जमीन जुटाएगा।

सीताराम ने एक नई सिगरेट निकाली और बोले :

सीताराम : एक नया शब्द गढ़ा है, प्राइवेट एनटिटी, जिसमें कारपोरेट, प्रोपराइटर, एनजीओ आदि के लिए जमीन की व्यवस्था होगी। अब भूमि अधिग्रहण नहीं, भूमि लूट संभव है।

अवधूत गायब हुआ, सोचा कोई बौद्धिक अनुसांगिक संगठन के नाम भूमि के लिए वो भी आवेदन करे। बहरहाल, सीताराम धुएं के और छल्ले बना रहे थे।

राजा मुस्करा रहा था। निठल्ले के छल्ले! बेताल और राजा अब लोकसभा की 9 मार्च, 2015 की बहस³¹ में थे। सीताराम की ही बातें लोग दोहरा रहे थे, इधर उधर जोड़जाड़ के। कुछ लोगों के पास कुछ नया भी था। बेताल की माया वो किस किस को बहस में ले आया, आश्चर्य होता है।

मोहन दास करमचंद गांधी : निश्चय ही, किसान इस संसार के पिता हैं पर ये उनकी महानता है कि इस बात का उन्हें बोध नहीं। जो अपने आप को अच्छे कामों के लिए समर्पित करते हैं, उन्हें अपनी अच्छाई का ही बोध नहीं होता। जैसे हम हर क्षण सांस लेते हैं और उसका हमें बोध नहीं, इसी तरह अच्छे लोग, अपनी अच्छाई बिखेरते रहते हैं और उन्हें नहीं मालूम। उन किसानों को कभी नहीं लगता कि उन्हें नेकनामी मिलनी चाहिए। उन्हें परवाह नहीं कि उन्हें कोई सम्मान मिले।³²

कल्याण बैनर्जी बीच में टपक पड़े। गांधी जी गायब हो गए। पता नहीं थे भी कि नहीं।

कल्याण बैनर्जी : ये कानून उनका सम्मान छिन रहा है, उनकी सहमति को भी गैर जरूरी समझता है। सोशल इंपैक्ट असेसमेंट का प्रावधान हटा रहे हैं। उसमें प्रावधान था, कि अगर प्रोजेक्ट से होने वाला नुकसान, फायदे से ज्यादा है, तो प्रोजेक्ट हाथ में न लिया जाए। कोई भी किसान और पंचायत सदस्य अपनी बात यहां रख सकता था, अब वो अधिकार भी छिन गया। इस सोशल इंपैक्ट असेसमेंट से दो बातें सिद्ध होती हैं।...पर नए कानून में यह सिद्ध हो गया है कि यह सरकार कारपोरेट के लिए, कारपोरेट की बनाई, कारपोरेट की है। हम ये समझ सकते हैं, पर ये न करें, वरना...(व्यवधान)

एम. वैक्या नायडू : तो क्या हमें शाप दे रहे हैं? जैसे पहले मुनि लोग कहते थे कि आपको यह हो जाएगा, या वो हो जाएगा।

गौरव गोर्गई : सहमति और सामाजिक प्रभाव का आकलन, पिछले अधिनियम के दाएं और बाएं बाजू थे। जिन्हें नई सरकार ने काटकर फेंक दिया है। मैं पूछना चाहता हूं कि ऐसा क्यों हुआ? क्या किसान आंदोलन पर आ गया था, क्या किसान आपके घर के बाहर आंदोलन कर रहे थे कि सहमति का क्लॉज हटा दीजिए, क्या किसान आंदोलन पर आया था कि सामाजिक प्रभाव का आकलन हटा दीजिए, नहीं, किसानों की यह मांग नहीं थी। किसान चाहता था कि ये दो मूल तत्व इस संशोधन में रहें। आपने किनकी आवाज सुनी, आपने बड़े उद्योगपतियों की आवाज सुनी, बड़े पूंजीपतियों की आवाज सुनी, जो कारपोरेट बोर्ड रूम में बात करते हैं, जो कहते हैं कि लैंड एक्विजिशन में बहुत समय लग रहा है, कन्सेंट के कारण बहुत समय लग रहा है। सोशल इंपैक्ट असेसमेंट के लिए प्रोजेक्ट बहुत एक्सपेंसिव हो गए हैं। आज उन कारपोरेट बोर्ड रूम की आवाज संसद के इस मंदिर में सुनाई दे रही है। इससे ज्यादा शर्मनाक बात नहीं हो सकती है।

कल्याण बैनर्जी : मैं आपसे और राजनाथ जी से अपील करता हूं, कि आप लोगों ने डेढ़ दो साल पहले जो कहा था उस पर विचार करें। इस विल में कुछ नहीं है, ये किसान का खून... किसानों के खून की बात हुई तो शहीद भगत सिंह भी आए। बेताल की माया।

शहीद भगत सिंह : अंग्रेज दो दमनकारी कानून लाए हैं, उनमें से एक कानून है भूमि अधिग्रहण और दूसरा है पुलिस ऐक्ट। आज इस सदन में जहां हम बैठे हैं, जिस सदन में हम आज बात कर रहे हैं, यहां एक मालचा नाम का गांव था। यह मालचा गांव पंजाब में था और यह सारी

भूमि जो दिख रही है, जहां हमारी संसद है, राष्ट्रपति भवन है, यह मालचा गांव था जो शुरू में पंजाब में था और जब पंजाब और हरियाणा बने तो शायद बाद में हरियाणा में हो सकता है। इस मालचा गांव में अंग्रेजों ने ऐसे अत्याचार चलाए कि 33 हजार बीघा जमीन किसानों की छीन ली। आंदोलन हुआ, किसानों ने विरोध किया और विरोध करने के बाद 33 किसानों की मृत्यु हुई, हत्या हुई। यह सारी बात मैं इसलिए बता रहा हूं कि उसी भूमि पर हमारा यह सदन खड़ा है जहां किसानों ने अपना देहत्याग किया हुआ है।³³

प्रहलाद जोशी : किस किसान के पास इतनी जमीन है? अगर दो एकड़ या पांच एकड़ जमीन वाले की जमीन गई तो पूरी जेनरेशन के लिए जमीन गई। उनकी जमीन गई, इज्जत गई, सारी चीज गई, मार्केट में उसकी कीमत भी कम हुई। उसके परिवार को आप नौकरी देने की बात करते हैं। आप प्रोजेक्ट पूरा होने के बाद नौकरी देंगे। वह तब तक मुआवजा लेकर बैठा रहेगा। इन सारी चीजों को सोचना चाहिए। वहां किसान का पुनर्वासन भी नहीं हुआ, उसकी जमीन गई और प्रोजेक्ट भी नहीं हुआ। ...आज सुबह भी माननीय प्रधानमंत्री जी ने एक विषय पर एक अच्छे शब्द का इस्तेमाल इस सदन में किया, आक्रोश, मैंने सुना है, यह भी एक आक्रोश है, आप इसे सुन लीजिए, यह गरीबों का आक्रोश है, यह किसानों का आक्रोश है, उन्हें दुःखी न करें। आप ऐसा प्रस्ताव सदन में लेकर आइए, यह मैं आपसे अपेक्षा करता हूं। जय हिंद।

श्री राजेश रंजन : देख लिया कितना बड़ा कुर्सी का ईमान। रैली, नारा, पैतरा, मोहरा हुआ किसान।

सहजानंद सरस्वती : जो अन्न वस्त्र उपजाएगा, सो कानून बनाएगा। भारतवर्ष उसी का है, शासन वही चलाएगा।³⁴

सहजानंद सरस्वती ने किसानों के हक के लिए स्वतंत्रता संग्राम में आवाज बुलंद की थी। बेताल की माया, वह क्षण भर को आए और चले गए। पार्लियामेंट में सांसद मुस्कराए। उनमें किसान इक्का दुक्का ही थे। जो थे वे भी किसानी कहां करते थे? छोटा किसान, जिसकी आजीविका सदस्य बनने से पहले किसानी से ही चलती हो, कोई नहीं था। हिमायती शायद हों या कम से कम दिखावा तो कर ही रहे थे। पर यही डेमोक्रेसी और संविधान की नियति भी। क्या सहजानंद बेमानी हो गए थे? वे विदेशियों के खिलाफ किसान के साथ खड़े थे, अब किसान से जमीन लेकर विदेशी को देने में रत्ती संकोच नहीं।

श्री दीपेंद्र सिंह हड्डा : उसके 20 किलोमीटर दूर के किसानों ने आकर कहा कि हमारी जमीन एकवायर कीजिए।... (व्यवधान) 20 किलोमीटर दूर के किसान इसके लिए तैयार हैं।... (व्यवधान) इसमें किसान की सहमति से काम हो सकता है।... (व्यवधान) किसान की सहमति से विकास को आगे बढ़ाया जा सकता है।... (व्यवधान) इस देश में किसान को विकास विरोधी बताया जा रहा है। यह इस देश का दुर्भाग्य है।... (व्यवधान) इसका एक और सेक्शन 24 बी है।... (व्यवधान)

माननीय अध्यक्ष : दीपेंद्र जी, आप कितना समय और लेंगे? आपको कितना समय चाहिए।

करोड़पति किसान की फटी बिवाई, दुहाई, दुहाई

बेताल बोला, पार्लियामेंट में दम घुटने लगा है। चल ये लोग तो तेरे विरोध में ऐसा बोल रहे हैं, मानो इनकी बात न मानी, तो शीश ही कटा देंगे। चल पास ही गौतमबुद्ध नगर चलते हैं, वहां फार्मूला वन मोटर ट्रैक बन रहा है। जिन किसानों ने अपनी मातृतुल्य जमीन दी, या उनसे छीन ली गई, उन्हें लाखों रुपया मिला है, कुछ को तो एक आधा करोड़ भी। दो तीन पीढ़ी भी अन्न फल सब्जी उगाते तो इतने रुपये का उत्पादन न कर पाते। वे अवश्य प्रसन्न होंगे। चल देखें :

जंतरमंतर में दुगुने मुआवजे के लिए प्रदर्शन कर अपनी एसयूवी में लौटे थे। दो साल पहले

किसी को पचास लाख, करोड़, ढाई करोड़ रुपया मिला था। पड़ोस के गांव में दो साल बाद नए कानून से और नई सर्किल रेट से करीब दो गुना पैसा मिला था। उन्हें लगा कि उनके साथ अन्याय हुआ है और जंतरमंतर पर पसीना बहाने और कई मिनरल वॉटर की बोतलें पीकर लौटे थे। पहले काम करके गर्मी में खीरा, सर्दी में मटर की देखरेख में पसीने की एवज में थोड़ा रुपया मिलता था। अब जंतर मंतर या कोर्ट कचहरी के चक्कर में निकले पसीने से बहुत ज्यादा रुपया मिलना था। नोएडा एक्सटेंशन में जहां फ्लैट बने हैं, वहां किसानों को मुआवजा हाई कोर्ट ने बहुत बढ़ा दिया था। पहले पसीना बहनी की ठंडी हवा में सूखता था, अब एसी में उड़ता है।

जब मेहनत से कमाते थे, तो पसीने का मोल जानते थे। बहुत देखभाल के खर्चा करते। अब रुपया इतना पा गए कि सिमटे नहीं सिमटता। रुपये से और रुपया बन जाता है। पहले पसीना बहाने से ही रुपया बनता था। अब जंतरमंतर में बहे पसीने को मिनरल वॉटर से धो सकते थे। कोल्डड्रिंक से प्यास बुझा सकते थे। जंतरमंतर से लौटे तो एक घर पर बैठकी जमाई।

पहले बैठक किसी पेड़ के नीचे ऊकड़ू मूकड़ू बैठकर या चारपाई पर बैठे, लेते होती थी। अब केन की कुर्सियां थीं। पहले मन जुड़ता था। दुःख सुख मिल जाते थे। अब सारा समय तेरी एसयूवी मेरी से बड़ी क्यूं, में बीत जाता है। ये नहीं कि पहले ईर्ष्या न होती थी, पर लगाव भी था। ये समझदारी थी कि फसल इसलिए अच्छी हुई कि निराई गुड़ाई अच्छी। रात रात उठकर बराबर पानी दिया। भैंस चमकी कि उसे खूब रगड़ के नहलाया। मेहनत की तारीफ करते था, सम्मान भी, ईर्ष्या भी। तब आदमी की वकत सिर्फ जेब में भरे पैसे भर नहीं थी।

इस बैठकी में मौजूद सभी पूर्व किसानों ने दो मंजिला मकान कर लिए थे, एसयूवी खरीद लिए थे। डिश टीवी, फ्रिज तो आम बात थी। जिन घरों में भौजी की चलती थी, वहां गाय भैंस बंधी थी। जहां मॉडर्न पतोहू आई थी वहां गांव की आखिरी पहचान ये गाय भैंस भी चली गई थी। लड़कियों की शादियां निपटा दी थीं। लड़के शराबी हो गए थे, दिन भर बियर पीकर उत्पात करते थे। लड़कियां छेड़ते थे। जुआ और ताशे खेलते थे। उन्हें लगता था कि मुआवजा एक दो पीढ़ी चलेगा। सभी को 50 लाख से एक डेढ़ करोड़ तक का मुआवजा मिला था। जिनको कम मिला था वे अब कंगाली के कगार पर पहुंचने वाले थे, या पहुंच रहे थे। कई लड़के स्किल सीख के बैठे थे, सीख भी रहे थे। पैसे से शान तो बढ़ गई थी पर काम नहीं था।

हहहहहह : भैया फालतू शहर घूम घूम घेर धुएं में अब जी घबराने लगा है। अरे पहले कितना काम था। फसल लहलहाती, अभी कटाई, फिर मढ़ाई। फिर शादी ब्याह की तैयारी। किसानी की तो बात ही न्यारी है। काम करो, कुछ भी पैदा कर लो। धान, गेहूं, सरसों, प्याज, टमाटर, मूली, गाजर, ताजा ताजा।

हहहहहह : कभी कभी मेरा मन फिर खेती करने का करता है। दोपहरी में पोटली में मोटी रोटी, प्याज और मिर्चा।

हहहहहह : और भौजाई के साथ अरहर के खेत में।

हहहहहह : चुपकर। अरे सुःख दुःख की बात, घर की बात करते थे।

हहहहहह : और साली के साथ...

हहहहहह : चुप। अरे गए वो दिन। मिले का सौदा था। अब टीवी सीरियल में देख कर अनुमान लगाते रहे। ये शहरी बस सोचते ज्यादा होंगे, करते कम। करने को न आम की बगीची, न फूस का ढेर, न अरहर की ओट। कहां वो मजे और कहां तलवार की धार पर चलते सीरियल। नेताओं की जुगाली।

हहहहहह : पैसे का कमाल है या सीरियल का या नई हवा का। पहले छोटे मोटे लड़ाई झगड़े

गांव में ही सुलझ जाते थे। अब बात बात पर पिस्तौल निकल आती है। जैसे से तमतमे तेज हो गए हैं।

हहहहहह : अचल संपत्ति की बात ही कुछ और है। आज देती है, कल देती है, पीढ़ी दर पीढ़ी देती है। चल संपत्ति की बात फर्क है। जब तक रहती है, बड़ी शोहरत देती है। भागत है, तो बहुत तेज, कितने हाथ पांव होते हैं, सोच नहीं सकते। दो लाख की शादी अब 20 लाख की। बारात में 15 घोड़ा, 5 हाथी, 25 टवेरा लेकर गया। रंडी के नाच में लड़के ने हजार रुपये की एक गड्डी लुटा दी। आज बाबा की अमानत बेच के लुटा रहे हैं। कितने दिन रह पाएगी?

हहहहहह : और हमारे पेट्टे कुछ काम धंधे से कहां लगे हैं। कहता है जमीन खरीदने बेचने का धंधा कर रहा है। दलाल। पिस्तौल लिए घूमता है। ये ससुरे जानें, दारू पिएं नाचें, रंडी नचाएं। हम चलने के किनारे। आंख ओट पहाड़ हो। न देखेंगे, जैसे मरजी चलाएं। न हम काम के और न बचुए काम के।

ये कहते हुए आंखें छलछला आई थीं। एक एक करके सभी की। बहुत देर तक शांति रही। इनसे छोटे किसान, मजदूर, हलवाई, खपड़ा छाने वाले, लोहार, धोबी, नाऊ, झुआवा और पलटा बनाने वाले तो शहर के हवाले हो चुके थे, शहर की भट्टी में कहीं गुमनाम। गांव छिन चुका था। सबको हजार, लाख, करोड़ रुपया मिला था। सबका विकास साथ साथ हुआ था। जैसे का कमाल था।

हहहहहह : मन करता है, गंडासे से फार्मूला वन का सिर काट दूं या फिर अपना ही।

स्मार्ट पतोहू जींस पहने, चुन्नी का घूँघट डाले, कोल्ड ड्रिंक ले आई थी। एक हाथ में स्मार्ट फोन था।

राजा पतोहू की रूपरेखा पर मोहित होने लगा था। एक सेल्फी के लिए बेचैन। वह विकास का अच्छा मॉडल थी। बेताल बोला, चल पार्लियामेंट में, मंत्री भूमि अर्जन बिल का जवाब देने वाले हैं। मन मार राजा चल पड़ा। राजा सोच रहा था, ये लोग इसलिए दुखी हैं कि अपने त्याग का मूल्य नहीं जानते। विकास के लिए किसी को सेक्रिफाइस करना ही होगा। सरसंघ को कहूंगा कि एक अनुसांगिक संगठन विस्थापितों के लिए बनाएं। वे इनमें राष्ट्र प्रेम जागृत करें। राष्ट्र उत्थान के लिए गांव की बलि चढ़ना उत्तम कार्य है। तभी राष्ट्र उन्नत और शक्तिशाली बनेगा। ये तो फार्मूला वन है, अभी कई फार्मूले आने बाकी हैं। रेस कोर्स के आसपास इन्होंने टेढ़ेमेढ़े मकान बनाए हैं, नीचे गाय भैंस भी बांधे हैं। बगल में गोबर की घूर है। फार्मूला वन का मालिक चाहेगा कि इन्हें कहीं और बसाएं। इन्हें उजड़ने बसने पर फिर मुआवजा मिलेगा।

दादा बड़ा न भैया, सबसे बड़ा रुपया

उधर किसान खुश न थे, उन्हें मेहनत का पूरा पैसा न मिलता था, और इधर जैसे वाले दुःखी थे। दुःख का साम्राज्य था। बेताल की माया, पल भर में पार्लियामेंट पहुंच गए। मंत्री के जवाब में मूल बात ये थी कि किसानों की उतार पर है, लोग नौकरी चाहते हैं। वे बोले :

श्री चौधरी बीरेन्द्र सिंह : आज मेरे किसान को रोजगार की तलाश है। उसकी बहुत सी जमीनें, मैं यह कह सकता हूँ कि 70 प्रतिशत से अधिक किसान ऐसे हैं, जिनकी लैंड होल्डिंग आधा एकड़ पौना एकड़, एक एकड़ सवा एकड़ तक सीमित है और हालत यह है कि ऐसा किसान कहीं भी जाता है, तो कहता है कि मेरे बेटे को चपरासी लगवा दो, मेरे बेटे को कंडक्टर लगवा दो, मेरे बेटे को ड्राइवर लगवा दो, मेरे बेटे को पुलिस में भर्ती करवा दो। सेनाओं की रक्षा, देश की सीमाओं की रक्षा हम करें, लॉ एंड ऑर्डर को हम मेंटेन कर के रखें और जिस तरह से ये कौमाफ्लैज करते हैं कि किसान को इससे आगे मत बढ़ने दो, हमने इसमें प्रोविजन किया है कि किसान को आगे

बढ़ने का मौका मिलना चाहिए। उसको भी इसका अधिकार है। आप उनको आने वाले समय में इस बात के लिए मजबूर नहीं कर सकते हैं कि उनकी जमीनें अगर रहेंगी तो वे खुशहाल रहेंगे। आपने कहां खुशहाली छोड़ी है? ³⁵

मिनिस्टर साहब बोलते रहे। अधिसंख्य अमेंडमेंट अस्वीकार हुए। कुछ लोग दो साल पहिले जो बोले, उससे पलट चुके थे। दोगलापन दिखाई नहीं दिया, क्योंकि विकास, पैसा और त्याग का ऐसा पर्दा बनवाया था कि उसके पार वही दिखाई देता जो सरकार चाहे। बहरहाल लोकसभा में 2015 का बिल पास हुआ, तो राज्यसभा में अटक गया था।

बेताल राजा को फिर उस ऊंची चोटी पर ले आया जहां से उसे ले गया था। लाखों करोड़ मजदूर किसान मूर्त थे, कुछ सुनने कहने को आतुर। बेताल ने राजा से कहा :

बेताल : हे राजन्, तूने अपने ढोल की पोल देख ली। ये स्पष्ट है कि भूमि अर्जन पूंजी के मुनाफे के लिए किया जा रहा है, चाहे पीपीपी हो, चाहे उद्योगों के बरामदे (इंडस्ट्रियल कौरिडोर) हों। तू जल्दी में है, जिनकी भूमि है, उनसे पूछना नहीं चाहता, सोशल इंपैक्ट और इनवायरन्मेंटल असैसमेंट नहीं चाहता। तू सोचता है, तेरा एमिनेंट डोमेन है। तू ही सोवरेन है।

नेहरू के समय सरकार ने बड़े डैम, कारखानों के लिए भूमि जुटाई। ये सरकारी उद्योग अभी भी देश की शान है। राष्ट्रीय आंदोलन ने मानो आधुनिकता को अपना लिया था। उस समय की फिल्मों उसका प्रतीक थीं। उन फिल्मों के गाने, 'साथी हाथ बढ़ाना, साथी रे, एक अकेला थक जाएगा, मिल के बोझ उठाना' (फिल्म नया दौर), छोड़ो कल की बातें कल की बात पुरानी, नए दौर में लिखेंगे हम, मिलकर नई कहानी। तू कौन आंदोलन चला पाया है या चलाना चाहता है? तेरे किसान बहुत गरीब हैं। पूंजी को सीधे उनसे खरीदने दे, उनको ज्यादा पैसा मिलेगा। तू उन्हें क्यों ज्यादा पैसा नहीं मिलने देता? चीन की तरह का औद्योगिक विकास और शहर चाहता है। मत भूल, वहां माओ उस क्रांति का सूत्रधार था, जिसके बाद भूमि राज्य या कम्यून की हो गई। अब सरकार जहां चाहे शहर बनाए, जहां चाहे चिमनी लगाए, देशी पूंजी के हवाले करे या विदेशी के। वहां बहुत आसान है। तो क्या तू भारत को चीन बनाना चाहता है?

हे राजन् तूने जानबूझकर मेरे इन तीनों सवालों का उत्तर न दिया तो तेरे सिर के टुकड़े टुकड़े हो जाएंगे। साथ ही बेताल ने मूर्त लोगों में फिर प्राणों का संचार कर दिया, अंग्रेजी में कहें तो अनफ्रीज कर दिया। राजा को कुछ राहत मिली। बोला, स्वतंत्रता के बाद अगर कोई बड़ा आंदोलन है तो वो है विकास। हर किसी की जुबान पर, हर युवा की जुबान पर, हर पढ़ी लिखी बेटी की जुबान पर विकास है। राजा ने भीड़ से पूछा, बोलो विकास चाहिए? जोरदार आवाज आई, चाहिए, विकास चाहिए। फूलों की बरसात होने लगी, कुछ देसी फूल थे, कुछ विदेशी। बोल बेताल, विकास एक आंदोलन है कि नहीं? सबका साथ सबका विकास है कि नहीं?

तेरा दूसरा सवाल है कि किसानों को ज्यादा पैसा क्यों नहीं मिलने देता। तू ने देखा, इतना पैसा मिलने से क्या हुआ? बरबादी, शराब, जुआ। और अधिक पैसा मिले तो लोग कहीं पितृहंता, भर्तृहंता न हो जाएं। इतना ही ठीक है। फिर कहीं कोई पूंजी का पति इन्हें ठग ले, मुझे मेरे किसानों के लिए स्वीकार नहीं। अभी देखना, ये मुझे प्रसन्न हो भूमि देंगे। ये बातें किसानों को सुनाई नहीं दे रही थीं। राजा ने किसानों की ओर हाथ हिलाया और वे भी हाथ हिलाकर राजा, राजा करने लगे।

तेरे तीसरे सवाल का जवाब है, हां मैं भारत को चीन बनाना चाहता हूं पर मेरा तरीका अलग है। चीन में खूनी क्रांति के बाद राज्य को जमीन मिली। मैं तो गांधी भक्त हूं। लोग अपने विवेक, अपनी इच्छा से भूमि त्याग करें, तो किसी को क्या परेशानी है। काहे की कानून में सहमति, काहे का कन्सेंट? अब तू आगे देख। तेरे प्रश्नों का जवाब मिल गया है, आगे और मिलेगा अब तू जा।

कोई सप्लीमेंट्री क्वश्चन नहीं पूछ सकता।

राजा के मौन भंग होने के साथ ही बेताल अपना सा मुंह लेकर पेड़ पर जा लटक गया और देखने लगा। जब बेताल अपने सवाल पूछने में मगन था, तांत्रिक राजा से मिले वॉट्स एप्प आदेशों का पालन कर रहा था। जैसे राजा के भाषण के पहले की पूर्व तैयारी हो। फ्रीज सोए हुए किसानों की चेतना में तांत्रिक जैसे ही प्रवेश कर गया, जैसे सीरियल के बीच में विज्ञापन। तांत्रिक ने कहा, राजा को तुमने बनाया है, बड़े भले की बात करता है, बाकी बरगलाते हैं। राजा का विरोध करते हैं। सुनते हैं, मुंहनुचवा फिर आने लगा है, जो बाहर सोता है, खुली हवा में सांस लेता है, उसका मुंह नोचकर चला जाएगा। अंदर सोने के लिए राजा भूमि लेकर फ्लैट बनवा रहा है। उन फ्लैटों में खिड़कियां या तो होती नहीं या फिर बंद रखने का आदेश है। अंदर एसी है। राजा भला करेगा, भला करेगा...

तांत्रिक अब किसानों की आंखों से ओझल था। सिर्फ बेताल ने देखा जाना, तांत्रिक राजा की काया में प्रवेश कर गया था। अब राजा, राजा भी था और तांत्रिक भी।

राजा फिर किसान मजदूरों को तिलस्म की दुनिया में ले गया। यहां वास्तविक कुछ होता नहीं पर छाया बहुत मोहक होती है।³⁶

राजा : किसानी में क्या मिलता है? क्या जिंदगी भर किसानी करना चाहते हो?

किसान : नहीं, नहीं...

राजा : क्या तुम चाहते हो तुम्हारे बेटे पोते भी किसानी करें?

किसान : नहीं, नहीं

राजा : क्या किसान के बेटों को नौकरी चाहिए?

किसान : चाहिए, चाहिए, जरूर चाहिए।

राजा : नौकरी मिलने पर क्या मिलेगा?

किसान : पैसा

राजा : बिलकुल सही,

पैसा ही रंग रूप है, पैसा ही माल है

पैसा न हो तो आदमी चरखे की माल है।

भूमि अर्जन कानून के विरोधी तुम्हें चरखे की माल समझते है। इनका देशनिकाला जरूरी है। यादे रहे,

पैसे ही का अमीर के दिल में खयाल है

पैसा ही का फकीर भी करता सवाल है।

पैसा ही फौज, पैसा ही जालो जलाल है।

जन्नत की सैर करते हैं, पैसे के जोर से,

पैसा ही का 'नजीर' यह आदम गुलाम है,

पैसा ही रंग रूप है

पैसा ही माल है।

किसान : पैसा न हो तो आदमी चरखे की माल है। किसानों ने बात पूरी की।

राजा : पर पैसा मेहनत से आता है, या अपना कुछ त्याग करने से आता है। क्या तुम विकास के लिए अपनी भूमि के त्याग से करोड़ों रुपया कमाना चाहते हो?

किसान : हां, हां।

राजा : जो भी हां कहता है, अपने स्मार्ट फोन की लाइट जला के इस रात को रोशन कर दो।

किसानों के स्मार्ट फोनों या छोटे फोनों की लाइटों से सारा क्षेत्र ऐसा चमक रहा था, मानो जुगनू चमक रहे हों। किसान पहाड़ी पर चढ़ राजा के पास पहुंच जा रहे थे। हे राजनू मेरी भूमि का पट्टा ले लो। बचुआ को नौकरी दे दो। करोड़ों रुपया, फ्लैट, मोटरगाड़ी दे दो। राजा के अनेक हाथ उग आए थे। कुछ हाथों से राजा लोगों को पट्टे के एवज में पैसा दे रहा था और कुछ हाथों से बड़ी पूंजी रखने वालों को किसानों के पट्टे दे रहा था—किसी को 10 पट्टे, किसी को हजार। पट्टों का भुगतान बाद में होना था। कइयों ने बैंक से उधार लिया था। उन्हीं बैंकों से जहां पिछले साल करोड़ों गरीब लोगों ने खाते खोले थे और अपनी मेहनत और पसीने के करोड़ों रुपये जमा किए थे।

आज के भगवान पुनः पुष्प वर्षा करने लगे। गेहुंए भी थे, गौरांग भी। उनके साथ राजनाथ ने देखा मातृतुल्य भूमि का सौदा होते। वे भी अपने साथ लाए गंदे के फूल बरसा रहे थे।

राजा पेड़ पर लटके बेताल को देखकर मुस्कराया। तभी आकाशवाणी हुई :

‘ततघनुदिनमल्याल्प हास
व्यवच्छेददाद्धर्मार्थयोजगत्संक्षयो भविति ।’
उस भविष्य में
धर्म अर्थ हासोन्मुख होंगे
क्षय होगा धीरे धीरे सारी धरती का
‘ततश्चार्थ एवाभिजन हेतु ।’
सत्ता होगी उनकी
जिनकी पूंजी होगी
‘कपटवेष धारणमेव महत्त्व हेतु ।’
जिनके नकली चेहरे होंगे
केवल उन्हें महत्व मिलेगा
‘एवम् चाति लुब्धक राजा
सहाश्रैलानामन्तरद्रोणी : प्रजा संश्रियध्वन्ति ।’
राजशक्तियां लोलुप होंगी
जनता उनसे पीड़ित होकर
गहन गुफाओं में छिप छपकर दिन काटेगी
(गहन गुफाएं ये सचमुच की या अपने कुंठित अंतर की)

—विष्णुपुराण

अधोरी मसान साधना में व्यस्त था। उसने अपनी अधोरी शक्ति से मोहनदास करमचंद, सहजानंद सरस्वती, बाबा रामचंद्र, राहुल सांकृत्यायन, राममनोहर लोहिया, पुचलापल्लई सुंदरैया, कर्पूरी ठाकुर, सीताराम येचुरी, कोबाड गांधी और मेधा पाटकर की मीटिंग बुलाई थी।³⁷ दो और लोग थे जिन्हें अधोरी ने अपने दम से तांत्रिक से छुड़ा लिया था— प्रोतिरोधी और मालती। रोहित वेमुला और कन्हैया भी आकर खड़े हो गए। ‘ऑल्टरनेटिव’ पर सेमिनार चल रहा था।³⁸

अधोरी पर्दाफाश कर रहा था, राजा का किसानों के खिलाफ षड्यंत्र। राजा के सबसे बड़े तांत्रिक का टोटका है न्यूनतम समर्थन मूल्य। अंग्रेजी में एमएसपी। किसान को अपनी मेहनत का चौथा हिस्सा भी नहीं मिलता। अन्न सस्ता, तो शहर में मजदूर भी सस्ता। हर मंडी में टोटका है कि किसान को कम से कम पैसा मिले। ये टोटके ऐसे कि बड़े से बड़ा किसान भी कहे कि जमीन ले ले, पैसा दे, दे। तिस पर दूसरा टोटका, युवाओं पर। बाप को बोल, जमीन सरकार को बेचे, लड़के के लिए नौकरी पक्की, खुद के बुढ़ापे के लिए पैसा। पैसा ही पैसा।

ये राजा भी अघोरी है। इसे सब अच्छा लगता है। मालती के कलखुल की अरहर की दाल भी और श्मशान की शराब भी। अब कानून जाए तेल लेने। इसके पास अनेक टोटके हैं। आकाशवाणी, एसएमएस, ट्वीट, फेसबुक, खबरी चैनल। एक रंग है, भगवा जो सफेद, नीला और लाल सभी को लील रहा है। मैंने तुम्हें बुलाया कि इस महाअघोरी को तंत्र मंत्र से कंट्रोल करो, वरना मारे जाओगे। इतिहास शायद तुम्हें भूल जाए। अब तुम सोचो, फिर मैं तुम्हें बताऊंगा।

कहानीकार ने आगे के कितने ही पन्ने किसी ऐसी स्याही से लिखे थे जो दिखाई नहीं दे रही थी। अंत में लिखा था : अघोरी ने 14 खोपड़ियों में 14 अतिथियों को शराब पिलाई। मोहनदास और कुछ लोगों ने शराब न पी। हरेक को एक खोपड़ी गिफ्ट में दी थी। सब एक एक खोपड़ी सामने रख प्रेस सम्मेलन में बैठे थे। प्रवक्ता बोला हमने किसान मजदूर के हित में काम करने के लिए सोचा है। पर हमारे बीच आइडियोलोजिकल डिफरेंस हैं, जो बने रहेंगे।

वहीं अवधूत भी था...। सोच रहा था वो खाली पन्ने किस स्याही के लिखे थे? क्या वो उन्हें पढ़ पाएगा? उसे एक कविता याद हो आई।

राजा बोला रात है
मंत्री बोला रात है
सभी बोले रात है
ये सुबह सुबह की बात है।

सुबह हो चुकी थी। पांडुलिपि की कविता को झुठलाते हुए, पहले कन्हैया आया, फिर वेमुला, फिर सहजानंद और अन्य लोग। दूर कोबाड और सीताराम का सहारा लिए वो कृषकाय बूढ़ा भी चला आ रहा था।

संदर्भ

- वैदिक से उत्तर वैदिक काल तक राजा और भूमि संबंधों की व्याख्या रामशरण जोशी 'प्राचीन भारत में राजनीति विचार और संस्थाएं' के परिशिष्ट 2 : 'गोपति से भूपति : राजा की बदलती हुई स्थिति का सिंहावलोकन' पृ. 392-401 में मिलती है। राजकमल प्रकाशन, 1992 (2007), नई दिल्ली।
- ये आंकड़ा गिगोरी एस. एलिकजेंडर की पुस्तक 'द ग्लोबल डिबेट ओर कॉन्स्टिट्यूशनल प्रॉपर्टी : लेसंज प्रॉम टेकिंग ज्यूरिस प्यूर्डिस' (शिकागो : शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006) पृ. 52 हमें ये रेफरन्स मिला प्रिया एस. गुप्ता के लेख, 'द पिक्यूलियर सर्कमस्टैंसिस ऑफ एमिनेंट डोमेन इन इंडिया,' ऑसगूडे हॉल लॉ जर्नल 49.3 (2012) पृ. 45-489
- हर सरकार के पास ये अधिकार होता है कि वह कोई भी निजी संपत्ति का मुआवजा देकर अधिग्रहण कर ले। इसी को एमिनेंट डोमेन कहते हैं। ये कहानी एक तरह से एमिनेंट डोमेन की ही कहानी है।
- necessitas publica major est quam privata.
- salus populi est superema lex.
- प्रेस इन्फार्मेशन ब्यूरो, प्रधानमंत्री कार्यालय की विज्ञप्ति दिनांक 22 मार्च, 2015। आकाशवाणी पर प्रधानमंत्री की 'मन की बात' से उद्धृत और आधारित।
- धर्मवीर भारती के नाटक अंधायुग के पहले अंक 'कौरवनगरी' में धृतराष्ट्र का कथन। प्रकाशक किताब पहल। पहला संस्करण 1965
- सरकार द्वारा अनाज और दालों का न्यूनतम समर्थन मूल्य बहुत कम होता है। फसल करने के बाद, किसान जल्दी से बेच, अपना कर्जा उतारना चाहता है। ऐसे में अक्सर उसे न्यूनतम मूल्य भी नहीं मिलता। बहुत मुश्किल से जो खर्चा किया वो भी नहीं। 2016 में अरहर का न्यूनतम मूल्य रु. 5000.00 प्रति क्विंटल तय किया है, जब अरहर की दाल बाजार में रु. 20,000.00 प्रति क्विंटल है।
- अंधायुग के तीसरे अंक 'अश्वत्थामा का अर्द्धसत्य' में अश्वत्थामा का कथन।

10. धर्मवीर भारती के नाटक अंधायुग के अंक-2, 'पशु का उदय', में अश्वत्थामा बोल रहा है।
11. तेकाबा और अन्य बनाम सकूमरेन और अन्य, 2004
12. सरदार पटेल ने इस बहस की शुरुआत शुक्रवार, 2 मई, 1947 को प्रातः 9 बजे की। मेंबरान ने डिबेट में हिस्सा लिया। कुछ मेंबरान के कथनों से उद्धरित अथवा उन पर आधारित। स्रोत : इंटरिम रिपोर्ट ऑन फंडामेंटल राइट्स, कांस्टिट्यूट एसेंबली डिबेट, ऑफिशियल रिपोर्ट, वॉल्यूम 1, पृ. 511 535, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली 1985
13. नेहरू की यह स्पीच और उसके बाद दो दिन (10 12 सितंबर, 1949) की डिबेट से उद्धृत और आधारित। 11 सितंबर को इतवार था। स्रोत : कांस्टिट्यूट एसेंबली डिबेट, ऑफिशियल रिपोर्ट, वॉल्यूम 9, पृ. 1191-1311, लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली 1985
14. कन्हैया जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्रसंघ का अध्यक्ष 2015-16 में बना। कन्हैया पर राष्ट्रद्रोह का आरोप लगा क्योंकि एक प्रोग्राम के दौरान कश्मीर की आजादी के नारे लगे थे। कुछ बड़बोले लोगों ने पूरे विश्वविद्यालय को ही राष्ट्रद्रोही करार दिया। यह कहानी लिखते समय कन्हैया जमानत पर रिहा थे। उन पर कचहरी में केस चल रहा था।
15. आवेडकर ने यह बातें संविधान के चौथे संशोधन पर हुई डिबेट के दौरान कहीं। तारीख 19 मार्च, 1955। राज्यसभा, कांस्टिट्यूशनल एसेंबली डिबेट, पृष्ठ 2451।
16. जवाहर लाल नेहरू ने 10 मई, 1951 को संविधान में पहले संशोधन के 'स्टेटमेंट' ऑफ ऑब्जेक्ट्स एंड रीजंस में ये बात कही।
17. दीपेश चक्रवर्ती ने अपनी पुस्तक प्रोविंशियलाकजिंग यूरोप में बहुत समझाकर कही है। ये पुस्तक प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस ने सन् 2000 में छापी।
18. नंद किशोर गुप्ता एंड अदर्स उत्तर प्रदेश राज्य एंड अदर्स 10 SCC 282 (2010)
19. कहते हैं कि हरमद वाहिनी कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी के लड़ाकों की फौज थी, जो कभी कभी पार्टी के समर्थन में कानून भी हाथ में ले लेते थे।
20. दैनिक स्टेट्समैन, 15 मार्च, 2007
21. द टेलिग्राफ, 17 मार्च 2007
22. वियतनाम युद्ध में अमरीका की बीसवों इंफेन्ट्री रेजीमेण्ट की पहली बटेलियन की सी कंपनी ने वियतनाम के सोन माई गांव (जो उनके नक्शे में माई लाई नाम से दर्ज है) में अपने रिकार्ड के अनुसार 347 आदमी, औरतों, बच्चों और गोदी खेलने वाले बच्चों का कत्ले आम किया था। जवान औरतों का रेप किया और उनके अंग भग किए। उनका एक चित्र जिसमें 8 10 साल की निःवस्त्र लड़की सड़क पर अन्य बच्चों के साथ भाग रही है, अमरीकी शक्ति और नृशंसता का प्रतीक बना है। माई लाई फिर और देशों में भिन्न तरीकों से हुआ।
23. ऐतरेय ब्राह्मण के चतुर्थ अध्याय के सप्तम खंड में कश्यप ऋषि ने भुवन के पुत्र विश्वकर्मा नामक राजा का अभिषेक किया। उसके फलस्वरूप विश्वकर्मा भौवन सभी दिशाओं में समुद्र तीरपर्यन्त पृथ्वी को जीतकर यजन किया। तब भूमि ने राजा विश्वकर्मा को कहा, हे भौवन विश्वकर्मान्! मुझे कोई भी मनुष्य किसी को नहीं दे सकता और तुम मुझे दूसरे को देना चाहते हो अरे मैं खसमुद्र के पानी, में डूब जाऊंगी। तुम्हारा यह कश्यप को भूमिप्रतिग्रह का प्रयत्न व्यर्थ हो जाएगा। खअर्थात् इस प्रकार भूमि का डूबना भी इस महाभिषेक से निवारित हो सका।
*न मा मर्त्यः कश्यप दातुमर्हति,
विश्वकर्मन्भौवन मां दिदासिथ।
निमङ्क्ष्येष्ह सलिलस्य मध्ये,
मोघस्य एष कश्यपायाष्स संगर इति ॥*
24. इस लड़ाई का पटाक्षेप नवम्बर, 2007 में जाकर हुआ जब हरमद वाहिनी और पुलिस ने मिलकर फिर प्रोतिरोधी सरकार का पटाक्षेप किया।
25. लेखक की चिंता जायज थी। पांडुलिपि में लेखक ने कोष्ठक में लिख ये बात छोड़ दी थी। हमने जस का तस दिया है।
26. नेशनल पावर कारपोरेशन (एनटीपीसी) बिजली बनाने वाली कंपनी है। जमीन अधिग्रहण होने पर करीब करीब हर जगह विरोध का सामना करना पड़ता है।

27. पार्लियामेंट की स्टैंडिंग कमेटी ऑफ रूरल डेवलपमेंट जिसकी अध्यक्ष सुमित्रा महाजन थीं। उसमें पृष्ठ 11 पर प्लानिंग कमीशन की 2008 की एक रपट का हवाला दिया गया है। इसमें कहा गया है कि वाल्टर फर्नांडीज के एक गैर सरकारी अध्ययन में बताया गया है कि 1947 से 2004 के बीच 6 करोड़ लोग ढाई करोड़ हेक्टेयर भूमि से विस्थापित हुये। इसमें 70 लाख हेक्टेयर के जंगल और 60 लाख हेक्टेयर में चारागाह जैसी गांव की साझा जमीन थी।
28. सरसंघ भी ऐसे ही हैं, अपने विचारों पर अटल रहने वाले। उनके रक्तबीज भी ऐसे ही होते हैं।
29. किसी दिन कहानी उपन्यासों में लिखना पड़ेगा, कानूनी पंच: 'सिगरेट स्मोकिंग स्वास्थ्य के लिए इंजूरियस है।
30. सीताराम येचुरी और अवधूत का वार्तालाप कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी की एक प्रेस विज्ञापित पर आधारित है। CPI (19) के एक नोट पर आधारित है 'व्हॉट इज द लैंड ओरिडीनेस अबाउट' देखें cpim.org/èviewsèwhat-land-ordinace-about.
31. लोकसभा में 9 मार्च, 2016 की बहस उसकी वेबसाइट www.parliament.nic पर उपलब्ध है। इस मुद्दे पर बहस 10 मार्च को भी चली थी।
32. गांधी (जी) ने ये बात 03.12.1910 के इंडियन ओपिनियन में लिखी थी। संसद सदस्य कल्याण बैनर्जी ने इसे अपने वक्तव्य में उद्धृत किया था।
33. शहीद भगतसिंह को सांसद प्रहलाद जोशी ने उद्धृत किया था।
34. सहजानंद सरस्वती को सांसद डॉ. अरुण कुमार ने उद्धृत किया था।
35. मंत्री जी ने 10 मार्च, 2015 को लोकसभा में जवाब दिया था। यह अंश इसी से उद्धृत है। संपूर्ण उत्तर लोकसभा की वेबसाइट www.parliament.nic पर उपलब्ध है। छपा हुई उसी लाइब्रेरी में उपलब्ध है, जहां ये पांडुलिपि मिली थी।
36. एक समाजशास्त्री हुए हैं बौद्धीलार्द। वे कहते हैं कि इतिहास का तो अंत हो गया है। आभास ने यथार्थ को मार डाला है। अब ईसान इस आभासी दुनिया में रहने लगा है। देखें उनकी किताब इम्पौसिबिल एक्सचेंज, लंदन के वर्सा पब्लिशर्स ने 2001 में छपी।
37. मोहनदास करमचन्द गांधी (जी) हैं। सहजानंद सरस्वती पिछली शताब्दी के दूसरे और तीसरे दशक के किसानों के सबसे महत्वपूर्ण लीडर थे। उन्होंने अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना की थी। बाबा रामचंद ने उत्तर प्रदेश किसान सभा के अंतर्गत 1920 के मध्य में अवध के किसानों और जौनपुर प्रतापगढ़ और इलाहाबाद में किसानों के आंदोलनों की अगुवाई की थी। राहुल सांकृत्यायन यायावर थे। महापंडित ने समाजशास्त्र की अपनी अवधारणाएं प्रस्तुत कीं। राममनोहर लोहिया एक स्वतंत्रता सेनानी, प्रखर समाजवादी थे। उन्होंने हिंद किसान पंचायत का भी गठन किया था। पुचलाषल्लई सुंदरैया कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्ससिस्ट के संस्थापक सदस्यों में एक थे। इन्होंने तेलंगाना के किसान आंदोलन का नेतृत्व किया था। कर्पूरी ठाकुर स्वतंत्रता सेनानी, समाजवादी, जन से जननायक बने। भारत छोड़ो आंदोलन में 26 माह जेल, 1970-1979 में बिहार के मुख्यमंत्री रहे। सीताराम येचुरी सीपीएम के सदस्य हैं। कोबाड गांधी प्रतिबंधित भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी माओइस्ट के सदस्य बताए जाते हैं। कई साल जेल में रहने के बाद जून 2016 में जेल से रिहा हुए। मेधा पाटकर एक जुझारू नेता हैं। इनकी नर्मदा बचाओ आंदोलन और नेशनल आलार्थेस फॉर पीपुल्स मूवमेंट में बड़ी भूमिका है।
38. रोहित वेमुला दलित हैं जिन्हें हैदराबाद विश्वविद्यालय के होस्टल के निष्कासित किया गया था और उनकी फैलोशिप रोक ली गई थी। उन्हें आत्महत्या करने पर मजबूर किया गया। कन्हैया जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की छात्र परिषद के 2015-16 के अध्यक्ष रहे। उनके खिलाफ सरकार ने देशद्रोह का मुकदमा दायर किया है।

रवि कथा

ममता कालिया

इन दिनों वक्त मेरे लिए गड्डमड्ड हो रहा है। एक साथ मैं तीन समय में चल निकल रही हूँ। आज बारह सितंबर सन् 2016 है, पिछले साल बारह सितंबर को रवि मेरे पास थे। तो यह सन् 2011 का बारह सितंबर कहां से आ गया। हम दोनों अपोलो हॉस्पिटल में डॉ. सुभाष गुप्ता के कमरे में हैं। वे स्क्रीन पर रवि की सी.टी. स्कैन और पैट स्कैन की अनगिनत छवियों का निरीक्षण कर रहे हैं। डॉक्टर ने मायूसी में सिर हिलाया है— “मित्र कालिया आपके पास बस छह महीने का वक्त बचा है। अपने हिसाब किताब संभाल लें। आपके जिगर में तीन सेंटीमीटर का फोड़ा है।” मैं तड़प जाती हूँ।

रवि रुआंसे चेहरे से हंस रहे हैं, “डॉक्टर इस छह महीने में आज का दिन शामिल है या नहीं?”

डॉक्टर नहीं हंसते।

मैं कहती हूँ, “डॉक्टर मेरा जिगर दुरुस्त है। आप मेरा आधा जिगर इनके लगा दें।”

डॉक्टर फिर सिर हिला देता है, “वह चरण ये पार कर चुके हैं। अब प्रत्यारोपण नहीं हो सकेगा।”

डॉक्टर की सलाह है कि रवि को फौरन हॉस्पिटल में दाखिल हो जाना चाहिए।

रवि के सामने अठारह सितंबर को होने वाले ज्ञानपीठ पुरस्कार का दायित्व है। उन्नीस सितंबर को अगले ज्ञानपीठ की प्रवर समिति के चयन हेतु बैठक है। वे छुट्टी कैसे ले सकते हैं।

रवि डॉक्टर से वादा करते हैं, “बीस सितंबर की सुबह मैं आकर दाखिल हो जाऊंगा।”

रवींद्र कालिया की जीवनशैली को जिगर ने हरा दिया था पर उनके जब्बे को हरा नहीं पाया। उन्नीस सितंबर तक वे ऐसी रफ्तार से कामों में लगे रहे कि किसी को पता ही नहीं चला कि उनकी

सेहत ठीक नहीं। कौल के पक्के रवि बीस सितंबर को अपोलो में दाखिल हो गए। दफ्तर से फोन आए जा रहे थे। रवि को हर फोन का खुद जवाब देना था। एक बांह में कई ड्रिप लटकाने के लिए कलाई में सुई लगाकर टेप चिपका दिया गया। रवि दूसरे हाथ से फोन सुनते रहे। थोड़ी देर में सिस्टर ने दूसरी बांह भी कब्जे में ले ली। उनके दोनों फोन बंदकर दराज में रख दिए। अगले पांच दिन बेहद जांच पड़ताल, निरीक्षण परीक्षण, फिर फिर परीक्षण और अंत में एक समानांतर डमी शल्यक्रिया। इतने सब से केवल पुष्टि की गई कि असली इलाज में रुग्ण स्थल तक कैसे पहुंचा जाएगा। ओरल कैमोथेरेपी की एक दवा जो शहर में बहुत मुश्किल से उपलब्ध हुई, रवि ने दो गोली खाने के बाद, इनकार कर दिया। अन्य बहुत सी दवाओं के अंवार लेकर हम घर लौटे।

रवि फिर दफ्तर जाने लगे। संकट में दफ्तर भी शरणस्थल बन जाता है। उनके दिमाग में 'नया ज्ञानोदय' और ज्ञानपीठ के प्रकाशनों के विषय में बेशुमार योजनाएं थीं।

मैं लगातार चिंतित रहती मगर चमत्कृत भी होती। रवि की प्रखरता में कोई अंतर नहीं आया। उनके अंदर रचनात्मक ऊर्जा का अजस्र स्रोत था। भूख लगनी बंद हो गई थी। पूरा दिन केवल साबूदाने और दलिया पर गुजार देते मगर फोन पर कोई बात करे, वे बड़े जोश से बोलते, "मैं ठीक हूँ, अपनी सुनाओ।" फोन पर लंबी बातचीत करना, सुडोकू खेलना और इंटरनेट पर पढ़ना उनके प्रिय काम थे। उन्होंने अपनी बीमारी की बाबत इंटरनेट पर इतनी जानकारी हासिल कर ली थी कि मेरा और मित्रों का यह कहना कि 'तुम चिंता न करो, एकदम ठीक हो जाओगे' सीमित अर्थ रखता था। Portal Veins अवरुद्ध होने का तात्पर्य, उपचार की प्रक्रिया, विकिरण के दूरगामी प्रभाव, सब तो उन्होंने पढ़ जान लिया था। मयनोशी तो अगस्त 2011 से ही छूट गई थी जब पेटदर्द रहने लगा था। अब उनकी शामें होमियोपैथी चिकित्सा के अध्ययन में डूबी रहीं। कमाल की बात यह कि उन्होंने हर ऐलोपैथिक दवा का होमियोपैथिक विकल्प ढूंढ लिया था। होमियोपैथी और ज्योतिषशास्त्र में उनकी पुरानी दिलचस्पी थी। होमियोपैथिक दवाओं की अनिवार्यता हमारे जीवन में हमेशा खड़ी रही। पहले जब बच्चे छोटे थे, उन्हें भरसक होमियो दवाएं देते रहे। बाद में पंजाब से माताजी हमारे पास रहने आ गईं। उन्हें सांस, खांसी, जोड़ों का दर्द आदि असाध्य बीमारियां थीं जो अंग्रेजी दवाओं से ज्यादा उलझ जातीं। डॉक्टर एक बीमारी ठीक करते तो दूसरी उभर आती। तब रवि ने उनके इलाज के लिए इलाहाबाद नगर के मशहूर होमियोपैथ चिकित्सकों से मशविरा किया और स्वयं भी होमियोपैथी के समस्त ग्रंथ खरीद लाए। हैनमैन, कैंट वगैरह की पुस्तकें वे हेमिंग्वे और कामू जैसी तल्लीनता से पढ़ते। रवि की देखरेख में माताजी लंबी उम्र पाकर पीड़ारहित प्रयाण कर सकीं।

दो नवंबर से ग्यारह नवंबर सन् 2011 में जब उनकी YYY 90 रेडियो सर्जरी हुई तब भी होमियोपैथिक दवाओं का डब्बा और किताब उनके साथ अपोलो हॉस्पिटल गई। होश आने पर वहां की नर्सों और वॉर्ड बॉय आदि से उनके मर्ज पूछ करके मीठी गोलियां देना रवि का सबसे प्रिय काम था। बड़ा बेटा अनिरुद्ध कहता, "पापा अपनी आंखों को आराम दीजिए, ये सब अस्पताल के लोग हैं इन्हें अच्छे से अच्छा इलाज मिल जाता होगा।"

रवि कहते, "मेरी दवा से इनकी बीमारी जड़ से मिट जाएगी यह तो सोच।"

ग्यारह नवंबर 2011 को अपोलो हॉस्पिटल से छुट्टी मिली। रवि की ठसक यह कि अवशेष बिल का भुगतान मैं खुद जाकर करूंगा। मेरे और अन्नू के कहने का कोई असर नहीं पड़ा। लाचार, उनकी पहिया कुर्सी भुगतान काउंटर पर ले जाई गई। अपना वीजा कार्ड निकालकर उन्होंने बिल चुकाया। वापसी के लिए कार में बैठते ही बोले, "आज मेरी सालगिरह है। आज मैं पूरे दिन काम करूंगा। मुझे दफ्तर छोड़ दो।"

मैंने प्रतिवाद किया, “कमजोर हो गए हो, घर चलकर आराम करो।”

रवि अड़ गए, “मेरे काम में अड़ंगा मत डालो, अपनी मर्जी से जीने दो मुझे।”

अन्नू ने कहा, “जैसी आपकी मर्जी। आप पहले कुछ फल खा लीजिए।”

रवि ने कुछ नहीं खाया। दफ्तर पहुंचकर ही उनके चेहरे पर रौनक लौटी।

पिछले साल की सितंबर के इन्हीं दिनों अखिलेश ने रवि से कहा कि वे इलाहाबाद पर संस्मरण लिख दें। यह उनका मनमाफिक काम था। खुश हुए। शुरू किया। मुझसे बोले, “मैं इलाहाबाद पर पूरी किताब लिखना चाहता हूं पर कुछ जगहों के नाम धुंधले याद पड़ रहे हैं। हमने कब छोड़ा था इलाहाबाद?”

“सन्, 2003 में। बारह साल हो गए।”

“एक बार जाना पड़ेगा इलाहाबाद।”

“तो चलेंगे न। तुम जब कहो, चलें।”

रवि ने हामी नहीं भरी। अपने तक्रिए के नीचे कागज कलम रख लिया। रातों में आड़े तिरछे कुछ शब्द, कुछ वाक्य लिख लेते। नींद की गोली के बावजूद उन्हें नींद कम आती। कभी मेरी नींद खुल जाती तो मैं रोकती, “अभी तक सोये नहीं।” वे चुपचाप कागज तक्रिए के नीचे रख देते। जैसे ही मेरी आंख लगती, वे फिर कागज निकालकर लिखने लगते।

तभी तो उनके जाने के बाद उनके सिरहाने से एक उपन्यास के पच्चीस पन्ने, एक संस्मरण के टुकड़े। एक अधूरी कहानी और आधे सवाए जुमलों का खजाना मिला है। कभी किसी रचना के छपने की उन्हें जल्दी नहीं थी। खरामा खरामा लिखते। अगर रचना पूरी हो जाती तो कोई लघु पत्रिका ढूंढते जिसे रचना दी जाय। शायद यही वजह थी कि एक बार स्कूल में अन्नू से पूछा गया कि उसके माता पिता क्या करते हैं तो उसने जवाब दिया, मेरे पिता साहित्यकार हैं, मेरी मां व्यावसायिक लेखन करती हैं। इस विश्लेषण से रवि का खासा मनोरंजन हुआ। मैंने नाराज होकर अन्नू से इसकी वजह पूछी तो उसने कहा, “आप रंगबिरंगी पत्रिकाओं में लिखती हैं। पापा गंभीर पत्रिकाओं में लिखते हैं।” आठवीं में पढ़ने वाले अन्नू को मैं क्या समझाती कि कड़की के दिनों में यही पत्रिकाएं हमारी राहत रूह थीं। जितने नियम से वहां से मानदेय के चेक मिलते उतने नियम से तो मुझे कॉलेज से वेतन भी न मिलता।

कुछ दिन पहले टी.वी. पर सुने एक समाचार ने मुझे रुला दिया। समाचार वाचक ने एक चैनल पर कहा— “भारत देश में गरीब होना एक अपराध है। इसके साथ जो दृश्य दिखाया गया उसमें उड़ीसा का एक आदमी दाना मांझी अपनी पत्नी की बेजान देह को अकेले उठाकर दस मील पैदल चला। रास्ते में लोग खड़े देखते रहे। कोई दौड़कर कंधा देने नहीं आया।

इसके एक कदम आगे जाकर मैं कहूंगी भारत में बीमार होना ही अपराध और अभिशाप है। इस वर्ष जब चार जनवरी की सुबह रवि की तबियत बहुत खराब हो गई, उन्हें अस्पताल ले जाना जरूरी हो गया। कड़के की ठंड थी। रवि अर्द्धचेतन अवस्था में थे। कार की बजाय एंबुलेंस की जरूरत थी। पड़ोसी मित्र डी.एन. ठाकुर ने यशोदा अस्पताल का आपात फोन नंबर दिया। इंटरनेट से एक दो अन्य अस्पतालों के आपात नंबर लिए। यशोदा अस्पताल ने कहा, “एम्बुलेंस तो है पर डॉक्टर नहीं है। मरीज को भर्ती कर दीजिए। जब डॉक्टर आएंगे, देख लेंगे।” एक दूसरे अस्पताल ने कहा, “हमारे यहां डॉक्टर तो हैं पर एम्बुलेंस सब व्यस्त हैं, दोपहर बाद खाली होंगी।” दो अस्पतालों के आपात नंबरों पर घंटी जाती रही, किसी ने फोन नहीं उठाया।

अंत में किसी प्राइवेट एम्बुलेंस सर्विस का फोन नंबर मिला। उसने कहा, “दफ्तर जाने वालों का समय हो गया है। जगह जगह जाम मिलेगा।”

अनिरुद्ध ने कहा, “एम्बुलेंस को तो रास्ता देंगे लोग।”

झाड़वर बोला, “यह दिल्ली है, यहां मरते को रास्ता न दें लोग।” बड़ी मिन्नतें करके झाड़वर को घर आने के लिए राजी किया। यह मारुति ओम्नी में बनाई हुई एंबुलेंस थी जिसमें ऑक्सीजन सिलिंडर और मास्क तो था किंतु सीट की लंबाई कम थी। रवि की टांगें उसमें समा नहीं रही थीं। मैं रास्ते भर उनके घुटने पकड़कर उन्हें गिरने से संभालती रही और उनके साथ अपने को भी दिलासा देती रही, “अभी अस्पताल पहुंचकर सब ठीक हो जाएगा रवि। थोड़ी हिम्मत और करो।”

नोएडा की सड़कें वाहनों से खचाखच भरी थीं। एंबुलेंस के हूटर का उन पर कोई असर नहीं पड़ा। हूटर बजता रहा, हम जाम में फंसे रहे। अन्नू ने उतर उतरकर लोगों से प्रार्थना की, “मेरे पापा की हालत गंभीर है, एंबुलेंस को आगे निकलने दो।” किसी ने ध्यान नहीं दिया।

हमें सर गंगाराम अस्पताल पहुंचने में दो घंटे लग गए। बाधाएं अभी खत्म नहीं हुई थीं।

आपातकक्ष में केवल उन रोगियों का उपचार किया जाता है जिनके बचने की आशा हो। ‘विस्तर खाली नहीं है’ कहकर शेष रोगियों को वापस कर दिया जाता है।

संकट की इस घड़ी में डॉ. अर्चना कौल सिन्हा वरदान बनकर आगे आईं। उन्होंने अपनी जिम्मेदारी पर रवि को उपचार दिलवाया। उन्हें तत्काल वेंटिलेटर और अन्य जीवन रक्षक उपकरणों पर रखा गया। आपात कक्ष में केवल एक संबंधी रोगी के पास जा सकता है। दोनों बेटे अनिरुद्ध और प्रबुद्ध अंदर बाहर खड़े खड़े डॉक्टरों की आवाजाही और परीक्षण देखते रहे। मैं एक बार अंदर जाती, वहां से बौखलाकर बाहर आती और पेड़ के नीचे बैठ जाती। ऐसे कातर समय सबसे पहले मेरी दोस्त चित्रा मुद्गल सपरिवार पहुंची। अभी अवध के चले जाने के दुख से संभली नहीं थी। गिरती पड़ती चल रही थी पर आद्या, अनघा का हाथ थाम मुझ तक आईं। उसकी पुत्रवधू शैली दूर कैटीन से हमारे लिए चाय लेकर आईं। मेरे लिए समय जैसे थिर खड़ा था। घड़ी की सुई न जाने कहां अटकी थी?

रात तक रवि की हालत के लिए जो बयान जारी हुआ उसके मुताबिक उनकी स्थिति गंभीर मगर स्थिर थी। मन में आशा का संचार हुआ। अब समस्या दाखिले की थी। सैकड़ों विस्तरों वाले अस्पताल में रवि के लिए एक अदद विस्तर उपलब्ध नहीं था। अस्पताल ने ही इसका समाधान ढूंढा और अपने सहयोगी सिटी हॉस्पिटल के गहन चिकित्सा कक्ष में रवि को पहुंचाया। अन्नू ने हॉस्पिटल के पास एक होटल में कमरा ले लिया यह सोचकर कि हम बारी बारी से आराम कर लेंगे। किसी का भी मन ICU से हटने का नहीं था। हम ICU के बाहर नंगे तख्त पर निःशब्द बैठे रहे। न जाने कहां से दोस्तों को रवि की बीमारी की खबर लग गई। इतनी ठंड में रात भर दोस्त आते रहे, प्रांजल धर, कुमार अनुपम, प्रदीप सौरभ, चंद, कानन, जितेंद्र श्रीवास्तव, संतोष भारतीय। आधी रात की उड़ान से आनंद कक्कड़ आ गए मुंबई से। पुत्रवधू प्रज्ञा और पौत्र केशव शाम को ही पहुंच गए। सुबह तक अखिलेश, मनोज पांडे, संजय कुशवाहा, और असंख्य अन्य मित्र आए। किसी को विश्वास नहीं हो रहा था कि रवि पर समय भारी है।

अगले दिन यही स्थिति रही। मित्रों के आने से थोड़ी दिलासा मिलती तो वह गहन चिकित्सा कक्ष में झांककर एक बार फिर टूटने लगती। मदन कश्यप, अनामिका, वंदना राग, पंकज राग, गीताश्री...सबने अपनी उपस्थिति से आसरा दिया। डॉ. स्कंद सिन्हा नियम से आते, हमारे पेट में भोजन पहुंचाते और डॉक्टरों से रवि का हाल जानते। डॉ. स्कंद और डॉ. अर्चना की वजह से सभी डॉक्टरों ने रवि पर बहुत ध्यान दिया।

6 जनवरी की सुबह एक आश्चर्य की तरह रवि को होश आ गया। डॉक्टर ने वेंटिलेटर हटा दिया, आंखों पर से टेप निकाला और रवि ने अपने चारों ओर का दृश्य निहारा। कमजोरी बहुत

थी पर चैतन्य थे। अन्नू ने कहा, “पापा अपनी बाहों से सारी नलियां, सुइयां हटाने के लिए जिद कर रहे हैं।” ICU में आगंतुकों को जाने के लिए सुबह शाम केवल आधा घंटे का समय मिलता है और एक एक करके ही मरीज के पास आ सकते हैं। मैं गई। रवि ने पहचाना। हल्के से मुस्कराए। प्रज्ञा, केशव, अन्नू, मन्नु, अखिलेश, मनोज सब बारी बारी से गए। हम चिकित्सा जगत के चमत्कार के आगे विस्मित, विमुग्ध थे। शाम को विभूति नारायण राय और पद्मा आए। अंदर गए। उन्हें लगा पूरी चेतना लौटने में कुछ और वक्त लगेगा। अगले दिन वे फिर आए और उन्होंने कहा, “आज पहले से ज्यादा सुधार है।”

डॉक्टर हमें कह रहे थे कि वे जल्द रवि को प्राइवेट बॉर्ड में भेज देंगे। डॉ. निर्मला जैन, लीलाधर मंडलोई, अजय तिवारी, भरत तिवारी, रविकांत, वाजदा ज्ञान, गोकर्ण सिंह, विज्ञान भूषण, शर्मा दंपति, हर एक का आगमन हमारे अंदर नई आशा ऊर्जा और आश्वासन पैदा करता रहा। 8 जनवरी की दोपहर तक रवि सचेत थे। सुबह मैंने रवि से कहा, “रवि तद्भव का अंक आने ही वाला है, अखिलेश ने बताया।”

रवि ने धीरे से कहा, “च।”

पास खड़ी नर्स ने कहा, “पापा चाय मांगता?”

रवि बोले, “चश्मा।”

मैं समझ गई रवि तद्भव देखना चाहते हैं। उनका चश्मा और मोबाइल मेरे पर्स में मौजूद था लेकिन बिस्तर पर पड़ी नलियों, नारों के बीच चश्मा उनकी आंखों पर लगाना मुमकिन नहीं था। फिर तद्भव का नया अंक तब तक आया भी कहां था।

8 जनवरी की दोपहर डॉक्टर ने मुझे गहन चिकित्सा कक्ष में बुलाया। मैंने देखा रवि बिस्तर पर बैठे हांफ रहे हैं। डॉक्टर से पूछा। उन्होंने कहा वे अपने आप सांस नहीं ले पा रहें।”

मेरा धैर्य टूट गया, “आप देख क्या रहे हैं। उन्हें जीवन रक्षक मशीन पर रखिए, वेंटिलेटर लगाइए।”

एक बार फिर रवि को लिटाकर वही प्रक्रिया दोहराई गई जो 4 जनवरी को शुरू की गई थी। 8 की शाम, रात और 9 की सुबह ऐसी ही बीत गई। 9 जनवरी की दोपहर डॉक्टरों ने ‘सॉरी’ बोल दिया।

तो क्या रवि सिर्फ हम सब से विदा लेने के लिए ढाई दिन होश में आए। हर एक को मुस्कराकर देखा, पहचाना। शाश्वत साहित्य में इसी को बुझने से पहले दीपक का आलोक कहा गया है। 10 जनवरी रवि को लोदी रोड के विद्युत शवदाह स्थल पर लाए। यह जगह कुछ ऐसी अवस्थित है कि मुख्य सड़क से कहीं भी जाओ, यह मार्ग में पड़ती है। अनेक बार ऐसा हुआ कि रवि के मुंह से निला, “मेरा तो सारा काम यहीं कर देना।” मैंने हर बार बुरा माना। मैंने कहा, “कालिया नाम होने का यह मतलब नहीं कि तुम काले लतीफे सुनाते रहो।”

रवि ने कहा, “यहां कर्मकांड का पाखंड नहीं है। इससे मुझे चिढ़ है।”

सभी स्नेही स्वजन, जनवरी का पाला झेलते हुए आए उस अब रवि को विदा देने आए जिसके लिए दोस्त और दोस्ती, परिवार और गृहस्थी से भी ज्यादा प्रगाढ़ और प्रिय थी। राजीव कुमार ने मेरे हाथों में एक पत्रिका थमाई यह तद्भव की जनवरी 2016 की पहली प्रति थी जिसका पहला लेख था— ‘यह जो है इलाहाबाद’, रचनाकार रवींद्र कालिया। क्या ऐसा ही होता है रचनाकार का प्रयाण। लिखा, अधलिखा, छपा अनछपा सब अधबीच छूट जाता है, काल से होड़ में काल अपनी विकराल विजय घोषित कर देता है। संस्मरण के अंत में ‘क्रमशः’ लिखा हुआ काल को नहीं दिखा।

ओफ यह मैं किसके बारे में क्या लिख रही हूं। दोस्तो मेरे अब तक के लिखे पर ‘डिलीट’

दबाओ। मुझे आपके साथ रवींद्र कालिया की तकलीफ भरी तिमाही का सफर करना है या उनके छैल छबीले बयालीस साल का...

30 जनवरी सन् 1965 को जिस रवींद्र कालिया से चंडीगढ़ की गोष्ठी कहानी 'सवेरा' में मेरा परिचय हुआ वह बात बात में ठहाके लगाने वाला, अजीबोगरीब किस्से सुनाने वाला, चेन स्मोकर और बेचैन बुद्धिजीवी था। कद छह फीट और तीखे नाकनक्श, बेहद सुंदर हंसी और हर दिल अजीज। चंडीगढ़ में डॉ. इंद्रनाथ मदान से लेकर कमलेश्वर और राकेश तक, सब रवि से मुखातिब थे। जैसा शीर्षक से स्पष्ट है यह कहानी गोष्ठी पंजाब विश्वविद्यालय के समागार में सुबह के समय हुई। मेरे लिए हर परिचय नया था किंतु सबके महत्व से मैं परिचित थी। वहां आचार्य हजारीप्रसद द्विवेदी और डॉ. नामवर सिंह जैसे दिग्गज भी थे। नामवर जी ने मेरे आलेख की सराहना कर दी, मेरे लिए तो उस दिन यही बड़ा पुरस्कार बन गया। शाम को मैंने वापस दिल्ली जाने की इच्छा व्यक्त की। डॉ. मदान और राकेश जी ने मुझे समझाया कि अगले दिन चली जाना। डॉ. मदान ने कहा, "अभी तुम्हें सुखना झील दिखाएंगे।"

मैं अड़ गई। मैं कॉलेज में बताकर नहीं आई थी। छुट्टी का आवेदन भी नहीं किया था, यह सोचकर कि रविवार की सुबह गोष्ठी है तो मैं रात तक घर पहुंच ही जाऊंगी। मैं डॉ. इंदु बाली के यहां ठहरी थी। वहां से अपनी अटैची लेकर आई। सभी सीनियर रचनाकारों का बड़प्पन था कि मुझ जैसी चिरकुट सिलबिल लेखिका को छोड़ने बस अड़्डे तक आए।

ताज्जुब की तरह रवि ने घोषणा कर दी, "मैं भी दिल्ली जा रहा हूं।"

सब दोस्त हक्के बक्के रह गए। रवि के हाथ में अपना कोई असबाब भी नहीं था। राकेश जी और कमलेश जी ने उन्हें समझाने की कोशिश की, "उन्हें चले जाने दो। शाम को महफिल का रंग जमेगा।" रवि नहीं माने, बस में सवार हो गए।

दिन भर में, जिस शख्स ने मुझसे नहीं के बराबर बात की वह रवींद्र कालिया ही था। जबकि बाद में मुझे पता चला कि मुझे चंडीगढ़ गोष्ठी में बुलाने का प्रस्ताव रवि का ही था। इसकी कोई खबर उन्होंने मुझे न लगने दी। मैं जब बस में चढ़ी मेरी बगल वाली सीट पर रवींद्र कालिया विराजमान थे।

मेरा मन संशय और दुविधा, शिकवा और शिकायत से भरा हुआ था। चंडीगढ़ में दिन भर में इस इंसान ने मुझसे सबसे कम बात की थी। शनिवार शाम इंदु बाली जी के घर मुझे स्थापित कर ये जैसे भूल गए थे कि मैं भी आई हूं। मेरे साथ जाने की कोई तुक नहीं थी इस वक्त।

खैर सफर शुरू हुआ। बस के शोर में अपने शब्दों की कमी महसूस नहीं हुई। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के शब्दों में—

*कितना अच्छा होता है
एक दूसरे को बिना जाने
पास पास होना
और उस संगीत को सुनना
जो धमनियों में बजता है।*

बातचीत की पहल रवि ने की, "आप सिर्फ कविता लिखती और पढ़ती हैं।"

"नहीं, मैंने बहुत सा गद्य साहित्य पढ़ा है।"

"आपके प्रिय रचनाकार कौन से हैं?"

"प्रेमचंद, जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय और निर्मल वर्मा।"

"निर्मल वर्मा को आप कवि मानती हैं या कथाकार?"

“वे कहानी को कविता की तरह तरल और तन्मय बना देते हैं। ‘जलती झाड़ी’ और ‘वे दिन’ मेरी पसंदीदा पुस्तकें हैं।”

रवि ने अज्ञेय और निर्मल वर्मा पर निशाना साधते हुए कलावादी और व्यक्तिवादी लेखन पर हमला बोल दिया। उन्होंने कहा हिंदी कहानी इनकी अभिव्यक्ति से बहुत आगे निकल चुकी है। मुझे काफी बुरा लगा कि रवींद्र कालिया मेरे समस्त नायक ध्वस्त किए जा रहे हैं। वे रुके नहीं। उन्होंने उनकी भाषा और भावभूमि को नकार दिया। रवि बोले, “ये दोनों रचनाकार नकली स्थितियों पर बनावटी भाषा में लिखते हैं। इनकी भाषा में अनुवाद का स्वाद आता है।”

“आपको कौन से रचनाकार पसंद हैं।”

“मोहन राकेश, नागार्जुन, अमरकांत, नामवर सिंह।”

“नामवर जी तो आलोचक हैं।” मैंने कहा।

“इससे क्या। उन्होंने आलोचना को रचना की ऊंचाई दी है।”

तभी बस घरघराकर रुक गई। करनाल आ गया था। पता चला बस खराब हो गई है। हमने बसअड्डे पर चाय पी। रवि चाय के साथ सिगरेट पीते रहे। चाय से कम और सिगरेट की चमक से ज्यादा गर्मी निकल रही थी।

“आपने हैमिंग्वे पर गौर किया है?” रवि ने पूछा।

हैमिंग्वे मेरे प्रिय लेखक थे। उनकी हर रचना बारंबार पढ़ी थी। उन जैसी भाषा शैली और पौरुषमय अभिव्यक्ति बिरले साहित्यकारों को मिलती है।

हम काफी देर हैमिंग्वे पर बात करते रहे।

बस की मरम्मत हो गई और बस फिर चल पड़ी। एक अजनबी के साथ यह सफर उसी रात यादगार बन गया जब रवि के ठिकाने पहुंच हम रातभर बातें करते रहे। खयालों का एक खजाना था जो खाली होने का नाम ही नहीं ले रहा था। भूल गया हमें अपना सिलसिला, संत्रास और विघटन। बिल्स फिल्टर की गंध मेरे लिए सुगंध बन गई। सर्दी में गर्मी महसूस होने लगी।

रवि ने पहले दिन से उत्कट प्रेमी की भूमिका निभाही। हमारी मुलाकातों को एक सप्ताह भी नहीं बीता था कि रवि ने शादी का प्रस्ताव रख दिया। अब मुझे खयाल आया पापा। पापा जिस तरह मुझे तराश रहे थे उसमें प्यार, मुहब्बत और विवाह जैसी घिसीपिटी परिपाटियों के लिए कोई जगह नहीं थी। दफ्तर से लौटकर वे रोज मुझे इतनी बौद्धिक खुराक पिलाते, इतनी पुस्तकों से लाद देते कि मुझे दिन रात के चौबीस घंटे कम पड़ जाते।

मन ही मन मुझे यह सोचकर अच्छा लगा कि रवि के लिए प्रेम में विवाह का फ्रेम अनिवार्य था। वे चालू फॉर्मूले के अंतर्गत निष्कर्षहीन निकटता के पक्ष में कतई नहीं थे। मेरी मुश्किल यह थी कि पापा से यह बात कैसे कही जाय। रोज शाम ला बोहीम में रवि मेरी पेशी लेते, “कल तुमने पापा से बताया?” मैं कहती, “पापा ने मौका ही नहीं दिया।”

रवि रूठ जाते। उनकी सिगरेट की खपत बढ़ जाती। वे गुमसुम बैठ जाते। कपुचिनो कॉफी पड़ी पड़ी ठंडी हो जाती। रवि कहते, “तुम्हें किस बात का डर है? अगर वे हां कहें तो ठीक अगर ना कहें तो तुम अपनी स्लीपर्स पहनकर सीधी आ जाना 5055 संतनगर।” यह रवि का पता था। मैं कहती, “पापा के नक्शे में मेरी शादी का मुकाम है ही नहीं।” रवि हताश होकर कहते, “फिर ‘गुफा’ ही हमारी नियति है।” ला बोहीम रेस्तरां में एक गर्भगृह जैसा अधियारा एकांत कक्ष और बना हुआ था जहां प्रेमी जोड़े या खास मेहमान ही बैठते। रवि और हम यहीं बैठा करते। कभी कभी वहां जगह न मिलती तो यॉर्क (york) रेस्तरां के कोजी नुक में चले जाते। यह रवि की हिम्मत थी कि हमारी पूरी कोर्ट शिप के दौरान रवि ने मेरे साथ अच्छी से अच्छी जगह शामें बिताई, टैक्सी

में मुझे घर छोड़ा और कभी रुपये जैसे का रोना नहीं रोया। मैं पर्स लेकर चलती थी पर खोलती नहीं थी। मेरे मन में प्रेमी की पारंपरिक छवि ऐसे इंसान की थी जो मेरे ऊपर दिल और जेब दोनों कुरबान कर दे।

रवि के अंदर साहस और संकल्प का ऐसा अतिरेक था कि तमाम अनसुलझे सवालियों के बीच हमारी शादी हो गई। उनके कई हितैषियों ने उन्हें रोकने की कोशिश की, मेरे हितैषियों ने मुझे समझाया कि यह लड़का तुम्हें छह महीने में छोड़ देगा। 12 दिसंबर सन् 1915 की शाम मेरे एक हितैषी मेरी एक कविता दिखाते शामियाने में घूम रहे थे। यह कविता त्रैमासिक पत्रिका 'क ख ग' के ताजा अंक में मुखपृष्ठ पर बोल्ड अक्षरों में छपी थी।

प्यार शब्द घिसते घिसते चपटा हो गया है।

अब हमारी समझ में

सहवास आता है।

हितैषी कह रहे थे, "यह शादी नहीं, बस कॉन्ट्रैक्ट है।" लेकिन लेखक जगत ने हमारा साथ दिया। रवि के संपर्क और दोस्तियां व्यापक थीं। मेरे पापा पुरानी पीढ़ी के साथ साथ युवा पीढ़ी के भी निकट थे। शायद ही कोई ऐसा रचनाकार हो जो इस शादी में न आया हो। लेखन जगत के स्वागत भाव ने हमें बहुत बल दिया।

यह सब बताने का मकसद यह है कि रवि एक आजाद तबीयत इंसान थे। जब तक कोई उनकी आजादी में खलल नहीं डालता, वे दत्तचित्त अपना काम करते रहते। ऊर्जा इतनी कि दफ्तर से आकर कहानी लिखने बैठ जाते। मन होता तो मेरे साथ समुद्र तट की सैर कर आते। लौटकर कुछ देर हम दोनों अनुवाद का काम करते। रवि पंजाबी उपन्यास का हिंदी रूपांतर जुबानी बोलते और मैं लिखती जाती। यह काम इसलिए जरूरी था क्योंकि रवि ने अपनी शादी का सूट ए.के. हंगल से उधार सिलवाया था और उन्हें इसके पैसे चुकाने थे। उन दिनों शराब से उनका कोई वास्ता न था, हां सिगरेट पीते थे। मैं एस.एन.डी.टी. विश्वविद्यालय में पढ़ा रही थी। जीवन बढ़िया बीत रहा था। रवि के साथ अक्सर यह हुआ कि जब जीवन में सुख चैन आया, कोई न कोई जलजला उठा और उन्हें जड़ से हिला गया। 'धर्मयुग' में अच्छी भली बीत रही थी पत्रिका के सबसे चर्चित पृष्ठ उनके पास थे। भारती जी उनसे स्नेह करते थे। मगर रवि अपने सहकर्मी स्नेह कुमार चौधरी की खातिर भारती जी से टकरा गए। दूसरों के सवालियों को लेकर खलबलाना हम दोनों की फितरत में था। रवि ने यह नहीं सोचा कि चौधरी अपनी परेशानियों से खुद निपट लेगा। इन दोनों को इस्तीफा देने को उकसाने में मेरी गलती भी बड़ी भारी थी। साल बीतते न बीतते उसी चौधरी ने शुरू किए गए प्रेस की पार्टनरशिप में रवि को जबरदस्त धक्का दे दिया। धन से अधिक मन की हानि से रवि हिल गए। मुंबई से मन उचाट हो गया।

इलाहाबाद में अपना प्रेस जमाने और चलाने में नए किस्म के जीवट की जरूरत थी। जिससे रवि ने किस्तों पर प्रेस लिया, वे बड़े कड़ियल, अड़ियल, सिद्धांतवादी और आदर्शवादी प्रकाशक थे। श्री इंद्रचंद्र नारंग के एक भाई की, स्वाधीनता संग्राम में हत्या हो गई थी। वे स्वयं और उनकी पत्नी दोनों स्वाधीनता सेनानी थे किंतु वे सरकार से पेंशन नहीं लेते थे। उनका कहना था, "हम देश की आजादी के लिए जेल गए, अपने आदर्शों को नगद भुनाने के लिए नहीं।"

इसमें शक नहीं कि हमें इलाहाबाद में दुर्लभ और दिलदार दोस्त और सरपरस्त मिले। अशक जी और कौशल्या अशक ने उस वक्त रवि को स्नेह और आतिथ्य का संबल दिया जब उन्हें इसकी सबसे अधिक जरूरत थी। मैं उन दिनों मुंबई में एस.एन.डी.टी. के हास्टल में रहकर नौकरी कर रही थी, रवि इलाहाबाद में नए काम की चुनौतियों से जूझ रहे थे। अगर मशीन मैन गैरहाजिर

होता तो रवि मशीन चलाने लगते। चपरासी न होता तो खुद रिक्श में जाकर स्याही के ड्रम लेकर आते। अल्पसंख्यकों के मुहल्ले रानी मंडी में मुहर्रम के दिन 'हाय हुसैन, हाय हुसैन' का मातम सुनते बीतते। हिंदी भवन और लोकभारती प्रकाशन के अलावा और कहीं से काम का भुगतान मिलना दुश्कर था। हर महीने प्रेस के कर्ज की किस्त चुकाना, कारीगरों को तनखा देना, मकान का किराया भरना और बिजली का भारी बिल अदा करना रवि की जिम्मेदारी थी। इलाहाबाद जैसे लखड़ शहर से काम की इतनी उगाही होनी मुश्किल थी। रवि सुस्त और उदास रहने लगे। उन्हें अकेले प्रेस की गाड़ी खींचनी थी और जैसे तैसे घर की भी। एक दिन वे जॉन्सनगंज चौराहे पर स्थित डॉ. के.सी. दरबारी के यहां अपना रक्तचाप दिखलाने गए तो पता चला कि उनका रक्तचाप बहुत मंद है। डॉक्टर ने दवाई दी और सलाह कि कभी तबियत बहुत गिरी हुई लगे तो एक पैग विस्की ले लिया करें। रवि को यह सलाह इतनी पसंद आई कि डॉ. दरबारी उनके मित्र बन गए। हालांकि मैंने डॉक्टर दरबारी को कभी पीते नहीं देखा।

जब मैं छुट्टियों में बंबई से घर आई, रवि ने दिखाया, "देखो मैंने ये सब खरीदा है।" घर में एक पलंग था, दो खपच्ची वाले रैक, एक पानी रखने का कांच का जग और दो शीशे के गिलास। देर शाम प्रेस बंद करने के बाद रवि ने कहा, "मुझे डॉक्टर ने बताया है कि दो पैग विस्की लेनी जरूरी है नहीं तो मेरा दम धुट जाएगा।" मैं चकराई पर चुप रही। इससे पहले कभी कभार ओबेराय के घर में रवि को पीते देखा था और हर बार मैंने नाक भौं सिकोड़ी थी। ओबेराय की जीवनशैली से मैं चिढ़ती थी। इसके बाद सिर्फ बैसाखी पर रवि को बियर पीते देखा था। दो तीन दिन में मेरी छुट्टी खत्म हो गई और मैं वापस चली गई।

मुंबई पहुंचकर भी रवि की फिफ्र लगी रहती। पता नहीं कब, क्या खाते हैं, कैसे प्रेस चलाते हैं, कहीं सिर पर उधार तो नहीं चढ़ रहा।

दूरस्थ दांपत्य की सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि यह कल्पना और अनुमान पर चलता है। उन दिनों आज की तरह मोबाइल फोन का जमाना नहीं था कि मिनट मिनट की जानकारी मिल सके। फोन करना बहुत महंगा था। चिट्ठियों में प्रेम भरी बातें लिखने के बाद हिदायतें लिखना नागवार लगता। साल भर बाद जब नाटकीय षड्यंत्र के तहत मेरी नौकरी छूट गई और हारे हुए खिलाड़ी की तरह मैं वापस घर पहुंची, रवि ने स्टेशन पर सिगरेट का कश लेते हुए यही कहा, "अच्छा है छूट गई, छोड़ने में तुम्हें इससे ज्यादा तकलीफ होती।"

एक भी क्षण रवि ने मुझे उदास नहीं रहने दिया। मेरे आने मात्र से वे बेहद खुश हो गए। इलाहाबाद के दोस्तों से मिलवाया, सड़कों का वैभव दिखाया, कॉफी हाउस के चक्कर लगाए, घर से पैदल मद्रास कैफे तक घूमे, चौक के चप्पे चप्पे से परिचित करवाया। दूसरे शब्दों में रवि ने एक बंबईवाली को इलाहाबादी बनाने का काम हाथ में ले लिया।

नगर में आए दिन होने वाली गोष्ठियों ने भी हमारा मन लगाया। दोस्तों की सादगी और सहजता, साफगोई और बेतकल्लुफी ऐसी थी कि हम वहीं के होकर रह गए।

रवि ने अपने सुराप्रेम के चाहे जितने किस्से लिखे हों, मैं जानती हूँ कि उन्होंने घर परिवार के प्रति अपनी हर जिम्मेदारी निभाई। ऐसा कभी नहीं हुआ कि घर में राशन खत्म है और रवि रसपान में लगे हैं। सरकारी विज्ञापनों में उन दिनों एक पोस्टर छपता था— मद्यपान करने वाले परिवार और मद्यपान छोड़ देने वाले परिवार का। मद्यप आदमी आनी पत्नी को पीटता दिखाया जाता था, उसके बच्चे रोते हुए। सुधरे हुए आदमी की पत्नी हंसती हुई और बच्चे खेलते पढ़ते हुए दर्शाए जाते। रवि इस किस्म के मद्यप्रेमी नहीं थे। उनकी संघर्षभरी दिनचर्या में शराब एक छोटा सा अल्पविराम थी। मुझे लगता, बाकी दोस्त तो घर जाकर चैन से सो जाएंगे। रवि मशीन

रूम में जाकर मशीन चलाएंगे। भगवान ने रवि को ऐसी कद काठी और ऐसा रंग रूप दिया था कि संघर्ष के निशान उनके व्यक्तित्व पर पता ही नहीं चलते। उनके ऊपर यह सदाबहार गाना बिल्कुल सटीक बैठता था—

बरबादियों का सोग मनाना फिजूल था।

बरबादियों का जश्न मनाता चला गया।

हर फिक्र को धुएं में उड़ाता चला गया।

सबसे बड़ी बात थी कि रवि अपनी मुफलिसी और तंगदस्ती में भी हमेशा खुश और मस्त रहते। रानीमंडी में रहते हुए उन्होंने अपनी यादगार कहानियां लिखीं। 'खुदा सही सलामत है' जैसा महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखा और मुझे लगातार लिखने के लिए प्रेरित किया। कई बार लिखने का नशा बोटल के नशे को पछाड़ देता और रवि केवल चाय व सिगरेट के सहारे अपने कथा संसार में डूबे रहते। ऐसे समय प्रेस के प्रूफ पढ़ने का काम मैं अपने जिम्मे ले लेती। मशीनों के चक्के चलते रहते।

जब बच्चे छोटे थे, रवि से चिपके रहते। उन्हें भी कोई दिक्कत न होती। मैंने कॉलेज में नौकरी शुरू कर दी तो बच्चे ज्यादा समय रवि के साथ बिताते। अब मुझे रवि के सिगरेट पीने से डर लगता। बच्चों पर धुएं का प्रदूषण असर कर सकता था पर बच्चे उनसे दूर रहते ही नहीं थे। सन् 1997 से रवि की माताजी स्थायी रूप से हमारे पास आ गईं तब जाकर यह समस्या दूर हुई। रवि के धूम्रपान और मद्यपान पर भी कुछ बंदिश लगी क्योंकि मां के सामने रवि एकदम राजा बेटा बनकर रहते।

हम बीस बरस रानीमंडी में रहे। इन बरसों में हम लोगों ने खूब लिखा। हमारे संपादन में कई साहित्यिक संकलन और पत्र निकले जिनमें 'वर्ष : अमरकांत' रचनाकार अमरकांत पर केंद्रित था तो 'गली कूचे' रवि की तब तक की लिखी कुल कहानियों का संकलन। सन् 1990 से 'वर्तमान साहित्य' के कहानी महाविशेषांक की गहमागहमी आरंभ हो गई जिसका संपादन रवि ने किया। शुरू में यह सीमित पृष्ठों के अंक के रूप में प्रस्तावित था लेकिन रवि ने अपने जोश ओ खरोश से इसे वृहद् आकार दे दिया। यहां तक कि उसके दो खंड प्रकाशित करने पड़े। प्रधान संपादक विभूति नारायण राय चुपचाप रवि का हंगामा छाप अभियान देखते और अपना बजट बढ़ाते जाते। सन् 1990 समूचा इस संपादन में लग गया। सभी रचनाकारों ने इस वार्षिकांक के लिए खास तौर पर नवीन कहानी लिखकर भेजी। स्थापित, चर्चित और संभावनाशील रचनाकारों का ऐसा समागम किसी अन्य संकलन में कभी हुआ न होगा। हर एक लेखक को रवि ने जाने कितनी बार फोन किए होंगे। कई वरिष्ठ लेखकों को तो रोज ही एस.टी.डी. कॉल किया जाता कहानी की प्रगति पूछने के लिए। रवि की अपनी हॉबी थी काम करने की। काम को जुनून की हद तक ले जाना। एक लेखिका ने अपनी कहानी भेजी मगर कहानी का शीर्षक लिखा न अपनी पहचान। रवि ने लिखावट पहचानकर उन्हें फोन किया तब दोनों जरूरतें पूरी हुईं। कहानी में वर्तनी की अनगिनत गलतियां थीं जो रवि ने बड़े मनोयोग से सुधारीं। उस एक अकेली कहानी को संवारने में रवि ने इतनी मेहनत की जितनी समूचे अंक पर न की होगी। इसकी प्रशंसात्मक समीक्षा के लिए अग्रिम लेख लिखवाये। इस तरह उन्होंने महाविशेषांक को धमाकेदार तो बना दिया किंतु पक्षधरता के अपराधी भी बने। ये संपादन जगत के समीकरण होते हैं जो कई बार संपादक पर ही भारी पड़ते हैं। घर का टेलिफोन का बिल उन दिनों चालीस हजार आया जो रवि ने अपने प्रेस का टाइप बेचकर चुकाया। वर्षों बाद उस लेखिका ने, न जाने किस कुंठावश रवि के ऊपर एक व्यंग्यात्मक लेख लिख कर दोस्ती का हक अदा किया। इतनी गलतबयानी से भरा लेख एक वरिष्ठ रचनाकार अपने

कनिष्ठ रचनाकार के लिए कैसे लिख सका, यह हैरानी का विषय है। वह रवि के मोहभंग का दिन था। जीवन में इतना अवसादग्रस्त मैंने रवि को कभी नहीं देखा, कैसर ग्रस्तता के दिनों में भी नहीं, जितना उस दिन। लेखन के इलाके में अचानक जेंडर कार्ड खेल डालना एक किस्म की बेइमंटी होती है।

गनीमत है कि ऐसे तजुर्वे जीवन में इक्का दुक्का ही रहे। प्रायः वरिष्ठ रचनाकारों ने सद्भाव और सौहार्द ही दिया। बीसवीं शताब्दी के सातवें, आठवें दशक में लेखकों के बीच गलाकाट स्पर्धा नहीं थी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. धर्मवीर भारती जैसे वरिष्ठ रचनाकारों ने अपनी रचनात्मक प्रेरणा और आत्मीय ऊर्जा से न जाने कितने हम जैसे चिरकुटों को जीवन प्रदान किया।

सन् 1993 से रवि एक साप्ताहिक पत्र 'गंगा यमुना' के संपादन में व्यस्त हो गए। कहने को यह स्थानीय पत्र था पर रवि ने इसे अखिल भारतीय आयाम दे डाला। उन्होंने कई नए रचनाकार गढ़े और खोजे। कमाल यह कि अपना लेखन भी करते रहे। पहले दिनमान में 'इतिश्री' व्यंग्य स्तंभ बहुत दिनों तक लिखा फिर संडे मेल में संस्मरण शृंखला।

इलाहाबाद में हमारे बहुत से डॉक्टर मित्र थे। अपने अपने क्षेत्र के विख्यात विशेषज्ञ थे पर हमारे घर विशुद्ध मित्रता के अंतर्गत आते। सन् 1997 में उन्होंने रवि को घेरकर उनकी S.G.P.C. जांच कर डाली और पाया कि उनका यकृत बढ़ा हुआ है। डॉक्टरों की सलाह पर रवि ने शराब से तौबा कर ली और सिगरेट भी छोड़ने का संघर्ष करने लगे। शराब एक झटके में छूट गई लेकिन सिगरेट की तलब ने कई महीने तंग किया। बाद में रवि अपना सी.टी.स्कैन देखकर कहा करते, "शराब बेचारी यों ही कुर्बान हो गई, असली गुनहगार तो सिगरेट थी।"

सन् '98 और '99 रवि ने अपना बृहत् संस्मरण 'गालिब छुटी शराब' लिखते हुए बिताया। वे इस किताब को तेज रफ्तार से पूरा कर सके, इससे यह प्रमाणित हो गया कि लेखन को अपने से इतर किसी साधन की अनिवार्यता नहीं होती। बल्कि वे अपने को स्वस्थ और हलका महसूस करने लगे। सन् 2000 के आरंभ में ही 'गालिब छुटी शराब' पुस्तक रूप में वाणी प्रकाशन से आ गई और रातोंरात पाठकों की जुबान पर चढ़ गई। किताब की तासीर कुछ ऐसी कि जिसने कभी शराब चखी नहीं, वह पीने लग गया और जो पीता था उसने तौबा कर ली। अक्सर दिन में हमारे यहां फोन आते ऐसे पाठकों के जो बताते 'आज आठवां दिन है, मैंने एक घूंट भी गले से नहीं उतारी। आपकी किताब से सबक मिला।' रात बिरात फोन आते उन पाठकों के जो सुरूर में रवि से मुखातिब होते, "जाम साथ में है और आपकी किताब पढ़ रहा हूँ, दोनों का नशा है।" एक ही किताब का ऐसा सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव इसके पहले मैंने नहीं देखा। 'गालिब छुटी शराब' पढ़कर बहुत से पाठक इलाहाबाद आए इसके रचनाकार से मिलने। एक पाठक तो ऑस्ट्रेलिया से उड़ान भरकर दिल्ली पहुंचा और वहां से गाड़ी पकड़कर सीधे इलाहाबाद। वह कई हफ्ते हमारे घर पर ठहरा। रवि से जब कोई 'गालिब छुटी शराब' पुस्तक की सफलता का राज पूछता रवि मासूमियत से कहते, "इसका आधा क्रेडिट गालिब को जाता है और आधा शराब को।"

सन् 2003 में हम दोनों की विश्व हिंदी सम्मेलन में भाग लेने के लिए सूरिनाम जाने का निमंत्रण मिला। पत्र से पता चला कि सरकार के पास पैसों का टोटा है अतः एक टिकट का भुगतान होगा, दूसरा अपने साधनों से जाय, हां आतिथ्य भार सरकार उठाएगी। हमारे सभी साथी जा रहे थे। हम भी खुशी खुशी, मंदिर मार्ग के पालिका स्वास्थ्य केंद्र पर पीले बुखार और आम बीमारियों से बचने की सुई लगवा आए। वापस इलाहाबाद जाकर सफर की तैयारी करनी थी। यकायक मेरा मन इस योजना से उखड़ गया। यह क्या कि अपना बैंक खाता जीरो करके इतनी दूर जाकर हिंदी की सेवा

करना। यहां घर में बैठकर जो लिखते पढ़ते हैं वह भी हिंदी सेवा है। मैं एक किताब में मशगूल भी थी। बस मैंने लाल झंडी दिखा दी, “मैं नहीं जाऊंगी, तुम्हें जाना हो तो जाओ।”

रवि कब रुकने वाले थे। दारू सिगरेट के अभाव में दिन काटने जैसे भी उनके लिए भारी थे। नियत दिन उन्होंने सूरिनाम के लिए उड़ान भरी।

स्वदेश दीपक भी इस प्रतिनिधि मंडल का सदस्य था और रात के जिस वक्त से हवाई परिचारिका ने शराब परोसनी शुरू की तब से पी रहा था। अंतर्राष्ट्रीय उड़ानों में दारू निःशुल्क मिलती है, यह तथ्य साथी लेखकों को भी उत्तेजित कर रहा था। स्वदेश दीपक ने रवि से उनके परहेज की वजह पूछी। रवि ने बताया कि उनका जिगर बढ़ गया था, डॉक्टर की मनाही है जिसका पालन कर रहे हैं। स्वदेश दीपक ने पूछा, “कब की बात है यह।”

“सन् 1997।” रवि ने कहा।

स्वदेश दीपक ने हाथ पर हाथ मारा, “अरे कालिया अब तक तो तुम्हारा जिगर पूरा दुरुस्त हो चुका होगा। जिगर जिस रफ्तार से खराब होता है, उससे जल्द ठीक हो जाता है। मैंने तो महीनों अस्पताल में बिताए हैं, मुझसे पूछो।”

रवि ने फिर बताया कि उन्हें किसी ने कसम दे रखी है। स्वदेश दीपक अपनी मोहक हंसी हंसे, “तुम्हारा इन पतनशील बातों में यकीन है। और दोस्त कसम तो तुमने जमीन पर ली थी। यह न जल है न थल, यह तो हवा है जहां हम जाम छलका रहे हैं। एकाध पेग लेने से कुछ नहीं होगा। देखो सब मजा ले रहे हैं, एक तुम्हीं मनहूस मुंह बनाए बैठे हो।”

देवदास उपन्यास में देवदास को बरबाद करने में जो भूमिका चुन्नीलाल की थी वही भूमिका स्वदेश दीपक ने रवींद्र कालिया के जीवन में निभाई और उन्हें वापस शराब की ओर धकेल दिया। देवदास की ही तरह रवि के अंदर भी निर्णयशक्ति का अभाव रहा होगा जो वे स्वदेश दीपक के तरह तरह के तर्कों के आगे तिड़क गए।

जब सूरिनाम से रवि का फोन आया, मैंने उन्हें बताया कि डॉ. शुक्रदेव सिंह का फोन आया था कि रवींद्र को फौरन कलकत्ते भेजो। रवि मस्ती में थे। उन्होंने लापरवाही से कहा, “लौटकर देखेंगे। तुम्हें बताएं यहां पानी महंगा है बियर सस्ती है। लो तुम स्वदेश दीपक से बात करो।”

हम लेखकों की दुनिया इतनी अनबेली है कि जिसको हम पढ़ लेते हैं उसी से दोस्ती गढ़ लेते हैं। मैंने स्वदेश दीपक की अनेक रचनाएं पढ़ रखी थीं। मैंने कहा, “हिंदी संसार में मैंने केवल दो लेखकों को पाइप पीते हुए, तस्वीरों में देखा है, दोनों मुझे बहुत हैंडसम लगे।”

स्वदेश दीपक ने हिमाकत से कहा, “दूसरा कौन है।”

“राजेंद्र यादव।” मैंने बताया।

स्वदेश दीपक बोले, “मैं तो और भी हैंडसम हुआ करता था, तुमने मेरी वह वाली फोटो नहीं देखी, चंडीगढ़ में इंग्लिश डिपार्टमेंट वाली।”

स्वदेश उस वक्त आत्ममुग्ध लगे मगर आत्मीय।

यह सुरा संदर्भ वहीं दफन हुआ क्योंकि लौटकर रवि और मैं कलकत्ते की तैयारी में लग गए। प्रारंभिक बातचीत के पश्चात तय हो गया कि हम एक दिसंबर 2003 से भारतीय भाषा परिषद की नौकरी पर पहुंच जाएंगे।

कलकत्ते की रचनात्मकता और ऐतिहासिकता ने हमारा मन मोह लिया। सरल, सहज, साहित्यिक रुझान के लोग थे, सुंदर सड़कें और शांत नागरिक जीवन। मेरी बड़ी बहन भी कलकत्ते में रहती थी। परिषद का वातावरण शाकाहारी और शुद्धतावादी था इसलिए वहां रवि की मयनोशी का सवाल ही नहीं उठता। बल्कि वे कहते, “अब मुझे सिगरेट का धुआं नागवार लगता है और

विस्की की गंध अझेल।” कभी कभी मित्र नंदकिशोर दीवान के घर जाना होता तो वह जबरन एक पेग बनाकर रवि को थमा देते। रवि के आगे वह वैसा ही पड़ा रहता और वे उसकी पत्नी रुचि की बनाई ग्रीन लेबल चाय पीकर तृप्त हो जाते। परिषद ने यह अवसर दिया कि ‘वागर्थ’ पत्रिका के युवा और नवलेखन अंकों के जरिए रवि ने इतनी सारी प्रतिभाओं को खोज निकाला कि उनके लिए एक नया अद्भुत परिवार पैदा हो गया। युवा पीढ़ी की तेजी और तत्परता, तेवर और तैयारी, असहमति और आक्रोश, रवि को हर मिजाज पसंद था। मुझे याद पड़ता है अक्टूबर सन् 2004 में ‘वागर्थ’ के नवलेखन अंक के लिए चंदन पांडे ने अपनी (पहली) कहानी भेजी थी ‘परिंदगी है कि नाकामयाब है’। शीर्षक जितना वायवी था, कहानी उतनी ही यथार्थवादी थी। रवि ने चंदन को फोन किया कि इसका शीर्षक यदि बदल दें तो आपको कोई फर्क तो नहीं पड़ेगा। चंदन ने फौरन जवाब दिया, “आप मेरी कहानी लौटा दीजिए। मेरी कहानी का शीर्षक यही रहेगा।”

रवि चंदन के रुख के कायल हो गए। कहानी ज्यों की त्यों छपी और चर्चित हुई। मनोज पांडे की कहानी ‘चंदू भाई नाटक करते हैं’ थियेटर की दुनिया का सत्य बड़े वास्तविक ढंग से बयान करने वाली उसकी पहली कहानी थी। वह भी वागर्थ में आई। कुणाल कविता के आकाश में रहने वाले रचनाकार थे। यकायक उन्होंने ‘सनातन बाबू का दांपत्य’ जैसी समर्थ कहानी लिख डाली। साहित्य की सुई एक बार फिर कहानी की तरफ घूम गई। मनीषा कुलश्रेष्ठ की ‘बिगडैल बच्चे’, तरुण भटनागर की ‘गुलमेहदी की झाड़ियां’, राकेश मिश्र की ‘राजू भाई डॉट कॉम’, इसी अंक की खोजें थीं। हर रचनाकार का कथ्य, शिल्प और भाषा शैली एकदम अलग थी। इस विशेषांक के आने पर रवि एक संपादक की हैसियत से ज्यादा एक रचनाकार की दृष्टि से प्रसन्न हुए थे। वे संपादन कार्य को ‘काटो चिपकाओ’ से अलग एक रचनात्मक उपक्रम मानते थे। उनके द्वारा खोजा गया रचनाकार जब अन्य जगहों में भी छपने लगता, रवि को दिली खुशी होती। इतनी बहुतायत में युवा रचनाकारों का कहानी के क्षेत्र में आना उस रूढ़ि को तोड़ने में मदद कर रहा था जिसके अंतर्गत कहा जाता था कि कहानी अब मरती हुई विधा है। नई पौध पहचानने में रवि ने अच्छे माली की भूमिका निभाई। साहित्यिक पत्रकारिता में रवि रम जाते। हर कहानी की सफलता पर उन्हें फख और खुशी होती। कई बार नवोदित लेखक समय असमय अपनी रचना सुनाने को आते। उनकी जेबों में अपनी पांडुलिपियां खुसी होतीं। बैठते ही वे कहते, “कालिया जी आपको एक कहानी सुनाना चाहते हैं।” और शुरू हो जाते। कभी कहानी लंबी होती, इतना वक्त दफ्तर में निकालना कठिन होता। रवि उन्हें घर ले आते। कहानी सुनकर लेखक को सुझाव देते। कभी चेहरे पर थकान दिखती, मैं कहती, “क्या जरूरी है हर रचना तुम खुद सुनो। टाल दिया करो।” रवि इनकार में गर्दन हिला देते।

वे कहते, “कभी किसी की उम्मीद को नहीं मारना चाहिए। वह गजल सुनी है न तुमने ‘इक न इक शम्मा अंधेरे में जलाए रखिए’।”

इस खूबी के चलते रवि का रिश्ता हर किसी से बन जाता। साहित्य से इतर लोग भी अपनी परेशानियां रवि से बांटते। किसी के बेटे को नौकरी नहीं मिल रही, किसी की बेटा को घर, किसी का अफसर जालिम है तो किसी की बीवी लड़ाकी—सब अपनी तकलीफ रवि से बांटते।

जो भी शहर रवि ने छोड़ा, दोस्तों की एक बड़ी संख्या उन्हें याद करती रही। एक लेखक होने के साथ साथ वे कितने दोस्त थे यह कोई उनके दोस्तों से पूछे। आज भी देश विदेश से ऐसे लोगों के फोन आ जाते हैं कि रवींद्र कालिया से बात करनी है। सच्चाई पता चलने पर वे ठगे से रह जाते हैं। अच्छे लोगों का चला जाना स्वीकार करना मुश्किल होता है।

मेरा तो समूचा संसार बदल गया। वे किस कदर मेरा आत्मविश्वास बढ़ाते थे। एक बार

किसी राजकीय व्यक्ति से मिलने जाना था। मुझे अपनी कोई भी साड़ी अवसर के अनुकूल नहीं लग रही थी। जैसे तैसे तैयार होकर मैंने रवि से पूछा, “रवि हम अच्छे नहीं लग रहे न।”

रवि ने एक नजर मुझ पर डाली और कहा, “यह देखो कि तुम ममता कालिया लग रही हो या नहीं।” यह सुनते ही मैं गर्व से सिर उठाकर चल दी।

एक बार मैंने रवि से कहा, “मेरा नाम जरा भी रोमांटिक नहीं है।”

रवि शरारत से हंसे, “मेरे लिए तो तुम एम.एम. फोम हो।” रवि की अदा कुछ ऐसी थी कि वे मुश्किल हल नहीं करते बल्कि मुश्किल के बारे में बेफिक्र कर देते।

बड़े बेटे अनिरुद्ध ने अपनी सहपाठी प्रज्ञा सिन्हा से शादी की। प्रज्ञा की पूरी पढ़ाई इलाहाबाद विश्वविद्यालय के होस्टल में रह कर हुई। तत्काल बाद उसे नौकरी मिल गई। अपनी शादी में अनिरुद्ध और प्रज्ञा अलग अलग शहरों से इलाहाबाद पहुंचे। रवि ने दोनों को आशीष देते हुए कहा, “चलो अन्नू अब तुम भूखे नहीं रहोगे। प्रज्ञा कम से कम ‘मैगी’ बनाकर तुम्हें खिला देगी।”

प्रज्ञा यथानाम तथा गुण है। उसे बात चुभ गई। उसने नौकरी करते हुए उत्तर दक्षिण, पूरब पश्चिम की इतनी व्यंजन विधियां सीख लीं कि हम चकित रह गए। उसने साबित कर दिया कि नौकरी के साथ भी घर संभाला जा सकता है।

ऊपर से हंसमुख रवि की प्रतिबद्धता उनकी बातों से नहीं उनके कामों से प्रमाणित होती रहती। जब वे शिक्षा निदेशालय में काम करते थे और अविवाहित थे उनके एक निदेशक ने उनको प्रस्ताव दिया कि वे अपनी बेटी की शादी रवि से करने को तैयार हैं। रवि ने उन्हें दो टूक जवाब दे दिया, “लेकिन मैं तैयार नहीं हूँ।” इस निदेशक ने उन्हें सब्जबाग दिखाए, पदोन्नति के, बेहतर नियुक्ति के, रवि पर कोई असर नहीं हुआ। उन दिनों रवि की मुझसे दोस्ती की इतिहास ही थी।

इसी तरह सन् 1969 में धर्मयुग में रवि के आगे यह सुझाव आया कि वे एक वरिष्ठ सहयोगी को निकालने में प्रतिष्ठान की मदद करें तो वह ऊंची कुर्सी उन्हें मिल जाएगी। रवि ने तत्काल कह दिया, “आपने गलत आदमी से यह बात कही है।” उनसे पूछा गया, “तुम्हें उनसे क्या लेना देना।” रवि ने कहा, “जब मेरी पैंट पीछे से फटी होती है तो यह सहयोगी ही मेरी सहायता करता है, आप नहीं।”

इस लिहाज से देखा जाय तो रवि जरा भी कैरियरिस्ट नहीं थे। उन्होंने नौकरियां कीं और छोड़ीं मगर दोस्तियों को दिल से निभाया। जब हम कलकत्ते में एक प्रतिष्ठान में कार्यरत थे, एक समय रवि के सामने यह प्रस्ताव रखा गया कि आप यहां के निदेशक, प्रबंधक, वित्त नियंत्रक सब बन जाइए, बस ममता जी को वापस इलाहाबाद भेज दीजिए। रवि प्रस्ताव की कुटिलता, जटिलता और जल्लादी पहचान गए। जवाब में उन्होंने सिर्फ इतना किया कि दिल्ली वाले भारतीय ज्ञानपीठ के ऑफर पर अपनी मुहर लगा दी। मेरे बिना उन्हें कलकत्ता मंजूर नहीं था हालांकि उन्हें शहर बहुत अच्छा लगा था। ‘कलकत्ते पर बजर गिरे’ यही माना उन्होंने उस शहर को जहां मेरा साथ नसीब न हो। रवि ने मुझे मजनु की तरह चाहा और लैला बना दिया।

मेरी कॉलेज की नौकरी के अंतिम दो वर्ष ऊबड़खाबड़ और खुरदुरे बीते। उत्पाती तत्वों ने पहले मेरा सिर फोड़ा और फिर मनोवल तोड़ा। 30 जून सन् 2001 को जब मुझे कार्यभार सौंपना था, रवि शाम 4 बजे प्रबुद्ध के साथ मुझे लेने आए। मुझे देखकर वे समझ गए कि यह अंतिम दिन भी नागवार गुजरा है। कॉलेज के फाटक से निकलते हुए रवि ने कहा, “इस जगह को दुःस्वप्न की तरह भूल जाओ। भूल जाओ कि तुमने यहां कुछ साल सेवा की।”

अवकाश ग्रहण करने के बाद दो साल तक मुझे पेंशन के लिए दौड़ना पड़ा। कभी अफसर नदारद तो कभी क्लर्क। कभी फाइल ही गुम हो जाती। शिक्षा निदेशालय से लौटकर मैं गहरे

अवसाद में डूब जाती। घर में स्थायी आमदनी का कोई आधार नहीं था। रवि मुझे टहलने के लिए ले जाते और दिखाते, “यह देखो सब्जीवाले, फलवाले, दुकान चलाने वाले, प्राइवेट नौकरी करने वाले, किसी को भी पेंशन नहीं मिलती। मुझे देखो, अन्य पत्रकारों के देखो, साथी लेखकों को देखो, किसी के पास पेंशन नहीं है। फिर भी सब जीवित हैं।” मैं हल्की हो जाती, हंसने लगती।

कभी कभी हंसी में वे बड़ी बेधक बात भी कर डालते। प्रत्युत्पन्नमति उनकी ऐसी थी कि दूसरे को निरुत्तर कर दे। एक बार लोकभारती प्रकाशन के स्वामी दिनेश जी ने बताया कि उनका एक कर्मचारी बहुत बीमार है और अस्पताल में भरती है। उसे खून की आवश्यकता थी और मेरा खून उससे मेल खा गया। मैं अभी अभी उसे खून देकर आया हूँ।”

रवि ने कहा, “दिनेशजी, पहले आप कर्मचारियों का खून चूसते हैं और फिर वापस भी कर देते हैं।”

दिनेश जी एक क्षण हक्के बक्के से हुए, फिर वे भी ठहाके में शामिल हो गए।

एक समय ऐसा था जब मैं अखबारों और पत्र पत्रिकाओं में स्तंभ लिखा करती थी। एक अपेक्षाकृत नई पत्रिका के संपादक ने मुझसे कहा, “ममता जी, आपका हर महीने नियमित स्तंभ हमें चाहिए।”

मैंने रवि से कहा, “यह एकदम नई पत्रिका है। कहीं बंद न हो जाय।” रवि ने कहा, “तुम लिखना शुरू करो, बंद तो वह अपने आप हो जाएगी।”

अशक जी रवि की इस आदत को सितमखरीफी कहते थे और नासिरा शर्मा जुमलेबाजी। लेकिन रवि मजाक में बड़ी बात कर जाते थे कि सुनने वाले को सबक भी मिले और सलाह भी।

इलाहाबाद में हर त्यौहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। रवि को त्यौहारों की भीड़ और शोर पसंद नहीं थे। होली को तो वे बिलकुल हुड़दंग मानते। होली के दिन सुबह से किताब लेकर अपने कमरे में बैठ जाते और कहते, “मैं घर में नहीं हूँ।” मेरा मन वृंदावन सबेरे से होली खेलने को मचलकता। मैं अपना कंट्रोल बटन दबाकर रखती। बच्चों ने होश संभाला तो होली पर घर में गुजिया बनने लगी। थोड़ी सी होली घर में घुस आई। फिर पिचकारी भी आई और रंग भी।

बच्चों को लेकर रवि एक बिगाडू बाप थे। बच्चों को सामिप्य भोजन पसंद है, रवि ‘डालडा पाक पुस्तक’ पढ़कर मांसाहारी भोजन बनाएंगे। बच्चों को पॉपम्यूजिक पसंद है, रवि एल.पी. खरीद कर ढेर लगाएंगे।

बिना किसी लंबे चौड़े दावे के रवि ने कई मौकों पर बच्चों की हिफाजत की।

मन्नू उन दिनों दसवीं कक्षा की परीक्षा की तैयारी कर रहा था, हमें आनंद कक्कड़ के घर डिनर पर जाना था। मन्नू ने साथ जाने से इनकार कर दिया। हमने घर का दरवाजा मन्नू से बंद करवाया और चले गए। रात एक बजे जब हम लौटे, हमारे घंटी बजने पर दरवाजा खुला ही नहीं। रवि बेचैन हो गए, “मन्नू को क्या हो गया, दरवाजा क्यों नहीं खोल रहा।” मैंने कहा, “शायद सो गया होगा।” रवि नहीं माने। उन्हें लगा मन्नू के साथ कुछ अनहोनी हो गई है। उन्होंने पड़ोसी का दरवाजा खुलवाया और उसकी छत पर से मन्नू को आवार्जे दीं। रानीमंडी के सब मकानों की छतें और दीवारें आपस में सटी हुई थीं। जब देर तक कोई आहट नहीं हुई रवि पड़ोस की छत से अपने घर की सीढ़ियों पर कूद गए। अंधेरे में पैर फिसला और उनकी कमर और पीठ में जबरदस्त चोट आई। घर के अंदर जाकर देखा तो मन्नू रजाई ओढ़कर चैन से सो रहा था। रवि ने उससे कहा कि नीचे जाकर दरवाजा खोले क्योंकि मैं बाहर खड़ी हुई थी। रवि सोफे पर लेट गए। मन्नू को कोई एहसास नहीं हुआ कि पापा अंदर कैसे पहुंचे। और उन्हें चोट लगी है। वह वापस बिस्तर में सो गया। मैं रातभर रवि को गरम पानी की बोतल और दवा देती रही।

रानीमंडी में बंदरों का आतंक था। अगर रसोई का दरवाजा बंद करना भूल जाएं तो वे अंदर घुसकर बेसन, डबलरोटी, मुसंबी गोया हर चीज इतनी सफाई से चट कर जाते कि हमारे हिस्से केवल छिलके और प्लास्टिक के टुकड़े आते। उन्हीं दिनों की बात है। अन्नू की बी.ए. की परीक्षा थी। उस दिन दोपहर की पाली में उसके प्रिय विषय अर्थशास्त्र का पर्चा था। सुबह से कई घंटे पढ़ लेने के बाद अन्नू नहाने गया। गुसलखाना आंगन में था। वहां से आंगन पारकर कमरे में आना होता था। जैसे ही नहाकर अन्नू तौलिया लपेट गुसलखाने से बाहर निकला, उसे कई बंदरों ने घेर लिया। अन्नू के मुंह से निकला, “पापा बचाओ।” रवि छलांग लगाकर बाहर पहुंचे। रवि पूरे के पूरे अन्नू के ऊपर लेट गए। किसी तरह बंदर खोंखियाते हुए दफा हुए तो हम सब की सांस वापस आई। अन्नू बोला, “पापा मेरा आज का पेपर बिगड़ जाएगा।” रवि बोले, “नहीं बहुत अच्छा होगा। चल मैं तुझे स्कूटर पर युनिवर्सिटी छोड़ दूँ।” अन्नू बोला, “नहीं पापा, शाम को लौटने में मुझे परेशानी होगी।” वह अपने ही स्कूटर से गया और इत्तफाक से उसका वह पर्चा इतना अच्छा हुआ कि विश्वविद्यालय में उसे सर्वाधिक अंक मिले।

सिर्फ बच्चों के लिए नहीं, अपने दोस्तों के लिए भी रवि का यही भाव रहता। किसी को भी कष्ट में देखना उन्हें गंवारा न था। हर एक की खोजखबर लेते रहते। दो चार दिन कोई नहीं दीखता तो फोन करके खैरियत लेते। यश मालवीय, मृत्युंजय या अभिषेक को तो बाकायदा डांट देते कि कहां गायब हो। मनोज पांडेय को कोंच कोंचकर थिएटर की दुनिया से हटाकर कहानी की तरफ मोड़ा। इसके विपरीत जो ज्यादा लिखता उसे अतिलेखन से विमुख किया। इनमें मैं भी शामिल थी। एक बार मेरी कई कहानियां एक साथ कई पत्रिकाओं में छप गईं। रवि ने मुझे कहा, “तुम्हारी कहानियां आपस में गुथमगुथ्या कर रही हैं, खतरा यह है कि सारी खेत रहेंगी।”

खास बात यह थी कि उनकी चेतावनी में कभी दुर्भाव नहीं होता। लिखने का गुरुर न कभी पाला न मुझे पालने दिया। उन्हें यह शेर बहुत अजीब था

हम कहां के दावा थे किस हुनर में थे यकतां।

बेसबब हुआ दुश्मन आज आसमां अपना।

मनोज पांडेय ने रवि पर अपने भावभीने संस्मरण में लिखा है : “वे जी भर बात करते थे, उनकी खूबी यह थी कि वे गंभीरता के जामे से दूर ही रहते थे। हमेशा शरारत या चुहल के मूड में वे गहरी से गहरी बात भी बेहद हल्के फुल्के अंदाज में कह जाते। उतना अंकुठ कोई दूसरा व्यक्ति मैंने नहीं देखा, अपने लिखे पर कम से कम बात करने वाले। हल्का फुल्का हंसी मजाक दूसरी बात है पर कभी किसी की अनुपस्थिति में किसी के बारे में कोई अपमानजनक बात उन्होंने कभी नहीं की, उन लोगों के बारे में भी नहीं जो अपने साक्षात्कार आदि में कालिया जी पर तमाम लांछन लगाया करते थे, हालांकि वे सामने होते तब वे उन्हें कभी नहीं बख्शाते थे, तब भी कोई सीधी बात नहीं, बस हंसी मजाक के बीच में कुछ ऐसे बोल देते कि सामने वाले को देखकर यह अंदाजा लगा पाना मुश्किल होगा कि वह हंस रहा है कि रो रहा है, मैंने इलाहाबाद में कइयों की ऐसी हालत होते देखी है, पर वे लोग भी कभी बीमार पड़ते, मुश्किल में होते तो उनसे ज्यादा चिंतित कालिया जी होते।” रवि की लिखने की शैली, जीने के इसी अंदाज से निकली थी। तभी तो सन् 1997 में जब उनका यकृत बढ़ गया था, पेट में दर्द रहता था और भूख न के बराबर लगती थी, उन्होंने बिस्तर पर लेटे लेटे अपना संस्मरण ‘गालिब छुटी शराब’ लिखना शुरू किया। कोई और होता तो ऐसे समय बड़ी करुण सी किताब लिखता लेकिन रवि ने यह पुस्तक लिखी जिसमें जमकर अपना मजाक उड़ाया। कई वाक्ये पढ़कर मुझे ताज्जुब हुआ कि, विकट क्षणों में भी उनकी याददाश्त और बरदाश्त बनी रही। ‘गालिब छुटी शराब’ दिल से लिखी गई किताब है जिसके चाहने

वाले बेशुमार हैं। आम पाठक इस किताब को बच्चन जी की 'मधुशाला' की तरह प्यार करता है। अभी कल (23 अक्टूबर 2016) पलामू बिहार से रवि की एक पाठक भारती सिंह आई। उसके पर्स में 'गालिब छुटी शराब' की प्रति थी जिसमें ढेरों अंश पेंसिल से रेखांकित थे। उसे आधी से ज्यादा किताब मुंहजुबानी याद थी। वह देर तक रवि की रचनाओं पर बोलती रही। उसने हाथ में किताब लेकर रवि की तस्वीर के साथ अपनी फोटो खिंचवाई और फिर 'गालिब छुटी शराब' की प्रति अपने छोटे भाई को भेंट कर दी। भारती सिंह का मानना था कि यह किताब जीवन जीने का हौसला देती है। देर रात जब वह चली गई, गालिब छुटी शराब की अपनी प्रति निकालकर पन्ने पलटती रही। खुशकिस्मत होती हैं वे पुस्तकें जिन्हें अपने पाठकों का इतना प्यार दुलार मिले। मुझे याद आया कि श्रीलाल शुक्ल ने यह पुस्तक पढ़कर रवि से एक रात कहा था, "कालिया अगर मुझसे पूछकर दिया जाता तो मैं तुम्हें इस किताब पर नोबल पुरस्कार दिलवाता।" उस समय रवि ने हंसते हुए कहा था, "श्रीलाल जी आप घर पर हैं या कार्ल्टन में बैठे हैं।"

अकेले श्रीलाल जी नहीं, कई दिग्गज रचनाकारों ने गालिब छुटी शराब को पसंद किया। इसे पढ़कर मन्नू भंडारी जी ने उन्हें पत्र लिखा, "गालिब छुटी शराब' पढ़कर तुमसे ज्यादा मस्ती तो मुझे छा गई। सामने होते तो बाहों में भरकर बधाई देती।" ज्ञानरंजन ने रवि को लिखा कि "हिंदी साहित्य में मनहूसियत का बोलबाला है जो तुमने इस किताब से तोड़ा है।" से.रा. यात्री, डॉ. नंद किशोर नवल, परमानंद श्रीवास्तव, बिंदु अग्रवाल जैसे न जाने कितने बुद्धिजीवी हैं जिन्होंने इस पुस्तक की सराहना की।

रवि ने गौर नहीं किया इस बात पर लेकिन यह सच है कि इस पुस्तक की वजह से रवि की शेष पुस्तकों की हानि हुई। रवि के पास एक से एक यादगार कहानियां और उपन्यास हैं जिन पर गंभीर अध्ययन अपेक्षित था। सांप्रदायिक सद्भाव बरक्स तनाव का आंखों देखा दस्तावेज है रवि का उपन्यास 'खुदा सही सलामत है'। सन् 1984 में छपा यह उपन्यास, देश के हालात के चलते आज तक हमेशा प्रासंगिक बना रहा। कृष्ण मोहन ने लिखा, "अपनी खूबियों के कारण यह उपन्यास 'आग का दरिया', 'उदास नस्लें', 'झूठा सच' और 'आधा गांव' की परंपरा की अगली कड़ी है।

इसी तरह सन् 2010 में आया '17 रानडे रोड' उपन्यास आधुनिक मनुष्य के अपराजेय साहस का आख्यान है जिसके नायक संपूरन का संघर्ष किसी भी आधुनिक उद्यमी का संघर्ष है। हर संकट में से वह धूल झाड़कर उठ खड़ा होता है और नया प्रयास करने को कमर कस लेता है। 17 रानडे रोड, संपूरन के जीवट की कहानी है।

रवि की रचनाओं, रचनाधर्मिता और जिंदादिली के परिप्रेक्ष्य में मैं कह सकती हूँ कि मैं एक अलबेले इंसान के साथ रही हूँ। रूटीन की हर कोशिश को धता बताते रवि कहते, "मैं नित्यकर्म की तरह लेखन नहीं कर सकता।" हर किताब उन्होंने बड़ी तबीयत से और मौज में लिखी। कभी आलोचकों और आलोचना की फिक्र नहीं की। कभी अपनी किसी किताब का लोकार्पण नहीं करवाया। यथाशक्ति सकारात्मक कार्यों में अपनी ऊर्जा लगाई।"

आम तौर पर प्रेम कहानियों में प्रेमी और प्रेमिका दोनों मर जाते हैं और कहानी खत्म हो जाती है। हीर रांझा, लैला मजनूं, सोहनी महिवाल की जोड़ियों में एक के बगैर दूसरे की कल्पना भी असंभव है। हमारा प्रेम इतना सघन था कि मैं सोचा करती हम भी ऐसी जोड़ी साबित होंगे। बंबई में एक सिद्ध ज्योतिषी ने एक बार रवि से कहा भी था, "आपकी पत्नी आपसे पहले दिवंगत होंगी। उसके बाद आप साल भर तक अकेले डमरू बजाएंगे, तब अलविदा कहेंगे।"

मैं मूर्खों की तरह यही सोचती रही कि मैं रवि को समस्त आधि व्याधि से, आपदा विपदा से, रोग ताप से अक्षुण्ण निकाल ले आऊंगी। मैं रवि की नास्तिकता पर अपनी आस्तिकता का

प्रलेप करती, उनकी उदासी पर अपनी हंसी मलती और पूछती, “रवि आज कुछ ठीक लग रहा है?” रवि मेरा मन रखने को गर्दन हिला देते।

इसी तरह जब मेरे पैर की नस चढ़ जाती, रवि होमियोपैथी दवा ‘मैग्नीशियम फांस’ की चार गोली मेरे मुंह में डालते और पूछते, “आराम आया?”

मैं गोलियां चूसते हुए कहती, “अभी पेट में दवा पहुंचने तो दो।”

एक ही मिनट में रवि फिर पूछते, “सच बताओ कितने प्रतिशत आराम आया।”

मैं रवि से लिपट जाती, “शत प्रतिशत आ गया। अब मैं ठीक हूँ।”

जो भी तकलीफ में होता उसी के वे डॉक्टर बन जाते। चौक की सब्जीवालियां उनकी मरीज थीं। पड़ोस के बड़ई, पुताई करने वाले मजदूर, नल बनाने वाला, कलई करने वाला सब उनसे दवा लेने आते। वे रात रात जागकर लोगों के मर्ज पर किताबें पढ़ते और तो और हमारे मित्र डॉ. अभिलाषा और डॉ. खोपर जी अपनी छोटी बिटिया के जिद्दीपने की होमियोपैथिक दवा लेने रवि के पास आते।

मुझे खांसी रहती थी। खांसते खांसते उल्टी आ जाती। रवि मेरे मुंह में दवाएं डालते जाते। दवा से कम, रवि की हमदर्दी से ज्यादा करार आ जाता। खांसी अभी भी आती है। कानों में रवि की आवाज गूंज जाती है, “नौ नंबर जटुसिन ले लो, तुम्हारे सिरहाने रखी है।”

मेरी पीठ में खुजली बहुत होती। मैं कभी कंधे से, कभी पेंसिल से पीठ खुजाती। रात में रवि कहते, “तुम्हारी पीठ घायल हो गई होगी, इधर आओ मैं सहला दूँ।” वे मेरी पीठ सहलाते, अपनी ठोड़ी से खुजाते, गुदगुदाते और अंत में अराजक हो जाते। चुहल उनकी रग रग में समाया रहता।

रवि कवि नहीं थे लेकिन मेरी अनुवादित एक कविता उन्हें बेहद प्रिय थी। उन्होंने सन् 1965 के धर्मयुग में इसे छापा भी था। यह ब्रिटिश कवि जॉन इन की एक कविता का पद्यानुवाद था—

जब तक हमने नहीं किया था प्यार किया था क्या ताज्जुब है!...

रवि जब तब ये पंक्तियां दोहराते और खुश हो जाते।

कई बार छोटी छोटी बातों से खुश होते। इनमें कभी सुदर्शन फाकिर की गजल के बोल, कभी बेगम अख्तर की आवाज में गालिब का कलाम, कभी गुलजार साहब का कोई मिसरा तो कभी फरीदा खानम की नज्म अदायगी शामिल थी। जो दोस्त घर आता उसे भी ये सुनाते।

पहले अच्छे सामिष भोजन के शौकीन थे। लखनऊ जाते तो उन्हें टुंडे के कबाब याद आ जाते। अखिलेश पहले से ये मंगवाकर रखते। बाद में जिगर बढ़ गया तो घर का शाकाहारी, सादा खाना खाने लगे। उन्हें मूंग की धुली दाल और आलू मेथी इस कदर पसंद थी कि हमारे घर में रात को अक्सर यही बनता। बच्चों ने इसका नाम हैप्पी मील रख दिया था। ये सब उन दिनों की बातें हैं जब वे थोड़ा बहुत खा लेते थे।

बाद में समय ऐसा पलटा कि उन्हें खाने मात्र से अरुचि हो गई। उनके जीवन से दारू सिगरेट क्या विदा हुई भूख प्यास ही विदा हो गई। हमारी अधिकांश झड़पें खाने के वक्त होतीं। मैं कहती, “रवि तुम्हारी पसंद की दाल बनी है। देखो एक रोटी खा लो।” रवि कहते “मेरे पेट में जगह नहीं है, तंग मत करो।”

मैं कहती, “अच्छा मेरे लिए खा लो।”

“बिना भूख मैं बिल्कुल नहीं खाऊंगा। मेरी प्लेट उठा दो और मुझे ईसबगोल दे दो।” वे कहते।

भारी मन से मैं नेचुरलैक्स का डब्बा, चम्मच और पानी मेज पर रख देती।

एक बार इलाहाबाद के एक दोस्त जावेद साहब ने रवि को एक शेर सुनाया। रवि को वह इतना भाया कि हर पहली जनवरी को, जो भी दोस्त उन्हें मिलता या फोन करता वे यह जरूर सुनाते :

यह जनवरी है नया साल है। दिसंबर में पूछेंगे क्या हाल है।

इस साल की पहली जनवरी की पूर्व सांझ से ही रवि के मोबाइल में नए साल की मुबारकबादी का तांता लगा पड़ा था। रवि दस काम छोड़कर सबको जवाब देते पर इस साल कैसे देते। वे तो पहली जनवरी को अर्ध निद्रा में पड़े थे। मैं बार बार उन्हें जगाती, वे फिर आंखें बंद कर लेते। जितेंद्र श्रीवास्तव का फोन आया। मैंने रवि को जबरन उठाया, “लो जितेंद्र का फोन है, हलो कर लो।” शिथिल हाथों से रवि ने मोबाइल पकड़ा। जितेंद्र ने पूछा, “आपकी तबियत कैसी है।”

“कुछ कम ठीक है।” कहकर रवि ने मोबाइल वापस मुझे दे दिया। यह उनका एक तरह से अंतिम संवाद था।

रवि की तबियत दीवाली से खराब चल रही थी। सन् 2015 में दीवाली ग्यारह नवंबर को थी। बच्चों ने तय किया कि वे सब दीवाली और रवि का जन्मदिन इकट्ठे दिल्ली में मनाएंगे। अनिरुद्ध, प्रज्ञा और केशव मुंबई से यहां आ गए। प्रबुद्ध, शिखा, आद्या और तत्सम पहले से ही यहां पर थे। सब चाहते थे रवि के जन्मदिन को भव्य रूप दिया जाय। रवि अनमने बैठे रहे। चुपचाप। कॉलोनी के क्लब में रात्रिभोज और आतिशबाजी का कार्यक्रम था। रवि के पैरों में सूजन ज्यादा थी। सांस लेने में कठिनाई भी। उनके पेट में विषाक्त द्रव इकट्ठा होने लगा था। चलना, फिरना तकलीफदेह था। रवि ने कहा, “मैं मूंग की धुली दाल से एक रोटी खाऊंगा। सबने यही भोजन किया।

डॉक्टर ने कुछ जांचें करवाने को कहा था। ए.एफ.पी., एल.एफ.टी. इत्यादि। रवि ने कुछ करवाई, कुछ छोड़ दीं। मैंने जोर दिया तो बोले, “तुम्हें बुरी खबरें सुनना अच्छा लगता है क्या?” (Steve Jobs) स्टीव जॉब्स की तरह रवि ने उन सब जांचों की उपेक्षा की जिनका सामना वे नहीं करना चाहते थे। इलाज की उनकी प्रणाली में पुस्तक अध्ययन, तरल भोजन, और मौन चिंत निहित था। वे कतई नहीं चाहते थे कि परिवार अथवा परिचित उन पर करुणा बरसाये। उन्होंने बड़े धैर्य से अपना ढलान उतरा। न शिकायत न शोर। कोई चीत्कार, क्रंदन नहीं।

एक दिसंबर से 21 दिसंबर सन् 2015 के बीच रवि की बहन कमलेश सपरिवार भारत आई। पहली दिसंबर को ही कमलेश का जन्मदिन भी था। रवि ने फोन पर बेकरी से केक और पेस्ट्री मंगवाने का ऑर्डर दिया। कमलेश बच्चों की तरह खुश हो गईं। सन् 2015 में हमारी और कमलेश की शादी की पचासवीं सालगिरह भी थी। कमलेश और विजय के आने का मकसद यही था कि रवि को देख आएँ और स्वर्णजयंती भी साथ मनाएँ। परिवार के कई सदस्य उस दिन आए। फूलों और उपहारों से कमरा भर गया। कमलेश ने उस दिन हवन भी किया। रवि के स्वास्थ्य की उसे बहुत चिंता रहती थी। उस शाम के आयोजन में रवि चुपचाप बैठे रहे। उनकी सहमति न हवन में थी न पार्टी में लेकिन वे कमलेश का उत्साह भंग नहीं करना चाहते थे। उनके पैरों में इतनी सूजन आ गई थी कि सोते वक्त मोजे उतारना भी एक तकलीफदेह काम बन गया था। 21 दिसंबर को जैसे ही कमलेश और विजय को टैक्सी से एयरपोर्ट के लिए विदा किया, हमने फौरन अस्पताल का रुख किया। कोलंबिया एशिया अस्पताल में यकृत विशेषज्ञ को दिखाया। उसने वही परीक्षण फिर लिख दिए जो गंगाराम अस्पताल ने लिखे थे।

सांस लेने में तकलीफ बढ़ती जा रही थी। डॉक्टर ने बताया कि पेट में विषाक्त द्रव बहुत ज्यादा मात्रा में इकट्ठा हो गया है। इसे तत्काल निकालना होगा। उन्नीस दिसंबर की सुबह हम फिर कोलंबिया एशिया अस्पताल पहुंचे। यह एन.सी.आर. दिल्ली का विशाल अस्पताल है। आपात विभाग में उन्होंने रवि को दाखिल कर लिया। समस्त परीक्षणों के लिए उनका रक्त भी ले लिया। जब पेट से द्रव निष्कासन के लिए हमने कहा तो अस्पताल के डॉक्टर ने कहा, “हमारे पास आवश्यक

दवाएं और उपकरण नहीं हैं, आप दिल्ली जाकर ले आइए तब तक मरीज यहां आराम करे।”

यह एक वाहियात सुझाव था खासकर ऐसे मरीज के लिए जिसे एक एक सांस लेना भी दुष्कर हो रहा हो। छोटे बेटे प्रबुद्ध ने गंगाराम अस्पताल की डॉ. अर्चना कौल सिन्हा को फोन मिलाकर अपनी परेशानी बताई। उन्होंने कहा, “अंकल को फौरन गंगाराम ले आओ, मैं इंतजाम करती हूं।” डॉ. अर्चना की वजह से ही उस दिन रवि के लिवर का इन्जेज किया गया। अस्पताल की फार्मसी से ला लाकर प्रबुद्ध एलब्युसिन देता रहा। एक सुई से रवि की बांह में एलब्युसिन चढ़ाई जा रही थी और दूसरी ड्रिप से उनके पेट से विषाक्त द्रव निकाला जा रहा था। रवि तंद्रा में थे। रात नौ बजे तक उनके पेट से दसियों लीटर विषाक्त द्रव निकला। पैरों की सूजन उतर गई, पेट चपटा हो गया।

डॉक्टर ने कहा, “आप इन्हें घर ले जाइए और खूब पौष्टिक खाना खिलाइए।”

रास्ते में रवि सजग थे। बोले, “अब मुझे हल्का लग रहा है, सांस भी ठीक आ रही है।”

हम सबने राहत की सांस ली। अपने प्रिय का कष्ट देखना झेलने से कम कष्टदायक नहीं होता। असाध्य रोग की निरुपायता हमारी बाह्य शक्ति के साथ आंतरिक शक्ति का भी क्षय करती है।

रवि बोले, “आज मैं चिकेन से रोटी खाऊंगा।”

प्रबुद्ध ने कहा, “लाडो बना देगी, मैं ला देता हूं।”

मैंने कहा, “अब बहुत रात हो गई है। आज दाल रोटी खा लो। कल बन जाएगा।”

रवि ने प्रतिवाद नहीं किया। उनकी आंखों में नींद घिर रही थी। खाने का नाम भर करके उन्होंने आंखें बंद कर लीं।

सुबह की चाय पर मैंने उठाय, “रवि चाय ले लो, थोड़ी गर्मी आ जाएगी। आज बड़ी डंड है।”

“अभी उठता हूं।” कहकर रवि फिर सो गए।

चाय ठंडी हो गई। मैं वापस ले गई।

मैंने तीन बार चाय बनाई, रवि ने एक बार भी नहीं पी जबकि सुबह की चाय के दौर उन्हें बेहद प्रिय थे।

जब मैंने उन्हें जगाने की एक और कोशिश की तो वे बोले, “पता नहीं क्यों मुझे बहुत नींद आ रही है।”

विषाक्त द्रव के साथ उनके पेट के सारे पोषक तत्व भी निकल गए थे। भोजन के अतिरिक्त और कोई तरीका नहीं था उन्हें वापस पेट में पहुंचाने का।

डॉक्टर प्रवीण शर्मा को फोन पर पूछा कि क्या किया जाय। उन्होंने कहा, “अस्पताल में भी हम वही करेंगे जबरन खिलाएंगे।” रवि से अस्पताल चलने को कहा। रवि ने मना कर दिया, “मुझे घर में पड़ा रहने दो। ठीक से नींद पूरी कर लूं तब खाऊंगा।” बीच बीच में छोटी बहू शिखा उन्हें जगाकर, इसरार करके कभी सूप पिला देती कभी चाय बिस्किट।

नए साल की पूर्व सांझ शिखा ने रवि की पसंद का खाना बनाया। प्लेट लगाकर उन्हें खिलाने गई। उन्होंने जागकर एक नजर खाना देखा और बोले, “मैं तो खाना खा चुका हूं, अब सोने दो।” हम सबने भरी हुई प्लेट दिखाई, उन्हें बताया इस वक्त रात के दस बज रहे हैं, वे सुबह से सो रहे हैं। उन्होंने कहा, “मुझे डिस्टर्ब मत करो, नींद आ रही है।” सन् 2016 की पूर्व सांझ जैसी कोई भी सांझ हमारे जीवन में पहले कभी नहीं आई। रवि का हौसला हमेशा बुलंद रहा। दोस्तों के घर जाकर उनकी नींद में खलल डालना, पार्टी रखना, नए साल के हंगामे में शरीक होना, किसी नई रचना की शुरुआत करना और फोन पर कहना, “इक बिरहमन ने कहा है कि ये साल अच्छा है।” ये सब रवि के पसंदीदा शगल थे। उस दिन घर में इतने सदस्य थे लेकिन घर खामोश था। छोटे बच्चे आदुया और तत्सम भी सहमे हुए बैठे थे।

पहली जनवरी रवि बिस्तर में लेटे रहे। बहुत मनुहार की, रवि कुछ खा लो। दूध पी लो, जूस ले लो। 'रिसोर्स' डालकर जूस देने लगे। उनकी जिद कि उठकर अपने हाथ से पिऊंगा। उठने की ताकत नहीं थी। मैंने बताया, "कल अन्नू आ रहा है।" बड़े बेटे अनिरुद्ध को हम अन्नू कहते हैं और छोटे बेटे प्रबुद्ध को मन्नू। रवि कुछ चैतन्य हुए, "एयरपोर्ट से कैसे आएगा?" उन्होंने पूछा।

"टैक्सी से।" मैंने कहा और उनके मुंह से चाय का ग्लास लगाया। शिखा ने उन्हें रस्क खिलाई। एक कौर खाकर मना कर दिया। चाय पी ली। तीन जनवरी को बड़ी बहू प्रज्ञा के भाई भाभी रवि को देखने आए। डॉ. स्कंद सिन्हा और डॉ. अर्चना कौल सिन्हा दिल्ली के प्रसिद्ध चिकित्सकों में गिने जाते हैं। रवि बिस्तर पर पांच नीचे लटकाकर बैठे। उन्हें आशीर्वाद दिया। जितनी देर वे कमरे में रहे, रवि एकदम सीधे तने हुए बैठे रहे। स्कंद और अर्चना स्वयं बाहरी बैठक में आ गए कि अंकल आराम कर लें। रवि घंटों बैठे रहे। मैंने पूछा, "रवि कहीं जाना है?"

"हां।" उन्होंने कहा।

"चलो मैं बाथरूम पहुंचा दूं।" मैंने कहा। वे नहीं माने।

अपने आप बाथरूम गए।

दस जनवरी की सुबह तो उन्हें अस्पताल में भरती करना ही पड़ा। उसके बाद वे डॉक्टरों की अमानत बन गए।

आज मैं नम आंखों से उन्हें हर कदम पर याद करती हूं। हम एक दूसरे से जनवरी में मिले थे और जनवरी में ही बिछड़ गए। कोई और सुने तो यही कहेगा कि आधी शताब्दी का साथ कोई कम नहीं होता, जी भर जी तो लिए। रवि के बिना मेरा एक एक दिन भारी जा रहा है। वे मेरे जीवन के रवि और शशि दोनों थे। शहर की हर सड़क मुझसे पूछती है, "रवि को कहां छोड़ आई।" क्या जवाब दूं। घर के हर कोने से उनकी आवाज, उनकी हंसी सुनाई देती है। लगता है वे अंदर वाले कमरे में हैं, अभी आकर अपनी प्रिय कुर्सी पर बैठ जाएंगे।

लक्ष्मीघर मालवीय जी की बेटी मधु के फोन ने एक दिन हिलाकर रख दिया। उसने फोन पर अपने पिता को दुखी स्वर में बताया, "पापा कालिया जी चले गए।" मालवीय जी ने कहा, "ऐसे नहीं कहने मधु, अपनी आलमारी खोलकर देखो, कालिया जी हैं तो 'खुदा सही सलामत है', 'गालिब छुटी शराब', 'गली कूचे' में। कालिया जी कहीं गए नहीं हैं।"

दोनों बेटे मेरा मन लगाने के कई जतन करते हैं। अन्नू ने मुंबई दिल्ली एक कर रखा है, एक भी छुट्टी हो तो घर आ जाता है। मन्नू दफ्तर से चाहे जितनी देर में लौटे, एक चक्कर मेरे पास जरूर लगा जाता है। दोस्त भी खबर लेते रहते हैं। थोड़ा सा हौसला बनता है। इतना मैं जानती हूं कि रवि थोड़े थोड़े सब में हैं। न सिर्फ अन्नू, मन्नू, प्रज्ञा, शिखा, केशव, आद्या और तत्सम में वरन अखिलेश, मनोज, प्रांजल, अनुपम, आनंद, कबीर संजय, राकेश, उमाशंकर, यश, ज्योति, कल्पना और अनीता में भी।

मेरे लिए रवि जीतेजी एक लंबी प्रेम कहानी थी। अब तो वे कथा अनंता बन गए हैं।

कल तो कहते थे कि बिस्तर से उठा जाता नहीं

आज दुनिया से चले जाने की ताकत आ गई।

कोयोयकन की कबूतरी

असगर वजाहत

“मैं ‘सेल्फ पोर्ट्रेट’ बनाती हूँ इसलिए कि ज्यादातर अकेली होती हूँ और अपने से ज्यादा किसी और को नहीं जानती।”

संसार में सबसे ज्यादा ‘सेल्फ पोर्ट्रेट’ बनाने वाले चित्रकारों में पहला नाम विश्वविख्यात मैक्सिकन चित्रकार फ्रिदा कालो (1907-1954) का है।

फ्रिदा कालो के पुश्तैनी मकान और अब संग्रहालय ‘नीली कोठी’ के सामने दर्शकों की लाइन लगी थी। धूप में इलाका चमक रहा था। लोगों की भीड़ लगातार बढ़ती जा रही थी। मैक्सिको की हिंदी छात्रा हेओ ने बताया कि धीरे धीरे फ्रिदा की लोकप्रियता लगतार बढ़ रही है।

मैं फ्रिदा के बारे में कम जानता था पर इतना मालूम था कि मैक्सिकन ‘मोनोलीजा’ पेंट करने वाली फ्रिदा मैक्सिको आने वालों के साथ हवाई अड्डे से हो जाती है और फिर हर जगह साथ रहती है। मैक्सिकन ‘मोनोलीजा’ (फ्रिदा का एक ‘सेल्फ पोर्ट्रेट’) एक तरह से मैक्सिको का राष्ट्रीय चिह्न बन गया है। एयरपोर्ट की दीवारों पर आगंतुकों का स्वागत करते चित्र फ्रिदा शैली के हैं। प्रकृति, पशु, मनुष्यों और मिथकों की समान उपस्थिति इन चित्रों की बड़ी विशेषता है जिसमें लोक परम्परा और स्थानीयता आकर जुड़ जाती है।

हेओ लाइन से निकलकर संग्रहालय के गेट तक यह देखने गई कि इतनी देर क्यों लग रही है। फिर वापस आकर उसने बताया कि एक बड़े ग्रुप की वजह से देर हो रही है। अब रास्ता साफ है और जल्दी ही हमारा नम्बर आ जाएगा।

- “फ्रिदा, युवाओं में बहुत लोकप्रिय है।” हेओ ने लाइन में लगे युवाओं को देखकर कहा।
- “क्या वजह है?”

– “फ्रिदा की जीवन शैली और मान्याएं...युवाओं को आकर्षित करती हैं...उनकी चित्रशैली भी अनूठी है...पूरी तरह उनकी अपनी है...उनके पति मशहूर मैक्सिकन पेंटर डिएगो रिबेरा (Diego Rivera) थे और उन्होंने फ्रिदा से कहा था कि एक दिन फ्रिदा को बहुत बड़ा चित्रकार माना जाएगा।”

– “वे दिन शायद आ गए हैं।” मैंने भीड़ देखकर कहा।

– “हां, सब यही मानते हैं।”

– “बहुत लम्बे समय तक विवादास्पद और मैक्सिको तक सीमित रही फ्रिदा को अब अंतर्राष्ट्रीय मान्यता मिल चुकी है। फ्रिदा ने कुल 140 पेंटिंग बनाई हैं। इसके अलावा कई दर्जन ड्राइंग्स भी हैं। इन पेंटिंग्स में 55 सेल्फ पोर्ट्रेट हैं...उन्होंने कहा है... ‘मैंने सपनों को नहीं अपने यथार्थ को पेंट किया है’।” हेओ ने ब्रोशर पढ़कर बताया।

लाइन आगे बढ़ ही नहीं रही थी और जिज्ञासा बढ़ती चली जाती थी। खुदा खुदा करके काउंटर पर आ गए। मैक्सिकन सिक्के पेसू में टिकट का दाम 120 था। यह थोड़ा महंगा ही माना जाएगा। एक मैक्सिकन पेसू लगभग तीन रुपये के बराबर है। इस तरह टिकट का दाम साढ़े तीन सौ रुपये हुआ। हेओ ने बताया कि छात्रों के लिए टिकट सस्ता है लेकिन शनिवार, रविवार को टिकट का दाम बढ़ जाता है। यह भी बताया कि संग्रहालय की देखभाल और विस्तार के काम के लिए इस पैसे का उपयोग किया जाता है।

‘नीली कोठी’ या ‘ब्लू हाउस’ की गिनती अब एक ऐसे तीर्थ के रूप में होती है जिसका दर्शन करना हर मैक्सिको आने वाले के लिए आवश्यक है। इसी कोठी में फ्रिदा का बचपन बीता था और जीवन के 47 अच्छे बुरे साल भी यहीं गुजरे थे। यहीं विवाह हुआ, यहीं तलाक हुआ था। यहीं प्रेम हुए थे। यहीं उसने पेंटिंग की थी और यही मृत्यु हुई थी। मैक्सिको के कोयोयकन (Coyoacan) इलाके में फ्रांसीसी तर्ज पर यह कोठी फ्रिदा के पिता ने 1909 में बनवायी थी। जिसमें आंगन, पीछे का बाग प्रमुख हैं। दो मंजिला कोठी में ऊपर के कमरों में फ्रिदा का स्टूडियो और रिहायशी कमरे हैं। संग्रहालय बनाने के लिए कुछ परिवर्तन किए गए पर मूल ढांचा वैसे का वैसे ही बना हुआ है। संग्रहालय की लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता कि इसे देखने पच्चीस हजार लोग प्रति माह आते हैं। इस तरह यह मैक्सिको के लोकप्रिय संग्रहालयों में गिना जाता है। वैसे भी मैक्सिकन संग्रहालयों के शौकीन हैं। कहा जाता है कि मैक्सिको सिटी में जितने संग्रहालय हैं उतने संसार के किसी दूसरे शहर में नहीं हैं।

फ्रिदा कालो के जीवन को जाने बिना उसकी कला को जानना बहुत कठिन है क्योंकि उनका काम उनके जीवन से जुड़ा हुआ है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ (1907) में जन्मी फ्रिदा ने दूसरे दशक में होश संभाला होगा। यह दशक पूरी दुनिया में मार्क्सवाद और रूस की क्रांति के ‘सेलीब्रेशन’ का दशक था। पूरी दुनिया के छात्र, बुद्धिजीवी, कलाकार, श्रमिक मार्क्सवाद और रूस की क्रांति के गुण गाया करते थे। फ्रिदा ने भी इसी माहौल में आंखें खोली थीं। मैक्सिको में भी वामपंथी आंदोलन अपनी जड़ें जमा चुका था। यह बहुत रोचक तथ्य है कि मैक्सिको में बंगाल के वामपंथी विचारक एम.एन. राय (1887-1954) ने सोशलिस्ट वर्कर्स पार्टी की स्थापना की थी जिसका नाम 1919 में बदलकर मैक्सिकन कम्युनिस्ट पार्टी कर दिया गया था। 1925 में इस पार्टी पर प्रतिबंध लगा दिया गया था जो 1935 तक जारी था। यह वह समय था जब मार्क्सवाद और वामपंथ पूरी तरह मैक्सिको के कलाकारों, बुद्धिजीवियों की ‘गाइडिंग फोर्स’ बन चुका था। फ्रिदा न केवल वामपंथी विचारों से प्रभावित थी बल्कि सक्रियता से आंदोलनों में भाग लिया करती थी। जीवन के अंतिम दिनों में बीमारी की हालत में भी उन्होंने ग्वाटेमाला में सी.आई.ए. द्वारा आयोजित तख्तापलट (1954) कार्यवाही के विरोध प्रदर्शन में भाग लिया था। अपने समकालीन वामपंथी

नेताओं और संस्कृति कर्मियों से उसके अच्छे संबंध थे। यह भी माना जाता है कि विख्यात कम्युनिस्ट क्रांतिकारी लियो ट्राट्स्की (1879-1940) से भी उनके प्रेम संबंध थे। उनके प्रेमी और बाद में पति डिएगो का भी मैक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी में बहुत महत्वपूर्ण स्थान था।

फ्रिदा के अनुसार उनके बचपन में घर का वातावरण बहुत अधिक दुःखद रहा करता था। उनकी मां कर्मठ, कृपालु और बुद्धिमान होने के साथ साथ चतुर, कठोर और बहुत धार्मिक प्रवृत्ति की थी। हां अपने पिता के बारे में फ्रिदा ने स्पष्ट लिखा है कि वे उसके लिए प्रेरणा का सबसे बड़ा स्रोत थे। छः साल की उम्र में फ्रिदा को पोलियो हो गया था जिसकी वजह से एक पैर दूसरे के मुकाबले कमजोर और पतला हो गया था। इससे न केवल उनकी चाल पर फर्क पड़ा था बल्कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़े थे। छः साल की बच्ची को लंगड़ेपन पर चिढ़ाने वाले बहुत थे। इस घटना ने उसे अंतरमुखी बना दिया था। वह अकेले में रहना पंसद करने लगी थी। दोस्तों की संख्या कम से कम हो गई थी। फ्रिदा के मन में आई ग्रंथियों को दूर करने के लिए उसके पिता उसे घुड़सवारी से लेकर तैराकी तक सिखाते थे ताकि वह अपने को दूसरों के बराबर सामान्य और सहज महसूस कर सके।

फ्रिदा को खुश रखने के लिए पिता ने फ्रीदा का परिचय अपने पेशे फोटोग्राफी के अतिरिक्त साहित्य और दर्शनशास्त्र की दुनिया से भी करा दिया था। वह फोटोग्राफी के काम में अपने पिता की मदद करती थी। बीमारी की वजह से फ्रिदा का स्कूल छूट गया था। लेकिन कुछ साल बाद फ्रिदा को एक विशेष स्कूल में प्रवेश मिल गया जहां उसकी दोस्ती ऐसे छात्रों से हो गई थी जो अपने को सोशलिस्ट कहते थे। यहीं फ्रिदा का पहला परिचय मार्क्सवाद और समाजवाद से हुआ था जो धीरे धीरे बढ़ता चला गया था। यही उसका पहला प्रेम अपने सहपाठी आलेखांद्रो गोमेज आरियास (Alejandro Gomez Arias) से हुआ था।

बदनसीबी ने फ्रिदा का पीछा कभी नहीं छोड़ा। मरते दम तक वह छाया की तरह उसके साथ रही। कॉलेज के दिनों में ही एक भयानक सड़क दुर्घटना घटी जब वह अपने प्रेमी गोमेज आरियास के साथ घर लौट रही थी। इस दुर्घटना में कुछ लोग मर गए थे और वह बहुत बुरी तरह घायल हो गई थी। कई महीने अस्पताल में रहने के बाद वह घर में भी कई महीने बिस्तर पर पड़ी रही थी। लम्बे चले इलाज के बाद भी वह ठीक नहीं हो सकी थी। उसकी कमर का दर्द नहीं गया था। उसके शरीर के चारों तरफ प्लास्टर चढ़ा दिया गया था और वह बिस्तर पर लेटी रहने पर मजबूर हो गई थी। इलाज लम्बा खिंचता चला गया। भविष्य एक बड़े शून्य के रूप में उसके सामने आने लगा था। पर कुछ न कुछ तो करना ही था।

फ्रिदा ने लेटे लेटे चित्र बनाने का अभ्यास किया था। उसके बहुत से चित्र इसी तरह बनाये गए हैं। हेओ ने बताया कि फ्रिदा की मां ने बेड के ऊपर एक आईना लगवा दिया था जिसमें फ्रिदा अपने को देख सकती थी। और बेड के सामने कैनवस लगाने का ट्राइपाड और रंग रहा करते थे। फ्रिदा आईने में देखकर कैनवस पर अपने सेल्फ पोर्ट्रेट बनाया करती थी।

— “कई वर्षों की पीड़ा, अकेलेपन और असहाय होने का भाव था जिसने फ्रिदा को फ्रिदा बनाया।” हेओ ने धीरे से कहा था।

— “तो सिर्फ अपने पोर्ट्रेट बनाती थी?” मैंने पूछा।

— “हां अपने, अपनी बहनों के और अपने सहपाठियों के।” हेओ ने बताया।

— “कला सीखने की कोई औपचारिक ट्रेनिंग तो नहीं थी फ्रिदा के पास?”

— “नहीं...अपने पिता से कुछ...और कुछ अपने पति डिएगो से...और कुछ इधर उधर से सीखा था।”

— “फ्रिदा कब तक बीमार रहीं?”

— “मैंने पढ़ा है कि 1927 में फ्रिदा कुछ बाहर निकलने के काबिल हो गई थी। वह अपने कॉलेज के दोस्तों के साथ छात्र राजनीति में भी भाग लेने लगी थी। इसी जमाने में उसने मैक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी ज्वाइन की थी।” हेओ मुझे म्यूजियम दिखाने से पहले शायद पूरी जानकारियां लेकर आई थी।

संग्रहालय के अंदर भीड़ लगातार बढ़ती जा रही थी। लेकिन ऐसा नहीं था कि किसी को बढ़ती भीड़ से असुविधा होती। दर्शक जो कुछ देख रहे थे उन्हें पता था कि उनके पीछे भी कुछ लोग हैं जो वही देखना चाहते हैं जो वे देख रहे हैं। इसलिए लोग एक दो मिनट के बाद आगे बढ़ जाते थे ताकि दूसरे लोग देख सकें। संग्रहालय में फोटो लेने की अनुमति थी इसलिए दूसरों की तरह मैं भी धड़ाधड़ चित्र ले रहा था। चित्रों के माध्यम से 1920-30 की मैक्सिको सिटी भी उभरकर सामने आ रही थी।

सन् 1927 के आसपास मैक्सिको सिटी संसार के निष्कासित कम्युनिस्टों का गढ़ बनी हुई थी। क्यूबा से लेकर इटली और अमेरिका तक के निष्कासित कम्युनिस्ट मैक्सिको सिटी में शरण ले रहे थे। यह स्वाभाविक था कि फ्रिदा का परिचय उन सबसे हुआ होगा। इसी जमाने में फ्रिदा का परिचय मैक्सिको के बहुत नामी गिरामी और विशिष्ट चित्रकार डिएगो रिबेरा से हुआ जिनका मैक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी में भी बड़ा दबदबा था। इतने बड़े चित्रकार से परिचय होने के बाद फ्रिदा के मन में यह विचार आना स्वाभाविक था कि उन्हें अपने चित्र दिखाए जाएं और उनकी राय ली जाए। पूछा जाए कि उसमें चित्रकार बनने की प्रतिभा है भी या नहीं। एक दुबली पतली सुंदर बीस साल की लड़की की चित्रकला में रुचि और उसके अनुरोध को देखकर बयालीस वर्षीय अनुभवी ‘वूमनाइजर’ चित्रकार के मन में क्या विचार आए होंगे इसका अनुमान लगा लेना आसान है।

बहुत जल्दी नतीजा यह निकला कि दो पत्नियों के पति और बहुतेरी औरतों से संबंध रखने वाले डिएगो से फ्रिदा प्रेम करने लगी। उसे डिएगो के बारे में सब मालूम था। प्रेम अंधा होता है— फ्रिदा भी अंधी हो गई थी। पर फ्रिदा की मां की आंखें थीं। उसे इस जोड़े पर सख्त आपत्ति थी। वह जानती थी कि यह संबंध दूर तक नहीं चलेगा। फ्रिदा और डिएगो के बीच बहुत अंतर था। डिएगो का वजन 300 पाउंड था और उम्र 42 साल थी जबकि फ्रिदा का कद 5 फुट 3 इंच और वजन 98 पाउंड था। लोग कहते थे कि यह हाथी और कबूतरी की शादी है।

दोनों में चालीस साल से अधिक उम्र का ही नहीं अनुभव का भी फर्क था। डिएगो के लिए प्रेम, औरत, शादी वगैरा चिरपरिचित शब्द थे और वह इनके संपर्क में कई बार आ चुका था तो फ्रिदा के लिए ये पवित्र शब्द जीवन मरण जैसे महत्त्वपूर्ण थे। इस शादी का जिज्ञासु मैक्सिकन मीडिया में ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय मीडिया में भी हुआ था।

भावनात्मक स्तर पर ही नहीं बौद्धिक स्तर पर भी फ्रिदा को डिएगो ने इतना प्रभावित किया था कि वह पूरी तरह बदल गई थी। डिएगो का यह मानना था कि मैक्सिकन महिलाएं जो परम्परागत मैक्सिकन कपड़े नहीं पहनती...वे बौद्धिक और भावनात्मक स्तर पर एक विदेशी समुदाय पर आश्रित रहना चाहती हैं, उससे जुड़ना चाहती हैं। डिएगो के बहुत पक्के और सुचिंतित राष्ट्रीय और वामपंथी विचारों ने फ्रिदा को इतना प्रभावित किया था कि उसने पश्चिमी ढंग के कपड़े पहनना तक छोड़ दिया था। वह चाहे पेरिस में हो या न्यूयार्क में, लंदन में हो या कोयोकन में वह परम्परावादी मैक्सिकन पोशाकें पहनती थी। लम्बे लम्बे स्कर्ट, तरह तरह के लम्बे रंग बिरंगे ब्लाउज, कपड़े की परम्परागत टोपियां, गले में तरह तरह की मालाएं और अजीब से लगने वाले आभूषण,

नया हेयर स्टाइल फ्रिदा का ट्रेड मार्क बन गया था। ऐसा हो सकता है कि वह अपने पोलियो और दुर्घटनाग्रस्त शरीर को छिपाने के लिए ही ऐसा करती हो। लेकिन वह पूरी तरह बदल गई थी। प्यार में उसने सब कुछ दे दिया था और सब कुछ पाना चाहती थी। फ्रिदा ने लिखा है कि मेरे साथ दो बड़ी दुर्घटनाएं हुईं...पहली तो वह थी जब सड़क पर एक गाड़ी से एक्सीडेंट हुआ और दूसरी जब मुझे डिएगो मिले।

वह उपनिवेशवाद का विरोध करती थी। मार्क्सवाद पर उसका विश्वास और पक्का हो गया था। यह परिवर्तन उसकी कला पर भी प्रभाव डाल रहा था। चटकीले रंग, नाटकीय प्रतीक और मूल मैक्सिकन आदिवासी शैली उसके चित्रों में जगह बना रही थी। बंदर उसके चित्रों में झांकने लगा था जो मैक्सिकन मिथकशास्त्र में 'हवस' का प्रतीक है।

कुल मिलाकर संग्रहालय में दस कमरे हैं। इमारत देखकर लगता है कि यह एक बार में नहीं बनी है। मतलब कुछ हिस्से पहले और कुछ बाद में बनाये गए होंगे। ग्राउंड फ्लोर पर फ्रिदा के प्रारंभिक और कम महत्वपूर्ण चित्र लगे हैं। यह कमरा दरअसल बैठक था जहां डिएगो और फ्रिदा स्थानीय और विदेशी मित्रों से मिला करते थे। दीवार पर उन प्रख्यात लोगों की सूची लगी हुई है जो इस बैठक में कभी आए थे। कमरे में डिएगो की भी कुछ कलाकृतियां रखी हैं। इसी कमरे में प्राचीन गहनों के डिजाइन देखकर लगता है कि उस सभ्यता के लोगों का सौन्दर्यबोध कितना विकसित रहा होगा। अगले कमरे में फ्रिदा के समकालीन चित्रकारों के चित्र देखे। हेओ उन चित्रकारों के बारे में बताती रही और मैं सुनता रहा क्योंकि उनके बारे में मेरी जानकारी शून्य के बराबर थी।

रसोई और खाने के कमरे देखकर मजा आ गया। मुंह में पानी आ गया। वैसे आना चाहिए थी 'टिकाला' जो मैक्सिको की राष्ट्रीय शराब है। बहरहाल रसोई और खाने का कमरा पक्के मैक्सिकन शैली में बने हैं। नीला और पीला रंग इधर उधर बिखरा पड़ा था। अगले दो कमरे वर्तनों से भरे दिखाई पड़े। उनमें शीशे से लेकर मिट्टी तक के वर्तन हैं। ये वर्तन मैक्सिको के अलग अलग इलाकों से हैं। कुछ 'पेपरमाशी' की कृतियां भी हैं। डायनिंग रूम के बाद डिएगो का बेडरूम है जिसमें उसके कपड़े और दीगर सामान रखे हैं।

—“प्रोफेसर आपको प्यास तो नहीं लग रही? पानी तो नहीं पिएंगे?” हेओ ने पूछा और मुझे लगा कि हां मुझे प्यास लग रही है।

—“भरे पास पानी है।”

हेओ ने पानी की बोतल मुझे दे दी।

हेओ मुझे प्रोफेसर कहती है क्योंकि उससे मेरा परिचय उसकी हिंदी की प्रोफेसर उमा ठुकराल ने कराया था। उमा जी पिछले बीस साल से मैक्सिको सिटी में हिंदी पढ़ा रही हैं। उनसे मेरा परिचय भी अजीब ढंग से हुआ था। जाड़े की एक रात थी। ग्यारह बज रहे थे। अचानक फोन की घंटी बजने लगी। मैंने फोन उठाया। उधर से एक महिला की आवाज में पूछा गया—“क्या इस समय में आपसे बात कर सकती हूं।”

मैंने कहा—“जरूर।”

यहीं से प्रोफेसर उमा ठुकराल से जान पहचान हुई। वे मेरा नाटक 'जिन लाहौर...' स्पेनी भाषा में अनुवाद कर रही थीं और मेरी कहानी 'शाह आलम कैम्प की रूहे' स्पेनी में अनुवाद कर चुकी थीं। पहली ही मुलाकात में पता चला कि मैक्सिको में हिंदी पढ़ाती हैं तो मेरी लालच उभर कर सामने आ गई। मैंने कहा था—“मैं अगर मैक्सिको आऊं तो क्या आप मेरा परिचय स्थानीय लोगों से करा सकती हैं? गाइड कर सकती है?”

उन्होंने हामी भर ली थी। दो साल बाद मैं मैक्सिको सिटी में था और उन्होंने अपनी तीन छात्राओं से परिचय कराया था जिसमें एक हेओ है। हेओ का पूरा नाम हेओर्गिना लोपेज माजोन है। चूंकि मैं हेओ की प्रोफेसर का मित्र हूं इसलिए प्रोफेसर ही हुआ। जैसे मामा के मित्र को सब मामा कहने लगते हैं।

पानी पीकर आगे बढ़े तो हम डिएगो के बेडरूम में पहुंच गए। जहां उनके कपड़े, हैट, छड़ी और दीगर सामान उसी तरह रखा हुआ था जैसा डिएगो के जीवनकाल में था। सीढ़ियां चढ़ने के बाद हम लोग ऊपर वाले कमरे में आ गए। इन दो कमरों में से एक फ्रिदा का स्टूडियो है जो बिल्कुल वैसे ही है जैसे फ्रिदा ने उसे छोड़ा था। बड़ी खिड़कियों से अंदर रोशनी आ रही थी। दो मेजों पर छोटी छोटी शीशियों में रंग रखे थे। कुछ रंगों के ट्यूब भी सलीके से धरे दिखाई पड़े। ईजल पर वह पेंटिंग लगी हुई थी जिसे फ्रिदा मृत्यु से पहले या कहीं बिस्तर में लग जाने से पहले बना रही थी। यह एक 'स्टिल लाइफ' है। अधूरी बनी तस्वीर फ्रिदा के अधूरे जीवन की कहानी कह रही थी। तरह तरह के ब्रुश और दूसरे उपकरण भी नजर आ रहे थे। कैनवस के सामने फ्रिदा की व्हील चेयर रखी है। जीवन के अंतिम दिनों में वह व्हील चेयर पर ही इधर उधर आ जा पाती थी। स्टूडियो को देखकर यह नहीं लगता कि यह किसी ऐसे आर्टिस्ट का स्टूडियो है जो अब जीवित नहीं है। पूरा वातावरण, खिड़कियों से आती धूप, बाहर लहराते हुए हरे पेड़, चटकीले रंग, सफेद चमकता हुआ फर्श, ईजल पर लगी तस्वीर से यही अंदाजा लगता है कि फ्रिदा अभी अभी उठकर गई है और अभी आएगी...सब दर्शकों को देखकर मुस्करायेगी और चुपचाप अपने काम में लग जाएगी...फिर धीरे धीरे अदृश्य हो जाएगी...

बेडरूम के एक कोने में फ्रिदा की अस्थियां (Ashes) रखी हैं। इसके साथ अंतिम संस्कार को ले जाते समय चेहरे के चारों ओर लगाने वाला 'फ्यूनिरल मास्क' रखा है। कुछ निजी सामान के साथ साथ ऊपर वह आईना भी लगा दिखाई पड़ता है जिसमें देखकर फ्रिदा अपने चित्र बनाया करती थी। बेड के ऊपर एक मृत बालक की तस्वीर लगी है। दुर्घटनाओं के कारण कुछ ऐसा हुआ था कि फ्रिदा मां नहीं बन सकती थी। कई बार गर्भपात होने के कारण उसके मन पर इसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। मृत बालक और गर्भपात फ्रिदा के कई चित्रों की 'थीम' है। बेडरूम की दीवार ही पर स्टालिन, लेनिन, मार्क्स, एंजिल और माओ की तस्वीरें लगी हैं। नितांत व्यक्तिगत और सामाजिक राजनीतिक प्रतिबद्धता का यह संगम चकित कर देता है।

अपने आपको पूरी तरह शारीरिक और मानसिक तौर पर डिएगो के हवाले कर देने के बाद भी फ्रिदा को वह नहीं मिला जिसकी उम्मीद थी। डिएगो के प्रति उसके प्रेम के बहुत जटिल आयाम थे। डिएगो को वह 'मेरा बच्चा, मेरा प्रेमी और मेरा संसार' कहा करती थी। लेकिन उसकी डायरी में ऐसे प्रसंग भरे पड़े हैं जो बताते हैं कि उसने जब जब मुटठी खोली तब तब वहां धूल ही मिली। फ्रिदा के जीवनी लेखक बताते हैं कि डिएगो और फ्रिदा दोनों ही तुनकमिजाज थे। अपनी अपनी इच्छा के विरुद्ध होता नहीं देख सकते थे। फ्रिदा यह आशा करती थी कि डिएगो पूरी तरह उसके प्रति समर्पित हो, जैसे कि वह उसके प्रति है, पर ऐसा नहीं था। डिएगो के संबंध दूसरी स्त्रियों से लगतार बनते और समाप्त होते रहे। धीरे धीरे यह स्थिति फ्रिदा के लिए असहनीय होती चली गई थी।

शारीरिक और मानसिक रूप से त्रस्त फ्रिदा ने विरोध के रूप में कुछ ऐसे कदम उठाये जो डिएगो को बेचैन करने लगे। डिएगो जानता था कि फ्रिदा 'बाईसेक्सुअल' है और उसके संबंध कुछ स्त्रियों के साथ भी हैं। वह इसे सहन करता था लेकिन जब फ्रिदा के संबंध पुरुषों के साथ बनने लगे और डिएगो को यह पता चला कि फ्रिदा के संबंध अमेरिकन चित्रकार और डिजाइनर इसामा

नोगुची (Isama Noguchi) के साथ हैं तो वह कठोर हो गया था। दूसरी ओर जब फ्रिदा को यह पता चला कि डिएगो के संबंध उसकी छोटी बहन क्रिस्टीना के साथ बन गए हैं तो वह बहुत अधिक गुस्से में आ गई थी।

अपने वैवाहिक जीवन से दुःखी, पति की बेवफाई से आहत और बीमारियों से जूझती फ्रिदा के जीवन में एक नया मोड़ उस समय आया जब सोवियत यूनियन के विख्यात तानाशाह जोजफ स्टालिन (1887-1953) के 'संगीन अपराधी' लियो ट्राट्स्की (1879-1940) अपनी जान बचाने की कोशिश में छिपते और भागते हुए मैक्सिको पहुंचे। स्टालिन के प्रभाव और आतंक के कारण संसार के कई बड़े देश ट्राट्स्की को राजनैतिक संरक्षण देने से मुकर चुके थे। डिएगो ने किसी न किसी तरह मैक्सिको की सरकार को इस बात पर तैयार कर लिया था कि वह ट्राट्स्की को राजनीतिक शरण दे।

सन् 1937 में जब ट्राट्स्की मैक्सिको की बंदरगाह पर पहुंचे तो वे और उनकी पत्नी नातालिया जहाज से नहीं निकल रहे थे। वे बाहर आने से डर रहे थे। उनको डर था कि स्टालिन के हत्यारे यहां उनकी हत्या कर सकते हैं। पर जब वे आश्वस्त हो गए कि उन्हें लेने सरकारी अधिकारियों के साथ उनके समर्थक और हमदर्द आए हैं तब वे जहाज से बाहर आए थे। ट्राट्स्की के स्वागत के लिए फ्रिदा स्वयं बंदरगाह पर मौजूद थी। वैसे कायदे से ट्राट्स्की को रिसीव करने के लिए डिएगो को जाना चाहिए था क्योंकि उस समय उससे अधिक 'हाई प्रोफाइल' कम्युनिस्ट मैक्सिको में नहीं था। पर वह बीमारियों और आपरेशन के कारण जा नहीं सका था।

उस समय ट्राट्स्की वामपंथी बुद्धिजीवियों और कलाकारों में एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नाम था। वह सोवियत क्रांति का महान योद्धा, लाल सेना का सर्वोच्च कमांडर, पॉलित ब्यूरो का सदस्य और एक समय लेनिन के बाद नम्बर दो कम्युनिस्ट नेता हुआ करता था। पर सत्ता संघर्ष में स्तालिन ने उसे हरा दिया था और अब उसकी जान का दुश्मन हो गया था।

ट्राट्स्की जैसे मेहमान को रखना किसी के लिए भी गौरव का विषय हो सकता था। फ्रिदा और डिएगो ने ट्राट्स्की को 'ब्लू हाउस' में रखा। यह एक अंतर्राष्ट्रीय खबर बन गई थी। ट्राट्स्की के समर्थक उसकी पूरी सुरक्षा करते थे और फ्रिदा उसके आदर सत्कार में कोई कसर न छोड़ती थी।

यह वही समय था जब फ्रिदा की छोटी बहन क्रिस्टीना और डिएगो का प्रेम प्रसंग चल रहा था और डिएगो ने उसे एक अलग मकान दे रखा था। फ्रिदा के मन में यह फांस इतना गहरे उतर गई थी कि उसने डिएगो से 'बदला लेने' का निर्णय किया और उसकी नजर ट्राट्स्की पर पड़ी। पूरा जीवन संघर्षों और पिछले नौ दस वर्षों की भाग दौड़, मानसिक यंत्रणा, प्रियजनों की स्तालिन द्वारा हत्याओं का दुःख, भय, अपमान, निराशा और उम्र के आखरी पड़ाव पर प्रेम संभावना से शून्य ट्राट्स्की को जब 28 वर्षीय सुंदर और बुद्धिमान फ्रिदा का यह इशारा मिला होगा कि वह उससे प्रेम करती है तो ट्राट्स्की को कैसा लगा होगा। इस पर कई किताबें लिखी जा सकती हैं।

जल्दी ही दोनों का प्रेम परवान चढ़ने लगा। फ्रिदा और ट्राट्स्की किताबों के बीच रखकर एक दूसरे को प्रेमपत्र देने लगे। ट्राट्स्की और फ्रिदा अंग्रेजी जानते थे लेकिन डिएगो और ट्राट्स्की की पत्नी नातालिया अंग्रेजी नहीं जानते थे। इसका पूरा फायदा प्रेम करने वाली जोड़ी उठाती थी। ट्राट्स्की और फ्रिदा सबके सामने अंग्रेजी में प्यार भरी मीठी मीठी बातें किया करते थे। फ्रिदा अपने नये प्रेमी को प्यार से 'कुच्चीदाड़ी' कहा करती थी और कभी कभी उसे 'बूढ़ा' कहकर भी पुकारती थी। ट्राट्स्की के जन्मदिन पर फ्रिदा ने अपना एक चित्र बनाकर भी उसे भेंट किया था।

प्रेमियों की मिलन स्थली वह मकान बन गया था जो डिएगो ने अपनी अत्यंत युवा प्रेमिका

फ्रिदा की बहन को दिया था। धीरे धीरे यह प्रेम प्रसंग जग जाहिर हो गया था। शायद फ्रिदा इसे छिपाना भी नहीं चाहती थी। जिस तरह यह प्रेम शुरू हुआ था उसी तरह धीरे धीरे खत्म हो गया। फ्रिदा के जीवनीकार बताते हैं कि ट्राटस्की के आग्रह पर फ्रिदा ने उसके प्रेमपत्र वापस कर दिये थे जिन्हें शायद ट्राटस्की ने जला दिया था।

संबंधों की इन जटिलताओं का नतीजा यह निकला कि 1939 में फ्रिदा और डिएगो का तलाक हो गया। लेकिन गहरे प्रेम संबंध ऐसे थे और दोनों के प्रति एक दूसरे के लिए इतनी गहरी भावनाएं थीं कि एक दूसरे की अनगिनत बेवफाइयों के बाद भी प्रेम बचा रहा और शादी की तरह तलाक भी लम्बा न चल सका। लगभग एक साल बाद ही दिसम्बर 1940 में उन्होंने फिर शादी कर ली।

बीमारियों और मुसीबतों ने कभी फ्रिदा का पीछा नहीं छोड़ा। 1952 के आसपास उसके पैर में घातक गैंगरीन हो गई थी जिसके नतीजे में उसका सीधा पैर घुटने से काट दिया गया था। इस आपरेशन से उसका 'डिप्रेशन' बहुत बढ़ गया था। इसी समय फ्रिदा को यह सूचना मिली थी कि डिएगो एक नया प्रेम कर रहा है। निराशा की चरम स्थिति में फ्रिदा ने ज्यादा 'स्लीपिंग पिल्ल' खाकर आत्महत्या की कोशिश भी की थी।

फ्रिदा ने डायरी (फरवरी 1954) में लिखा है— "उन्होंने मुझे शताब्दियों की यंत्रणा दी है, इस समय मेरे पास कोई तर्क नहीं है, मैं अपनी हत्या करने की कोशिश कर रही हूँ। पर डिएगो के कारण मैं ऐसा नहीं कर रही क्योंकि एक व्यर्थ विचार यह है कि वह मुझे 'मिस' करेगा।" फ्रिदा का यह विचार पता नहीं कितना सही था लेकिन कुछ ऐसे प्रसंग जरूर हैं जिनसे यह साबित होता है कि फ्रिदा के प्रति डिएगो के मन में बहुत जटिल, कोमल भावनाएं थीं। एक बार फ्रिदा के एक चित्र को देखकर विश्वविख्यात चित्रकार पिकासो ने डिएगो के सामने फ्रिदा की प्रशंसा की थी जिसे सुनकर डिएगो की आंखें भर आई थीं।

जीवन के अंतिम दिनों में फ्रिदा बिस्तर से लग गई थी। सांस की भयानक बीमारी ने रही सही ताकत भी खत्म कर दी थी। लेकिन इस दशा में भी उसने सी.आई.ए. के खिलाफ प्रदर्शन में भाग लिया था। उसे अपनी मृत्यु का एहसास हो गया था। मिलने जुलने वालों से और अपनी डायरी में वह मौत के काले 'ऐंजिल' का उल्लेख करती थी। उसकी अंतिम ड्राइंग एक काले ऐंजिल की ड्राइंग है जिस पर लिखा था—"मैं आशा करती हूँ कि 'चले जाना' सुखद होगा।"

12 जुलाई 1954 की रात फ्रिदा को तेज बुखार और दर्द था। देखभाल करने वाली नर्स दवाइयां देकर जा चुकी थी। कुछ दवाइयां फ्रिदा को अपने आप भी खानी थीं। वह रात फ्रिदा की अंतिम रात थी।

चूंकि पोस्टमार्टम नहीं हुआ था इसलिए मृत्यु का असली कारण पता नहीं चल पाया। मेडिकल रिपोर्ट में उसकी मृत्यु का कारण फेफड़ों में रुकावट (Pulmonary Embolism) बताया गया था। लेकिन यह भी कहा जाता है शायद अधिक 'पेनकिलर' और दूसरी दवाइयां लेकर फ्रिदा ने आत्महत्या की थी।

उसी दिन शाम को फ्रिदा का मृत शरीर कम्युनिस्ट झंडे में लपेटकर पलासियो दे बेवास अर्तेस (Palacio de Beller Artis) में अंतिम संस्कार से पहले रखा गया था।

फ्रिदा ने पूंजीवाद से जन्मे औद्योगीकरण की बड़ी कड़ी आलोचना की है। उसका 'सेल्फ पोर्ट्रेट बिट्वीन मैक्सिको एंड यूनाइटेड स्टेट्स' औद्योगीकरण के कारण जन्मी अमानवीय स्थितियों को सामने लाता है। उसका दूसरा चित्र 'माई ट्रेस हैंस देयर' अमेरिकी साम्राज्यवाद की मार्क्सवादी आलोचना का अच्छा उदाहरण है। फ्रिदा के सभी जीवनीकार यह मानते हैं कि वह वामपंथी

राजनीति और मार्क्सवाद से प्रभावित थी। आज फ्रिदा अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण प्रति संस्कृति का प्रतीक बन चुकी है। लातीनी अमेरिकी देशों में फ्रिदा और ची ग्वेरा के चित्रों पर आधारित ऐसे पोस्टर बहुत लोकप्रिय हैं जो प्रति संस्कृति के मुद्दों को सामने लाते हैं।

समय बड़ा निमर्म हैं। जीते जी फ्रिदा कालो एक विख्यात चित्रकार डिएगो रिबेरा की पत्नी के रूप में स्वीकार की जाती थी लेकिन समय ने इस तथ्य को लगभग पलट दिया है। आज डिएगो विश्वविख्यात पेंटर फ्रिदा कालो के पति के रूप में याद किए जाते हैं। डिएगो को यह लगता भी था और उसने फ्रिदा से कहा भी था कि एक दिन वह बड़ी चित्रकार के रूप में स्थापित होगी। फ्रिदा की चित्रकला के बारे में कहा जाता है कि उसके चित्र जमीन से जुड़े हुए हैं और मैक्सिको चित्रकला की परंपरा के अनुसार वे यथार्थ और फैंटेसी के बीच रहते हैं। जैसे ये दोनों एक हों और दोनों ही यथार्थ हों।

फ्रिदा ने बहुत कम चित्र बनाये हैं और कम प्रदर्शनियां की हैं। फ्रिदा का पहला 'वन मैन शो' 1938 में अमेरिका की जूलियन लेवी गैलरी (Julien Lery Gallery) में हुआ था। यहां उसका परिचय हंगेरियन फोटोग्राफर निकोलस मुरेय (Nickolas Murry) से हुआ था जिसके साथ फ्रिदा के प्रेम संबंध दस साल रहे थे।

कला समीक्षकों और कलाकारों ने उसके काम को पर्याप्त महत्त्व दिया था। विख्यात लेखक, कवि, कला समीक्षक और सुर्रियलिज्म (Surrealism) के प्रवर्तक (1996-1966) आंद्रे ब्रेसॉ (Andr'e Berton) के निमंत्रण पर वह 1939 में अपनी प्रदर्शनी लेकर पेरिस गई थी। ब्रेसॉ ने फ्रिदा के चित्रों को सुर्रियलिज्म के अंतर्गत माना है जबकि फ्रिदा ने लिखा है, "मैं नहीं जानती कि मेरी पेंटिंग 'सुर्रियलिस्ट' हैं या नहीं...पर इतना जानती हूँ कि वे मेरी बेबाक अभिव्यक्ति (फ्रैंक एक्सप्रेसन) हैं।" संसार की प्रसिद्ध गैलरी लूव्र (Louvre) ने उसका एक चित्र खरीदा था जो किसी भी चित्रकार के लिए अंतर्राष्ट्रीय मान्यता है।

लूव्र गैलरी द्वारा चित्र खरीद लिए जाने के बाद भी फ्रिदा कालो को मैक्सिको में वह मान्यता नहीं मिल पायी थी जो मिलनी चाहिए थी। बीसवीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक में स्थितियां बदल रही थीं। मैक्सिको में 'नियोमैक्सिकनीसूमो' (Neomexicanisomo) आंदोलन शुरू हो गया था। कला और साहित्य के क्षेत्र में मैक्सिकन मूल जातियों की कलादृष्टि, लोकचेतना, राष्ट्र की पहचान और निजता पर बल देने वाले इस आंदोलन ने पहली बार फ्रिदा के महत्त्व को पहचाना था। 1982 में फ्रिदा के चित्रों की प्रदर्शनी स्वीडन, जर्मनी, अमेरिका और मैक्सिको में हुई थी जिसके बाद फ्रिदा को एक नये रूप में देखा गया। इसी समय पौल लेडुक (Paul Leduc) ने फ्रिदा के जीवन पर आधारित फिल्म भी बनाई थी जिसे फिल्म समीक्षकों ने बहुत महत्त्व दिया था। फ्रिदा की कई जीवनियां लिखी गई हैं और कला समीक्षकों ने उसके चित्रों की व्याख्या और पुनर्व्याख्या पर बहुत ध्यान दिया है। फ्रिदा के जीवन पर 2002 में फिर एक फिल्म बनाई गई जिसे जुलिस टैमोस (Julis Taymos) ने डायरेक्ट किया था। इस फिल्म की लोकप्रियता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि फिल्म ने 58 मिलियन डालर का व्यापार किया था। लंदन की प्रसिद्ध गैलरी टेट ने 2006 में और अमेरिका के विभिन्न शहरों की आर्ट गैलरियों में फ्रिदा के चालीस चित्रों की प्रदर्शनियां लगी थीं।

जैसे जैसे समय बीत रहा है फ्रिदा का महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है। आज फ्रिदा लातीनी अमेरिका की सबसे 'महंगी' चित्रकार है। सन् 2006 में न्यूयॉर्क की एक कला नीलामी में उसका एक पोर्ट्रेट पांच मिलियन डॉलर का बिका था। इससे पहले कोई भी मैक्सिकन कलाकृति इतनी महंगी नहीं बिकी थी। फ्रिदा निश्चय ही विश्व की सबसे महंगी महिला चित्रकार है।

फ्रिदा के चित्रों से अनेक नये विमर्श उभर रहे हैं। नारीवाद एक महत्त्वपूर्ण विमर्श है जिसके अंतर्गत फ्रिदा की नई और सारगर्भित व्याख्याएं की जा रही हैं। माना जाता है कि फ्रिदा ने नारी जीवन में छुपे यथार्थ को पहली बार निर्भीकता से चित्रित किया है। यह यथार्थ उसके अपने अनुभवों की देन है। यद्यपि फ्रिदा ने यह सब बहुत सोच समझकर नहीं किया था लेकिन औरत का दर्द, उसकी शक्ति और संत्रास फ्रिदा के चित्रों में बहुत प्रभावशाली ढंग से दर्शक को आकर्षित करते हैं। उसकी पेंटिंग 'मेरा जन्म' (माई बर्थ 1932) में बच्चे के जन्म को दर्शाया गया है। पश्चिमी दर्शकों के लिए यह चित्र आश्चर्य में डाल देने वाला कहा जाता है क्योंकि पश्चिमी कला में प्रजनन के विषय पर ऐसे चित्र नहीं बनाये गए। यह चित्र अनकहे ढंग से नारी शक्ति के सबसे बड़े आयाम को उद्घाटित करता है। प्राचीन सभ्यताओं में इसकी बड़ी मान्यता थी। उपनिवेश बन जाने से पहले मैक्सिकन सभ्यताएं भी नारी के इस रूप को महत्त्व देती थीं। भारतीय संस्कृति में भी नारी के माता रूप को विविध प्रकार से साहित्य और कलाओं में अभिव्यक्त किया गया है। फ्रिदा के चित्रों में 'स्व' की रक्षा के लिए नारी संघर्ष की भावना भी दिखाई पड़ती है। नारी शक्ति और नारी अधिकार के स्वर फ्रिदा की कला में एक दूसरे से मिल गए हैं। उसके चित्रों में 'नारी पीड़ा' के बहुत मार्मिक प्रसंग भी दिखाई पड़ते हैं। फ्रिदा तो यह मानती थी कि यह उसकी अपनी पीड़ा है लेकिन कला समीक्षकों का मानना है कि इसके व्यापक संदर्भ हैं।

हम सीढ़ियां उतरकर नीचे आए। यहां संग्रहालय की दुकान है जहां फ्रिदा के प्रिंट आदि खरीदे जा सकते हैं। एक कैफे है जो इतना भरा हुआ था कि बैठने की कोई जगह न थी। हम बाहर आ गए।

हेओ ने कहा—“प्रोफेसर कोयोयकन मैक्सिको सिटी का बड़ा ऐतिहासिक इलाका है यहां सोलहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक का इतिहास देख सकते हैं।”

इतिहास तो उतना समझ में नहीं आया लेकिन हरियाली, सुंदर पेड़, लताएं, पार्क, हरे लॉन... कॉलोनियल समय की भव्य इमारतें, न्योक्लासिक शैली के मकान, 18वीं शताब्दी के दरवाजे, पतली और शांत गलियां...छोटी छोटी सुंदर बाजारें और खाने पीने के अड्डे बहुत साफ और सुंदर लगे।

लेकिन मन फ्रिदा कालो में अटक गया था। उसके बारे में कहीं पढ़ा था कि उसे नाच गाने का शौक था, शोर शराबा पसंद था, उसके मित्रों और प्रेमियों की बड़ी संख्या थी, फिर भी वह भयावह होने की सीमा तक बहुत अकेली थी।

लवर्स

राजू शर्मा

न जाओ सैयां छुड़ा के बैयां, कसम तुम्हारी मैं रो पडूंगी, रो पडूंगी...! मुझे यह गाना अज्ञात कारणों से बहुत प्रिय है। मेरी एक मित्र का कहना है कि मैं उन 99 फीसदी पुरुषों की जमात में हूँ जो स्त्री सत्ता के घोर विरोधी हैं। मैं इस बारे में बहस करने से कतराता हूँ। बहरहाल...

लवर्स! वी आर लवर्स!! इस फुसफुसाहट में पूरी एक दुनिया बसी है।

इश्क की हसरत किसे नहीं, जो इश्क नहीं तो हसरत भी कहां मौजूद ओ मयस्सर है...इश्क के खयाल ने न जाने कितनी खाम खयाली की शायरी पैदा की।

प्यार करना, प्यार में होना, प्यार हो जाना, प्यार में जीना, मरना, आह ए आशिकां, इश्कियां, बेपनाह मोहब्बत...आई लव यू, मुझे तुमसे मोहब्बत है...हर बार निहाल फुरफुरी सी महसूस होती है जब भी इस तरह का पढ़ते हैं, कोई कहानी या खबर, या सुनते हैं, कोई गीत या गुनगुनाहट, या ख्वाब की सरकती याद...या जब रुपहले परदे पर किरदार, लड़का लड़की, आदमी औरत इस तरह के बिसरे, अनहोने शब्द, इजहार, कान से कान, होंठ से होंठ में फुसफुसाते हैं, फिल्म की करिश्माई जुबान इश्क के हर असाध्य हर्फ, चाहना के हर निरुपाय ख्वाब को असल के मुमकिन खाने में जिंदा कर देती है।

फुरफुरी के अहसास से मैं भी अलूता नहीं, पर एक दूर के दृश्यरतिक, शुष्क कटाक्ष की प्रवृत्ति से कटा फटा। इस तरह के मजमून में मेरी कोई आस्था नहीं, खुले दिल की बात ये है कि मैं एक तन्हा, विरक्त इंसान हूँ, और ये जो इश्क और लव का पूरा मसला है, और उसे कण कण समझने का अबूझ प्रयास है, वह मेरे लिए असल में एक भार जैसा है, मानो महसूल की अदायगी... और वजह है वह रिमाझिम, जालिम, पाकीजा अजूबा, जिसे मैंने अपनी संशयी आंखों से बार बार देखा है, अविश्वास की चादर पर लिटाकर उस दृश्य विन्यास के हिसाब और तर्क को मन में कुरेदा

है, और जो बातें मेरे बरसों के मित्र ने उस दंपति के बारे में मुझे बताईं, उनकी मुहब्बत की कथा, असंभव सा है उस प्रेमगाथा की सच्चाई का यकीन, पर अमर प्रेम की इस दास्तान के ब्यौरे इस हद तक प्रबोधक और ठोस हैं कि मैं निश्चय आप पर छोड़ता हूं, और इस सवाल का निर्धारण भी कि क्या इस दास्तान के मुमकिन झूठ, निसर्ग और नीति के वजन और सर्वथा सौंदर्य से, सच और सत्व का हक और परिमल हासिल करते हैं?

मैं यह मानता हूं, कम से कम अमूर्त दर्शन के स्तर पर, और रोजमर्रा की कामकाजी कीच और मैलेपन के विरोध के उपकरण की तरह, कि यह सभ्यता की आधार शर्त है कि कुछ झूठ और कुछ अयथार्थ को सच और असल का दर्जा और संरक्षण मिलना चाहिए, साइंस और तर्क की दलील के परे, पर यह मेरी अपनी राय है, आप इसे मानें या खारिज करें, ये आपके ऊपर है।

आपने नोटिस कर लिया है, जिस तरह मैं सोच रहा हूं और लिख रहा हूं, कि मेरी दक्षता और योग्यताएं पूरी तरह नामुनासिब हैं, बल्कि बैरी हैं, किसी भी ऐसे प्रोजेक्ट के लिए जिसका केंद्रीय मुद्दा प्रेम है, या उसके विविध आयाम, पर ऊपरवाला या प्रारब्ध, तर्क या हेतु का बहुत कम कायल है, खास तौर से ऐसे मसलों में जो इंसान के दिल और जच्चे में शामिल हैं, या इस धड़कन के पुंज से पैदा हैं...तो मैं कहानी को आगे बढ़ाता हूं, इस न यहां न वहां के आमुख को और खींचना ज्यादाती होगी।

अगर आप उत्तरी दिल्ली के यूनिवर्सिटी के इलाके में रहे हैं, तो आपकी उस पुराने रेस्टोरेंट (डाइनिंग के हॉल से बार का विस्तार भी जुड़ा है) से जरूर वाकफियत होगी जो सौ साल से ज्यादा पुराना है, अंग्रेजियत के तमाम अंदाज, जिनमें अब 'ट्रेंडिंग' की मिलावट हो गई है, और जिसके बारे में खास लोकल शगल है कि 1912 के दिल्ली लाहौर कांस्पिरेसी केस से आठ महीने पहले बसंत कुमार बिस्वास ने इसी रेस्टोरेंट के भीतर वाइसराय हार्डिज को जहर देकर मारने का असफल प्रयास किया था, षड्यंत्र दब गया, और न तब और न बाद में इतिहास के पन्नों में प्रकाश में आया। पुराने बैरों से इस बाबत पूछो तो होंठ पर उंगली रखकर चुप्पी का इशारा करते हैं, फिर यहां वहां बाहर जरूर टकराते हैं, और पूरे इत्मीनान से हर बार नए विचलनों के साथ गुप्त षड्यंत्र की तहरीर करते हैं। वेटरों का सही मानना है कि इस तरकीब से उनकी टिप में निश्चित इजाफा होता है...रेस्टोरेंट की जीर्ण रूमनियत आज भी कायम है, उम्दा हिंदुस्तानी खाना है, भूले वक्त की नफासत, कुछ बरस पहले इमारत और इंटीरियर का फेस लिफ्ट हुआ था, नए और पुराने का एक्सपर्ट संगम, परंपरा की ट्रेंडिंग पेशकश, इस जतन से रेस्टोरेंट ने अपना प्रभुत्व बनाए रखा, वफादार पाहुनों में कभी कमी नहीं आई।

हर तरह के गेस्ट यहां दीखते हैं, कॉलेज, यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर से लेकर पुराने रईस और नए व्यापारी, और अक्सर जवान लोगों के झुंड, जोड़े, प्रेमी, छात्र, पूर्व छात्र जो सस्ते अभिजात की तलाश में रहते हैं, बुरा लगता है यह देखकर कि इस इलाके में हजारों हजार युवा सिविल सर्विस में कैसे न कैसे पक्की नौकरी और उससे जुड़ी तड़ी और उगाही की आस में तिक्त जिद के साथ कई सालों के पेशेवर इम्तिहानी हो जाते हैं, असफलता की दशा में उनकी निगाह में एक खोई सी शून्यता भर जाती है, सालों की व्यर्थ मेहनत, फिर यह पुरातन, ठोस भरोसा कि अगर लॉटरी निकल गई और परिवार में एक भी सदस्य सरकारी दामाद, इंस्पेक्टर हो गया, तो सात पुश्त की सुरक्षा गारंटी है...सालों के नाकाम प्रयास से जैसे नौकरशाही प्रक्रिया का क्रूर, अमूर्त और परकीय स्वभाव उनकी चेतना में रिस जाता है, गुठलियों का रवायतन, सूखा संसार, इतने पास बहुत दूर, बेइरादा इन्फेक्शन की तरह, एक प्रकार से वे इम्तहान पास करने के पहले से नौकरशाहाना हो

चुके हैं...रेस्टोरेंट में इस तरह के लड़के, लड़कियों को देखना आम और दुखद था, उनके पास सामान्य ज्ञान की मोटी मोटी किताबें होतीं, इन किताबों पर वे अक्सर अपने कॉफी के मग रख देते, और पनीली आंखों से न जाने क्या ताकते, सोचते रहते। स्वाभाविक था कि मेरे मित्र और मेरी सोच इस बारे में एक सी थी, हम दोनों गुजरे समय के रिटायर्ड प्रोफेसर थे, तब कॉलेजी शिक्षा को आज की मारक घुन नहीं लगी थी, अब हम यदा कदा अपने विषय के कुछ प्रोजेक्ट करते, हमारे पास काफी बैचलर वक्त था, न परिवार न खास जिम्मेदारियां, पर इतना और जोड़ दूं कि इस उम्र में भी शराब पचाने की अपार शक्ति थी, साथ बैठते तो खूब पीना होता और वक्त बेवक्त की अनर्गल, सारगर्भित बातें। बहरहाल...।

एक दिन, कोई एक साल पहले की बात है, मैं अपने मनपसंद रेस्टोरेंट रात में अकेला पहुंचा, मुर्ग मुसल्लम का लालची खयाल मुझे जबरन खींच लाया था, और एक क्षण मेरा सिर घूमा, मानो किसी चुंबकीय शक्ति के अधीन, और मेरी निगाह एक दंपति पर ठहरी जो कुछ दूर के टेबिल पर बैठे थे, वे दो, मैं उन्हें इस रेस्टोरेंट में पहली बार देख रहा था, हो सकता है वे भी मेरी तरह रेगुलर थे, और यह सिर्फ चांस था कि हमारी राहों का पहले कभी मिलना नहीं हुआ, पता नहीं, पर उन्हें देखकर सुकून और गर्वित उल्लास का गहरा जज्बा मेरे भीतर उभरा। सूखे, बंदी स्वभाव का मेरे जैसा शख्स, मैं मन के इस उमड़ते संवेग से चौंक गया था, मानो जेहन के कुछ सुप्त तार में अचानक प्रेमाकुल विद्युत का प्रवाह हुआ है, मैंने भावावेश की लहर को उतरने दिया, और फिर उन्हें बीच बीच में चुपके से ताकता रहा, वे अपने आपस के किसी सुगंधित टापू में मग्न से दिखे। उस रात के बाद, संयोग और चांस की जुगत, ये बार बार की घटना हो गई, जब भी मैं रेस्टोरेंट गया, वे जरूर दिख जाते और उन्हें देखकर, उनके अहसास और नजदीकी से मैं मोहाविष्ट हो जाता।

कभी वे अकेले आते, और कभी उनके बच्चे, पुत्र और पुत्री, उनके साथ होते। जब उनका टेबिल नजदीक होता, मुझे उनकी बातों के टुकड़े सुनाई देते जिन्हें मैं मोतियों की तरह सहेजता, और बाद में क्रमिक जतन से अर्थ और हिसाब की मोहनमालाएं पिरोता। यह पता चला कि पुत्र, दुबला और लंबा, आर्टिस्ट का क्षुधित, भावुक रवैया, उसने वयस्क की दहलीज अभी पार की है, और पुत्री, शक्लसूरत मां पर, नाजुक, औसत कद काठी, ऊपर उठी नाक, कोमल पर तुनकमिजाज, वह सोलह बरस की है, और उसका सोलह होना हल्के मजाक का विषय है। लड़के का नाम अमन और छोटी बहन का पलक। पति और पत्नी का नाम जानने में कुछ वक्त लगा, पर सही का इत्मीनान नहीं बना था : औरत शमा थी या क्षमा, और आदमी का अजीब सा नाम था, इमराज या हमराज, मुझे खयाल हुआ कि शायद वह मुसलमान है, हो सकता है वे दोनों मुस्लिम हैं, पर धर्म या मजहब का इस कहानी में कोई स्थान नहीं, या शायद हो, कौन कह सकता है, पर यह पक्ष कभी साफ नहीं हुआ, न हमने उस तरह की कोशिश की या कयास लगाया, पर ऐसे सवाल या अनुमान अभी रहने दें, अभी तो शुरुआत भर है।

उनके बीच, उनके संग में कुछ उदात्त और बिजली के प्रवाह की तरह था, बल्कि भव्य और उदारचेता, उनका शादीशुदापन, एक दूसरे के प्रति सहज, छलकता प्यार, जिस तरह वे बैठते, बातें करते, एक दूसरे को निगाहपाश करते, सूक्ष्म से इशारे, सजग, लगभग अदृश्य गतियां जिनमें गहन और बेहद अंतरंग संकेत थे...बीच में वाग्मी मौन के लंबे तरंगित क्षण जिनमें समकालिक, मुकम्मल समझ की गारंटी थी। वे इतना कसकर, परफेक्टली एक दूसरे से जैसे गोंद से चिपके लगते, एक जिस्म दो जान की नुमाइश की तरह, उनकी गतियां और पूर्वज्ञान, यह सीन मानो एक सुंदर हस्तशिल्प के डिब्बे की तरह था, भीतर जेवर, कंठहार और चूड़ी का जोड़ा...मुझे बखूबी पता है यह तहरीर अतिरंजक है, पर उन्हें देखने पर हर बार मेरे मन में संवेग का ऐसा ही ज्वार उठा,

श्रेष्ठ, मुबारक इश्क की आभा उनके ऊपर दिव्यज्योति की तरह मंडराती, प्रीति के इस प्रभापुंज से आलोड़ित न होना असंभव था, न केवल वे प्रेमासक्त थे, उनके संग की तस्वीर मानो मोहब्बत का इश्तहार था। मैं उन्हें देखकर हर बार तबाह होता, तड़प उठता, और मेरी तन्हा जिंदगी का बीहड़ जैसे फैल जाता, गुंजित हो उठता, उनके लिए मन में तृष्णा, वितृष्णा, जलन और आभार का विचित्र उद्गार सा उठता। दंपति होने का उनका अर्जन अद्भुत था।

मैंने उनके रूप गठन को ध्यान से तवज्जो दी। अगर तुम उन्हें अलग करके गौर करो तो औसत और साधारण का आभास होता है। दोनों दुबले और लंबे हैं, चेहरे और शरीर में एहतियाती थकान या थके एहतियात के साफ चिह्न हैं, ऐसे जीवन का इशारा जिसने संघर्ष और दुर्दिन के पहाड़ झेले हैं, उनके अंग विन्यास की गतिकी में मुश्किलात और अवरोध से पार पाने की गाढ़ी अनुभूति है...पर तनाव और सतर्कता की यह तासीर उनके संग की आभा में धुल पुंछ जाती, उसकी जगह निर्मल, निश्चित उल्लास की ज्योति दपदपाने लगती। अद्भुत था किस तरह उनके मामूली, विसरित नाक नक्श सौंदर्य और लालित्य की तसल्ली बन जाते, जब रेस्टोरेंट के टेबिल पर दुनिया ए दुनी से बेखबर, अनछुए वे न जाने क्या क्या अंतरंग फुसफुसाते रहते। कहते हैं नूर ए हुस्न देखने वाले या आशिक की निगाह में है, पर इस नजारे में इस बुनियादी सिद्धांत की गिरफ्त में हर वह इंसान था जो इस दृश्य का आकस्मिक दर्शक होता। शायद मैं गलत था, मेरे अकेलेपन की कसक ने शायद आदर्श और मुग्ध दांपत्य का यह भ्रमित खयाल पैदा कर दिया था। शायद मैं अधिक से ज्यादा देख रहा था, या कम से कमतर, बाल की खाल या खाल के बाल निकाल रहा था। पर यह तावीजी खयाल कमजोर नहीं हुआ, उसका ग्रहण बढ़ता ही गया।

एक रात मेरा प्रोफेसर मित्र भी रेस्टोरेंट में मेरे साथ था, और मेरी सायास अनुभूतियों के दंपति, हमराज या इमराज और शमा या क्षमा एक टेबिल पर थे। किसी एक क्षण मित्र मेरी नजर के कौतुहल की दिशा में घूमा। जो नजारा मैं देख रहा था, जिसमें लीन था, उसने उसे जज्व किया और फिर मेरा ध्यान खींचा। इश्क के तसव्वुर का इससे बेहतर नमूना नहीं, मित्र ने कहा...तो तुम भी?...मतलब?...तुम्हारी पहचान है इनसे, मैंने पूछा। पहचान तो नहीं पर मालूमात है, बहुत कुछ सुना है...क्या?...इनकी कहानी...कहानी?...अद्भुत, अपूर्व है इनकी दास्तान, तुमने नहीं सुनी? मित्र ने इस अंदाज से कहा मानो उसके पास कुछ बहुत कीमती है, और उसके बिना मैं दरिद्र हूं। नहीं, मैंने कहा, क्या कोई कहानी है? मित्र अधीर तरह से वाचाल हो गया, और अजीब ढंग से शांत : कितनी सच है, कितनी नहीं, मैं नहीं जानता, विश्वास भी नहीं होता...पर कई लम्हे होते हैं, इतनी कर्कश ध्वनियां, फसाद और इख्तिलाफ का माहौल, मेरे अपने परिवार की फूट और कलह...टूटते संबंध, बिखरती शादियां, बदसलूकी और धोखे...तब यह कहानी सांत्वना के गीत की तरह लगती है, हवस और हिंसा के जहरीले अतल में अमृत की बूंद, तब मैं इनके आसक्त, पाक चेहरे देखता हूं, इतने खुश, तयशुदा और विनीत...इनकी प्रेमगाथा का तब मान निभाने का मन करता है, और क्यों नहीं, इतने लोग हैं जिन्होंने इनके बीते के अखंड ईमान की तसदीक की है, मैं कौन होता हूं जो इस कथा की तर्क और दलील से कांट छांट करूं...इतना कुछ अज्ञात है, इस अज्ञात को क्यों न मैं अपना ज्ञात बनाऊं, इतने मैल और प्रदूषण के बीच कुछ तो पाक और आनंदमय हो जिसे हम बुरे वक्त के लिए संभालें...इस तरह मित्र बोलता रहा। इस बीच वे लोग जा चुके थे। मैंने पूछा वह उनके बारे में क्या जानता है? जो आदमी था, मित्र ने बताया, वह हमारी तरह कॉलेज में टीचर है, उसका विषय भूगोल है, और वह मैप्स, नक्शों पर ज्ञानी माना जाता है... किस तरह का ज्ञानी? मैं अपने अहसास के धुंधले ताल्लुक ढूंढ रहा था...पता नहीं, पर इस फील्ड में उसकी साख है, कई नई डिजिटल मैपिंग कंपनियां उससे सलाह लेती हैं...और बीवी?...हां, वह शमा चौधरी

है। ये लोग दिल्ली यूनिवर्सिटी में साथ के छात्र थे। बीवी के पास सोशल वर्क में एमए है। वह कई सामाजिक विकास के मसलों में एनजीओ, सरकार और अंतर्राष्ट्रीय संगठन के साथ काम करती है। उसका फोकस अस्पताल, प्रिवेंटिव हेल्थ केयर है।

मित्र ने तब मुझे हमराज और शमा की प्रेम कहानी सुनाई, उस रात नहीं, पर एक हफ्ते बाद, जब हम उसके घर में बैठे थे। लंबी, जादुई रात थी वो। यह कहना कि मैं आश्चर्यचकित था काफी नहीं, मैं ऐसे पंखों पर सवार था जिनका मुझे कोई इल्म नहीं था, मैं पहली बार ऐसे अनजान मकाम से रूबरू था, जहां सब कुछ, वस्तु और व्याकरण, अविश्वसनीय था, फिर भी मैं कायल और आश्वस्त था, ऐसे जच्चे ने मेरे जेहन में घर बना लिया जिसका कोई नाम नहीं था।

तो इस तरह मैंने यह कहानी सुनी, जीवित कथा, यथार्थ कथा, जिसका सिर्फ एक शीर्षक हो सकता था : लवर्स! और मुझे इस कहानी की सच्चाई पर भरोसा होने के साथ नाज है। मित्र से सुनी कहानी को मैं अपनी याद और शब्दों में सुनाऊं, इससे कहानी की ताजगी और मौलिकता का हास होगा। मेरी उम्र और लंबी प्रेमविहीन जिंदगी इस उद्यम के लिए बिगड़े पहिये का रथ है। बेहतर कि कहानी खुद अपने को कहे।

बरस गुजर गए, वक्त और किस्मत का ज्वार भाटा किसी का सगा नहीं, ज्वार और भाटे को छोड़ दें, वह वक्त की लय में शामिल है, वक्त प्रेम या प्रेमियों का इंतजार नहीं करता, इसका अपवाद नहीं यह सच है, पर विरल और खुशनुमा दृष्टांत पाए गए हैं जब वक्त प्रेम का संरक्षक हमसफर बना है, प्रेमियों के कठिन सफर का रहनुमा, मार्गप्रदर्शक। हमारे प्रेमियों पर वक्त खास रहमदिल और मेहरबान था, कितने ही बरस पहले उनके इश्क पर नामुमकिन का कहर गिरा था, मनहूस आजमाइश का अंधकूप कालखंड, एक दुःस्वप्न सा, कोई नहीं था जिससे वे रहम या इंसाफ की अपील करते...पर प्रेम का ही कोई अक्षय तत्व था जिसने उन्हें कृपादान दिया...बीस बरस पहले हमराज और शमा ने विवाह किया, अब दो प्यारे बच्चे हैं, अमन और पलक, कुछ दिन पहले पलक को सोलहवां साल लगा जिसकी खट्टी मीठी शर्म और जब तब की सुर्ख लाली के लिए भाई उसे खूब चिढ़ाता है। शादी की रात शमा ने अपने नाम के खामोश पर जिंदा भ्रम को साफ किया, कि उसका असल नाम क्षमा चौधरी है, यही लिखने का सही तरीका है, पर चूँकि उसके सारे सर्टिफिकेट अंग्रेजी में थे, निजी मामलों में दखल करने वाला कोई परिवार नहीं था, उसकी अकेली रिश्तेदार एक बूढ़ी फूफी थी, लगभग बहरी, जो गौहाटी में रहती है, फूफी का धरम करम से खास लेना देना नहीं था, न खुद शमा का था, तो उसे अपना नाम अपने हिसाब से ढालने की पूरी आजादी थी, उसने शमा चुना, उसे लगा यह बेहतर नाम और आह्वान है, शमा ने शादी की रात कहा, फिर कहा कि उसे किसी तरह की शर्मिंदगी इस बात को लेकर नहीं, और ऐसा भी नहीं है कि वह शमा की रोशिनियों के रोमांस की कद्रदान है...वह हमराज के दिल थमे बुत के ऊपर से झुकी, एक छोटी संदूकची से उसने आमपापड़ जैसा कुछ लंबा सा स्लाइस निकाला, अपने बालों में खुंसी एक पिन को खींचा, जुल्फों की रेशमी रेलपेल को चेहरे, माथे के ऊपर मचलने दिया, पिन की नोंक से आमपापड़ की सतह पर अपना नाम खरोंचा, शमा, फिर उस भूरे गुलाबी स्लाइस को मुंह में डाला, चबाया, और फिर हमराज के घोंचू, सम्मोहित चेहरे को अपनी हथेलियों में भरा, उसका मुंह खोला, और अधचबा स्लाइस उसके मुंह में थूक दिया, और इस अश्लील, अर्थवान हरकत पर दीर्घ, गहरे चुंबन की मोहर लगा दी। तब, उसके बाद, जैसे हमराज किसी श्रद्धालु तंद्रा के डीप फ्रीज से जगा, और आवेशित, कांपते, ईमानदार शब्दों में उसने यह कहा : 'किस' ही थी, वह सुबह, चुंबन का त्रिविम, आकाशीय एक्सीडेंट, जिससे यह प्यार जन्मा, और हमने राह की हर मुश्किल और जंजाल, हर अशुभ को हाथ

में हाथ देकर, मन से मन जोड़कर, पार किया, और यहां पहुंचे, जहां इस वक्त हैं, यह नेकी और कुदरत का पाकीजा करिश्मा है, हम धन्य हैं, जो कुछ भी ईश्वरीय है उसके सामने नतमस्तक हैं, अगर ख्वाहिश है तो सिर्फ ये कि मेरी आखिरी सांस को तुम्हारे लबों के स्पर्श का स्मरण नसीब हो... शमा ने उसके होंठों पर अपनी उंगलियों का नकार बना दिया, उसने कहा या हमराज ने, पर दोनों ने सुना : ये प्यार अमिट है, अमर है, ये हमसे पहले का है और हमारे बाद का भी।

हमारे नाम में कोई मात्रा नहीं, हम बिना मात्रा के बेचारे, सफाचट हैं, पलक ने कहा, और सोलह साल के तीव्र संकोच से पिता की वाहवाही का इंतजार करने लगी। पलक पिता की चहेती थी, जब पिता की तरफ से सिर्फ हूं निकला तो उसने जोड़ा : मुझे अपने नाम से कोई लगन नहीं। यू मीन लगाव, भाई छोटी बहन पर हौले से लपका : पलक तुम्हें सूट करता है, जैसे लपक, हमेशा लालची!...हां, हां, जैसे तुम, अमन और डफर में उंगली भर का फासला है...शमा बीच में आई : तो तुम्हें कैसा नाम पसंद है, उसने बेटी से पूछा। पलक ने होंठ गोल बनाए : हं...जो नाम मुझे पसंद है, जैसे नूर, या बरखा...या पिया, सुहाना...तो सयाना या सन्नाटा क्यों नहीं, या बिजली, अमन ने फिर छेड़ा...ठीक है तुम अपने को झंझट बोलो तो मैं बिजली के लिए तैयार हूं। पिता से शह की अबोल अपेक्षा थी, तो हमराज ने तहरीर बनाई : जब नाम में मात्राएं नहीं हैं तो समझो मुश्किलें भी नहीं हैं, या कम हैं, देखो, तभी सरल में मात्रा नहीं...तुम दोनों के इतने अच्छे नाम हैं, सुंदर और मुबहम, मासूम और भीतरी...मुझे लो, जब भी रेल टिकट कटायी तो कभी इमराज बना, रमजान या ऐतराज...और जहां तक तुम्हारी अम्मी का नाम है, उसकी तो इतनी लंबी, चारखानी तारीख है कि भरोसे का सवाल ही नहीं...मेज के नीचे से शमा ने शौहर के टखने को पैर की सहल ठोकर से आगाह किया, कि यह बच्चों को सुनाने का किस्सा नहीं...हमराज का समूचा शरीर झरझरा गया, पुरानी यादों की अगाध खुशबू मानो नम, मुलायम जमीन के तल में छितरी पुरानी जड़ों से पुनः अंकुरित हो रही थी। शमा के अहसास भी इन्हीं जड़ों में सिमट गए थे।

किसी भी लड़की के लिए सबसे प्यारा नाम शमा है, और सेकंड बेस्ट बिपाशा, लड़के ने बहादुरी से कहा...अच्छा, तो जनाब का मन बिपाशा में अटका है!...नहीं, भाईजान की निगाह का नूर वो है जो इन्हें बिपाशा सी दिखती हैं, लड़की ने कहा। एक पल के लिए अमन का सीना गरूर से एंठ गया, पर दूसरे ही क्षण उसने एहतियात की गहरी आह भरी, जो छलका था वह जैसे चमक खो बैठा, वह शरमा गया, और फरार नजर से मां पिता को देखा...जब उसकी गर्लफ्रेंड ने स्कूल में एक बार उसको मां बाप के साथ देखा था तो वह उन पर लट्टू हो गई थी...परफेक्ट कपल, उसने कहा था, प्यार का मान हो तो ऐसा, ये होता है जाने जिगर का श्रृंगार, समझे मेरे रोंदू, टपोरशंख शायर...अमन का सीना न फूला न सिकुड़ा, वह पसर सा गया, ईर्ष्या की नर्न्ही सुइओं ने उसे बींध दिया। उसके होंठ इस याद के दबाव से हल्के से फड़के, किसी तरह उसने दिल की अकुलाहट को कसा, यह प्रयास उसकी बहन से नहीं बचा, पलक ने इस कमजोर क्षण के धुंधले भेद को भविष्य की नॉकऑक के लिए स्मृति में संजो लिया। यह सब एक आध पल में घटा था।

...वे चारों डिनर के लिए अपने पसंदीदा रेस्टोरेंट में आए थे। शादी की बीसवीं सालगिरह थी, जश्न और पारिवारिक मस्ती की रात थी। जिंदगी ने इस जोड़े पर उदारता से रियायत बरती थी। ज्यों वे रेस्टोरेंट में दाखिल हुए, तलाशती निगाहें उनकी ओर घूमी थीं, हमेशा घूमती थीं, अजनबी सोचते कि कितना...सटीक शब्द, लुब्ब ए लुबाब सदा कुछ देर से प्रकट होता...कितना यकीनी, दिलकश परिवार है। जब हमराज और शमा एक साथ किसी जगह जाते, कोई औपचारिक समारोह, ब्याह, कोई फिल्म, नाटक या टॉक, कार से उतरने, या चढ़ने की पलांश भर झलक, किस

तरह हमराज दरवाजा खोलता, फिर शमा के बढ़ने के लिए क्षणिक ठहर जाता...मित्र और गैर के मध्य एक तासीर तिर जाती, किसी अनाम फूल की खुशबू की तरह, इसका अहसास अक्सर बीते की दस्तक की तरह होता, लावण्य और दिलकशी की आश्वस्त तस्वीर, शोभा की आंच, आसान सी अंतरंगता, एक अखंड, ठोस हमसायाना, मानो यह दिव्यता की सौगात है, कि वे एक साथ दिखें, संपूरक प्रेम की पक्व, आदर्श झलकी...और लोग सोचते : मुबारक हैं ये दो, ये दुनिया, कि अमर प्रेम का ख्वाब अभी जिंदा है, मुमकिन और साक्षात है...इसे कहते हैं चिरंतन, अटूट, अपलक प्यार. .. बालों की पहली सफेदी, गुजरती उम्र की प्रथम झुर्रियां, ये मानो इस पवित्र बंधन के गारंटर हैं। जिन लोगों की इस युगल से सरसरी वाकफियत थी, उनसे पूछने पर वे कुछ चकित से दिखते, फिर कहते : सच में, है तो रसिक, शानदार जोड़ा, पर थोड़ा पुराने फैशन वाला, आज के युग के लिए कुछ धीमा है, नहीं? काफी जन के बीच यह खयाल था कि ये लोग मुस्लिम हैं, पर टिप्पणी की कभी नौबत नहीं आई, कुछ का शायद अंतर्जातीय विवाह का भी अनुमान था।

हमराज कॉलेज में भूगोल का प्रोफेसर है। उसके लेक्चर मशहूर थे, इतने कि एक कल्ट सी बन गई थी, उसके अपने स्टूडेंट्स तो लेक्चर में यदा कदा ही दिखते, पर बाहर के शोध छात्र, दूसरे डिसिप्लिन के स्टूडेंट्स, टीचर्स बड़ी तादाद में आते, और खास तौर से जब वह मैप्स की तकरीरें करता।

द मैप इज नॉट द टेरिटरी, वह इस मशहूर उक्ति से मानो पटरी बदलता, पर गणित ज्ञानी एरिक बेल की यह सूक्ति ज्यादा मुखर है कि नक्शा वह वस्तु नहीं जिसका वह नक्शा है! तब वह क्षण होता जिसका सबको इंतजार सा रहता, हमराज का व्यक्तित्व अनोखा विस्तार सा पा लेता, मानो एक वही है जो हूबहू अपना इलाका, मकाम, नक्शा और इल्हाम है...एक संप्रांत शोभा उसकी अपनी होती, वह क्लास में नोट्स वितरित करता, और इस मजाक से नहीं चूकता : कि मानचित्र चित्र बेशक है, पर चित्र का कितना मान है, यह मिलियन डॉलर का सवाल न सही, सौ टके का तो है...नोट्स में तमाम सूचनाएं रहतीं, और नुकीले, वजनी कथन : रेने मग्नित का पाइप का रेखाचित्र इस टाइटल के साथ, 'ये पाइप नहीं है', होरहे लुइस बोर्हेस के उद्धरण, ट्रिस्ट्रम शैंडी की डायरी पर टीका, बोनिनी का पैराडॉक्स, और आखिर में कुल्फी फलूदा के स्वाद की तर्ज पर पॉल वेलरी का हवाला : हर वह जो सरल है, गलत और मिथ्या है, और प्रत्येक जो जटिल है, बेकार और व्यर्थ है!

हर नक्शा स्केल के साथ बेहतर और विशुद्ध होता चलता है, हमराज कहता, और फिर श्रोता समूह को ऐसे जगत में ले जाता जहां नक्शे का स्केल जगत के बराबर है : 1:1 मैप जो परफेक्ट और अचूक है, पर इस्तेमाल में परफेक्टली व्यर्थ। ऐसा क्यों?...पहला भ्रम तो यही है कि जो सवाल मैंने अभी अभी पूछा है, वह नक्शे में है या जगत में, गौर करने की बात यह भी है, हमराज के होंठ फैलते, पर आवाज में थोड़ा कंपन भी होता, कि अगर तुम्हारे शहर या कस्बे का नक्शा शहर या कस्बे के साइज का है, तो अपनी माशूका को कहां खोजना सलामत होगा? नक्शे की लाइनों में या सचमुच के गली कूचों में? एक स्वर की खामोशी से सब नक्शे को नकारते, गली कूचे की धूल का खयाल करते, और फिर सोच में पड़ जाते। लुइस कैरोल के नगर में, हमराज कहता, लोग आपकी तरह जमीन या इलाके को उसके नक्शे के बनिस्बत इस्तेमाल करना बेहतर समझते हैं... जो सयाना है, समझ लो उसी का जमाना है!

बोर्हेस और दूसरे फलसफागो के स्वर खींचते हुए हमराज यह तहरीर रखता कि असल 1:1 मैप के भीतर नक्शे का नक्शा भी होना चाहिए, फिर उसमें नक्शे के नक्शे का नक्शा...यह अनंत क्रिया है...बोर्हेस कहता है : हमें क्यों चिंता होती है कि मैप में मैप का मैप शामिल होना चाहिए, और एक हजार एक रातों की किताब में एक हजार एक रातें होनी चाहिए?...कि डॉन किहोते की किताब का पाठक डॉन किहोते भी हो, और हैमलेट इसी नाम के मशहूर त्रासद नाटक का दर्शक

भी हो...इस तर्ज पर अगर कथा साहित्य के किरदार पाठक या दर्शक हो सकते हैं, तो हम, असल जीवन के जिंदा पाठक और दर्शक कपोल कल्पित क्यों नहीं...?

सब जानते थे कि हमराज की थीसिस और डॉक्टरेट मैपिंग पर थी, पर यह उसके दांपत्य का राज था कि शहर कस्बे के नक्शों के प्रति उसका गहरा रुझान, उसकी धुन, और उसकी तीक्ष्ण बदगुमानी का उसके विषय ज्ञान और तकनीकी कौशल से कोई लेना देना नहीं था।

बहुत पहले, जब हमराज और शमा के जज्बातों में इश्के जुनून की मर्जी और दखल का अंकुरण हो ही रहा था, तब यकायक एक साल और आठ महीने का एक भंजक समय खंड ऐसा बना कि नक्शे या नक्षित शहर के दिक्काल ने जैसे उन्हें अंतरिक्ष के मूल भौतिक सिद्धांतों से अलग या वियुक्त कर दिया था। दुनिया की अमर प्रेमकथाओं में आशिकों की जुदाई का जो निर्मम कलंक इंसानी नफरत या फितरत या भेद का होता है, वह मानो निसर्ग के किसी तटस्थ, बेरुख विचरण, कोई सहसा करवट का जिम्मा बन गया...न जाने कितने ब्रह्मांड हैं, बहुजगत, पर इस वाक्ये के एक पहचाने जगत में, जहां यह कथा भी जीवित है, वक्त की उस सिलवट में हर इंसानी जतन और दिलेर प्रयास के बावजूद हमराज और शमा एक शहर में होने के बावजूद स्पेस टाइम के किसी एक बिंदु पर इकट्ठे होने में असमर्थ थे, लिहाजा हर विस्तृत योजना, कोशिश और ज्वलंत चाह के बावजूद उनका मिलना असाध्य हो गया, मानो अनजान, अनाम शक्तियों ने उनके खिलाफ निषेधाज्ञा प्रसारित कर दी थी, विरह के इस असार शून्य में उनका दिल भयजनित बगावत के लिए आकुल था, पर दिल के पास विद्रोह के औजार के रूप में मोहब्बत के सिवाय और क्या था, वह इश्क के दूने अहसास से धड़क उठा...व्योम का हर कण प्यार की घनी, व्याकुल जिद के सामने निहत्था था, और इस तरह शमा हमराज प्यार के, एक दूसरे के दीवाने हो गए, अमर प्रेम का एक नया पन्ना रचा जाने लगा...जो निसर्ग के आश्वासन की, या विरोध के ललकार की पैदाइश है, वह निसर्ग की तरह निर्मल, बेदाग और चिरंतन है, और तब के प्यार की अप्रतिम जोत आज पच्चीस बरस बाद भी लोगों को चकाचौंध करती है, जब वे उन्हें साथ देखते हैं...।

प्रोजेक्ट्स और दायित्व के लिहाज से शमा कहीं ज्यादा व्यस्त रहती थी। वह कई अस्पताल और एनजीओ के साथ जुड़ी थी; त्यक्त, आहत महिलाएं, दुराचार, उत्पीड़न और यौन शोषण की शिकार, शमा उन्हें न्याय दिलाने के लिए लड़ती, उनके पुनर्वास के लंबे संघर्ष में बरसों बरस लग जाते। इसके अलावा शमा की रिसर्च थी, उसके लेख थे। उसके जतन ज्यादा कठिन और वजनी थे, पर उसका स्पर्श और रुख हल्का और ओजस्वी था। राइटर एक्टिविस्ट, यह थी शमा। दोनों को अपने काम और सरोकारों से गहरा लगाव था। तुम्हारा कोई भी नक्शा इस शहर या देश की औरत के त्रास और खौफ को नहीं पकड़ सकता, स्त्री की इंसाफ की पुकार बेनक्शा है, वह हमराज से मजाक में बोलती। और हमराज गंभीर, नाटकीय मुद्रा बनाकर जवाब देता : इंसाफ का जो खास नक्शा मैंने सिर्फ तुम्हारे लिए गढ़ा है, उसमें सिर्फ औरतें हैं...नक्शे के बिना जिंदगी की कोई तस्वीर नहीं। हमराज का स्वर बदला...और औरत के बिना? शमा बुदबुदाई, मानो खुद नहीं, उसकी आवाज बहुत समीप सिमट आई है...अकल्पनीय, अनर्गल! हमराज ने कहा।

और बिना प्यार के? शायद दोनों के मन में तसल्ली और शहादत के लुत्फ के लिए यह भाषणगत सवाल स्वतः ही फूटा...हमारी जिंदगी का हर लम्हा और अहसास इस प्रश्न को नामुमकिन बनाता है, यह मन की खामोश इत्तिला थी।

...रेस्टोरेंट में कुछ देर परिवार खामोशी से खाता रहा, रोशनी का कायल वृत्त उनके साथ था, अपेक्षित दूरी पर सचेत वेटर तैयार मुद्रा में। जो भी इस सूरतेहाल को देखता, हसीन दिनों का ख्वाब आसान सा लगता। यह साफ था कि अमन जवान, अधपके मोह विमोह के फूहड़पन

से जूझ रहा है, और उसके उन्माद में आकंठ डूबा भी है। वह अंग्रेजी साहित्य का छात्र है, वह भरसक व्यर्थता से मीर, रिल्के और दूसरे तमाम कवियों की उल्फतें और हासिल बेहासिल इश्क की तरल पंक्तियां पढ़ता, उन्हें बोलता, और उनके असर और अर्थ को अपने हृदय के अनमने जख्म और तड़प से एकचित्त करने की कोशिश करता। इश्क में लुटने पिटने के रंज में एक साथ डूबने और ऐश ओ तरब की दुरुह कामना की थाह पाने का प्रयास करता। अगर उसने अपने पिता से सलाह की होती (पर यह असंभव था) तो पिता रिल्के को हटाकर नेरुदा की प्रेम कविताओं की वकालत करते, जिनमें धरती का बहता आर्द्र और दैहिक कीर्ति है, जैसे यह कि मैं तुम्हारे साथ वो करना चाहता हूँ जो बसंत चेरी के पेड़ से करता है...कि मुझे उस तुम को याद करने दो, जो पहली सांस से पहले तुम थीं...कि मीर महान शायर है, पर उसकी अशांत नज्मों को उन शायरों के मिजाज से नर्म करना जरूरी है जिन्होंने फिल्मों के लिए न जाने कितने अमर गीत लिखे...इतना काफी है कि परिवार में एक पीढ़ी अचिंत्य जुदाई की आजमाइश और सजा झेले, हां, रिल्के महान था, और उस जगह सही था, जहां स्वप्न भी ख्वाबगर से डरता है, यह कि सबसे सच्चा प्यार एकतरफा और बेजवाब है, कि प्यार का उत्कर्ष और आतंक उसका अप्राप्य होना है, सदा सदा की अतृप्त प्यास...फिर भी निषिद्ध प्यार, जहां अनुत्तर की कोई वजह नहीं, की प्रतिकूल विकृति अज्ञेय है...अम्ल से स्वर्ण दिव्य आभा से चमकता है, पर भीतर के प्राण को वह क्षरित भी करता है...इस तरह की सलाह बाप देता। मां इन व्यथाओं को आसान बनाती और बेटे से इतना ही कहना चाहती : दिल की आवाज सुनो, और उसकी राह पर चलो, पर रस्ते के बायीं तरफ ही रहना है, क्योंकि वह सुगमता का नियम है। प्यार वह स्थल है जहां सौंदर्य, जो चाह भी है, और न्याय, जो ध्यान चिंतन भी है, अतिच्छादी स्थान के लिए संघर्ष करते हैं।

जाहिर है अमन ने ऐसे कोई सवाल नहीं पूछे, जबकि वह मां बाप की निगाहों के सामने नंगा महसूस कर रहा था। बदले में उसने अपने दिमागी खलल का तुड़मुड़ खरीता बनाया और यह तबसरा किया : आप लोगों की लव मैरिज थी, नहीं? ये भी कोई सवाल है, हमराज भुनभुनाया। शमा ने जवाब का बीड़ा लिया : हम दोनों के घर परिवार का कोई था ही नहीं, सो अरेंज और लव मैरिज में फर्क करने का पैमाना ही नहीं था...क्या तुम अपनी के साथ फरार होने वाले हो, बहन ने दोस्ताना ईर्ष्या से जलकर कहा...भाई के होंठ कांपे, मर्द किले फतह करते हैं, उसने फूले और जाली दंभ से कहा...ये बहुत गलत बात है, तुम्हें इस तरह नहीं बोलना चाहिए, मां ने अमन को झिड़का, फिर इस गैरजरूरी फटकार पर पछताई, आखिर कच्ची उम्र में व्यवहार की नजाकत और गफलतों का भार ढोना ज्यादाती है...अमन की दुर्दशा इसमें थी कि एक तरफ औरतजात के जिस्म में लीलने के प्रति शर्म और जुगुप्सा थी, और दूसरी तरफ आशिक के मिजाज का पाक संकल्प था। वह पर्दा खिंचकर उस स्टेज पर पहुंच रहा था जहां सीमित का रुख और ठाठ असीम और अनंत का है...मां वे दिन कैसे भूल सकती है, हर दिन के बाद दिन, जब वह अपने बेटे की उम्र की थी, बल्कि कुछ साल बड़ी, और जब्बे की हर करवट और शिकन में प्रपात की स्तब्धता थी, और विस्फोट का कंपन...प्रेम की ऐसी लुकाछिपी की बातों के बाद, संवाद का चौखाना बेरस और रोजमर्रा के विषयों पर मंडराने लगा। और अंततः ध्यान खाने पर केंद्रित हो गया, कांटे और छुरी का संगीत मन के स्वाद पर काबिज हो गया, ऐसा हमेशा होता था। भोजन के साथ पूरा, आहिस्ता न्याय बरतने के बाद जब वे रेस्टोरेंट से बाहर निकले तो अमन जानबूझकर कुछ पीछे रह गया, उसने मां पिता को एक साथ दरवाजे से बाहर निकलते हुए देखा, और एक बार फिर उसे अपनी गर्लफ्रेंड का कहा याद आया कि वे एक परफेक्ट कपल हैं। अमन की स्वमन, सचल आह में एक पीढ़ी का फासला था, और जुड़ाव भी।

कभी रात नीली दिख रही थी कभी काली। पर लंबी, फैसलाकुन रात थी। तारों की झरती उजास में अपेक्षित निरक्षरता के साथ तज्वीज की उमड़न भी थी। प्रकृति का मन अगर है तो उसकी नीयत अभेद्य है...शयनकक्ष में ज्यों हमराज होंट में होंट उलझाने के लिए शमा के ऊपर झुका, पिछले बीस सालों में गिनी चुनी रातें ही थीं जब वे एक साथ नहीं थे, तो रात की नीली सपाटता में जैसे एक मानवीय शिकन बनी, क्षण भर के लिए हमराज को घुमरी का पहचाना, प्रतीक्षित अहसास हुआ, शमा के होंट खुले थे और आंखों के आवेश में हूबहू वही संवेदन था, वह असल में घुमरी नहीं थी, क्योंकि फांक भर मदहोशी का अहसास तब भी होता जब शमा अपने होंट अन्य दिन रातों में उस पर ऊपर से नीचे लाती, दोनों के लिए उस क्षण का इजहार और निधि समान थी...इस तरह था मानो दोनों के मध्य एक संकरा, अन्योक्त मार्ग उभरा है, किसी वर्चुअल गेम के फर्स्ट स्क्रीन की तरह, इस गेम में माउस की क्लिक चुंबन और जुवान का आत्मिक, पावन अन्वेषण है, यह स्मृतियों की गुफा है, बीस से अधिक वर्षों का फैलाव, शुरू के किंचित बाद के एक साल और आठ महीने की अवधि लाल रंग से प्रदर्शित, खतरे का ध्वज नहीं, पर एक तरह का रूहानी, अंतरंग चिह्न, यह उनके वियोजन और निषेधाज्ञा का प्रवर्तन काल था, दिक् काल के इस अनहोने हस्तक्षेप के लिए कोई बेहतर मुहावरा नहीं, और जो मुद्दा था, जैसे वे दोनों जानते और पसंद करते हैं, वह यह था कि स्मृति की गुफा को हर बार रिफ्रेश करना होता, हमेशा यह असल या काल्पनिक डर था कि इस जतन के अभाव में कहीं गुफा खो न जाए, और सॉफ्टवेयर के तर्कशास्त्र को आगे ले जाएं तो, अनन्य और पाक प्यार की फाइल्स को पुनः पाना या सुधारना किसी हैकर के बस का नहीं, सो हर बार जब वे प्यार बनाते और वस्ल ए जान होते, तो यही होता, घुमरी का क्षण और स्मृति की उस गुफा का पुनः विचरण, यह उनकी घनी आरजू थी और मन्त, मुस्तकिल या रोज के सौगंध का नवीकरण, यह उनके प्यार की दिव्य प्रकृति की बुनियाद थी, पाकीजा और सर्पण का आदर्श।

यह विरह का प्रतिष्ठापन, एक दूसरे का बारंबार पुनर्जन, उनके रोज का सामान्य अंग था, उनके जीवन की सांस, जिस तरह नित्य, हर वक्त कोशिकाएं मरती हैं और नई पैदा होती हैं, और दिल की हर धड़कन के साथ रक्त शुद्ध होता है, यह उनके प्यार की बेवश और जरूरी शर्त थी। उनके नंगे, नजदीकी क्षणों में यह दस्तूर या आचार बहुत तरह से प्रकट होता था, और उनका अभ्यास जारी था, मानो जागृति के हर पल में वे नए सिरे से प्यार को खोज और पा रहे थे। मसलन, किसी रात बिस्तर पर उनकी पीठ एक दूसरे की तरफ होती। एक घने क्षण में, और यह लगभग हमेशा समक्षणिक होता, यकीन का मीठा खौफ उनमें भर जाता : अगर वे मुड़े और दूसरा अनुपस्थिति की हद तक विस्थापित हुआ तो?...उसी आकाश, जमीन और बीच के स्पेस में, निसर्ग के उदासीन, स्थिर रुख और अंधी, अनभिज्ञ दृष्टि के तहत वियोजन का वाकया दोबारा भी घट सकता है, क्यों नहीं, किसी भी समय, किसी भी जगह। अपने अपने विमुख स्थल से वे तब दूसरे को पुनः विचारते, रूप, आकार देते, एक अनुरागी मूर्तिकार की तरह, अंश दर अंश, कदम दर कदम. ..स्नायु और त्वचा का घन, कसाव और सांचा, जिस्म की निर्धारक रेखाएं, विदरण और निर्विघ्न ढलानें, मुख्तलिफ, निजी खुशबुएं और गति मुद्राओं के समीकार, इतने सालों के स्मरण और विस्मय, प्यार का इकट्टा, और इकट्टा का प्यार...उनके जच्चे और तड़प की तीव्रता तब चित्रों की एक गड्डी में मूर्त होती, और जब करवट लेने के क्रम में वे एक दूसरे को वहीं पाते, जो वे जानते थे, तब असल और तसब्युरात, तसब्युर और अहसास, रहित और भरा, पूर्व और वर्तमान, गैर और मौजूद बिना सीवन एक पूर्णता में मिल जाते, और एक टांका भी गवाही के लिए नहीं बचता।

ऐसे खयाल और आखेट प्यार के होने, बनने का रस्मी अभिनय या पुनः अभिनय था, इश्क की दीवानगी का एक तरह का मंचन या नुमाइंदगी, जो हमराज और शमा के लिए रोजमर्रा के संपादन

का हिस्सा था। तो वे जो भी करते, जिस तरह भी रहते, उनकी बातें, अंतःक्रिया और सरोकार, वह उनकी प्रीत की उपासना और तामील थी, प्रेम का रहस्य और मर्म उनके रूटीन का पालतू था।

...बाद में वे आलिंगनबद्ध थे, और शायद एक दूसरे के लिए मग्न जूनून की तंगदिल स्थिरता से चकित थे, उनके प्रेम की सदाकाल हथकड़ी, अरुचि या फीकेपन की अजीब, चिंतातुर गैरहाजिरी, और यह कि प्रेम की निपट एकरसता से वे जैसे अछूते और आरक्षित हैं। प्यार की सहजता और सहूलियत से कभी उन्हें बेचैनी और शंका होती, कि वे एक दूसरे से वैमनस्य या निराशा बरतने में असमर्थ हैं, ऐसे अजेय, कठोर सम्मोहन का मीठा, बहका भार, इस पंख कोमल अधिरोपण की नागवारी...उनकी अलग हस्ती और अहसास के मेल मिश्रण में घिसा घिसी का अभाव पहेली और हैरानी का विषय तो था ही।

तुम्हारा बेटा नाजुक दौर से गुजर रहा है, बेटी भी, तुम्हें अमन से थोड़ा खुलना चाहिए, शमा ने कहा। न बोलना शायद बेहतर हो, नहीं?...उसे तुम्हारी सलाह से ज्यादा तवज्जो के अहसास की अपेक्षा है। यह उम्र का तकाजा है...उल्टा भी हो सकता है, बेहतर हो अगर वह खुद के ऐतबार से खुद जवाब तलाशे, जैसे हमने किया, सब करते हैं? हमराज ने जतलाया। वह अपने वालिद का खयाल सुनना चाहता है, दया या उपदेश नहीं...हो सकता है मेरे कहे से उसका रंज जागे? ...इसीलिए, प्रिंसाइसली फॉर दिस रीजन, वह अपना रोष, खीज, उसकी फितरत को तुम्हारे कहे के बरक्स टेस्ट करना चाहता है। उसके लिए तुम्हारा हर वाक्य, तजवीज एक चैलेंज है। और यह चुनौती वो चाहता है, अपने शोधन या परिष्कार के लिए...पता नहीं, हो सकता है, ठीक है, मैं सोचता हूं।

उस रात, सोने के पहले, और नींद में भी, पिता ने अपने बेटे के साथ एक काल्पनिक संवाद किया, कल्पित यूं कि हमराज बीवी के साथ के अलावा प्यार का जिक्र भी करने में अशक्त, अनाड़ी था...उस खयाली, उन्मत्त, स्वप्निल कल्पना में इरादा यह था कि वह अमित प्रेम की आलम आशकार कथाओं से शुरू करे, लैला मजनूं, रोमियो जूलियट, शीरी फरहाद, हीर रांझा...अनगिनत अफसानों का एक परकोटा या टापू जो दुनिया के अनजान और बेहतरीन कथाकार और शायरों ने हर युग में समाज की लकीरी, अनुदार संरचना के खिलाफ सृजित किया, व्यवहार और प्रचलन में इश्क की आलमी मुद्रा...कि इश्क में खाक हुए और उफ तक न करने की बेहिसाब दौलत कमाई...वह खास तौर से लैला और मजनूं के इश्के जूनून का कायल था, कि कैसे लैला से बेपनाह मोहब्बत में इस कदर बावला हुआ कि मजनूननियत का सहारा गर्द हो गया, खुद मजनूं हो गया, उसी गर्द के पाक, सरहदी स्पर्श के लिए हजारों हजार लोग उसकी जान अनजान मजार पर शताब्दियों से माथा टेकते हैं...खाब और तसव्युरात की मदहोशी में हमराज उन सूखी, अनमेल रातों की स्याही में पहुंच गया जब उसने नाखून की खरोंचों से वक्त बेवक्त के पीले पन्नों, सस्ती पॉकेटबुक किताबों से उस ईंधन के दाह को अर्जित करने का प्रयास किया था जो लैला मजनूं की दास्तान, अफसाने, शायरी और मिथकों के हर्फ ए आह में दर्ज था...।

...कि मैं इन दीवारों से गुजरता हूं, लैला की दीवारें, मैं इस दीवार को चूमता हूं, उस दीवार को, यूं कि जो मोहब्बत है, जूनून ए कैसे, वो इन दीवारों के भीतर रहती है...हिंदुस्तान के सरहदी गांव बिंजौर में लैला मजनूं की मजार पर हर साल मुरीद और अकीदतमदों का मेला लगता है...एक वक्त हर गुरुवार को मजार पर चिराग जलता था, जलता हुआ चिराग खुद से सीमा के पार जाता और फिर लौटकर जमीन में समा जाता...यही जगह थी जहां मजनूं लैला ने नफरत और खिलाफत से पनाह ली थी, बेपनाह मोहब्बत को इसी कुएं के जल से कुछ वक्त का चैन मिला...रेगिस्तान के जलते टीलों के विस्तार में जो हवा का सूखा विलाप और तूफान का क्रंदन सुनाई देता है उसमें कहीं कैसे के अमित मरसिए भी शामिल हैं...यह सब, कहे, जाने, बीते के अहसास का कोहराम

हमराज की चेतना में मौजूद था, उसकी सपने की जीभ पर था, पर जो वह अपने भीतर में, स्वप्निल कल्पना में संसक्त होकर पुत्र को कह पाया वह इस तरह था : यह जानो अमन, मेरी जान के टुकड़े, मेरे प्रेम के इजहार, कि एक आदमी और औरत, जवान लड़का और लड़की, जो प्रेमातुर हैं, इश्कजदा हैं, यह प्यार उनका जोंक, अकेला सच और अहसास है, उनका पाप और पुण्य है, वे एक साथ, बिना तीसरे के, तीसरी परछाई के, अपने छोटे से घर में, आशियाने में रह रहे हैं, दो या दो से ज्यादा दरवाजों का उनका अपना घर, इस तसल्ली में स्पेस टाइम, जिसे प्यार या इंसानी जच्चे का कोई इल्म नहीं, वह किसी अज्ञात मरोड़, हादसे या जिद के तहत ऐसी स्थिति बना सकता है, कि वे प्रेमी अपने ही घर में सदा के लिए एक दूसरे से बिछड़ जाएं, नजर न आएं, उनकी लाख कोशिश, चाह और इबादत के बावजूद, जैसे ही एक जन दरवाजे से भीतर आता है, तत्क्षण दूसरा अन्य दरवाजे से बाहर चला जाता है, उन्हें एक दूसरे की नजदीकियत का भरसक अहसास है, वे एक दूसरे के पिछले पल के पदचिह्न बखूब देख रहे हैं, एक दूसरे की सांसें सुन रहे हैं, पर मुलाकात, साथ होना, कि वे छू सकें, आपस में चूम सकें, गले लग सकें, मन से मन मुताबिक प्यार करें, वह इस सरल से सिद्धांत, नियम या समीकार से असंभव हो गया है, नियम यह कि ज्यों एक जन दरवाजे से दाखिल हो दूसरा अन्य दरवाजे से निर्गत हो...एक दूसरे की यह तलाश या अनुसरण चक्राकार और अनवरत है, यह उनकी गलती नहीं है, न किसी दूसरे इंसान की, यह न षड्यंत्र है न दुश्मनी, न रंज या जात, वर्णभेद का जंजाल, यह महज एक अमूर्त संभावना है, और चूकि होनहारी है इसलिए कभी न कभी उसे घटना तो होगा ही, यह स्पेस टाइम और भौतिक संसार के सिद्धांत का अनुकूलन है, और इस तरह यह शापित, महरूम ए इश्क की त्रासद कथा है जिसकी कोई इंसानी वजह या जिरह नहीं...तो जरूरी है विनय का आसन और यह अहसास कि प्यार सबका नसीब नहीं, प्यार संयोग और इत्तफाक का उतना ही दास है जितना कुछ और, इश्क का रियाज चुनिंदों को मयस्सर है, जो बदी और किस्मत के शहजादे हैं, यह प्रसाद है और वरदान जो अनमोल है...और इतनी ही दिलासा है कि शायद कायनात भी अनेक हैं, और जो एक जगत में नहीं होता वह दूसरे में घटता है, इस तरह हम सा हर इंसान कहीं न कहीं, कभी न कभी इश्कजदा है, और यह सिर्फ हमारा शील और निर्वाह है कि उसका हम क्या बनाते हैं, बहुत सा अर्पण, त्याग, साधना और वक्त जरूरी है कि हम प्रेम के चांद को अपने सीने की जेब में महफूज बनाने के काबिल बनें, यह मैंने इतने सालों में सीखा है, तुम्हारी मां ने भी, कि प्रेम का चांद जो हमारी सीने की धड़कन में महफूज है, वह हमारा सबसे बड़ा खजाना है, और रहबर भी...।

यह स्पेस टाइम की सनक का गैर जज्वाती अभिप्राय ही था कि एक पसीजती दोपहर, भीड़ के रेले के बीचोंबीच, ऐसा हिसाब कि तिल रखने की जगह नहीं थी, तब नियत के साये में चुंबन की भिड़ंत ने हमराज और शमा को उसी रोज हमरति बना दिया। यह उनके निषिद्ध वक्त के अनहोने कालखंड के करीब डेढ़ साल पहले का वाकया है। उस रोज संकरे पुल पर पहुंचने से पहले वे अजनबी थे, दोनों तीसरे साल के संघर्षरत छात्र, वक्त और अभाव से रोज का जूझना, करीबन अभागे, करीबन अनाथ, मदद और सहारे के लिहाज से सिफर, भविष्य और बेकारी की चिंता, वजीफे पर निर्भर, हर तरह से निम्न, सामान्य...मुंहासे, शरीर और पस्तगी के पसीने से त्रस्त, आगे अनजान कुएं पीछे तसादुम के तीखे अहसास...दीन हीनता की ऐसी धूमिल व्याप्ति में चुंबन नामुराद मुराद थी, खट्टा भी नहीं सड़ा अंगूर, आकाश में टंगा चमकीला नक्षत्र, अज्ञात और अलभ्य की श्रेणी, उनके उलझे, कंटीले मन में उस रोज चुंबन का दूर दूर तक आगाज नहीं था। उस दिन के पहले तक वे अक्षत और अछूते के मजलूमी नुमाइंदा थे।

वह यूनिवर्सिटी की आम सपाट निष्क्रियता का ऐसा पलट दिन था जब छात्र भारी संख्या में उमड़ पड़े थे। कोई साफ आकर्षण नहीं था, फिर भी क्लासरूम खचाखच भरे, वही हाल सड़क, मैदान, रस्ते और खुली जगह में, यहां तक कि लाइब्रेरी में लंबी कतारें...सब विडंबना के इस उत्सव से अचंभित से। अजनबी एक दूसरे की तरफ मुस्करा रहे थे, प्रोफेसर मस्त से अपने सबसे उदुंड छात्रों से न जाने कहां कहां की बातों में मशगूल। धूम सी मची थी, सिर्फ कॉफी हाउस के वेटर थके और परेशान थे। सबके बीच हमराज और शमा भी थे, पीठ पर ऊंचे शिक्षा का बैग बंधा था, एक दूसरे से अनभिज्ञ, वे मुखालिफ दिशाओं से समीप आ रहे थे। वह एक लंबा संकरा पुल था, नदी या तालाब या पानी की याद दिलाता। अपार, घनी भीड़, और पीछे के निरंतर दबाव से वे जैसे खुद ब खुद, तैरते, उड़ते से चले आ रहे थे। रुकना, धीमे होने का कोई तरीका नहीं था, शायद नियति इसी तरह संचालित होती है। दो जवान शरीर के बीच की शुद्ध, सीधी लकीर, जो पुल के समानांतर थी, तेजी, बहुत तेजी से घट रही थी, और क्षण भर बाद उनके मध्य कोई फासला या विकल्प नहीं था, विवश जिस्म के पूरे वजन और ताकत से, जिस पर उनकी कोई मर्जी या जोर नहीं था, वे धड़ाम से टकराने वाले थे, सिर और माथा आगे की ओर था, कंधे झुके और हिफाजत में पीछे की ओर खिंचे...इससे पहले कि सिर आपस में विकट तरह से भिड़ते, सहज बचाव की क्रिया ने एक ज्यामितिक उपाय बनाया, जो ज्योमेट्री के सिद्धांतों से प्रमाणित नहीं, इस समाधान के फलस्वरूप उनके होंठ आपस में मिले, भिड़ंत का प्रहार इस गूढ़ तरीके से नरम पड़ा, इस चुंबन के आघात से, जिसने बदतर एकसीडेंट से बचाने का काम किया, वे दोनों अक्षत सुन्न प्राण और भयभीत थे, अगर उनके बस में होता तो संभवतः वे तत्काल अलग होकर, जान और नजर बचाते हुए बच निकलते, पर ज्योमेट्री ने इतनी देर में अपनी सत्ता पुनः कायम कर ली थी, भीड़ के धक्के और सदृश उनकी गति और जुबिश को संचालित कर रहे थे, कुछ क्षण वे जैसे चुंबन की मदहोश अदायगी में फ्रीज हो गए, मोहक मूर्छावस्था सी, शरीर से शरीर तंग तरह से दबा, और फिर वे उस दिशा में सरकने लगे जिस तरफ शक्ति कमतर थी, और इन दुर्लभ, अजूबे क्षणों में, टक्कर से जनित सदमे और वश्यता ने मुस्तैद और सक्रिय सर्पण का हठ हासिल कर लिया था, अनजान लड़की की बाहें सर्प की तन्मय सर्पिलता से लड़के के कंधे के आसपास लिपट गई थीं, और लड़का यहां तक निडर हो गया था कि लड़की के गालों को हथेली में लेकर उसके होंठ भरसक निगल रहा था, गुस्ताखी की इतिहा थी, चेतना के एक दूसरी परत में वे खुद भयभीत, अचंभित थे, पर न जाने क्या थी दिन की मर्जी कि न किसी दूसरे ने खास देखा, न नोटिस किया, मानो यह आम नजारा है, कोई माजरा नहीं, जबकि खुले में, लगातार, खुली, मुंहजोर शिदत से जीभ से जीभ मिलाकर ऐसा चुंबन कभी किसी ने खुलेआम, डंके की चोट पर किया हो, यह यूनिवर्सिटी की गुफ्तगू के कोष में कहीं दर्ज नहीं...फिर हमारे उन्मत्त जोड़े ने घिरनी सा एक कुशल, मुश्किल पैंतरा रचा, जो सघन ध्यान और प्रोफेशनल अभ्यास की दशा में ही संभव है, वे मानो भीड़ में दरार खोलते हुए तिरछे सरके, किनारे घुटने की ऊंचाई की झाड़ी थी, उस पर से वे इस तरह पार हुए मानो अज्ञात दैवशक्ति ने उन्हें दूसरी तरफ पहुंचा दिया है, वहां भीड़ थोड़ी कम थी, उनका चूमना और चूमने की निरंतरता टूटी नहीं थी, लड़का लड़की के सीने के गोल उभार के चिकने वजन से भ्रांतचित्त था, उसने जिंदगी में पहली बार जवान लड़की को छुआ था, किस करना और वक्ष पर हथेली कसना तो स्वप्न के भी परे था, उसे लगा यह चाहना की कैसी अनोखी बरसात है, फिर आखिरकार वे आलिंगन की लौह बंदिश से विभक्त हुए, और पहली बार एक दूसरे को चेतन नजर से देखा, दोनों भरसक हांफ रहे थे। तुरंत और अविराम वे एक दूसरे के जिस्म के प्यासे हो गए थे, उन सेक्स अछूते की तरह जो हर वक्त, नींद या जाग में, वसलत के खयाल से लैस और ग्रस्त रहते हैं।

वासना का सेब उन्होंने आध अधूरा चख लिया था। जिस्म की आग इतनी भड़क गई थी कि ललाट की हर सिकुड़न धधकती महसूस हो रही थी। अब न चारा था न धीरज और शऊर के मैदान में मर्यादा ने अपना कवच उतार फेंका था। वस्ल ए गैर का उपहार हर भार या परहेज से मुक्त था, और वे इस प्रदान को छोड़ने वाले नहीं थे, कतई नहीं। पहल करने की जरूरत दोनों तरफ नहीं थी, न रिझाने या मोहने का जोखिम, या हाथ और मन बढ़ाने पर मलामत का भय... भीड़ के प्रवाह और हिलकोरे ने तरजीह, वरण या इख्तियार की प्रक्रिया को बेमतलब कर दिया था, यह उनके खूब माफिक था क्योंकि अफेयर या 'चक्कर चलने' के मामले में वे मुफलिस फरियादी थे। तुरंत, सहजबोध और जिस्म की भाषा ने दूसरे के शरीर पर अपना हक कायम किया, जिस तरह हमराज ने शमा का हाथ अपने हाथ में दबा लिया, और शमा का व्यग्र राजीनामा चेहरे की तरल, तामसी लालिमा में झलकने लगा, हाथ में हाथ, और इतने निकट कि उनकी जांघें हर क्षण दो क्षण में आपस में रगड़ रहीं थीं, हल्की कंपकंपी उनके शरीर में दौड़ जाती, इस तरह वे निरुद्देश्य, असंगत से चल रहे थे, आड़े तिरछे, गोल घेरों में, यौन का धुंधला गंतव्य उनकी ग्रंथियों में पैठ गया था, वे बिना सोचे, बस लिहाज की खातिर कुछ कुछ बोल रहे थे, उनके दिमाग शून्य और ज्वरग्रस्त थे, उनका अकेला फोकस वह सेक्स की विद्युत थी जो उनके तन मन का घना, बेबरसात बादल बन गई थी, उनके विचरण में लोमड़ी की चालाकी भर गई थी, वे खुद से एक साथ बहुत समीप और दूर थे...उन्होंने एक दूसरे का नाम जाना, शोध के विषय और गाइड, हॉस्टल और पीजी का नाम पता, वे हर बात और कहे से सहमत थे, उनकी प्रज्ञा और इत्तिला में कोख का सौदा हो गया था, और जो असह्य अहसास उनके जेहन और स्मरण पर चढ़ा था, वह उनके जिस्म की टकटकी का मृदंग बन गया था, उसने हर तटस्थ बोध को रौंद दिया था, होंठ, वक्ष, नाभि, जांघ, त्वचा और स्नायु की थिरकन उनके जेहन में नृत्य कर रही थी...शाम हो गई थी, अब बहुत कम लोग थे, वे तब भी चल रहे थे, टांगों में व्यसन का लूआब बह रहा था, उनके शरीर का तकाजा और अध्यर्थन बढ़ा, बाहों के सर्प ने कमर को लपेट लिया, वे कई बार चूमने के लिए रुके, शब्दों के ख्वाब बुदबुदा रहे थे, फिर हमराज ने साहस की गर्दन पकड़ी और कहा कि वह आराम और निवृत्ति की एक जगह जानता है, महफूज और एकांत, जहां वे जा सकते हैं, सिर्फ वे दो, ओके?...कोई खतरा तो नहीं?...नहीं, पूरा एहतियात बरतते हैं, लवर्स के लिए है, लड़के ने इस शब्द का पहली बार इस्तेमाल किया था, एक सेज की तरह जिस पर वासना का पूरा दोष और छल मानो शुद्ध और माफ हो गया, यह बोलकर हमराज निर्बाध और स्वच्छंद हो उठा, उसके भीतर स्वैरता ने अंगड़ाई ली, उसका समूचा शरीर जाग उठा...तुम्हें इन चीजों का तजुर्बा है भी?... मुझे नहीं, पर मेरे दोस्त हैं जो वहां जाते हैं, गारंटी की जगह है, अभी तक यह सब ख्वाब जैसा था, पर अब ख्वाब सच हो रहा है, है न? शमा ने हामी भरी, हां, पर तुम्हें उसका...एहतियात का पता तो है न?...हां पता है, तुम टेंशन मत लो...और इस तरह वह घटा जो उनका दिन और मौके के चमत्कार का जूनून बन गया था, वे आराम और निवृत्ति की जगह पहुंचे, योनी का भेद खुला, संसर्ग की वर्जिश, वे एक पल के लिए भी न रुके, न थमे, समय सीमित था, उन्होंने वह सब किया जो उनका किताबी ज्ञान था, और कल्पना, और कुछ ही देर में निसर्ग ने अपने हुनर और मर्जी के घोड़े छोड़ दिए, लड़का लड़की पाचों इंद्रियों और स्वैर कल्पना के पंख पर सवार थे, और जब वे बाहर निकले तो उनके मन के डेरे और उछाल में हजार वादे और अरमान थे, उन्हें अपने आगे हजार रतिमय रातें दिख रहीं थीं, और जिस्म की जंगल भूख का कोई ठिकाना नहीं था।

वह भूख अतृप्य थी, और वस्ल, रति की शुद्ध क्रिया में इस हद तक डूबी, कि इश्क या प्रीत के करुण, शबनमी ख्याल, मुहब्बत की चाहना के लिए कोई जगह नहीं थी, आशिकी के वे

गुण जो शरीर के उपकरण से सुगम और उपलब्ध नहीं थे। इश्क के मिजाज या इसरार के लिए न वक्त था, न जरूरत, न अभिलाषा। बाध्यकारी सेक्स के घने, प्रचंड पदभार ने अहसास की जमीन में बसे प्रेम के विनीत, सुप्त अंकुर और सुगंध को रौंद दिया था। जिस तरह चरक, अणु संसार, अरस्तू और न्यूटन के तीन सिद्धांत उनके जेहन से विहीन थे, प्रेम का ख्याल उनके सरोकार और मन मस्तिष्क से नदारद था। यह सवाल, छंद में या गीत में, कि क्या यही प्यार है, और इश्कजदा होने की ख्वाइश, यह उन्हें सूझा ही नहीं। यह उनकी गलती भी क्यों होती? उनका जीवन कठिन, बंधा और सिमटा था। साधन के लिहाज से दोनों के पास सिर्फ वजीफा था, वे अपने से थे, और यह बखूब अहसास था कि मुफलिसी से बचने के लिए अव्वल रहना जरूरी है, किस्मत का साथ चाहिए और निष्ठुर परिश्रम। रिसर्च और रोज के सफर की दिक्कतें उन्हें अधिकांश दिन अलैदा रखतीं। और जब वे फारिग और विषम वक्त मिल पाते, छिना वक्त और वक्त से नुंचे, खुले में या अधम, अस्वस्थ कमरे में, मांगे या किराए के, इतना ही वक्त बमुश्किल होता कि शरीर की गुहार और भूख का चोर निस्तार हो सके। इस अफेयर के निर्वहन में, जो विलास और प्रमोद से ज्यादा कड़ी मुठभेड़ थी, उनका रवैया और निश्चय वही था जो रिसर्च या रोजमर्रा की जहमत के प्रति। वस्ल ए जन्नत के उन्माद में बहने या खो जाने का विलास उनके पास नहीं था। जब पसीने से तर और मैली हवा की नजदीकी और अंधेरे में वे एक दूसरे का जिस्म तलाशते, तो उनका व्यवहार इस तरह था मानो जिम में वे खास अंग और स्नायु की कसरत कर रहे हैं, दिल अगर फैलता तो शरीरी प्रयास की अति को समायोजित करने के लिए, वे उन अंतरंग, भूमिगत क्षणों में चौकस और वियुक्त भी रहते, आत्मकामिका का भाव खुद के आश्रय और गुजारे के बचाव में नियुक्त था, प्यार के शब्दों का इस्तेमाल भूमिका और संसर्ग की जुगत या तदबीर की तरह था, उनकी आंखों ने क्षितिज के खुदगर्ज फोकस से कभी नजर नहीं हटाई, जहां उनका भविष्य था, जो भी वे बनना या होना चाहते थे। और मुस्तकबिल की तकमील के सफर में दोनों अकेले और निवारक थे, वहां दूसरे के लिए स्थान, ख्याल या समादर नहीं था, हर कोई अपना देखे वाला रुख। इश्क के रोग या खतरों से वे निरापद और महफूज थे।

टू ग्रोप, मतलब टटोलना, टोहना, अनिश्चय या धुंधलेपन में ढूंढना, यौन संसार में इसका अर्थ अनावश्यक, जबरन छूना, दबोचना और आधिपत्य के हक से पुचकारना, सहलाना और हरसंभव बदनीयत का स्पर्श भी है। उस एक साल में ग्रोपिंग की सर्वोत्तम कला और उसका व्यंजक अमल ही था जिसने दोनों को वासना की अभीष्ट दासता और काराबंधन से रिहा नहीं होने दिया। इसमें सुख और आराम भी था, संयुक्त, आइदर/और बचतखाते की तरह जिससे दोनों को मौके और जरूरत के अनुसार पूंजी निकालने की आजादी थी, उनकी निष्पत्ति और तृप्ति के छोटे स्लाइस। सेविंस अकाउंट में जो ब्याज देय था वह खर्च की पूरी भरपाई कर लेता था।

ग्रोपिंग व्यापक थी, उनके संबंध की बुनियाद और आच्छादन। सबसे निकृष्ट तकनीक और सबसे मायिक फनकारी का इस्तेमाल वे करते थे। लजीले और गुप्त अंगों के इस खेल में वे संपूर्ण आवद्ध और आबाद थे, ये अपने में स्वतंत्र ध्येय बन गया : शरीर के नाना हिस्सों की फिराक, तलाश, तहकीकात, टटोल, स्पर्श, दाब, आलिंगन, दुलार, भेदन। यह सब वे हर जगह करते। वे सिनेमा, रंगमंच जाते, आर्ट गैलरी, म्यूजियम, संग्रहालय, बगीचे, शॉपिंग माल, रेस्टोरेंट, सेमीनार, व्याख्यान, पर न देखते, न सुनते, न ध्यान देते। उनका पूरा साहस और एकाग्र ताकत जिस्म को टोहने, नोंचने में लीन होता, अफीम का सा सम्मोहन छाया रहता। उस एक साल के रिश्ते में ग्रोपिंग उनकी आकांक्षा और चेष्टा की इकाई थी।

पर उनके रिश्ते के ज्वर ने जिस्म की नोंचानोंची के संकीर्ण जूनून को एक मायने में पार

भी किया। जब कोई इंसान अंधेरे में राह टटोलता है, तो वह क्रिया आंख बन जाती है, स्पर्श और दिशा विन्यास की इंद्रिय वह करती है जो नजर की सामान्य क्रिया है। यह अस्थाई कमी से पार पाने का तरीका, उपकरण है। यह सकारात्मक उपाय है, सक्रिय और मुस्तैद बचाव। पर तब के शमा और हमराज, जब वे चाहना और संसर्ग के निष्पादन की सेवा में भटकते और जिस्म के आखेट करते, तो यह एक प्रकार का शरणस्थल बन गया, पलायन और छुटकारे की तरकीब, जीवन की विकट, निर्दयी असलियतों का अस्थाई स्थगन। जब वे मौलिक गुस्ताखी के साथ जिस्म से जिस्म पीसते, कसमसाते और गुथमगुथ्या होते, तो उनकी मंशा और तड़प एक दूसरे को एक दूसरे से चुराने और हड़पने की होती, और प्रचुर संसार की तरफ आंख मूंदने की, खुदी और अपनी आत्मा से विभक्त होने की। जो उन्हें मिलता, और जहां वे साथ में वसलत और आड़ के लिए छिपते, वह सूखा मरुस्थल था, विहीन और निर्जन। वे कम से कम उन चुराए पलों के लिए रिक्त और रहित होते, और उस अनवरत आनंद मशीन के चक्के बन जाते, जिस उपकरण की निरे चिंतन की व्याख्या तमाम दार्शनिकों ने अनंत सुखवाद के पक्ष और विपक्ष में हर दशक और शताब्दी में की है। पर जो उनका तत्क्षण का लुत्फ था, वह असल में खुद से रिहाई थी, वह रिक्त कालखंड उनकी जीर्ण शीर्ण, कुठित, अनिश्चित जिंदगी के विस्मरण की कवायद थी। यहां, इन टापू दशाओं में साझा संवेदन, आदान प्रदान, दान प्रतिदान और परस्पर त्याग या योग का कोई स्थान या अर्थ नहीं था। अगर वे एक दूसरे से कुछ छीन, चुरा रहे थे, तो वह जिस्मी इंद्रियबोध का निष्पूर, क्रूर पक्ष था।

नोंचानोंची का असंयम, उसका कामुक दुराव और कल्पनाशीलता, और निष्पत्ति का यकीन! इस मंजर और माहौल का यह भी असर था कि वे इस पलायन और रिक्ति के समय स्लाइस में जीवन के रोजमर्रा तनाव और क्लेश से भी मुक्त हो जाते। यह छिपने, प्रत्याहार, और विरति की तरह था, असलियत से छल और अवज्ञा का निर्मूल कृत्य। यह ग्रस्तता अप्रार्थना की प्रार्थना थी, अनीश्वर प्रभु का प्रतिभूत स्वांग।

नोंचानोंची का आनंदमय जहर प्रेम का भी निष्कासन कर रहा था, उसके खयाल या संभावना तक का। इश्क चंचल है, बेठिकाना है, अधीर और सामर्थ्य से बाहर, वह सरल राह का कांटा है, वह बहुत निचोड़ता और मांगता है, हवा और प्यार पर गुजारा नहीं होता...इस तरह उन्होंने सोचा या नहीं सोचा। पर यह तय था कि जब वे जिस्मजदा होते, हर अंग प्रत्यंग एक समस्वर साज और स्पर्श संवेदक होता, और वसलत और निष्पत्ति के छल में वे दुनिया जहान और एक दूसरे को निषिद्ध कर देते, तब प्यार की धारणा या खयाल उनके जेहन से संपूर्ण जुदा होता।

दोहरे, दोहराते शब्द, बारंबार वही बात और पुनरावृत्ति, पर हमारे नायक नायिका के साथ भी तो ऐसा ही था, नोंचानोंची और वस्ल की पुनरावृत्ति, ग्रस्तता जिसका आधार ईंधन था। पर दोहराना कब तक? इस चक्र ने क्रूरता के वायरस और ऊब की फफूंद का जनन किया, यह धीरे धीरे हुआ, दोलक के असंलग्न झूले की तरह, और उसके बाद साल के खत्म होते होते डिमिनिशिंग रिटर्न्स की अर्थसत्ता ने अपना वर्चस्व स्थापित करना शुरू कर दिया। वे एक दूसरे के जिस्म से ज्यादा और ज्यादा पाने और चुराने के लिए प्रतिबद्ध थे, पर उन्हें कम और कम मिल रहा था। प्रेम की तंत्रिकाएं, वे न्यूरोट्रांसमीटर जो इश्क का प्याला भरते हैं, वे वर्जित थे, यह उनके रिश्ते का प्राथमिक नियम था। इस कारण संबंध का आधार, उसका रसायनशास्त्र ढह गया, और कसैला, गौण उत्पाद उभरने और रिसने लगे।

नोंचानोंची के अतिरेक से गठित अफेयर पूरे एक साल चला। इस अवधि में जितनी बार वे संजो सकते थे उन्होंने संसर्ग किया। खर्च की दिक्कत एक विवशता थी, और यह कि इस लिप्तता और सनक का असर उनकी पढ़ाई और भविष्य की तैयारी पर न पड़े। हर रोज, उस साल,

वे घर से निकलने से पहले नियम से अपना बैग चेक करते, नोटबुक, पेन और कंडोम, बराबर की चौकसी से। कब, कहां मौके मिल जाएं। वे कम बात करते, यह आत्मरक्षा और व्यावहारिकता का तकाजा था। पर बुनियादी, आवश्यक घटक से वे बखूब वाकिफ थे : कि दोनों लगभग अनाथ हैं, उनका कोई आसरा नहीं, अच्छी नौकरी और पेशे की किल्लत है, वजीफे जुटाने की अपरिहार्यता, अभाव और दीनता, निष्ठुर अर्थ संसार और यह कि उपार्जन की जंग में हर कोई अकेला है। पर इतने शब्द वे जरूर कहते कि रति का रिश्ता उनकी धूसर जीवन शैली का घरेलू अभिन्न और चांद बन गया। कोई दिन होते जब उन्होंने एक दूसरे को उपहार भी दिए। वे प्रेम के संदेश नहीं थे, वरन उनकी नंगी लंपटता की पनाह के हिमायती थे। तोहफे अधिकांश सख्त वस्तुएं होतीं, जैसे नेलकटर, कैंची, डिविया, पुराने सिक्के, हेयर क्लिप, प्लास्टिक के फूल, ऐश ट्रे...प्लास्टिक झाड़ू और डिटोल की शीशी तक जिस पर रेट की चिप्पी ज्यूं की त्यूं लगी होती। कभी कंपलसरी सेक्स सेशन के बाद वे जाहिल अनाड़ियों की तरह सिगरेट भी पीते, और धुएं के बीच से एक दूसरे को ऐसी नजर से ताकते मानो दूसरा नामौजूद है। उन्होंने एक दूसरे के लिए नोटबुक और बॉल पेन भी खरीदे। एक बार हमराज ने शमा को खाली पिक्चर फ्रेम दिया। ये खाली है, रख लो, उसने कहा। दो एक बार ऐसा भी हुआ कि वे सात बाई सात फीट के कचरेनुमा कमरे में अर्द्धनग्न अवस्था में थे कि एकाएक शमा फूट फूट कर रो पड़ी। हमराज ने उसे आगोश में लिया, उसकी कुहनियां शमा की त्वचा में गड़ रही थीं, जैसे तैसे शमा चुप हुई, फिर सेक्स की उठापटक के बाद लापरवाही से हमराज ने पूछा भी, क्यों रो रही थीं, पर शमा टाल गई, उसने कुछ नहीं बताया, और हमेशा की तरह उनके बीच का कुछ, जो अवशेष था या नया जन्मा था, राज था या ज्ञात, दफन हो गया। उनकी हर मुलाकात किसी प्रकार के दफन की पद्धति थी।

यह बाद का अर्जन था कि दफन सही समझ नहीं थी। हमराज और शमा के लिए भी। और हमारे लिए भी। दफन की जगह वह भविष्य की गोद में एक प्रकार का पाक संचयन भी था, अंजुलि का मिठा विष जो वक्त के साथ गंगाजल की पवित्रता और मुराद ए इश्क की ऊंचाई हासिल करेगा। ऐसा होता है पर बिरले होता है।

ये 'जिस्म पर जोर नहीं' के हालात खुद ब खुद पसर जाते और शायद कड़वाहट और झगड़े के शीतदंश के पश्चात खत्म हो जाते, पर अफेयर के तिलिस्म के कठोर आकाश में कहीं नभ्र छेद भी था। करियर और भविष्य की मौका तलाशी ने ऐन वक्त निकास और रवानगी की वजहें बना दीं, विच्छेद खामोशी में हुआ, मैटर ऑफ फैक्ट, कोई नकल नाटक नहीं, न भावुक विदाई, न जन्म जन्मान्तर के वादे। कुछ उपयुक्त शब्द थे, वे कहे गए, एक आध नोट, वे लिखे गए, बस। बहुत मुमकिन है उन्होंने राहत की सांस ली, रिश्ते की बंदिश से मुक्ति का अहसास। या सिर्फ विरक्त उपेक्षा। कहना मुश्किल है।

स्पेस टाइम और यूक्लिड ज्योमेट्री की विचित्र जुगत थी कि एक दिन के भीतर वे हमारति हो गए थे। अलग होने में इससे भी कम वक्त लगा। पर इस बार स्पेस टाइम का कोई हस्तक्षेप या मंशा नहीं थी। व्यावहारिक आंकलन के सीधे तर्क थे। हमराज को बिहार में अपनी थीसिस का फील्ड वर्क करना था, और उसी क्षेत्र में एक पुरातत्व प्रोजेक्ट में काम करने का इंटरशिप का ऑफर भी मिल गया, अतिरिक्त पैसा था जिसकी जरूरत थी। जहां तक शमा की बात थी, वह राजस्थान चली गई। एक एनजीओ के साथ महिला और प्रवासन की स्टडी थी। जिंदगी आगे बढ़ गई। उन्हें शायद इतना खयाल भी नहीं आया कि दोनों एक दूसरे के लिए नसीबवर सिद्ध हुए थे।

आगे बढ़ने से पहले एक गुथी के बारे में कुछ कहना जरूरी है। यह प्रेम कहानी है : शमा और

हमराज की। उसमें इस तरह का चैप्टर अनर्गल है : एक साल की जिस्मी नॉचानोंची और सूखा प्रेमविहीन सेक्स, सिर्फ शरीर की तृप्ति और कुछ नहीं, और अंत में मूक, अमली वियोग, स्मरण योग्य एक वाक्य नहीं। फिर कहां है शमा के जब्बे में लैला और जूलिएट की रूह? हमराज के अंदाजे बयां में रोमियो और मजनूं? वह अमित तड़प जब किसी हमराज ने नदी के बहाव में ऐसे नाम देखे हों : गोदावरी, नर्मदा और ताप्ति, घाघरा, मेघना और सोन? जब किसी शमा ने प्रेमाकुल तंद्रा में पर्वतों के शिखर क्षितिज में मेरु सुमेरु, त्रिशूल, कैलाश, नीलकंठ का स्मरण कर उनके अक्स का नतमस्तक आलिंगन किया हो?

शमा की जूलिएट से हमने यह कहां सुना कि...*आना, सलज्ज, प्रेममय रात, आ जाना, मुझे मेरा रोमियो दिलाना, और जब मैं न रहूं, ले जाना उसे, नन्हे सितारों की शक्ल में तराशना उसे, तब जन्त का चेहरा बन पड़ेगा इतना हसीन कि हर रात चराग ए इश्क की रात होगी। हमराज के रोमियो ने कहां कभी सोचा कि...देखो न! किस तरह उसने हथेली पर गाल सटा लिया है, काश मैं उस हाथ का दस्ताना ही होता, कि मैं उस गाल को छू तो लेता।*

उस एक साल में रूह या रूमानियत की झलक तक नहीं थी। सौंदर्य का खयाल नदारद या निषिद्ध। कहां हमने देखी तारों की उजास, घास के तिनगे पर ओस की बूंद, उड़ते, गुजरते बादल, निशा के आकाश का चांद। उठी मोहिनी नाक की भूकंपीय फड़कन, चूड़ी की खनखनाहट, उतावली पदचापें, सांस का थमना, विरह का धवल आंसू, अनंत प्रेम के बुदबुदे वादे? जो घटा था वह मानो नित्य के सेक्स का बिगनर हाऊ टू डू मैन्युअल था। पर यह बहस की जा सकती है कि सेक्स प्यार का बैरी नहीं, और न ही प्यार में सेक्स की कोई जगह नहीं, इन चीजों के बारे में कोई परस्पर तुलना या नापतोले नहीं होती। यह भी तो हो सकता है कि सेक्स की अपवर्जक अतिशयता की कटि से प्यार उसी तरह पैदा होता है जैसे नुकीले पत्थर की रगड़ के ताप से आग की चिंगारी। यह बखूब संभव है। शिव और पार्वती के चिरंतन संभोग से उनका प्रेम कमतर तो नहीं हुआ था। पर प्रश्न और दिक्कत यह नहीं है। यह एक प्रेम कहानी है, मैथुन का उत्सव नहीं। हमराज और शमा अमर प्रेमी हैं। यह दास्तान उनके सेक्स जीवन की तहकीकात नहीं थी।

इन्हीं विडंबनाओं के तहत, असल को खोकर, पाकर, कैसे न कैसे दंतकथाएं, रिवायतें बनती हैं...मैंने हमराज और शमा के प्रेम के मानसरोवर को उनकी आंखों में छलकते देखा है, उनके अंग विन्यास और अहसास के हर कण में कोरा, अमर प्यार बसा था, इश्क की जादुई दावेदारी उनकी हर अदा और पहल का हिस्सा थी, उनके प्रेम के अफसाने के कई पाठ मैंने अपने मित्र की जुबान से सुने, और कई हिस्से दूसरों से, और उन्होंने भी यह कहानी कहीं और सुनी होगी, कुछ खुद अपनी आंखों से देखा होगा, फिर हमराज और शमा का साक्षात जीवन था, हमारी निगाह के सामने, वे हमारे जैसे थे, और एक वक्त हमारी तरह जवान थे, वो हमारे बीच रहते हैं, हमारी तरह, वे कोई एकांतवासी नहीं, न ही उनके जीवन पर रहस्य का पर्दा है, वे अपनी प्रेमगाथा के खुद जीवित सबूत हैं, माकूल यह है कि यह चौप्टर इस दास्तान का भाग कभी नहीं होता, सेक्स और यांत्रिक वसलत का पहला साल, मेरा दोस्त मुझे यह वाकया कभी नहीं सुनाता, और न उसने किसी से सुना होता, और शमा और हमराज भी शायद इसे राज रहने देते, अगर यह रूहानी भरोसा न होता कि अतिशय और केवल सेक्स का यह चैप्टर इस प्रेमगाथा को उजागर और रोशन कर रहा है, और इस एक वर्ष की कोई अहमियत नहीं होती अगर उस रोज स्पेस टाइम ने मनमौजी, गैर इंसानी अंगड़ाई न ली होती, जिस वजह से बिना तालाब के पुल पर हमराज और शमा के बीच अनाहूत चुंबन की भिड़ंत हुई, और जो अगर ऐसा न हुआ होता तो कोई प्रेम कहानी भी नहीं होती!

शमा और हमराज की जुदाई सपाट और बेघटना थी, बल्कि यंत्रवत। उन्होंने आपस में टेलीफोन नंबर नहीं पूछे, हो सकता है यह सुविधा उनके पास नहीं थी। न पते की मालूमात की। न दौरान या लौटने पर मिलने की ख्वाइश दिखी। दोनों निर्लिप्त से ऐसी राहों पर चले गए जहां दूसरे की कोई मौजूदगी या पहचान नहीं थी। अफसोस या मलाल का कोई कष्ट नहीं था। न स्मरण की जकड़न। रिश्ते की स्लेट सफाचट और पुंछी थी। एकाएक, अपने आप। इस तरह था मानो वस्ल ए जूनून का वह साल उनकी जिंदगी के सरोवर में प्रच्छन्न कंकड़ की तरह तल में समा गया। वहीं वह अक्रिय पड़ा रहा। न प्रकट था न विघटित हुआ था।

वक्त गुजरा, मेहनतकशी और संघर्ष का वक्त, पेशागत दिक्कतें, करीब एक साल के प्रस्थान के बाद वे वापिस लौटे। वापिस दिल्ली। यहीं काम और नौकरी का चांस था, यहीं भविष्य और अवसर थे। उन्होंने जुटकर अपनी पीएचडी खत्म की। और एड हॉक जॉब करने लगे। हमराज पढ़ाने लगा, और शमा एक हेल्थ केयर संस्था के साथ काम करने लगी। दोनों जवान थे, तंदरुस्त, जो नियामत थी। वे इतनी बार यूनिवर्सिटी आए, तमाम पुराने परिचित मिले, पर उनका मिलना नहीं हुआ, उन्होंने कोई कोशिश भी नहीं की, न पूछा भाला। मानो वह बंद अध्याय था। शमा अब एक महिला हॉस्टल में रह रही थी, रिहाइश और व्यवहार के कड़े नियम, मैनेजमेंट की अवांछित तांकझांक, पर यह सहना ही था, वह एक फ्रेंच लड़की के साथ कमरा शेयर कर रही थी, रेचल। रेचल बेहद जिंदादिल और बिंदास थी और शमा को उसे सुनना अच्छा लगता था, फ्रेंच में उसकी गालियां और इकरार, मोहब्बत की तजवीजें। हमराज शहर के अलग कोने में रह रहा था, पुरानी दिल्ली का घना, जीर्ण इलाका। दूसरे फ्लोर की बरसाती थी, और बाहर एक खुला टेरेस जो कभी कभी जन्नत की भ्रामक दिलासा देता। चारों तरफ ऊंची, माचिसनुमा, टूटती सी इमारतें थीं, कुछ के ऊपर वैसे ही टेरेस। जब वह टेरेस पर खड़ा आसपास देखता, किन्हीं ख्यालों में डूबा, उसे अपने जैसे नवयुवक उसी तरह समान टेरेस पर मंडराते दिखाई देते, और हमराज को यह अजीब सा अहसास होता कि वे हूबहू उसके जैसी जिंदगी जी रहे हैं...ऊपर आने की सीढ़ियां तंग, फिसलन भरी थीं, बल्ब अक्सर फ्यूज रहता। मकान मालकिन एक बूढ़ी औरत थी जो ग्राउंड फ्लोर पर रहती थी, और उसके साथ एक औरत रह रही थी जो उसकी लड़की, नाती, मेड, कुछ भी हो सकती थी। पहली मंजिल के दरवाजे पर हमेशा ताला पड़ा रहता, यदा कदा सफाई के लिए वह खुलता। एक बार हमराज ने पहली मंजिल के कमरे में एक अधेड़ आदमी को रहते देखा। वह कोई दो हफ्ते रहा, फिर चला गया। हो सकता है वो मालकिन मकान का भाई या रिश्तेदार था, या असली मालिक, हमराज को लगा। कभी जब हमराज शाम या रात में ऊपर या नीचे आ जा रहा होता, उसे लगता फर्स्ट फ्लोर के कमरे के भीतर कोई सुबक रहा है, पर दरवाजे पर ताला होता। उसके भीतर कंपकंपी छूट जाती, और उसके पैर उखड़ जाते। इस तरह के मलिन रहस्य उसकी चिंता और उलझनें बढ़ा देते, पर कोई चारा नहीं था। जितना किराया वह दे रहा था, कोई दूसरी जगह मिलनी असंभव थी। फिर बूढ़ी औरत और उसके साथ की महिला की अजीब हरकतें भी थीं, जब कभी वे उसे सीढ़ियों पर घेरने में कामयाब हो जातीं, वह एक अलग आफत थी और आसन्न खतरा भी, जिससे वह घबराता, पर एक कुत्सित तरीके से पुलकित भी होता...एक साल इस तरह गुजर गया। फिर आधा साल और बीता, और तब एक सर्द, मटमैली शाम आई, जिसके आने की कोई दस्तक उनके जेहन में नहीं थी।

उस रोज सुबह अचानक बादल उमड़ आए थे, बिजली की चमक और गर्जन, हवा के थपेड़े, और फिर नोकदार फुहार जो रुक रुक कर तीन बार हुईं। सेंट्रल लाइब्रेरी का बूढ़ा सहायक हर किसी से कह रहा था यह एल नीनो का किया धरा है, जिसे शास्त्रों ने प्रलय बताया वही ग्लोबल

वार्मिंग है, देखना एक दिन इसी लाइब्रेरी के फर्श पर गज ऊंचा पानी बह रहा होगा...दोपहर में बूदाबांदी थमी। शाम सर्द और घने बादलों में घिरी, हवा में हल्की धमकी का स्फुरण सा, हर जीव, जीवित के प्रति निंदा की सी ऐंठन, मानो आकाशीय धारा 144 लगी है। यूनिवर्सिटी का पूरा इलाका, विशाल इमारतें, रास्ते, सड़क, बगीचे, खुले मैदान करीबन वीरान थे, इक्के दुक्के लोग, बस। गेट के गार्ड जाने खुशी में या चिड़चिड़ाहट में हाथ मल रहे थे, और प्लास्टिक के कपों में चाय सुड़क रहे थे। हमराज और शमा अभी कैंपस में ही थे, जबकि उनका कोई काम नहीं बचा था, वे काफी समय से खाली थे, जबकि पता था कि अनावश्यक देरी करने से घर के लिए ट्रांसपोर्ट जुटाना एक फजीहत होगी। तो क्या था जो उन्हें लौटने से रोक रहा था? रिहाइश में पसरा विवाद, मायूसी? या क्षण की निष्क्रियता और प्रसुप्ति? या उन्हें कोई इंतजार था? किसका और कैसा...?

वो शाम, उसका हर लम्हा, और लम्हे की तहों में कैद सच के झिलमिल, पारे की तरह अधीर जिन्न, हमराज और शमा को सदा सदा याद रहेंगे। हर क्षण जैसे साफ, अकाट्य है, और दूसरे ही पल धुंधला। उन्होंने अनुभव के दोहराव के परिश्रम से जाना कि यह झूठे सच और सच्चे झूठ का गुण हर उस स्मृति का मर्म है जो सबसे कीमती है, और दिल के सबसे करीब है। बाद में, जब उनकी शादी हुई, और उसके पश्चात बहुत सालों तक वे उस शाम को याद करते, आपस की बातों से उसका खनन करते, अर्थ गुनते, एक दूसरे को भूले का स्मरण दिलाते। और हर बार कोई नया अहसास प्रकट होता, कोई तस्वीर या खयाल, स्वर या क्रमभंग। उनके वृत्तांत में, जाहिर है, भिन्नता होती, पर जैसे उनका प्यार और संग गुजरते सालों के साथ गहरा और परिपक्व हुआ, उन्होंने समझा कि उस शाम के वाक्ये और अनुभव को समेकित या सुसंगत कर उसका एकल, निवारक, प्रमुख पाठ रचना गलत और व्यर्थ है। तब वे उस शाम की, और हासिल प्रेम की थीम, उसके मजमून पर फोकस करने लगे, और तब उन्हें बोध हुआ कि उस रोज के स्मरण के निर्वचन असल में एकल थीम के विचरण हैं। और वह थीम थी नियति। अमर प्रेम की बाशिंदगी का उनका मुकद्दर। थीम का अभिन्न वह बेताल का पुल भी था, जिसके होने की कोई वजह नहीं थी, जिसका कोई इस्तेमाल नहीं था। वह पुल समान को समान से, शून्य को शून्य से जोड़ रहा था। पर उस शाम पुल के अनर्गल उठान के नीचे वर्षा के पानी के चकते बन गए थे, छोटे छोटे गट्टे। उनकी बातें और यादें, जो उनके प्रेम को पुनः उत्प्रेरित और पुष्ट करतीं थीं, उनमें कई मौके होते जब शमा या हमराज को लगता कि उस शाम एक खास डाल पर एक विरल, शोख रंग की चिड़िया थी, पीले पत्तों का अनूठा पैटर्न जो उनके पैरों के आसपास मचला था, उस रोज उन्होंने क्या कपड़े पहने थे इस पर अलग अलग यादें थीं, तुमने उस दिन एक पीली बिंदी माथे पर डाली थी, हमराज ने कहा, उस पहली नजर के रहस्य में तुम्हारी बिंदी नीचे गिर गई थी, मैंने उसे उठाया और तुम्हें दिया, पर तुमने उसे फिर से गिरने दिया, पता नहीं क्यों, वह नीचे बहते पानी में जा गिरी थी, तुम्हें याद नहीं?...नहीं, क्योंकि उस रोज तक मैंने कभी बिंदी नहीं लगाई थी, आज की बात और है, क्योंकि तुम्हें मेरा बिंदी लगाना अच्छा लगता है, बच्चों को भी...शमा ने एक बार हमराज से कहा कि उस शाम तुम्हारी जेबें इतनी भरी थीं और लटक रहीं थीं, मुझे लगा अभी इनमें से गिलहरी बाहर झांकेगी या खरगोश का बच्चा, गॉड प्रॉमिस। ये कैसे हो सकता है, उन दिनों मेरे पास न बटुआ था न रुमाल, जब हमेशा खाली होती थी...हो सकता है तुम ठीक हो, पर उस रोज मैंने देखा कि तुम्हारे होंठ की किनारियों पर तंबाकू की काली लकीरें बन गई हैं, अच्छा तो ये बंदा सिगरेट भी पीने लगा है, मैंने सोचा, यह सोचना मुझे न जाने क्यों अच्छा लगा...हां, बिहार में मुझे तंबाकू की आदत सी पड़ गई थी, सस्ती सिगरेट या बीड़ी, पर पान नहीं, मुझे हमेशा शर्म सी लगती कि मेरे मैले कपड़ों से तंबाकू की बास आती है, पर अपने खुद के बगैर नहाए शरीर की बू से

ये बेहतर था, नहीं?...ऐसी बात नहीं, तुम्हारे जिस्म की खुशबू हमेशा प्यारी थी, तुम मैले और न नहाए होते तो भी, जब मैंने तुम्हारी अच्छाइयों की उस साल लिस्ट बनाई, पहले साल के बाद वाला साल, शमा ने साफ किया, दोनों एक क्षण के लिए ठगे से दिखे मानो कुछ खराब निगला है, तो तुम्हारी अच्छी गंध लिस्ट की पहली एंट्री थी, सच में।...और कितनी एंट्री थी तुम्हारी लिस्ट में? कितनी बार तो उगलवा चुके हो मुझसे, पता तुम्हें सब है, पर शुरू तो एक एंट्री से ही हुआ था। इसका मतलब उस साल के पिछले साल के मेरे सेक्स करतबों का तुम पर कोई असर नहीं हुआ था, हमराज ने कोंचा, इस पर शमा स्तब्ध सी रह गई थी, यह वर्जना का इलाका था, हमराज भी जानता था, उसने बात बदल दी...इस तरह वे ढेर बातें करते नहीं थकते, और कभी उन्हें यह सोचकर चुभन सी होती कि इन विचरणों का अकेला साक्षी, वह पुल भी अब नहीं बचा, किसी साल वह गिर गया या गिरा दिया गया, हर नया वाइस चांसलर आता तो अपने हिसाब से सुंदरीकरण का नया राग छेड़ता।...पर नियति के अधीन अभी एक और बार उनका पुल पर मिलना रह गया था, वह तीसरी बार होगा, और तब जाकर उनके अमर प्रेम की राह में कोई अवरोध नहीं बचेगा।

...सर्द शाम की आभा अभी बनी हुई थी। एक स्थिर पोज की तरह। पर जैसे ही अंधेरा सांस लेगा, रोशनी द्रुत गति से गिरेगी। शमा ने पुल पर चलते हुए आकाश की तरफ नहीं देखा। वह नाखून कतर रही थी, उसके मस्तिष्क में रेचल के शब्द खेल रहे थे : हंसी के बारे में सबसे उम्दा यह है कि उसे खरीदने की दरकार नहीं। जितनी चाहो खुद बना लो। तुम्हारे हाथ में है, सिर्फ तुम्हारे। जीसस की गिफ्ट। यही चीज खुशी के साथ है। तो माजरा ये है कि ज्यादा हंसना चाहिए, और ज्यादा खुश रहना चाहिए, बताओ अपने बाप का क्या जाता है। जितना तू हंसेगी उतने ही ज्यादा बॉयफ्रेंड होंगे, रेचल ने कहा और ओर ओर हंसने लगी। खुले गले, खुले अहसास की बेधड़क हंसी। शमा का मन किया था उसके रेशम गाल चूम ले, रेचल उसकी टेक, उसका भरोसा है।...हमराज भी अपने में डूबा चल रहा था। उसे आभास नहीं था कि खुले की विशालता में गेट गार्ड के अलावा बस वे ही बचे थे, और गार्ड भी लकड़ी के केबिन में दुबके थे। वह शायद उस वक्त अपने इन दिनों के प्रिय विचार की जुगाली कर रहा था : दिल्ली में व्याप्त विभिन्न असमानताओं के समेकित मैप का डिजाइन। और हर प्रकार की विषमता : आय, जेंडर, जाति, अभिगम, शिक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य, अवसरचना, ट्रांसपोर्ट, घर, मूलभूत सुविधाएं वगैरह। सुनने में सरल लगता है पर है नहीं। संप्रेषण और प्रेजेंटेशन के तमाम सवाल। उसे कहां से शुरू करना चाहिए यह अहम प्रश्न था। पहले यह समझना होगा कि इस तरह के मैप दुनिया में किस तरह डिजाइन हुए हैं। बुनियादी सिद्धांत हैं तो वो क्या हैं। मौलिक सोच जरूरी है, उसने अपने को उकेरा। एक रात उसने आईने में खुद को देखा और कहा : मैं गरीब हो सकता हूं, पर मैं ओरिजिनल हूं।...दोनों पुल के विपरीत किनारों पर पहुंच गए थे, उनके बीच करीब पंद्रह मीटर की सीधी रेखा थी, और उन्हें दूसरे का आभास नहीं था। ऊपर से कुछ बूंदें गिरीं। बारिश? उन्होंने आकाश की ओर ताका, जब सिर नीचे आए तो दोनों के बीच इंच भर की दूरी थी। वे धम से रुके, टकराते टकराते बचे। ओ, सॉरी, वैरी सॉरी। बाल बाल बचने की त्वरित प्रतिक्रिया। भीतर जो सांस अचानक थम गई थी, दीर्घ से निकली। पार होने के लिए दोनों एक साथ हिले, खिसके। पहले बायें, फिर दायें। एक ही दिशा में, मानो नृत्य के स्टेप्स, आमने सामने सटे से, तब पार कैसे होते? खामोश मजाक सा बन गया यह, तनाव से मुक्ति महसूस हुई, इतना सब हो रहा था, तब जाकर आकाश खुलने की तरह पहचान ने अपना अहसास फैला दिया। किसी उन्मत्त बादल का पैना गर्जन। दोनों के भीतर बेवश कंपकंपी छूटी। दूसरी तरह भी आकाश फटा और तेज, बावली बारिश होने लगी। हमराज और शमा दुगने भ्रमित हो गए : पहचान और वर्षा। इसके बारे में थोड़ा संदेह है कि पहले

क्या हुआ : छतरी का आना या शब्द का फूटना। पर इस संशय से वस्तुस्थिति या तात्पर्य नहीं बदलता, सिर्फ सौंदर्यशास्त्र की तरतीब तब्दील होती है।...बारिश और तेज हो गई है। और अचानक दृश्यपटल पर एक काली आवारा छतरी उछाल ले रही है। हवा का एक तीव्र झोंका और एक कूद में छतरी उनके पैरों के पास आ गई। हमराज झुका, उसने छतरी उठाई, निसर्ग की सौगात, और उसे अपने सिर पर तान लिया। वह आगे सरका, शमा भी थोड़ा आगे बढ़ी, और अब दोनों छतरी के नीचे थे। स्पर्श नहीं था पर बहुत नजदीक, बौछार की मार, पर चेहरे और सिर महफूज थे। उनके चारों ओर गिरते पानी की सिलिंडरी परत बन गई है, शाम की भुरभुराती आभा में वह झिलमिला रही है। इस जगमग के घेरे में वे अजीब तरह से आजाद हो गए हैं। उनकी अचेतना की किसी गहरी खोह में उन्हें यह अहसास या तमन्ना है कि कुछ अनन्य, कीमती और पावन घट रहा है। उनके दिल तेजी से धड़क रहे हैं, कंठ और आंतों की संकरी नालियों में गांठें बन रही हैं, घुल रही हैं, उनके अज्ञात मोहब्बत के न्यूरॉन को पर लग गए हैं, इश्क की मर्जी अब कायनात और रब की मर्जी के हवाले है, उनके भीतर एक बांध फूटा है, आपस की जिस्मी पहचान से वे मानो अवमुक्त और खाली हो गए हैं, उस शून्य में वह भर रहा है जो अघटित है मगर अभीष्ट, अव्यक्त उद्गार, अनछुई राहें, दबी उत्कंठाएं, त्यक्त जज्बे...उन्होंने मानो पुनर्जन्म लिया है, और चमत्कार की तरह वे फिर से अछुए और अक्षत हैं। वे एक दूसरे को जैसे पहली बार देख रहे हैं, वह चेहरा, जिस्म और जान जिसे वे ख्वाब में तब से देख रहे थे जब उन्होंने पहला ख्वाब देखा था। उन क्षणों में दो बेप्यार के खदानियों ने प्रेम का अनूठा रत्न हासिल किया, अपने अंतस के गुम, गंवाए हिस्सों के अतल को उन्होंने खोदा। इस न्यारे, जानलेवा जतन की राख से वे उभरे, और अंततः उनकी साझा मुट्ठी में प्यार का एकल, अप्रतिम मणि था, उनकी भयभीत, प्यादा स्मृतियों का वही कंकड़ जो असमय से उनकी भ्रमित अनुभूतियों के सरोवर के तल में अक्रिय था, और जो जागृत इश्क के ताप से परिणत हो गया था।

और अभी तक वे मूक, खामोश थे। शायद उन पहले शब्दों का खौफ जो प्यार के इस अनूठे आविष्कार के सर्जक होंगे।

वह काला छाता, उसके चिथड़े हो चुके हैं, वह आज भी उनके पास है, बेशकीमती अमानत, उनके शयन के नीचे, कभी वक्त होता है, जादुई और बावला, जब वे छाता बाहर निकालते हैं, हमेशा हमराज उसे खोलता है, शमा धड़कते एहतियात से छाते के नीचे आ जाती है, बेडरूम में बारिश नहीं हो रही, पर वे आईने में खुद को निहारने के लिए बाध्य हैं, विन्यास और मुद्रा की हल्की रद्दोबदल, अब उनकी तर्ज ए अदा उस तस्वीर से मेल खा रही है जो शयन के सामने वाली दीवार पर है : तेज बारिश में काले छाते के नीचे राज कपूर और नर्गिस, फिल्म श्री 420, और किन्हीं आवेशित क्षणों में वे करोके मशीन के साथ वह अदम्य गाना गाते...*प्यार हुआ, इकरार हुआ है, प्यार से फिर क्यों डरता है दिल...*बच्चों ने यह दृश्य कई बार गुपचुप से देखा, इस अजीब लीला से वे हैरान हुए थे, और उनका निर्दोष कैशोर्य इस नतीजे पर पहुंचा कि सभी शादीशुदा एक उम्र के बाद कुछेक ऐसी अजब आदत पाल लेते हैं जिनका कोई सीधा हिसाब नहीं, और जिसके बारे में कुछ न ही कहा जाए तो बेहतर है।

उस शाम, बेताल के पुल की शाम, हमराज और शमा के बीच प्यार का कोई जिक्र नहीं हुआ। जबकि निसर्ग की हर शोभा और संयोग प्रेम का उपहार था। सब कुछ अचानक हुआ और गडमड भटकाव सा। बातें जरूर हुईं, विनम्र पूछताछ कि आप कैसे हैं, क्या हो रहा है, जिदगी कैसे चल रही है, और ये कि मिलकर बहुत खुशी हुई, उनके बीते में पुल की अहम भूमिका का कोई जिक्र नहीं हुआ, हो सकता है अनायास मुलाकात का आश्चर्य और छाते के नीचे एक साथ सटने

की नाटकीयता से वे इतने स्तब्ध थे कि पुल से जुड़े निजी अतीत का खयाल तब आया ही नहीं, पर बाद में जब रात बीत रही थी, और वे प्रेम के मोहपाश में बंधते जा रहे थे, उन्हें पुल पर घटी चुंबन की मुठभेड़ का जरूर इल्म हुआ, पर इस अहसास को, और उसके बाद के एक फूहड़ साल की सेक्स अंधता के असल को उन्होंने जबरन दबा दिया, विस्मृति का एहतियाती कदम, प्यार अपने पहले अंकुर में पाकीजगी और अक्षत भाव का कायल है, उसे अशुद्ध बर्दाश्त नहीं, भरसक उनकी ख्वाइश हर खता और दाग से बरी होने की थी, और क्यों नहीं...कुछ देर बाद जब आकुल अनुभूतियों का ज्वर थमा, सामान्यता लौटी, वे अशक्त से नाजुक कदमों से पुल से उतरे और चलने लगे, चाहना की असंख्य पंख चुभन से मानो छलनी, आरक्त चेहरे, हमराज शमा के साथ ऑटो स्टैंड तक आया, इंतजार किया जब तक ऑटो नहीं मिला, फिर उसने छाता बंद किया, बारिश काफी पहले थम गई थी, उन्होंने टेलीफोन नंबर एक्सचेंज किए, और फिर से मिलने के लिए दिन, समय और जगह मुकर्र की। क्या ये नया रेस्टोरेंट है? हमराज ने पूछा। मैं तुम्हें रास्ता बता दूंगी, शमा ने हौले से कहा, रेस्टोरेंट नहीं लाउंज बार है, अच्छा है, उसने फिर बताया कि हॉस्टल का टेलीफोन ग्राउंड फ्लोर पर रिसेप्शन के बगल में है, प्राइवैसी नहीं है, उसने न जाने क्या सोचकर जोड़ा कि नीचे आने में काफी वक्त लग जाता है, उसका कमरा तीसरी मंजिल पर है, वो भी आखिर में जाकर, लंबी वॉक है, बाहर सड़क से इमारत माचिस सी लगती है, तुम कल्पना नहीं कर सकते अंदर साठ कमरे हैं, हर रूम में दो या तीन लड़कियां, भेड़ बकरियों की तरह, अलग से एक डोरमिटरी भी है, शमा उंगलियां चलाकर मानो हॉस्टल का ले आउट बना रही थी, हमराज जैसे उन उंगलियों के मुद्राकोष में मदहोश हो रहा था...उस छोटे से एरिया में करीबन हम 200 लड़कियां हैं, देश विदेश से, वर्किंग गर्ल्स, जैसे कोई मंडी लगी है, शमा कहना चाह रही थी, पर होंठ के छल से जो शब्द निकला उससे आभास रंडी का हुआ, वह एकदम से सकपका गई, उसने देखा हमराज उसे अजीब, प्रमत्त तरीके से एकटक निहार रहा है, क्या साफ जाहिर नहीं था कि वह उस पर मर मिटा है, या मर मिटने को लालायित है, पर विचित्र यह था कि उसकी प्रेमांध नजर में फतह और भुक्ति का वह भाव नहीं था जो तब होता है जब लड़की के साथ तुम सो चुके हो, एक नहीं सैंकड़ों बार, मानो शमा उसके लिए बिल्कुल अलैदा लड़की है, मानो एक नई नूतन शमा जली है, शमा का खुद का अहसास भी कुछ इसी तरह का अनोखा था, उसे भ्रम सा लगा, दिल बेचैन सा कच्चा हो रहा था, भावनाओं और खयाल में कोहराम सा मचा था, आखिर में वे अपने अपने घर निकल गए थे, खुश और संतुष्ट कि तीन दिन में फिर मिलना है, जेहन में कुछ अनमोल समा गया था, लगा उन्हें कुछ ऐसा हासिल हो रहा है जो किसी अन्य के पास नहीं, उनके साथ कुछ अलौकिक घटा है, ऐसा उन्होंने अलग अलग महसूस किया।

उनके जज्बात के आवेग में एक अपूर्व बात थी जिसका अहसास उन्हें बाद में बिछौने के एकांत में हुआ : जो भी था, जो इश्क जैसा था, वह हमराज ने शमा की आंखों की झील में देखा, यह स्पर्श की तरह महसूस किया कि शमा उसे प्यार करती है। वही जज्बा शमा ने हमराज के होंठ के स्पंदन में पढ़ा। पर अभी तक अहसास के जलभ्रम को उन्होंने इस तरह नहीं पढ़ा था : कि हमराज की चेतना कहे वह शमा से प्रेम करता है। और शमा दिल में माने उसे हमराज से इश्क हो गया है। प्रीत का गुण और वजन अभी दूसरे का मुकाम और मसला था।

दास्तान इस तरह आगे बढ़ी कि शमा और हमराज अगले तीन दिन, मुलाकात के मुकर्र वक्त तक, सुन्न और व्याकुल थे। उनके जज्बाती घन का केंद्र ऊपर की तरफ सरक गया था, लिहाजा वे डावांडोल और अनिश्चित से थे। जब वे चलते, उन्हें लगता जैसे वे खुद के मुकाबले दो कदम आगे हैं या दो कदम पीछे। जिस तरह वे सांस लेते, उसमें भी कुछ परकीय और अलग

था। उनका मस्तिष्क मानो किसी भूलभुलैया में अटक गया था। संशय के पसरे धुंधलके में हमराज यह पूछता लगता : क्या वह मुझे प्यार करती है? हां, करती है...क्या नहीं करती? यही पशोपेश शमा की थी : मैंने उसकी आंखों में प्यार की झलक देखी है। नहीं देखी? हां, देखी है...इजहार या इकरार का क्षितिज अलोप था। शायद वे किसी मानसिक तैयारी में जुटे थे। हो सकता है अगली मुलाकात सार्थक हो?

पर उस आगामी क्षण को यथार्थ का आश्रय पाने में एक साल आठ महीने का वक्त शेष था, जब वे निर्बाध लवर्स होंगे।

पर वह कौन सा सटीक क्षण था जब उन्हें दिलोजान की अजीम मोहब्बत का पहला अहसास हुआ? क्या दोनों के लिए एक ही खास क्षण था, या दो अलग अलग पल? या भोर के धीमे से जगने की तरह एक लंबित अहसास?...उषा प्यार का तसव्वुर है, उसका संज्ञान एक अलैदा क्षण।

आगे के सालों में ये सवाल बार बार हमराज और शमा के सामने आए, और बातों के जरिए उनके खयाल बदलते रहे। ऐसा नहीं था कि वे कोई अंतिम राय या जवाब पाना चाहते थे, उन्हें बस इस तरह की अंतरंग, अगम्य स्मृतियों से खेलने, उन्हें उकेरने में अपूर्व सुख मिलता था, प्रेम का पुनः पुनः स्पर्श और खनन। उनका पहली नजर का प्यार तो नहीं था। नहीं था, यह सही है, पर उन क्षणों ने हमें तैयार किया था, हमराज ने साहस जुटाते हुए कहा। शमा ने तब अपना सिर हिला दिया। उन्होंने हमेशा यह मानना चाहा कि जब दूसरी बार पुल पर उनकी आंखें चार हुईं, तब उन्हें प्यार हो गया। एक साथ, हमेशा का। पर दूसरी बार क्यों? या शायद बाद में, जबरन जुदाई या वर्जना के गर्दिशी अंधड़ की बनती आंख की तरह? क्या प्यार का चरित्र और आकार तूफान की आंख की तरह होता है? तब वे तूफान या चक्रवात की आंख को जानने के लिए मजबूर हुए। अमर प्रेम ही है जो तूफान की आंख में इशिक्यों को पहुंचाता है...यह आंख, हमराज और शमा ने पढ़ा, तेज चक्रवात के केंद्र में शांत मौसम का करीब 30 से 65 किलोमीटर के व्यास का गोल घेरा है। इसमें मंद हवाएं और साफ आसमान है, चारों ओर प्रचंड तूफान की अंगूठीनुमा दीवार..इस आंख के अनेक रूप और आकार हैं, अंडाकार से लेकर बेढब, आंख की नजर में तूफान की शक्ति का भेद है...इस तरह उनकी बातें होतीं और प्रेम की नब्ज के जरिए वे न जाने किन किन विषय और मसूबों में मुग्ध से डूब जाते।

फिर यह तो तयशुदा था कि शेक्सपियर के मशहूर नाटक, रोमियो और जूलिएट, के पठन वाचन में उन्होंने खुद यह तलाशने का बीड़ा उठाया कि उनकी पाक मोहब्बत का पहला क्षण कौन सा था। और इस तरह अमर प्रेम की इस कृति का हर शब्द और पंक्ति हमराज और शमा की शिराओं में बहने लगी।

अपरिहार्य था कि उनका पुल रोमियो और जूलिएट की अमर गाथा की बालकनी बन गया।

रोमियो और जूलिएट का तो पहली नजर का प्रेम था, है न, शमा ने नाटक के अनुवाद के पन्ने पलटते हुए कहा। नहीं, हमराज की आंखें चमकीं, जूलिएट से पहले एक और लड़की का अक्स था रोमियो के जेहन में, जब वह कह उठा, हमराज ने पढ़ा : *प्यार आहों की आग से उठता धुंआ है; निर्मल होकर वह महबूब की आंख की जगमग आंच है; व्यथित होकर वह प्रेमी के आंसुओं का सींचा दरिया है; इसके अलावा क्या है प्यार? मुस्तैद दीवानगी, दमघोंट द्वेष, सरपरस्त मिठास...*।

नृत्य के जश्न में रोमियो ने पहली बार जूलिएट को देखा, और वह बोल उठा : *उसका रूप रात का शोख नजरिया है, मशालें उसके हुस्न की कायल चंद्रबदन...जाने दे, निगाह मेरी, क्या मेरे दिल ने अब तक प्यार जाना है? इस रात के पहले सादिक हुस्न कहां देखा पहचाना है।* शमा का दिल न जाने किस सदी का संगीत सुन रहा था। उस क्षण रोमियो जूलिएट से प्यार करने लगा।

और जूलिएट प्यार में सब कुछ खो बैठी है, और कह रही है : मेरा अकेला प्यार मेरी अकेली नफरत का जन्मा है; बहुत जल्दी अज्ञात देख लिया, बहुत देर से ज्ञात जाना; नादिर है ये इश्क मेरा, कि दुश्मने जां से प्यार कर बैठी।

रोमियो और जूलिएट की वह अनुदित किताब, जो हमेशा उनके बिस्तर के आसपास रहती, वह कालांतर में हमारे लवर्स का संकेत दीप, एक जादुई ताबीज बन गई, उनके इश्क का निगहबान, आसरा जो उनकी वफा को, और अमर प्रेम की आरजू और वायदे को मजबूत करता था। संशय और गुमान के दैत्य, और प्यार के स्पंदन की कमतरी, उन्हें पराजित करना हमेशा एक मुश्किल चुनौती थी, इस प्रयास में वे बार बार दस्तूर की तरह इस किताब की पुरजोर लीला पर लौटते। पहले साल के बेहूदा उन्माद को अपनी प्रेमकथा में निगमित करने के लिए वे नाटक के एक खास अंश को अंशतः अभिनीत करते। नृत्य के जश्न के दौरान रोमियो और जूलिएट के पहले चुंबन की राह बनाता संवाद। यह आखेट मानो शमा और हमराज का अपना हो गया, और यह उनकी भी जीत थी कि संलाप में तीर्थ और गुनाहगारी का समावेश था।

हमराज की कभी अनिच्छा होती, पर शमा की जिद पर उसने वह लाइन बोली जो उसे कंठस्थ थी : अगर कलुषित किया है इस पवित्र स्थल को मेरे अपात्र हाथ ने, तो मेरा विनीत दंड ये है : मेरे लव, तीर्थ के दो लज्जारुण पथिक, बेअदबी के स्पर्श को निवेदित चुंबन से सहेजने को तैयार हैं। प्रेम का उत्कट संवेग बहने लगा, और शमा कह उठी : सज्जन पथिक, तुम अपने हाथ को नाहक दोष दे रहे हो, श्रद्धा का स्पर्श है ये, क्योंकि मुनिजन के भी हाथ हैं जो पथिक छूते हैं, और हाथ से हाथ जोड़ना अर्चना का चुंबन है।

क्या संत के होंठ नहीं होते, या पुण्यात्मा के?...हां, तीर्थ के मुसाफिर, होंठ जो इबादत के लिए हैं!...तब, प्रिय तपस्विनी, होंठ को वह करने दो जो हाथ करते हैं, वे दुआ मांग रहे हैं तुम उन्हें चूम लो, कहीं लगन विषाद न बन जाए...तपस्वी नहीं हटते जब वे दुआ कबूलते हैं...तब स्थिर प्राण, मैं तुमसे अपनी दुआ पा रहा हूँ। हमराज ने शमा को चूम लिया, जैसे आग जल उठी...तुम्हारे होंठ ने मेरे लबों का गुनाह पी लिया है...तब क्या मेरे लबों पर तुमसे पाया गुनाह शेष है?...मेरे होंठ से मिला गुनाह? ओ खता की मधुर गुहार! मुझे मेरा गुनाह वापस दो...होंठ से होंठ न भी मिले थे, पर शमा को कहना पड़ा कि हर किताब तुम्हारे चुंबन की मोहताज है!

प्यार के असीम व्यास में वे तब तर जाते।

पर हमेशा उल्लास और रतिधुन का पाठ नहीं था रोमियो और जूलिएट। उनके विनिमय में कभी उदासी और संदेह के रेशे भी होते, कि हिंसक खुशियों का हिंसक अंत होता है, प्रेमियों की विजय ही उनकी मृत्यु है, जैसे आग और बारूद, स्पर्श ही उनका भस्म होना है...पर उन्हें पता था कि चिंता और अफसोस का फलक उनके प्यार को गहरा करता है। इस सब का क्या अर्थ है, वे मसोसते, यह प्रेम और अमरता का विराट खयाल, कि इस अमूर्त तप की खातिर प्रेमियों को जान देनी पड़ती है?...ताकि हम, उन्हें तब लगता, कुछ कमतर प्रेम के साथ जिंदा रह सकें, और प्यार के अमरत्व का भरोसा सदी दर सदी बना रहे। उन्हें बखूब और हमेशा याद था, माथे की शिकनें इस बात की गवाह हैं, कि रोमियो और जूलिएट का प्यार इसलिए अमर है क्योंकि उनकी मौत तो सदा से नियत थी, जो उनकी मोहब्बत थी वह परिवारों की जानी दुश्मनी से संवरी और विभूषित थी। इस अंदाज और होनहारी के मद्देनजर वे रचना के प्रारंभ पर गए और एक बार फिर कोरस के एहतियाती इशारों की खोज की, इस बार के पाठ में स्तुति और फरियाद का पुट था।

...ये किस्सा वहां का है सुंदर वरोना है जहां;

दो परिवार, दोनों भले, पुश्तैनी नफरत को हिंसा का नया अंजाम है मिला जहां;

भले खून में भले हाथ हैं रंग गए जहां;
 अभागी थी संतानें, कि शत्रुओं की थीं,
 कि मोहब्बत थी, और मोहब्बत के लिए हुए फना जहां;
 महबूब दफन हुए, उनके साथ पुश्तों की नफरत हुई दफन जहां;
 तो है ये अफसाना उस मोहब्बत का,
 जिसने खुद को कर खत्म नफरत को खत्म किया...

खुद खत्म हुए, नफरत खत्म हुई, पर मोहब्बत जिंदा रही, हमराज और शमा की खामोशी कह रही थी। उन्हें हमेशा अधूरा और भय सा लगता कि उनके अपने प्यार का कोरस इतना अल्प और गैर बयानी है। मात्र स्पेस टाइम की विरक्त, निष्ठुर आंख की अबूझ कारस्तानी। जिस आतंक और शक्ति ने उन्हें जुदा किया, उसके सामने परिवारों की शत्रुता कुछ भी नहीं थी। अपने उम्दा क्षणों में हमारे लवर्स को भरोसा रहता कि उनकी मोहब्बत का जौहर नक्षत्रीय है। और हम उनके विश्वास से बहस करने वाले कौन होते हैं, जब हमने अपनी आंखों से उनके पाकीजा इश्क को उम्र के साथ प्रौढ़ होते और उत्कर्ष को लांघते देखा है।

तीन दिन इंतजार की खुशबुओं की पैमाइश में निकल गए, पता खूब चला, मगर एक तैरते ख्वाब की तरह। जैसे शमा ने बतलाया था, मुलाकात की सुबह वह सीढ़ियों से दबे पांव उतरकर एसटीडी बूथ पहुंचा, जो उसके घर से करीब सौ कदम की दूरी पर था, बगल में एक डेरी थी जिसके मुहाने पर हलवाई एक विशाल कढ़ाई में दूध काढ़ रहा था, बूथ खाली था, हमराज ने शमा को फोन मिलाया। उसे गार्ड की बदतहजीब आवाज पर आश्चर्य नहीं हुआ, और न ही इस पर कि शमा को फोन पर पहुंचने में काफी वक्त लगा, उसने वक्त की मुट्ठी बंद कर ली थी, हमें मोबाइल लेने होंगे, उसे खयाल आया। पर शमा की आवाज सुनते ही जिस तरह उसका हृदय उछला, उसके लिए वह तैयार नहीं था। हलो...इस शब्द की बेमिसाली में उसने अकस्मात बहुत से अबूझ का जैसे भेद जान लिया...

ज्यादातर शमा बोलती रही, उसने लाउंज बार का रास्ता समझाया, हमराज अपनी हां हूं कर रहा था, वह जल्दी में बोल रही थी, हमराज को उसकी सांस की रफ्तार सुनाई दे रही थी, सो जो भी वह कह रही थी वह मानो उन्मादी सिफारिश की तरह था, एक खुलता रहस्य, या आतुर फरियाद, उसके शब्द भी जैसे पीठ पीछे देख रहे थे, वह पहली बार शमा की आवाज विद्युत के मार्फत सुन रहा था, भरा भर्राया कंठ, स्वर के तान और फेंक की पुरजोर कशिश...हमराज जैसे अपने बचपन के गांव के पकते, स्वर्ण गेहूं के खेतों में खो गया था...क्या वह शमा की आवाज के दुलार में गुम था, या उसकी हिदायतों को सुन भी रहा था, हां, उसने हर बार कहा, जब शमा ने पूछा ओके, शमा ने लैंडमार्क का हवाला दिया, पीली दीवार की इनश्योरेंस इमारत, हमराज को इस भवन का पता था, हां, मैंने देखी है, उसने कहा, फिर ठीक है, क्योंकि इसके बाद आसान है, एक किलोमीटर का रास्ता, पहला लेफ्ट, दूसरा लेफ्ट, फिर राइट, फिर राइट अगेन, और लाउंज बार सड़क के दूसरी तरफ है, ऊंचा निओन साइन है, बार का नाम, 'टीजीके'...फिर शमा की आवाज धीमी हो गई थी, फोन पर बहुत स्टैटिक था, शब्द कट रहे थे, तब शमा ने जल्दी से कहा ओके, सी यू दैन, येस? सी यू, बाय, जो वक्त मिलने का मुकर्रर किया था वह था शाम के 6:40, बार में हैप्पी आवर्स सात बजे से शुरू होते थे, शहर के अधिसंख्य जवान जोड़ों का मिलने या डेट का वक्त यही होता था : हैप्पी आवर्स।

कैसे बोलने लगी है, लगातार, बेबाक, सात सुरों की मल्लिका! हमराज ने सोचा। उसके

भीतर हैरत की गुदगुदी थी, बियर पीने के बाद ओपेरा की तर्ज पर गाने न लगे, हमराज ने धुले कपड़े पहनते हुए मानो खुद को उकसाया, जूते डाले, डिओडरेंट का उदार स्प्रे, आईने की सम्मति, चोर की तरह मकान मालकिन के भयानक चंगुल से बचता हुआ वह नीचे उतरा, उसे दो बसों बदलनी पड़ीं, जिस स्टॉप पर वह उतरा वहां से बीमा भवन की इमारत करीब सौ गज की दूरी पर थी, बस में उतने लोग नहीं थे, या हमराज भीड़ की आपाधापी से अनभिज्ञ था, उसे विंडो सीट मिल गई थी, अच्छी हवा थी, उसके बाल झूल रहे थे, फिर उसके जज्बात भी भटकने लगे, शमा उसके खयालों में छाई थी, उसे लगा हजार हाथ उसके बाल सहला रहे हैं, हाथ एक हजार शमा के हैं...फोन पर उसकी आवाज की जादुई नजदीकी, कान में फुसफुसाने की तरह, स्वर का ठहराव और भरोसा, हलचल और ऊर्जा...फिर दिल्ली की क्या अदा, उसी ने तो कहा था कि 'टीजीके' का फुल फॉर्म कोई नहीं जानता, पर जवान दिलों में...रियली मेरी अभी हिम्मत नहीं कि उसकी आंखों में आंख डालूं और कहूं, जवां दिल...जवान दिलों में यह एका है कि 'टीजीके' मतलब टोटल ग्रेट किस...बल्कि रेचल बता रही थी...रेचल, कौन रेचल?...वो बता रही थी कि बार की लंबाई में एक ढका स्ववेयर एन्क्लोजर है, काले परदे, जैसे स्टेज सेट्स में होते हैं, जहां रसिक या उतावले कपल्स ब्रेक ले सकते हैं, इट इज बाकायदा परमिटिड, वहां जाकर कपल्स अपने हिसाब की किस कर सकते हैं, पर एक मिनट, उससे ज्यादा नहीं, अगर एक मिनट से ज्यादा होता है तो पीप पीप की सीटी बजने लगती है, पर कोई भी ये रूल ब्रेक नहीं करते, ये तरीका काफी ठीक और सभ्य है, कोई दुराव छिपाव नहीं, पर अब आगे की जनरेशन तो इन मामलों में निर्लज्ज सी हो गई है, पर छुपने से बेहतर निर्लज्ज होना है...इतना कुछ शमा फोन पर जैसे एक सांस में बोल गई थी। मेरी तो सांस ही मानो अटक गई थी, हमराज ने याद किया। अचानक हमराज के मन में शंका का एक नुकीला कंकड़ गिरा, क्या बार लाउंज का नाम 'टीजीके' है या 'टीजीएल', टीजीएल का फुल फॉर्म जवान दिलों में टोटल ग्रेट लव होना चाहिए, शमा ने चुंबन का जिक्र किया था या लव का?...इस बीच हमराज का स्टॉप आ गया था और वह जल्दी से नीचे उतरा, और मिचती आंखों से अपनी दिशा और रुख सहेजने लगा। एकाएक दिशाभ्रम के बादलों ने उसे घेर लिया, उसका वजूद मानो पिघलने लगा। यह रोजमर्रा की वह परिचित स्पेस नहीं थी जिसे वह इतने लगाव से तमाम तरह के नक्शों में जुटाता था। अब किधर जाना है, उसने डूबते, शकित मन से सोचा।

उधर शमा सुबह जल्दी उठ गई थी, पहली नजर एक कौए पर पड़ी जो खिड़की की चौखट पर बैठा था। दो बार कांव कांव करने के बाद वह उड़ गया। शमा बीच में एक बार बाहर गई, कुछ दवाइयां खरीदीं और एक ब्रेड, फिर दोपहर में जच्चा बच्चा अस्पताल के डाटा को टेबुलेट करती रही। ऑटो में रेचल उसके साथ थी, वह आधे रास्ते में उतर गई। तुम लोग कौए को कैसा मानते हो? शमा ने रेचल के कान में चीखते हुए पूछा। रेचल मुस्कराई, जैसे जगमग प्रकाश। मुझे क्रोज कम पसंद हैं। कभी वो मुझे ज्यादा पसंद आते हैं, उसने फिर फ्रेंच में कहा। क्या फ्रांस में सुबह क्रो को देखना अशुभ माना जाता है, शमा ने टूटी फ्रेंच में पूछा। पता नहीं, क्रो बहुत बुद्धिमान होता है, मेरे खयाल से वो वहमी नहीं होता...एन्जॉय योरसेल्फ, रेचल ने कहा, और जिसे प्यार करती हो, चाहे जीव, अजीव, असुर, इंसान, उसे प्यार करने में हिचकना फूलिश है, सो जस्ट डू इट, रेचल ने मुग्ध अदा से मुट्टी चला दी। शमा टीजीके के बाहर इंतजार करने लगी, बोर्ड के ठीक नीचे। मिनट गुजरे, फिर आधा घंटा, कई बार वह सड़क के किनारे तक गई, दोनों तरफ देखा, फिर गलियारे के दोनों तरफ पचास गज तक गई, लौटी। हमराज का कोई नामो निशान नहीं था। अगर मगर ने अपने डैने फैलाने शुरू किए, कहीं भूल तो नहीं गया, जगह, दिन या समय या रास्ता बस, ऑटो खराब हो गया हो, एक्सीडेंट, हे भगवान...तबियत खराब तो नहीं हो गई अचानक...ऐसा

तो नहीं कि उसका इरादा ऐसे ही था, ही वॉज नॉट सीरियस? मजाक था, झूठा वायदा, उसे बेवकूफ बनाने का कुत्सित खयाल, किसी घृणा की साजिश? क्या वह असल में उसे पसंद करता है, जैसा वह सोच रही है? वह यकीन चाह रही थी, हर संशय का निराकरण, वह पूरी शक्ति से उसकी मौजूदगी चाह रही थी। फिक्र और बेताबी को सहेजना जरूरी था। वह बार के भीतर गई, दो जन के एक टेबिल पर बैठी, और दो छोटी बियर ऑर्डर की, मानो इस फैसलाकुन कदम से हमराज आप ही आप अवतरित हो जाएगा। मेरा दोस्त अभी आ रहा है, उसने वेटर से कहा और हॉठ दबाने लगी। मेरे हमराज, कहां हो तुम...मेरा मान नहीं रखोगे? मुझे प्यार नहीं करते...उसका कातर मन बुदबुदा रहा था।

थोड़ी देर में बियर की खुमारी चढ़ने लगी। नशे का आग्रह, उसका माथा तैर रहा था। इसके पहले उसने सिर्फ एक बार बियर पी थी, जब रेचल एक रोज वाइन की जगह बियर लेकर आई। पूरी रात वे बातें करते रहे। रेचल ने अपने अफेयर्स के बारे में खूब रस लेकर बताया, मानो देश विदेश की कुजीन के फर्क जतला रही है। हर डिटेल के बारे में बिंदास, खुली। जब नंगे सोते हैं, तो बताने में भी तो नंगा होना पड़ेगा, नो। बकौल रेचल, उसके हिंदुस्तान में पांच बॉयफ्रेंड्स बने। पर साल भर से ज्यादा कोई अफेयर नहीं चला। गुड फॉर मी, गुड फॉर देम, रेचल बोली। तुम द्रौपदी की अम्मा हो, शमा हंसने लगी। लाउंज बार में भी उसकी दबी हंसी छूटी, और आंखों में आंसू भर गए।

शमा को लगा लोग उसे घूर रहे हैं। मैं पागल हो रही हूं, उसे लगा। मेरे प्यार के साथ दगा हुआ है, उसने सोचा। हमराज के लिए वह दूने प्यार और दूनी नफरत से भर उठी। उसे लगा वह एक रहस्य से समृद्ध है जो सिर्फ वह जानती है, और हमराज! क्या यही होती है प्यार की पहचान। किसी तरह, जैसे जैसे वह हॉस्टल पहुंची, बिना चेंज किए सो गई और नींद में कुछ कुछ बड़बड़ाती रही।

चमत्कार ही कहेंगे कि हमराज ने शुरू में असल में सही दिशाएं ली थीं, बीमा कंपनी की पीली इमारत से लेफ्ट, फिर लेफ्ट, उसके बाद दो बार राइट, वह वहां पहुंचा, जो गंतव्य था, और सड़क के दूसरी तरफ टीजीके का बोर्ड चमक रहा था। पर तभी शंका के कीड़े उसके मस्तिष्क में उग्र हो उठे। ये गलत जगह है, उसे लगा, शमा ने टीजीएल कहा था, उसे लेफ्ट लेना था, फिर राइट, फिर लेफ्ट, और राइट। तब भी उसने सड़क पार की, बार के सामने पहुंचा, अंदर जाने की सोची, पर मन का हठ था, मर्जी थी कि वह गलत स्थान पर है और वक्त कम है। उसने जबड़े कसे, किसी अबूझ हिदायत से संचालित वह सड़क के दूसरी तरफ लौटा, वापस पीली इमारत, वहां से पहला लेफ्ट, फिर राइट, लेफ्ट, राइट दोबारा, फिर जहां उसने खुद को खड़ा पाया, सड़क के दूसरी तरफ बार लाउंज दिख रहा था : टीजीएल! दैव या असुर, यह अनहोना संयोग था, और यहां वह इंतजार करने लगा, शमा का कहीं पता नहीं था। आखिरकार वह अंदर गया, एक टेबिल चुनी, दो के लिए, दो बियर आर्डर कीं, और शमा की कल्पना और ख्यालों में डूब गया।

...अगले दो दिनों में शमा और हमराज के बीच टेलीफोन पर नॉक झोंक, तोहमतें और प्यार मोहब्वत की बातें, झड़पें हुईं, वे और करीब आए, यह प्रकट हुआ कि मिलने का जो प्लान था, उनकी पहली डेट, जो नाकाम रही, वह अंततः उतनी तबाह नहीं थी, वे एक गहन अनुभव से गुजरे थे, इश्क का मंजर ए नूर, किसी की गलती नहीं थी, अगर मामला विगड़ा था तो दोनों तरफ से न चाहते हुए, जुदाई के उन दो घंटों में वे सिर्फ एक दूसरे के लिए थे, उन्हें तब यह अहसास हुआ कि कितना वे एक दूसरे को चाहते हैं...हमराज लेटा था, कान से फोन सटा था (उसकी लैंडलाइन अब काम कर रही थी), बस तुम ही तुम थी मेरे दिल की मल्लिका, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता... मेरा हाल क्या कम है, शमा गार्ड की मुस्तैदी से अपनी आवाज बचाते हुए बुदबुदाई, तो कहां ना

जो दिल की पुकार है, प्लीज कह दो, मेरा दर्द कम होगा, हमराज व्यग्र हो उठा, जल्दी से शमा ने कहा कि वह इस कदर प्यार करती है जितना तुम नहीं कर सकते...फिर बाद के कॉल्स में दोनों ने मिलकर उस शाम की फिक्क ए जुदाई के अनोखे सुख को पूरी तरह अनावृत किया, मानो सुहाग के घूँघट का हटना : एक क्षण, एक ही वक्त, हमराज 'टीजीएल' के दो जन के टेबिल पर बैठा था, अकेला, दो बियर के ग्लास, पहला पीया, फिर शमा के नाम पर दूसरा, और मात्र पांच सौ गज की दूरी पर लगभग समान लाउंज बार 'टीजीके' में शमा उसी तरह की टेबिल पर थी, उसने दो बियर आर्डर की थी, पहले एक पी, फिर दूसरी, हमराज के लिए, काश तुम होते...इससे बेहतर संयोग, टाइमिंग और अजूबा और क्या हो सकता था, है न, मैं तुम्हें सोच रही थी, तुम मेरी याद में मग्न थे, क्या इससे अनोखी डेट हो सकती है, बताओ...इस तरह उनकी नाराजगी, मायूसी और रंज खत्म हो गए, और यह वाकया उनके उमड़ते प्यार का हसीन अफसाना बन गया।

फोन बंद करने से पहले शमा ने दूसरी डेट फिक्स की, इस बार पूरा एहतियात बरता, ऐसी जगह चुनी जिससे दोनों बखूब वाकिफ थे, आंख पर पट्टी बंधी हो तब भी मिस नहीं हो सकती, डपोरशंख, शमा ने प्यार से झिड़का, ये न हो कि खुली आंखों से तुम रास्ता भूल जाओ, हमराज ने चुटकी ली, अच्छा अब बच्चों वाली बातें नहीं, मैं तुम्हारी गंध के सहारे पहुंच जाऊंगा, हमराज ने भरे दिल से कहा, तुम इस तरह मत बोलो प्लीज...क्यों?...क्योंकि मुझे कुछ होता है, ये पब्लिक प्लेस है, मैं कमरे में होती तो बात दूसरी थी...तुम मोबाइल खरीद लो ना...हां, सोच तो रही हूं, तुम भी खरीद लो, पर ये तो बताओ तुम्हें मेरी गंध का क्या पता है?...तुम सांस लेती हो इसलिए मैं जीवित हूं, हम एक दिल दो जान हैं...नहीं पागल, दो दिल एक जान...अच्छा अब अंजाम पर झपटो मत...दोनों ने वक्त और जगह की फिर याद दिलाई, क्या हम अभी, इसी वक्त नहीं मिल सकते, काश ऐसा हो पाता...कुछ क्षण बाद लाइन डेड हो गई, हमराज काफी दर तक रिसीवर गोद में लिए न जाने क्या क्या सोचता रहा।

अगर आकाश में एक सक्रिय, मुस्तैद आंख होती, हमेशा होती है, सैकड़ों सैटेलाइट आंखें, या सीसीटीवी की समुचित पैठ और लोगों के हाथों में स्मार्ट फोन, जैसा अगले कुछ सालों में बखूब होने वाला था, तो जिस घटना का जिक्क हम शमा और हमराज के फोन संवाद के आधार पर कर रहे हैं, उसके कई उन्नत, हैरातमंद क्षण हमें देखने को मिलते। कम से कम दो बार ऐसा हुआ कि वे एक दूसरे के सामने आते आते रह गए थे। एक बार जब हमराज सड़क पार कर टीजीके के सामने पहुंचा, और उसी क्षण शमा फुटपाथ से बाईं दिशा में गोल चक्कर पर हमराज को देखने जा रही थी...बस एक बार हल्के से गर्दन मोड़ने की कसर थी। दूसरी बार वे और पास थे, दस गज की दूरी पर, खम्भों से टेक लगाए, व्यस्त, विस्फारित आंखों ने हर तरफ देखा, झांका, सिवाय एक दूसरे की दिशा में, फिर वे विपरीत तरफ चलने लगे, मानो विरह या वियोग का पार्ट अदा कर रहे हैं। तुरंत बाद शमा टीजीके की सीढ़ियां चढ़ रही थी, और थके कदमों से हमराज सही दिशा ढूंढने पीली इमारत की तरफ लौट रहा था।

दूसरी डेट का नतीजा भी वही रहा जो पहली का था। उनका मिलना न हो सका। हालांकि इस बार यंत्र रचना सूक्ष्म तरीके से अलग थी। शमा नियत जगह पहुंची, एक बड़ा पुराने स्टाइल का कॉफी हाउस जो मेन सड़क से हटकर एक शांत लेन में था, वह पांच मिनट लेट थी। वह उसी जगह बैठी जिसका जिक्क उसने हमराज से खास किया था...जैसे ही कैफे में घुसते हैं, बिलकुल सामने यही टेबिल दिखती है। तुम मुझे मिस नहीं कर सकते, अगर नजरंदाज करना चाहो तो बात दूसरी है, उसने हल्का मजाक किया, जिसमें लाड़ का सूक्ष्म आग्रह था...जो प्यार में अंधा हो उसे क्या दिखाई देगा?

हमराज ने खुद के उमड़ते आवेग को दबाते हुए कहा। शमा का स्वभाव सरल और धीर था, पर इस दफा वह बिफरी : पहले मुझे देखना, फिर होना अंधे! उसने तुरंत साँरी कहा। पर उस शाम जब वह हॉस्टल पहुंची उसे खुद पर रोना आ रहा था। लौटते हुए ऑटो खराब हो गया, और उसे काफी रास्ता पैदल चलना पड़ा, सैंडल का स्टैप भी टूट गया। जब तक कमरे पहुंची अंधेरा हो गया था। बेहद थकान, भूख, अपने पर गुस्सा और ग्लानि। वह बिस्तर पर धम से गिरी, सैंडल फेंके, और उदास आंखों से छत ताकने लगी। दूसरे बेड पर रेचल ताबड़तोड़ निटिंग कर रही थी, यह उसकी इन दिनों की सनक थी। निटिंग इज सेक्सी, वो हॉठ गोल बनाकर कहती और हंसती। यह हंसी का खजाना उसके भीतर कहां से फूटता था, शमा को अचरज होता। रेचल कैसी ठगनी, जलपरी है, जो कभी स्काइ डाइविंग के लिए जाती है, और लौटने पर बूढ़ी मौसी की तरह निटिंग में मशगूल नजर आती है। वो खुली किताब थी, पर किताब के पन्ने खतरनाक तरीके से ज्वलनशील थे।

आज भी वही हुआ, शमा ने आखिर मौन तोड़ा। वो आया ही नहीं। मैं बेवकूफ निकली, और वो चिकना बेवकूफ। प्यार में, रेचल ने बूढ़ी अम्मा की तरह कहा, मिलने से ज्यादा न मिलना अच्छा है, मतलब बेहतर है...मानते हैं इससे प्यार फलता है, और वह घातांक तरह से बढ़ता है। घातक नहीं घातांक, हालांकि दोनों का असर, इश्क के मामले में एक समान है!

मेरी लेफ्ट जूती, मेरी राइट जूती, मेरी बला से, शमा ने अकुलाकर कहा, मेरा मजाक मत बनाओ, कम से कम तुम तो नहीं। पर रेचल का व्यवहार सिर्फ ऊपरी तौर पर हल्का था। उसे चिंता थी, और कौतुहल भी। कुछ रहस्य है यहां, उसे लगा। उसने मीठी बातों से शमा को शांत और सहज किया, कि ऐसा नहीं कयामत आ गई है, या आसमान फट पड़ा है। उसने फ्रेंच सूप बनाया, खूब मिर्ची वाला, देशी संस्करण, वह बोली, इस सूप की बात ये है कि एक कप गटक लो, तो रात भर कुश्ती की जा सकती है, चाहे तन से या मन से, यह दशा और उपलब्धता की बात है। उसने शमा को मनाया कि हमराज की साइड सुने बिना वह कोई नतीजा न बनाए, हो सकता है उसके साथ कुछ बदतर हुआ हो, तुम कम से कम कैफे के अंदर बैठी थीं, हो सकता उसकी पॉकेट कट गई हो, हू नोज, फ्रेंच में भी हम कहते हैं, छलांग लगाने से पहले देखो भालो, पर इश्क मोहब्बत के मसलों में ये तरकीब काम नहीं करती, तो बेहतर ये है कि छलांग लगाने के बाद अपनी खरोंच और चोट पर मलहम लगाओ, छलांग पर फैसला सुनाने की जल्दी नहीं होनी चाहिए, समझी मेरी जान!

रेचल सही थी। हमराज का संकट कहीं गहरा था क्योंकि स्पेस और दिशाएं उसके साथ दगा कर रही थीं, वह निरुपाय था। कोई अच्छा दिन नहीं था उसके लिए वह रोज, मतलब दूषित, बिगड़ा दिन था। उजली (मालकिन मकान की लड़की या पोती) ज्यादा दबंग और निर्लज्ज हो चली थी। कई बार वह चालाक पशु की तरह अकेली बाहर आती, और सीढ़ियों के अंधेरे में उसे धर दबोचती। वह फहश इशारे बनाती, और दांत निकालकर हंसती।...वह उस रोज दोपहर में नहा रहा था कि नलका बंद हो गया। पूरे बदन पर साबुन, वह क्या करे? यह पहले भी कई बार हुआ था। फर्स्ट फ्लोर के गलियारे के एक तरफ एक घुंडी थी जिससे पानी का फ्लो घटता बढ़ता था। पर हर बार जैसे ही वह नीचे जाने को होता, पानी लौट आता। उस रोज पानी नहीं आया। हमराज ने टावल लपेटा, छाती और चेहरे पर साबुन पुता था, और टटोलते हुए पहली मंजिल पर पहुंचा। तत्काल बिल्ली की तरह काली उजली उस पर कूदी, और उससे लिपटने लगी। इस नीच हरकत के लिए हमराज तैयार नहीं था, वह सुन्न, और घना भय। उजली के हाथ उसकी छाती, चेहरे, बांहों पर बेतरतीब घूम रहे थे, और एक हाथ टावल के नीचे भी पहुंचा। फिर वह छिटकी, और नीचे भाग गई। एक पल के लिए हमराज के शरीर ने भी ज्वर की आह भरी थी, वह अपने ऊपर

घृणा से भर उठा था। हमराज ने कांपते हाथ से घुंड़ी को खोला, और लौटकर मल मल कर नहाता रहा। बाद में उसने मन बदलने के लिए विषमताओं के मैप डिजाइन पर काम करने की कोशिश की, पर कोई सूत्र हाथ नहीं लगा, सारा कुछ जैसे अस्थिर और नकली, यह नकली वाली बात उसने अगले दिन शमा से फोन पर कही। इस तरह था मानो हर महत्व का ताल्लुक, हर संदर्भ बिंदु संदिग्ध और ढुलमुल है, इस पर अनायास शमा हंस पड़ी थी, हमराज चकित कि इस लड़की के भीतर आर्द्रता और दिल्लगी के कितने सोते हैं, ढुलमुल न दुनिया है न नक्शा है, शमा कह रही थी, ढुलमुल तो तुम हो मेरी जान, इसीलिए तो तुम मेरी जान हो गए हो...।

जब हमराज कॉफी हाउस के लिए निकला, उसे लगा जैसे कुछ साबुन के झाग अब भी उसकी छाती और टांगों से चोरी छिपे चिपके हैं। दोनों की रिहाइश इतनी दूर थी, मानो दो अलग अलग शहर, ये बड़ी समस्या थी। घना ट्रैफिक, बस, ऑटो, रिक्शे, ठेले, अहंकार की दुम उठाए हॉर्न की पों पों करती कारें, सबका धिक्कार समवेत था। सड़कों के खस्ता हाल, पूरे शहर में खोदा खादी की भ्रष्ट कवायद, खुले मैन होल में गिरते बच्चों, बूढ़ों के रोज के हादसे, जो मानो अन्य के पाप का कर्ज अदा कर रहे थे। सड़कों के नित्य नए नाम, शायद वो वक्त भी दूर नहीं था जब सरकार इंसानों के नाम बदलने का जिम्मा भी कानून से अख्तियार कर ले। दूकानों का रोज सील होना और खुल जाना, खुल जा सिम सिम का नया, देशी अफसाना, अंधी, कर्कश, बेहिसाब खरीद फरोख्त का पगला आनंद। ट्रैफिक के अचानक फिराव, बदलाव, अनायास के विरोध मोर्चे, रैलियां, जुलूस, वन वे स्ट्रीट के नित्य बदलते नोटिफिकेशन, फिर आज इधर से आने और कल उधर से जाने का चालान, रोड की यही लाइफ थी, मजा लो या झींको, या मारा मारी पर उतर आओ। जाहिर है मुलाकात की जगह का शमा के हॉस्टल के अपेक्षाकृत निकट होना जरूरी था। शाम के बाद लड़कियां महफूज नहीं थीं, अगर कोई वारदात न भी हो, पुलिस के ताने ही सुनने को मिल जाते थे। इस बार भी हमराज को दो बस बदलनी पड़ीं। फिर कुछ दूरी तक का ऑटो। फिर सीपी का बड़ा गोल चक्कर, फिर इनर सर्किल, वहां एक रेडियल रोड से एक लेन निकलती थी, और वहां वह पुराने स्टाइल का कॉफी हाउस था, मद्रास कैफे, जो उनके रोमांस और मिलन, यानि रोंदेवू का चुना आनंदग्राम और पनाहगाह था। हमराज को यकीन था वह सही लेन तक पहुंचा था, पर वहां से उसे कैफे नहीं मिला।

तुम्हें मेरी बात का यकीन हो रहा है न, हमराज ने फोन पर अधिकार और मिन्नत के मिले जुले भाव से कहा। शमा मेरा यकीन करो, प्लीज, जो मैं कह रहा हूं, शुद्ध सच है, सच में, तेरी कसम, भगवान की कसम।...अच्छा, भगवान की कसम खाने की जरूरत नहीं है, मैं तुम्हारी तरह निष्ठुर या बौड़म नहीं, इन्हीं में से एक हुए न तुम...माफी, तीन हजार बार माफी, गलती मैंने की, या गलती मेरे मत्थे पड़ी, दोष मेरा जरूर है, पर दोष सिर्फ मेरा नहीं है। हमराज बोल रहा था, साथ ही साथ अपने तर्क और ताकीद के सामने अस्त पस्त भी होता जा रहा था। पर चारा क्या था? अगर शमा से, अपनी जान, महबूबा, जिसके बिना जीवन का कोई अर्थ नहीं, उससे न कहे तो किससे कहे? वह शमा को शिद्दत से, पर ढहते विश्वास के साथ समझाने की कोशिश कर रहा था कि वह कल कैफे क्यों नहीं पहुंच सका। और खुद भी समझना चाह रहा था। भाषा अक्षम सिद्ध हो रही थी, सारा कुछ अनर्गल सा, पर उसे अपने आशय और मंशा की निष्ठा पर अटूट विश्वास भी हो रहा था। सच अचानक मुट्ठी में आता लगता, फिर छिटक जाता, जैसे वह परिचित कॉफी हाउस, जहां वह कई मर्तबा पहले भी गया था, पर जो उस दिन उससे छिटकता रहा, मानो उसके साथ छिपन छिपाई का खेल रच रहा है...मिला ही नहीं? इतना बड़ा कैफे कैसे मिस हो सकता है, शमा की आवाज कांपी, मानो क्रोध करने से छिटक रही है। वो वैसा ही है, जैसे हमेशा से

था, शमा ने जोड़ा, इस बार चिट्ठन थी, पर साथ में हमराज की मिन्नतें और बेचारगी की तीव्रता के सामने वह पिघल भी रही थी...हां, मानता हूं, तुम्हारे लिए वह कैफे खड़ा और मौजूद था, हमेशा की तरह, पर मेरी तरफ उसका ये रवैया नहीं था...मतलब क्या है तुम्हारा? शमा को न जाने क्यों उम्मीद की एक उजली किरण महसूस हुई।

जो हमराज कहना चाह रहा था, और जिसके लिए फोन पर उसके पास तब सही और तल्लीन शब्द नहीं थे, वह यह था : कि उसे दिशाओं का, सड़क का, रास्ते, जगह और लोकेशन का पता था। बिलकुल जैसे उसकी आंखों के सामने, दिमाग में स्पष्ट। पर...संपर्क और ताल्लुक की कड़ियां, अंतर्संबंध, बीच के वास्ते और सापेक्ष उलझे और अस्पष्ट थे, बल्कि संदिग्ध थे, उनका ठीक जोड़ या अनुपात नहीं बन रहा था। सीपी की रेडियल रोड और लेन वहीं थीं जहां वे होती थीं, उन्हें होना था, और सौ फीसदी कॉफी हाउस भी वहीं था जहां वह हमेशा से था। पर संपर्क या सापेक्ष का जो सूत्र कैफे और लेन के बीच था, वह उसके लिए अवरुद्ध था, टूट गया था।... मेरे कहने का मतलब है मैं लेन पहुंच गया था, पर कैफे तक पहुंचने से चूक गया, हमराज ने अविश्वास और डूबते मन से कहा। पर यह भी बराबर दशा से संभव था, यह खयाल हमराज के जेहन में कई महीनों के बाद कौंधा, कि इस हिसाब, या सापेक्ष के सममित रिश्ते से, अगर वह सममित है, वह कैफे पहुंच जाता, बशर्ते उसे लेन नहीं मिलती!

कुछ भरपूर और उद्भोदक एकाएक हमराज के जेहन में चमका था। पर जैसे ही उसने फोन पर शमा को बताने के लिए मुंह खोलने का उपक्रम किया, दूसरी तरफ से मर्द आवाज सुनाई दी, जरूर उस रिसेप्शन के मरदूद गार्ड की थी जिसकी डबल मूछें थीं, जैसा शमा ने उसे पहले बताया था, बस बीबीजी, अब बहुत हो गया, उसने भरे, भोजपुरिया अंदाज में कहा, एकदम से लाइन डेड हो गई। हमराज जैसे अपने ही कमरे में फंसा, वियुक्त सा हो गया। और अनाथ, परित्यक्त सा। फिर भी वह अनकहा उसके भीतर जीवित और उत्तेजित था। जिसका निकास और रिसाव अनिवार्य था। यह वह क्षण था जब हमराज की संलाप की डायरी का जन्म हुआ। वे बातें, मन के उद्गार, संशय, डर, प्यार, कोरे, शुद्ध प्यार का इजहार, जो अगर न व्यक्त हो तो विष है, डसता है, अपार यंत्रणा का दूत है, भविष्य के सपने, जिंदगी के मकसद, मन के राज और असंभव कल्पनाएं, वे इजहार जो सिर्फ प्रियतमा के लिए हैं...जिनका संप्रेषण, जिनका यादों में संजोना जरूरी था, पर जिसका फोन पर कहना, बताना व्यावहारिक दिक्कतों के चलते असंभव था, जो इस विरक्त, फासले के मीडियम के लिए नामुनासिब था। यह सब हमराज संलाप की डायरी में दर्ज करने लगा।...इश्क का जर्नल, रोजनामचा, शमा ने भी अलग से रखा था, पर उसके निर्णय में वह मायूसी, त्रास या खौफ नहीं था, जो हमराज के स्वभाव का कीड़ा था, मानो यह जिंदगी और मौत का सौदा है। हमेशा की तरह शमा के लिए यह रेचल का सुझाव था।

ये मामला इतना खुफिया हो गया है, कि तुमको पुलिस के दीवान की तरह रोज की केस डायरी रखनी चाहिए, रेचल ने पैर के नाखूनों पर हरे रंग की नेल पॉलिश लगाते हुए कहा। उंगलियों के नाखून पर पिंक नेल पॉलिश थी। फर्क इसलिए कि आज एक नई डेट पर जाना है, और उस ऊंट की गर्दन नापने और नीयत टटोलने के लिए यह दुविधा जरूरी है, एंबीवेलॉत...इक्कीवोक..उसने फ्रेंच का इस्तेमाल किया, और इस तरह शमा का ध्यान और मूड का हल्कापन हासिल किया। फ्रेंच भाषा की अनोखी लय और मिठास हमेशा शमा का मूड पॉजिटिव बना देती थी।

अलौ किस्कु वू सिगजरे...तो तुम्हारा क्या सुझाव है? शमा ने नाक पर मुग्ध सा बल बनाते हुए पूछा। नाक के ऊपरी हिस्से पर बना यह अर्द्धचंद्र सा बल आगे के सालों में हमराज शमा के प्रेम का ध्रुव तारा बना, उनकी हर मुश्किल का मलहम, हर फिक्र का उपचार, हर अज्ञात का

ज्ञात।...रेचल बातें बना रही थी, पर तजुर्वे का घन था। उसने कहा कि खास इश्क का अहसास अधिकतर फिल्म और कथाओं की पूंजी है, पर ये हमराजी मामला मुझे लंबी रेस का खासम खास इश्क लग रहा है, और विधा में जासूसी और रहस्य का योग है, इस रहस्य के गोते में तेरे इश्क का रत्न...ज्जेम्म छिपा है! ज्जेम्म या ज्जेम्म, शमा ने कई बार फ्रेंच में रत्न को कहने का प्रयास किया, पर बात बनी नहीं, तुम फ्रेंचियों की जुबान में बिजली का करंट चलता रहता है, आई लव यू, ये तू कैसे बोलती है? जि तेम! रेचल ने कहा, पहले जोर से खिलखिलाई, फिर शमा को आगोश में लेकर बुदबुदाई : यू आर अ वेरी लकी गर्ल, थैंक योअर गॉड्स फॉर दैट, ओके...शमा के समूचे शरीर में रेचल का घना ताप दौड़ गया। वह एक अनजान आकर्षण से सिहर उठी।

बाद के विवाहित सालों में एक बार शमा ने हमराज की छाती पर जुल्फों की चादर डालते हुए कहा कि अगर रेचल न होती तो शायद वह विरह और जुदाई का वो साल बर्दाश्त न कर पाती।

तो हमराज ने उस शाम अपनी डायरी में पहला इंद्राज किया : *कॉफी हाउस में शमा से न मिल पाना इस तरह था मानो दो अलग अलग मैप्स थे। तेरे (मतलब शमा के) मैप में कैफे वहीं था जहां वह हमेशा था। पर, साथ साथ, मेरे मैप में कैफे नियत स्थान पर नहीं था...नियत, बदे, निर्धारित? क्या स्पेस में नियत या निर्धारित से मेरी वंचना है?*

उसी रोज बाद में रिसेप्शन गार्ड को बहलाकर हमराज ने शमा को फोन पर बुलाने के लिए राजी किया। दिल्ली के बिहारी अंदाज में उसने अपनी व्यथा बताई, हमराज की युक्ति सफल बैठी, गार्ड की प्रतिक्रिया इस तरह थी मानो उसके भीतर नातेदारी का कोई बल्ब जल उठा है, और वह तुरंत मित्र और समर्थक बन गया। शमा भोली, छोटी बहन हो गई। नदिया के पार गार्ड की प्रिय फिल्म थी।

तकदीर ने लवर्स को शरण दी, क्योंकि दोनों ही दूसरी डेट की घोर नाकामी से त्रस्त और क्षुब्ध थे, और दोनों के मन में पूरे वक्त नहीं तो कुछ देर के लिए एक दूसरे पर दोष मढ़ने और शक करने की प्रबल चाहत थी...जालिम, धोखेबाज, खुदगर्ज, झूठा, बेवफा...इस तरह के भाव उनके भीतर कुलबुला रहे थे, पर जिस तरह का उद्दीप्त, इश्कजोर संलाप उनके बीच फोन पर हुआ, और गार्ड की पूरी रजामंदी और आशीर्वाद था, वह स्तब्धकारी था, वे हतप्रभ और विस्मित रह गए।

अरे, कोई बात नहीं, शमा ने कहा, और भी रंज हैं जमाने में न मिलने के सिवाय, एक तरह से, मैं कहूंगी, न मिलना बेहतर था, मिलने की तुलना में।...वो कैसे?...पर बस एक बार, ओके, रिपीट नहीं होना चाहिए...इंतजार का फल और स्वाद मीठा, खूब मीठा होता है। तुम ये बात क्यों कह रही हो, हमराज ने फिर पूछा, किसी अनाम जज्बे से उसके कान गर्म हो गए थे। तब शमा बोलने लगी, मानो खुले रिसेप्शन में न होकर, किसी खाली, रोशन स्टेज पर एकालाप कर रही है।

...तुम्हारी कुर्सी मेरे सामने थी, अपोजिट। जब तुम नहीं पहुंचे, तो ऐसा नहीं लगा जैसे मैं अकेली हूं। कोई आवेग था मेरे भीतर, मेरा रक्षक, कि मैं तुम्हारे फिजिकली न होते हुए भी, तुम्हारे साथ, अपने दिल और दिमाग में, तन और आत्मा में, ज्यादा मजबूती से साथ थी। उन शक्तियों का मैंने आह्वान किया...किस दूसरी तरह इस उद्गार को बताऊं मैं नहीं जानती...मैंने जैसे तुम्हें सिर्फ मन के करतब से प्रकट कर दिया था, और फिर तुम असल में जैसे मेरे सामने की कुर्सी पर बैठे थे, वह नजर का स्पर्श इतना दैहिक और ऐंद्रिक था, तुम्हारी बड़ी, वफादार आंखें मेरे दिल के अंतस में झांक रही थीं, और मैंने खुद से कहा, कितनी लकी हूं मैं, ये हैंडसम मर्द, भला और अच्छा, मुझे कितना प्यार करता है, वह यहां मौजूद होते भी, मेरी खोज में दर दर भटक रहा है, और मैं इस आदमी को उससे भी ज्यादा प्यार करती हूं, मैं यहां इसके साथ हूं, हम बियर पी रहे हैं, पर ये भी तो सच है कि मेरा वजूद, मेरी आत्मा, इसको पाने और अपना बनाने के लिए दर दर भटक रही है, शायद कोई जगह अभी ऐसी नहीं जो हमारे इश्क की लपट, उसके विस्तार को

जब और स्वीकार कर सके...मैं उस हर चीज की दीवानी हो चुकी हूँ, जिसे वह छू भर ले...इतना असल और स्पर्शशील था यह सब, मैंने इतनी अपने मन की गहरी बातें तुमसे कहीं...।

तुमने कही थीं? हमराज स्वप्निल सा आखिर बोल उठा, मुझे लगता है जैसे वे मुझे सुनाई दे रही हैं, वह बुदबुदाया, उसके कान, गाल, शरीर जल रहा था। वह अभिभूत था कि शमा की आवाज, उसके स्वर्णों की लय और मुराद उसके जिस्म को छू रही थी, जैसे उंगलियों का स्पर्श, जल की धारा की तरह उसे भिगो रहा था, मानो शमा उसे आँखों से नहीं, स्वर से देख रही थी। तुम मुझे देख रही हो इस वक्त? उसने कांपती आवाज से पूछा...बुद्ध, मैं देख कैसे सकती हूँ, मैं फोन पर तुमसे बोल रही हूँ, पर बैठी थोड़े हूँ तेरे साथ...शमा रुकी...पर उस रोज...तुम साथ बैठे नहीं थे, पर फिर भी ज्यादा पास थे...वो अलग, अनोखा सा था। रेचल कहती है जो तुम मन से मानते हो, वह होता ही होता है...रेचल? शमा को लगा जैसे वह पंख पर सवार है, उड़ रही है, वह रेचल की तारीफ करने लगी, शब्द उसकी खूबियां बयान नहीं कर सकते, उसने कहा, और हमराज ने मन मसोसा कि उसने बेकार ही रेचल का नाम ले लिया। क्या उसका भी बॉयफ्रेंड है? हमराज पूछ बैठा। एक नहीं कई, गिनती बदलती रहती है, शमा हंसी...और तू? अच्छा, तो मेरे मन पर फंदा डाल रहे हो, बड़े चालाक हो जी...मुझे देखने की कोशिश क्यों नहीं करते, करो... अभी?... कैसे?...उसी तरह जैसे मैं देख पायी थी...फिर वो ड्रेस को बूझने लगे जो उस नामिलन के रोज उन्होंने पहनी थी, और दोनों ने सही बताया, ड्रेस और रंग, वे उमड़ी मोहावस्था के उछाल में भूल गए थे कि यह सूचना उन्होंने डेट पर निकलने से पहले कई बार शेयर की थी, ताकि एक दूसरे को पाने में आसानी रहे...इस तरह वे घंटे तक फोन पर स्वर आलिंगनबद्ध रहे।

दो दिन के बाद भ्रम का कीड़ा हमराज को घसीटता हुआ उसी कॉफी हाउस की तरफ ले गया, जबकि उस रोज उनका मिलने का कोई प्लान नहीं था, उन्होंने वर्किंग डे, गुरुवार, को मुलाकात का प्लान बनाया था, ताकि ट्रैफिक की मारामारी थोड़ी कम हो। इस बार हमराज को कॉफी हाउस आसानी से मिल गया, उसे न रुकना पड़ा, न पूछना, कि बाएं जाना है या दाएं, और तब, कैफे के सामने ठगे, गश् खाते से खड़े हुए, ये चौंकाने वाले शब्द हमराज के ध्यान में कौंधे : *कि कैफे इस बार उसे वहीं मिला जहां पिछली बार उसे नहीं मिला था!*

इस विचार के अगाध निहितार्थ और परिणाम थे।

हमराज अजीब तरह से व्याकुल हो उठा, उसे खुद पर दया आ रही थी, लौटने की शक्ति फिलहाल बटोर पाना असंभव था। किसी तरह संयत होकर वह एक लुटे जुआरी की तरह कैफे में दाखिल हुआ। अपने अंदाज से वह उसी टेबिल और उसी कुर्सी पर बैठा जहां दो दिन पहले शमा ने उसका इंतजार किया था। उसे किसी निर्लिप्त अनर्थ का अंदेशा था, मानो कोई अपशगुन धीरे धीरे शमा और उसके जीवन पर फन फैला रहा है। वह अजीब और नागवार महसूस कर रहा था, जैसे वह किन्हीं अज्ञात मायनों में अदृश्य है, उसने शमा की मौजूदगी के प्रकट होने का इंतजार किया, जिस करिश्मे की तफसील शमा ने की थी, पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। सामने की कुर्सी मानो ज्यादा बेगानी लगने लगी। हाल के फोन की बातें, उसके झकझोरते उन्मेष को याद करके उसे कोई तसल्ली नहीं हुई, वह उस लंबे संलाप को बमुश्किल याद कर पा रहा था, बस इतना धुंधला सा ध्यान कि मोहब्बत का जिक्र बार बार हुआ था, शमा ने डींगें सी हांकी थीं, और वह भी बेवकूफ सा बेजमीन के संवेग में बह उठा था, बहुत खुशामदी सा लगा उसे वह सब, फालतू, और उसे चिढ़ सी होने लगी। तब जैसे मस्तिष्क ने रक्षा की करवट ली, इस ग्रस्तता से ध्यान हटा, तत्क्षण उसके दिमाग में समय भेद, या वक्त के विस्थापन या विचलन का आइडिया कौंधा : *कि वे, यानि शमा और हमराज, एक स्थान पर समय शिफ्ट, यानि फेज लैग के साथ, मतलब अलग अलग*

वक्त हो सकते हैं, उसी तरह जैसे वे एक ही वक्त अलग अलग जगह मौजूद हो सकते हैं। पर उनके मिलने के इशु में वक्त और स्पेस का एक बिंदु या कोऑरडिनेट नहीं बन रहा।

यह खयाल आया जरूर था, पर अभी उसकी स्थापना और परख बाकी थी, हमराज का एक्सपर्ट भूगोलज्ञ अभी सुन्न और असावधान सा था।

...अगले दो हफ्तों में तनाव और आतंक का अहसास हमारे दोनों लवर्स के भीतर बढ़ता गया, जैसे बाढ़ में नदी का जल स्तर बढ़ता है, उत्तरोत्तर, बेनागा। चार बार उन्होंने मिलने का प्लान बनाया। अलग अलग जगह, जिन्हें मिस करना असंभव था। पहला इंडिया गेट, दूसरी बार एक प्रख्यात सिनेमा हॉल, फिर एक साउथ इंडियन रेस्टोरेंट जिसे दूढ़ न पाना असंभव था, क्योंकि उसके खाने की लजीज, खास खुशबू दूर दूर तक फैली रहती थी। और लास्ट, नैचुरल म्यूजियम, मंडी हाउस के गोल चक्कर पर। उनकी योजनाएं विस्तृत थीं, जासूस और मुखबिरो की मीटिंग की तरह, कि कहां, कैसे, किस वक्त, कौन सा स्पॉट, अगर भीड़ हुई तो एक दूसरे तक पहुंचने की तरकीब क्या होगी, ट्रेल कैसे छोड़ेंगे, किस तरह के लिबास, जूते, छाता...पर नतीजा वही, असफलता। नामिलन के प्रसंग और समय खंड बढ़ता जा रहा था, प्रसंग की अनुभूति अब इस तरह होने लगी मानो ये वारदातें हैं या हादसे। हर बार वे बाद में बहादुरी और संयम से वजह दूढ़ते, दर्जनों में कोई एक वाजिब वजह, जिसका तर्क ठोस और भरोसेमंद हो, वहां भी जहां न मिल पाने की कोई वजह होना नामुमकिन था, जैसे इंडिया गेट, तो फिर बाद में फोन पर वे सयानी सहमति से इस नतीजे पर पहुंचे कि समय की गलती हो गई। शमा ने समझा था पांच बजे, और हमराज के ध्यान में सात बजे का टाइम था। दो घंटे में तो आदमी दिल्ली से बंबई पहुंच जाता है, शमा की आवाज में शरारत की लाचारी थी। और हम? क्या हम कहीं से कहीं पहुंच रहे हैं? यह खयाल जरूर दोनों के मन में गूजा था।

बट दिस फूल, हमराज, वो अगर कोई जगह, इमारत, रेस्टोरेंट, सिनेमा हॉल का रास्ता नहीं जानता तो पूछ नहीं सकता था? हर जगह लोग होते हैं, रिक्शे, ऑटो, पान वाले, ठेले, पैदल राहगीर, लोग इतने मददगार हैं, गप्पी और बेकाम भी, कि खुद चलकर ऐन जगह पहुंचा दें। पाठक का यह हस्तक्षेप और चिढ़ वाजिब और महत्वपूर्ण है।

पर तथ्य ये है कि हमराज ने बहुत बार राह पूछी। मसलन कैफे की, या किसी रेस्टोरेंट की। लोगों ने सब से रास्ता बताया भी...आप ऐसा करिए कि सौ कदम पर लेफ्ट एक मंदिर है, हनुमान जी का, उसके पचास कदम पर एक राइट गली है...दूसरा आदमी कहता, अरे बाबूजी आप तो उल्टे चले आए, या आगे निकल गए, अब ऐसा करिए जिस रास्ते आए हैं, उसी रास्ते लौटिए, बीच में एक बरगद का पेड़ मिलेगा...या नीम का पेड़, या हकीम अजमल की दूकान...पर होता ये कि न मंदिर मिलता, न हकीम का दवाखाना, न नीम का पेड़ या बरगद का, जो मिलते या ध्यान जाता तो कोई बेर का पेड़ दिखता या पीलू अथवा पीपल का, कोई मजार या मसालों की दूकान...पर ऐसा भी नहीं था कि हमराज कभी मुकाम पर पहुंचा ही नहीं, कई बार पहुंचा, बहुत बार नहीं भी, पर जो न मिली वह शमा थी, सब अपने हिसाब से सच बता रहे थे, यह तो अजनबियों से कहना गैरवाजिब था कि शमा से मिलवा दो...हालांकि पढ़ते हैं कि मजनूं तो लैला के नाम से ही लोगों से दुहाई करता था...पर बेवजह हमारे लवर्स की आलोचना करना नामुनासिब है, अगर दगा या उलझाव कहीं था तो वह राह और मंजिल के रिश्ते में था, मानो फिरकाबंदी के दोष या अवगुण भौतिक संसार और उसके नियमों का हिस्सा बन गए हैं।

एक और जुड़ी बात : एक निर्दोष भ्रम या अज्ञान शमा के नाम को लेकर तो था ही...इस अमर प्रेम की रिवायत में पहले के पन्नों में यह लिखा है कि 'शादी की रात शमा ने अपने नाम

के खामोश पर जिंदा भ्रम को साफ किया, कि उसका असल नाम क्षमा चौधरी है, यही लिखने का सही तरीका है...’, पर शमा ने सही कहा था, या प्यार की रक्षा के लिए झूठ को सच का दर्जा दिया था, इस पर दो मत हो सकते हैं, यूं भी सदा सत्यवचन कोई प्यार की कसौटी नहीं...पर पहले के वक्त में, जब उनके दिल अपूर्व प्यार की दशा में एक स्वर में धड़क रहे थे, यह एकदम साफ नहीं था कि वह शमा है या क्षमा, इन दो नामों में लंबा फासला है, यह मोहब्बत के रिश्ते के अमली पक्ष को काफी, बल्कि आमूल बदलता है, कोई तीसरा इसे इसी नजरिये से देखेगा, और तीसरे व्यक्ति का रोल महत्वपूर्ण है, क्योंकि इश्क के मसले में, अपने खुद के मां बाप, परिवार, समाज, तीसरे और रूखे हैं, शायद हमारे लवर्स के लिए यह रहस्य दिलचस्प पर बेमानी था, फिर भी वह रहस्य विराजा तो था ही, चाहे कुंडली मारे या यूं ही पसरा हुआ...जूलिएट ने भी तो एक बार रोमियो के अनसुने में व्याकुल मनुहार की थी :

ओ रोमियो, क्यों हो तुम रोमियो?

नकार दो पिता को, त्याग नाम दो...

नाम में क्या है रखा?

जिसे कहते हम गुलाब हैं, किसी और नाम से भी

उतना ही रहेगा सुगंधित

वैसे ही रोमियो, नाम के बिना,

रहेगा अनुपम उतना ही, जो वह है अपने में

रोमियो, दो छोड़ अपना नाम

और उस नाम की जगह, जो अंश तुम्हारा नहीं,

ले लो मेरा सर्वस्व!

हमराज के दिमाग में यह प्रश्न हताशा के क्षणों में उभरता था, वह पूछे तो क्यों और कैसे, शमा की समझबूझ में हमराज का अव्यक्त अहसास जरूर विराजमान था, पर उसने तब इस दुविधा को मिटाने के लिए कोई कदम नहीं उठाया, शायद उसके मन में अशुभ का वहम था, या कोई दुरूह मंशा, जो एक और रहस्य बन जाता है, इस बार शमा के लिए भी, क्योंकि उस वक्त उसने इस मसले पर तार्किक अंत तक कभी गौर नहीं किया, मतलब खुद से यह सीधा और कड़ा सवाल : कि वह क्यों नहीं हमराज को साफ कहती कि वह शमा चौधरी है, न कि क्षमा चौधरी, और चौधरी अंग्रेजी लिपि में तमाम तरह से लिखा जाता है, चौधरी कुलनाम मुस्लिम समुदाय में भी है...उनके पहले सेक्स प्रधान साल में वे आसानी से मिल पाते थे, पहले से पूरा प्लान, रूट, जगह का चुनाव करने की कोई जरूरत ही नहीं थी, जब जी चाहता, शरीर में वासना हिलोरें लेती, तो मिलन तुरंत हो जाता, उन दिनों में वे एक दूसरे के लिए छोटे नोट्स, हाथ के लिखे पर्चे भी छोड़ते, यहां वहां, क्लासरूम, लैब या लाइब्रेरी में, यूनिवर्सिटी के कॉफी हाउस के किसी बैरे के हाथ, सब नोट्स मिल जाते, कभी संपर्क में खलल या नाकामी रही हो, याद नहीं आता, तब, यदा कदा, शायद सेक्स की बहुतायत से त्रस्त या लज्जित होकर वे एक दूसरे को चिट्ठियां भी लिखा करते, टिपिकल, बनावटी की हद तक चापलूस और भावुक, मानो किसी लव लेटर्स की कुंजी की नकल, तब भी शमा हमेशा अंग्रेजी में लिखती, हालांकि उसे हिंदी का अच्छा ज्ञान था, वह हमराज के मुकाबले कहीं ज्यादा हिंदी साहित्य पढ़ी थी, जो हमराज को पता था वह ये कि शमा अच्छी बंगाली बोलती है, उन दिनों जब वे जब तब संसर्ग में डूबे रहते, उत्कर्ष के क्षणों में शमा की चीत्कार के शब्द बंगाली में निकलते, और कभी कभार किसी अनोखे संभोग के बाद के विरल, मार्मिक क्षणों में शमा हमराज के कान में बंगाली में लाड़ प्यार के शब्द बुदबुदाती, और एक बार उसने हंसते हुए कहा

भी कि बिस्तर में वह बंगाली बाघिन है...हो सकता है शमा बंगाली या आधी बंगालन हो, हमराज को इस बारे में कोई अंदाजा नहीं था, इतना पता था कि वह कभी बंगाल या कलकत्ता में नहीं रही, पर उसे माछ प्रिय था। हमराज का भी उस साल फिश के लिए टेस्ट बना, यह स्वाभाविक था क्योंकि उन्होंने काफी बार साथ खाया, वसलत के बाद कमरे में खाना मंगवाते थे, या शमा साथ लाती थी, हालांकि हमराज हिलसा की खूबियों से अपरिचित रहा, या बेक्ड फिश, फिश फिंगर्स और चिप्स की नजाकत से, क्योंकि पैसा मिलाने के बाद भी वे ढाबों और छोटे रेस्टोरेंट्स से आगे बढ़ने में असमर्थ थे, वहीं हमराज में बिहारी फिश करी और चावल के लिए स्वाद पैदा हुआ, और चोखा, जो वे कभी कभी ऑर्डर करते।

पर नाम की इस घनचक्करी को ज्यादा तूल देना भी ठीक नहीं, इस इश्क की रिवायत में यह मसला प्रेरक बल नहीं, जोकर के पत्ते से ज्यादा इसकी अहमियत नहीं लगती, कम से कम हमारे लवर्स के लिए।

हम वहां लौटें जब हम कह रहे थे कि अगर दगा या उलझाव कहीं था तो वह राह और मंजिल के रिश्ते में था, मानो फिरकाबंदी के दोष और अवगुण भौतिक संसार और उसके नियमों का हिस्सा बन गए हैं।

यह खयाल अपनी सत्ता की पहली ईंटें रखने लगा था कि उन्हें मिलने, एक दूसरे की बाहों में समाने और निरंतर चूमने की उतनी ललक नहीं थी, जितना न मिल पाने, मुलाकात की असंभावना के बारे में तर्क और यकीनी वजहें खोजने की। पर कहीं, उनके हृदय के एक कोने में यह संशय बनने लगा था कि कुछ पारलौकिक ने उनके ऊपर काली छाया डाल दी है, यह सिर्फ बदकिस्मती का राग नहीं है, भूल, गलती या अशुभ संयोगों की लंबी कड़ी नहीं है, इस तिलिस्म के विस्तार में एक पैटर्न या डिजाइन सा है, यह किसी बाहरी, अज्ञात शक्ति और संकल्प का अभ्यास है, द्वेष या वैमनस्य जैसा नहीं है यह, वरन एक ठंडा, निरपेक्ष वजन, हाथी के पांव सा जिसके नीचे चींटी का एक जोड़ा दब रहा है...यह अजीब सा था कि उन्होंने यूनिवर्सिटी में मिलने का कभी खयाल नहीं किया, या उन कई निचले किस्म के कमरों में जहां दो साल पहले उन्होंने बेहद आसान आजादी और बिना रिस्क के घंटों मग्न सेक्स में गुजारे थे। पर, जाहिर है, वे अपने इस नए, पाकीजा प्यार को उन ताल्लुक से दूर रखना चाहते थे, एक नई शुरुआत की चाहत थी, पर वो ये भी तय कर सकते थे कि दोनों में से एक दूसरे को उसकी बरसाती या हॉस्टल से पिक कर ले, यह तुलनात्मक रूप से आसान था, और उस पुल को कैसे हम या वो भूल सकते हैं, जहां वे दो बार मिले, और दोनों बार चमत्कार ही घटा था, पर शायद वे पुल से इसलिए बचते रहे, क्योंकि वह उनके लिए एक श्रद्धा स्थल की तरह था, बार बार अपने लिए दुआ मांगना भी तो ठीक नहीं...इस कठिन दशा को वे अपने प्रयत्नों और ताकत से जीतना चाहते थे शायद, ये भी संभव है कि खयाल और कयास के इस मुकाम तक वे पहुंचे ही नहीं। पर कुछ आकर्षण था, या जिद, जो उन्हें उस परकीय शक्ति के सामने ले जा रही थी, जिसे उन्होंने अभी पहचाना नहीं था।

अनहोने और असाध्य रहस्यों को पैरानॉर्मल के दरवाजे पर डाल देना, या कि यह ईश्वर की मर्जी है, अमंगल या पैशाचिक शक्ति का प्रकोप है, या कोई परकीय विपदा, ऐसा मान लेना आसान है, पर अगर तुम पूरे जोर से डटे रहते हो, गहरे तक मन और बाहर का मिजाज खोदते हो, असाध्य पहेली का समाधान तुम्हारा मकसद बन जाता है, तो तकदीर भी अंततः मुस्कराती है, और तुम उस नतीजे पर पहुंच ही जाते हो, जो हो सकता है लगभग असंभव है, असाधारण है, जिसकी कोई पूर्व मिसाल नहीं, पर जो फिर भी तर्क, विज्ञान, होनी और हेतु के दायरे में है।

हमराज और शमा की नौवीं डेट का, मसलन, उदाहरण है, जो घोर और बेनसी हद तक नाकामयाब रही, इस रेंदेवू के लिए उन्होंने नुक्ताचीन तैयारी की थी, हर पहलू के लिए दो स्तर का बचाव, हर इम्कान के लिए एक से ज्यादा समाधान, प्लान ए, बी, सी, डी...पूरा जैसे मिलिट्री स्टाइल इंटेलिजेंस ऑपरेशन, फिर भी कैसे नियति और प्रारब्ध के नेत्र ने उनके साथ हर अवसर पर महीन, छकाता झांसा खेला, वे चूक और गलतियां किसी अंतरिक्ष के सैटेलाइट की आंख की तस्वीर में प्रत्यक्ष और जाहिर होतीं, अगर उसने उस मशहूर सिनेमा हॉल पर निगाह जमाई होती, जहां उन्होंने मिलने और साथ में इवनिंग शो देखने का प्लान बनाया था, साढ़े पांच बजे का शो। दोनों लवर्स ने विस्तृत नोट्स एक्सचेंज किए थे, डूज और डोंट्स की लिस्ट, खतरे और संभव चूक, आखिरी मिनिट की हिदायतें और सुझाव, दोनों ने ईएमआई पर मोबाइल खरीदे थे, पर कॉल्स महंगे थे, यह पूर्व 2 जी स्कैम और नोकिया फोन का समयकाल था, पर प्यार की अनोखी पराकाष्ठा ही थी, और कहावत कि जरूरत आविष्कार की जननी है, कि उन्होंने 'मिस्ट कॉल' की युक्ति का आविष्कार किया, हालांकि टेलिकॉम ट्रिविया के इतिहास में यह तथ्य कभी दर्ज नहीं होगा, यूं भी वे प्यार के पुजारी थे, न कि जुगाड़ के आविष्कारक, खर्च के बावजूद कभी कभी वे जरूरी, एकदम से मन हुआ वाले आध मिनिट के कॉल करते, इतना ही कहना कि आई लव यू, या स्लीप वेल डार्लिंग, या डोंट लूज हार्ट...या सांकेतिक मैसेज, तब इमोटीकौन नहीं थे, यह सब भी आसान नहीं था, क्योंकि मोबाइल कवरेज अपूर्ण थी, कॉल्स गिरते थे, और शमा के लिए तो बहुत मुश्किल थी क्योंकि उसे कमरे की खिड़की से बाहर सिर निकाल कर गर्दन खींचनी पड़ती थी, कान से सटा मोबाइल, यह खतरा कि कहीं हाथ से मोबाइल फिसल न जाए, तब जाकर सिग्नल ठीक से मिलता था, कमरे के भीतर सिग्नल नहीं था...इतना डर लगता है, पर मजा भी है, शमा ने हमराज से बनावटी चिंता से कहा। काश मैं तुम्हें अपनी बांहों से तब थाम लेता, इतना रिस्क है इसमें, हमराज ने फटते हृदय से कहा, उसे लगा दिल के भीतर पिघलती मोम की बूंदें गिर रही हैं...शमा द्रवित होकर हंसी, मेरे बुद्ध, अगर तू मुझे थामने, दिल से लगाने के लिए हाजिर होता तो मोबाइल का क्या काम...तो मैं बुद्ध हूं?...थैंक गॉड, क्योंकि तेरी यही अदा मुझे सबसे प्यारी है...ये बुद्धपना और कुछ नहीं, अंधा प्यार है...वैसे भी, जब रेचल होती है तो वो मुझे पकड़ लेती है, कुछ याद कर शमा खिलखिलाने लगी, एक बार बार मैंने घाघरा टाइप की ड्रेस पहनी थी, जनपथ में खूब सस्ती मिलती हैं, तो वो ऊपर की तरफ फोल्ड होकर मेरी जांघों के ऊपर तक चली गई, तुम मेरी...मेरी क्या?...जिस्मानी हालत की सोचो, पैरों पर कोई कंट्रोल नहीं था, न जिस्म पर, मानो अभी मेरा गैरमौजूद लवर मुझे भंग करने वाला है...! इस तरह की नमकीन बातें और इश्कबाजी से वे अपनी निराशा और दिक्कतों को हल्का करते।

जानू, तुम्हें हॉल का ठीक से पता है न? तुम तो कई बार गए भी हो, शो की पिछली शाम शमा ने हमराज से पूछा...हां बिल्कुल, मेरी चिंता न करो, आई विल बी देयर...गुड, फिर पांच पंद्रह तक पहुंच जाना, मैं वहां पांच पांच पर हर हालत में हूंगी, इस बार मैं तुम्हें ढूंढ़ ही निकालूंगी चाहे मुझे मार्बल के फर्श के अंदर गोता क्यों न लगाना पड़े...पर इस बार, आई नो, कोई अड़चन नहीं होगी...यस, यस, मुझे भी पूरा इत्मीनान है, बशर्ते तुम्हारा ईमान न डोले!...काश डोल पाता, पर उस पर जंजीरें चढ़ गई हैं, मुझे आजन्म कैद भोगनी पड़ रही है, और मुझे मुकदमे का सम्मन तक नहीं आया...अच्छा, काम की बात, अगर कोई देर सवेर होती भी है, मानो बस, ऑटो खराब ही हो जाए, तो हमारे बैंक अप प्लान्स हैं, ये सिनेमा हॉल आइकॉनिक तो है ही, ये सबसे अलग है, चारों तरफ काफी खुला है, भीड़ कितनी भी हो, निगाह की रुकावट नहीं होती, और सबसे जरूरी, हमें अपनी सीट्स पता हैं, अगर बाहर किसी वजह से नहीं मिले, तो अंदर तो मिलना होगा ही, ठीक है न? चलो फिर, सी यू टुमॉरो, भगवान हमारे साथ है...और कामदेव भी!...अगर कुछ भी

न चले तो कामदेव का पुष्प तीर ही छोड़ देना, मैं बिंधे हृदय के साथ चला आउंगा...।

हमराज और शमा एक डेढ़ मिनट के अंतर से सिनेमा हॉल पहुंचे। मोबाइल पर बात संभव नहीं थी, हमराज का चार्ज खत्म हो गया था। पर दुष्ट और एकतरफा संयोगों के खेल में एक मिनट बहुत लंबा समय होता है। वे दोनों वहीं थे, सिनेमा हॉल के अंदर या बाहर, और एक घंटे से ज्यादा तक थे। अगर हम उस समयकाल में कहीं ऊपर से लगातार दोनों को एक ही फ्रेम में देख पाते, फिल्म के हेलीकाप्टर शॉट की तरह, तो साफ दिखता कि पूरी अदायगी या लीला मिलने या टकराने की क्षणिक, महीन भूल चूक की काव्य कोरियोग्राफी की तरह थी, या मानो बच्चों के प्राचीन खेल, 'आई स्पाई यू' का बैले शो। इमारत में अनेक दरवाजे थे, जो दोनों तरफ स्विंग करते हैं, जो सिनेमा बिल्डिंग के बाहरी, बीच के और सेंट्रल एरिया को जोड़ रहे थे। दो सिनेमा हॉल थे, आकार में ज्यादा बड़े नहीं, और कई एक किओस्क, दूकानें और ओपन रेस्टोरेंट। और हर पच्चीस गज पर ऊंचे, गोल आधार खंभे। गुंबदों की छत से लटके अनेक विशाल फानूस की नक्शशाजी से तेज, झमझम रोशनी गिर रही थी। जब वे खड़े थे या रुके थे, तो बदकिस्मती से ऐसे स्पोर्ट चुने जहां से एक दूसरे को देख पाना कठिन था। और, जब वे चलते हुए एक दूसरे को दूढ़ने की कोशिश में होते, और ऐसी स्थिति बनती कि आंखें अब मिलीं कि अब मिलीं, तो उनकी निगाह ने हर तरफ देखा, झांका, पर उस लकीर में नहीं जहां वे सामने दिखाई देते। ऐसा शायद हुआ ही नहीं कि एक बैठा या खड़ा हो, बैठी या खड़ी हो, और दूसरा दूढ़ रहा है, स्थिर और ठहरे टारगेट को लक्षित करना आसान होता है, यह खोज और तलाशी का पहला, बेसिक नियम है...कितनी ही बार ऐसा हुआ : एक किसी दरवाजे से एक जगह, कोने, घेरे में दाखिल हुआ तो दूसरा उसी क्षण अन्य दरवाजे से बाहर निकल रहा था। उनकी एंट्री और एग्जिट मानो परफेक्टली टाइम्ड थी, इस आशय से कि मिलना वर्जित है। मानो अणु भौतिकी के नियमों ने कुछ अवस्थाएं निषेध कर दी हैं। वे हॉल के भीतर जाकर अपनी सीट पर भी इंतजार करते हुए बैठे, पर फिर जब एक बैठता, तो दूसरा बाहर दूढ़ रहा होता। हमराज और शमा एक और तबाह, असफल शाम से हाल बेहाल करीबन एक साथ सिनेमा हॉल से बाहर निकले, पर अलग अलग निकास द्वार से।

पूरी शाम मानो चूक की स्याह अनवरत त्रासदी थी। अगर वे लवर्स न होकर महज मित्र होते तो यह वाकया एक प्रहसन की तरह लगता। पर यह सिर्फ एक उदाहरण है, जिसकी तर्कसंगत व्याख्या हम और हमारे लवर्स कर सके। इस व्याख्या में इत्मीनान और आशा का संचरण भी था। क्योंकि इस तरह के असहज और दुर्लभ योग सदा सदा नहीं होते। दुर्भाग्य की प्रकृति चिरंतन की नहीं, वह बदलता है, करवट लेना उसकी फितरत है। पर उस साल में जितने ऐसे वाकये घटे जहां वे तमाम कोशिश के बावजूद मिलने में नाकामयाब रहे, बहुसंख्य वे थे जिनकी कोई दुनयावी, भौतिक या तार्किक वजह या समझ नहीं थी। और यह था घिरता भय और विभ्रान्ति का महीन मकड़जाल।

हम इस अनंत प्रेमकथा के ऐसे पड़ाव पर पहुंचे हैं, जहां प्रेम अब भी स्थिर और स्थापित नहीं है, वह अधर में और विचारमग्न है, उसे कहीं गंतव्य पर पहुंचना है, और हमारे आशिकों को भी, दिनों दिन की एक समान घटना श्रृंखला को दोहराना, हर उनका मिलने का प्रयास, जो हर बार नाकामयाब हो रहा है, उसकी चीरफाड़ और बहुकोण विश्लेषण, इसका लाभ यहां तक पहुंचने के बाद न्यून हो गया है...सो हम हफ्ते, महीने गुजरने दें, और देखें कि पूरे एक साल के बाद उनके क्या हाल हैं, अगर यह आसानी से मुमकिन है...हो सकता है वे अपनी परकीय बलात जुदाई की सालगिरह का गम मना रहे हैं या जश्न, दोनों अलग, अपने अपने कमरों में, या कहीं और, पर शरीर से साथ नहीं, आमने सामने नहीं, हालांकि ध्यान, अनुभूति और ख्वाब में वे लगभग हमेशा

एक दूसरे के साथ होते, और यह उनकी संलाप की डायरियों में प्रकट और चित्रित था।

पाठक के जेहन में यह खयाल बन सकता है कि हमारा कथानक इन डायरियों से बना, बना है, पर सच्चाई यह है कि हमें सिर्फ डायरियों के अस्तित्व का ज्ञान है, रोमियो और जूलिएट की अनुदित प्रति की तरह ये डायरियां भी शमा और हमराज के बेडरूम में हैं, जब वे बिस्तर में होते हैं तो हाथ निकालने की दूरी पर, जाहिर है रोमियो और जूलिएट की तमाम प्रतियां प्रचुर संख्या में सुलभ हैं, सिर्फ टेक्स्ट, अथवा टीका के साथ, छात्रों के लिए कुंजीनुमा अनुदित प्रश्न उत्तरों के साथ, या संक्षिप्त संस्करण, ये देश के हर प्रांत की बुकशॉप्स, यहां तक कि पटरियों, बस स्टैंड और रेलवे स्टेशन पर सस्ते दाम में मिलती हैं, पर डायरियों की मात्र एक प्रति है, जिन्हें सिर्फ हमारे प्रेमियों ने देखा, पढ़ा है, उनकी तुलना की है, यहां तक की पन्ने दर पन्ने कंठस्थ हैं, पर हमने उन डायरियों को न देखा है, न पढ़ा है, लेकिन वे इस दंतकथा की अभिन्न और केंद्र हैं, जो भी हमराज और शमा के प्रेम प्रसंग से वाकिफ हैं, डायरियों का जिक्र जरूर करते हैं, और सबके अपने पाठ हैं, जो निश्चय ही कयास या अनुमान हैं, या खुद देखे का बैक प्रोजेक्शन, प्रेरित राय, पर जिस तरह से दीवारों के कान होते हैं, डायरियों की स्वतंत्र आंखें भी जरूर हैं, और खुद शब्द भी तो आजाद होते हैं, पन्नों पर बनी अपनी छाप छोड़कर वे आ जा सकते हैं, इधर उधर घूमकर वे शायद अपने अर्थ के सुराग खोजने हैं, फिर उसी पन्ने पर लौट आते हैं जो उनका अपना और अभिन्न है, सो इतना ही हम कह सकते हैं कि यह नैरेटिव शायद डायरियों के अंकन का पुनर्गठन और तसदीक है, और आज दो से ज्यादा दशकों के बाद जिस तरह यह दंपति दिखता है, उसकी अनोखी आभा और अचल प्रेम का सरल प्रवाह, उससे यह नैरेटिव संगत और अनुरूप है, हमराज और शमा, उनकी गृहस्थ कौंध, उनका हर कृत्य और भाव व्यंजना हमारे इस निर्भीक और गुस्ताख दावे और बयान की पुष्टि करता है। पर इस बारे में अभी इतना ही कहना काफी है।

...इस कथा के आगामी क्रम बिखरे और वियोजित से होंगे। यह होना ही है, छलांगें होंगी और तीखी गिरावट, क्योंकि हमारे लवर्स के हालात और जीवन अस्त व्यस्त हैं, आखिरकार हम ऐसे समयकाल से जूझ रहे हैं जब उनका मिलना, एक दूसरे को नजर भर देख पाना मानो बावजह निषिद्ध है, यह अजीब सी और हैरतमंद विकृति है, और भेद, वे केवल फोन पर बात कर पा रहे हैं, और वह प्रयास भी मुश्किल और विभ्रमित होता जा रहा है...मन के हालात दरबंद से, मोहब्बत के जिस्मी मलहम से महरूम, न जाने किस शक्ति या विपदा की वजह से इश्कबंदर।

कोई सीधा संबंध नहीं है, पर इन्हीं दिनों कहीं एक वृद्ध महिला थी, वह ढेर दुख का बोझा उठाए गांव गांव फिरती, कोई राहगीर पूछता अम्मा इतनी बड़ी गठरी में आखिर क्या है कि सांस फूली जा रही है, तो वह कहती, बेटा इसमें दुख भरा है, उसके कपड़े चिथड़े हो रहे थे, उम्र के लिहाज से शरीर हद का जवान था, पर चेहरे पर झुर्रियों का घना जाल, वह बड़बड़ाती सुनी जाती, कि कयामत का वक्त है, एकादशी के दिन द्वादशी हो गई है, चतुर्थी की सप्तमी, और अमावस को पूरा चांद निकला है, चांद भी दगा दे रहा है, इंसान का क्या...पर यह एक अकेली औरत की खास व्यथा थी, कोई आम चलन नहीं।

हमारे लवर्स के बीच मुलाकातों का घोर, अकल्पित अकाल पड़ गया है।

यह भी भूलने योग्य नहीं कि मिजाज के मौसम बदलते हैं, और मौसम के मिजाज भी, चाहे जंग हो, इतिहास का चक्र, क्रांति, सामाजिक अन्याय या इश्क की दशा।

डायरियों में चिट्ठियों का जिक्र जरूर रहा होगा, और उनका चकित और गद्गद हो जाना, जब उन्हें अचानक यह याद आया कि फोन पर बात करने की जगह या उसके अतिरिक्त, वे एक दूसरे को पत्र लिख सकते हैं, उस पर तो कोई परकीय, अलौकिक निषेध नहीं है, चिट्ठी का अपना

अलग वजूद है, और रोज के अनगिनत पत्रों में, जिनमें कानूनी आदेश, वारंट, जीवन मरण की सूचना शामिल है, शादी ब्याह के पैगाम, दूर दराज देशों के बीच राजनयिक पत्र, लाखों लाख शिकायतें, अर्जियां, बैंकों की आवती, पावती, हर मर्ज के पार्सल, इन सबके बीच हमराज और शमा की चिट्ठियों पर पाबंदी का कोई हिसाब नहीं बन सकता, फिर आपस में मिलने की नाकामयाब कोशिश एक निजी जतन था, उसमें निषेध की गुंजाइश फिर भी थी, यह उनका बारीक, अगम्य, न पकड़ में आ रहा दोष हो सकता है, पर चिट्ठी एक आम और सस्ती व्यवस्था है, इंडिया पोस्ट की स्पीड पोस्ट, और साधारण डाक का काम काफी भरोसेमंद हैं, इसके अलावा कितनी ही कुरियर सर्विस हैं, और सौ की एक बात, अगर एक लड़का लड़की न मिल पाएं, और उन्हें कोई रोक नहीं रहा, न खिलाफत कर रहा है, तो यह उनकी निजी समस्या या दुर्भाग्य है, इसकी कोई नालिश नहीं, पर पत्र पर रोक लगाना तो सेंसरशिप है, लोकतंत्र और मौलिक अधिकारों का हनन, इस देश में एक वक्त इमरजेंसी जरूर लगी थी, पर जनता ने ऐसा सबक सिखाया कि किसी सरकार का दम नहीं वो ऐसी हिमाकत फिर करने की कोशिश करे, ठीक है भविष्य के प्रति और लोकतंत्र के बारे में शिथिल और बेचिंता नहीं होना चाहिए, पर कुल मिलाकर स्थिति पूरी तरह इस युक्ति के पक्ष में है, यह शत प्रतिशत सफल होगी, होनी ही है, हमराज और शमा इतने भौचक और आनंदित थे मानो चिट्ठी के कंसेप्ट का वे आविष्कार कर रहे हैं, वे पुलकित थे कि खतोखती कहीं ज्यादा जाहिर, आजाद और अंतरंग है, वे ऐसा सब लिख सकते हैं जो फोन पर नहीं कहा जा सकता, प्रेम के इतिहास में खत का हमेशा अव्वल स्थान रहा है, आज भी है, प्रेमपत्रों के न जाने कितने संकलन, ग्रंथ हैं, जो जवां दिल चुन चुन के पढ़ते हैं, तो जब तक शरीरी अलगाव का काला जादू बरकरार है, चिट्ठी लिखने से बहुतेरी सांत्वना मिलेगी और खुशी भी।

जिस शाम यह चिट्ठी का खयाल बना था, वह उनके दिल में आज तक क्षण दर क्षण हूबहू दर्ज है, इस कथा में उसका शामिल होना फख की बात है।

उस शाम की गिरती आभा में हमराज दीवार पर रेंगती परछाइयों से मानो मंत्रमुग्ध और जड़वत था, फोन का रिसेवर उसके कान से लगा था, कुछ पलों के लिए उसका ध्यान टूट गया था, वह दूसरी तरफ शमा का अनिश्चित मौन सुन रहा था, फिर भयातंक का इशारा उसके जेहन में कूदा, कि शायद उसने शमा को फोन किया ही नहीं था, न उसने किया था, रिसेवर उसके कान से लगा था और उसे झपकी आ गई थी, वह अभी अभी एक सपने से जगा है, उसे बस सपना याद आ ही रहा था, तस्वीरों का एक प्रवाह, बेहद सजीव, उसकी चेतना को बस छूता हुआ, तब शमा की उतावली आवाज उसके कान में गिरी।

मेरे निरे, न्यारे से भोंदू, हमेशा निराशावादी, ये सुनो, जो अपनी डायरी में मैंने आज सुबह ही लिखा है। क्या? हमराज के सवाल में नींद और बेमेलपन था। ये एक सूत्र, कहावत है, मेरी अपनी ईजाद, अब ध्यान से सुन : *जितना हम कम मिलते हैं, उतना ही हमारा प्यार ज्यादा होता है, यह विपरीत या प्रतिलोम का रिश्ता है। तो अगर हम कभी न मिल पाए तो हमारा प्यार अनंत, इनफाइनाइट है!! समझे? तुम्हारी गणित तो मुझसे कहीं ज्यादा पक्की है? है कि नहीं?*

हमराज अब पूरी तरह सचेत था, क्या लड़की है शमा, मेरी नन्ही जान, उसने सोचा, कैसी अद्भुत ऊर्जा और हठ है इस छोटी सी लड़की के विशाल, उदार हृदय में, उसे अचंभा और फख हो रहा था, हमराज के दिल में शमा की यही तस्वीर थी, नन्ही जान, उसकी कमसिन, हमदर्द आवाज का कच्चा जिस्मानी गठन, जबकि शरीर से वह हमराज के बराबर लंबी और सुगठित थी, सशक्त मांसपेशियां...वाह क्या खयाल है, उसके मुंह से निकला। और मेरे पास एक बेहद सरल आइडिया है, शमा ने कहा, क्यों नहीं हम एक दूसरे को चिट्ठियां लिखते, कितना कुछ मन में बचा रह जाता है,

जिसे विस्तार और प्यार से हम शेयर कर सकते हैं, तुम और मैं?...चिट्ठियां?...जी, प्रेम का सबसे पुराना और बेहतरीन पैगामरसा! एक साथ हमराज हर्षोन्माद और मूर्खता के रसिक अहसास से सराबोर हो उठा, बताओ ये आसान सा अमल मेरे दिमाग में नहीं आया, उसने शमा को मन ही मन दाद देते हुए सोचा। उन्होंने तुरंत एक दूसरे के पते कागज पर नोट किए, पिन कोड नंबर, और अधीर, प्यासे मन से प्रण करने लगे कि वे रोज एक दूसरे को खत भेजेंगे, संगम फिल्म का प्रेमपत्र का गाना तत्काल दोनों के मन में अलग अलग कौंधा था, एक ही खत क्यों, जितनी बार दिन में मन करे खत भेजने चाहिए, कितने भी हों...नहीं नहीं, हमें विवेक और सबर से चलना चाहिए, जल्दबाजी का काम बिगड़ता है, आखिर ये मुश्किल के दिन हैं, सामान्य नहीं, बहुत सी चीजें हैं जिनका कोई तर्क या वजह नहीं बन रही, या वो साफ और भरोसेमंद नहीं हैं, इसमें कोई शक नहीं कि किस्मत और सितारों का योग अभी हमसे रूठा है, तो हम हफ्ते में दो चिट्ठियों से शुरू करते हैं, दो तुम लिखना दो मैं, फिर उसके बाद फ्रीक्वेन्सी अपने आप बढ़ जाएगी...।

तो इस तरह उन्होंने एक दूसरे को पत्र लिखने और भेजने शुरू किए, पर इसका नतीजा ये नहीं था कि मिलने के लिए उन्होंने अपनी कोशिशें बंद कर दीं, वे हर दस दिन में एक बार जरूर मुलाकात का प्लान बनाते, मानो कोई रस्म निभा रहे हैं, पर हर बार महरूम ए दीद ही हाथ लगी।

उनकी चिट्ठियों में इश्क ए जूनून का ज्वार था, और शाश्वत का प्रज्ञा बोध। अर्पण की घनी चाह और वियोग की कशिश। त्याग का हठ और वफा की लौ। गैरमुमकिन की तकलीफ और एकदिली का प्रण। दुलार का स्पर्श और उलझनों के काटे...सुंदर और जब का उत्सव और सहजीवन के सामान्य अमली विमर्श। सूखे नेत्रों के ख्वाब और भीगी पलकों के शुबहे...तकरार और लाड़ की पन्नों में जुटी, गुंथी मिली कशमकश...ये सब प्रचुर था उन चिट्ठियों में, स्याही का जल और रक्त, बोलते शब्द, लाइनों की स्वप्न राह, लिफाफों में छिपी पंखुड़ियां, केश का इकलौता रेशा, नीले आकाश और अनेक रंगों के इंद्रधनुष की तृष्णा, अभिव्यक्ति का झरता, स्मारक प्रकाश...प्रेम का इजहार मौलिक और अनुपम था, उनकी प्रदीप्त इंद्रियां और मन की शक्ति का सतेज संघनन, कल्पना की संयत उड़ान का प्रवाह, उनकी चाहना और प्यास के खट्टे और मीठे फल, अवरुद्ध, निषिद्ध प्रेम की कुंठा और निराशा...यह सब चमत्कार की तरह पेन की नोंक में समा गया, पेन पन्नों पर जब दौड़ रहा होता, जो उन्होंने लिखा वह कविता थी और गद्य, पावन प्यार का दस्तावेज और सूक्ति, ऐसा प्यार जो नीचे जमीन न पाकर भी चांद तारों तक उठा था, और निश्चित, पत्रों में ऐसे पैरा और अनुक्रम थे, पंक्तियां जो मौलिक होकर भी रिल्के के काव्य और नीत्शे के ज्वरित और दीप्त चिंतन की याद दिलाती थीं, और मीर, साहिर जैसी महान विभूतियों की अनन्य शायरी और नज्म की।

दो हफ्तों के बीतते उन्हें पहले अंदेशा, फिर अहसास हुआ कि उनकी चिट्ठियां एक से दूसरे के पास नहीं पहुंच रहीं हैं। और फिर यह एक प्रकार का अलंघनीय नियम बन गया। पर चिट्ठियां गायब तो नहीं हो सकतीं, वे कहीं न कहीं तो जरूर होंगी? कहाँ? वे पास के पोस्ट ऑफिस गए, पूछा भाला। बाबू और इलाके के पोस्टमैन से बहस, विनती की, पर कुछ हाथ नहीं लगा। हमराज को लगा उसने काली उजली को कुछेक बार पोस्टमैन से चिट्ठी लेते देखा है, पहले तो कभी नहीं देखा था, उसे कौन है चिट्ठी भेजने वाला? एक बार हमराज ने देखा कि चिट्ठी लेने के बाद उजली ने हंसते हुए जवान लड़के से पोस्टमैन के गाल की चिकोटी काटी है। कहीं वह उसकी चिट्ठियां चुरा तो नहीं रही? पर पूछना भी खतरनाक था...उधर शमा भी बेहाल सी, और शक्ति। ये माजरा क्या है? कोई संतोषप्रद जवाब समझ में नहीं आ रहा था। उन्होंने मिलकर एक तरकीब निकाली। आइडिया जुझारू और स्मार्ट था, शमा का था, हमराज अवाकू, स्तब्ध रह गया, भगवान इस नन्ही,

मेरी जान के कितने रूप हैं, कभी हार नहीं मानती, पत्थर से पानी निचोड़ लेती है, उसने सोचा तो महीन, ऐंद्रिय फुरफुरी सी आ गई, फोन हाथ से गिरते गिरते बचा। उन्होंने एक दूसरे को डमी चिट्ठियां भेजीं, कोरे कागज, या खाली लिफाफा, या जिसमें अनर्थक सी अखबार की कटिंग्स थीं, और आश्चर्य और कातरता, जिसका शायद उनके जेहन की भीतरी परत में भय और अपेक्षा थी, वही हुआ। ऐसी सारी डमी चिट्ठियां उन्हें मिलीं, पोस्टमैन ने बेशर्मी से इनाम मांगा, कि बेबी...बाबा, अब चिट्ठियां आई तो, अकाल तो खत्म हुआ, पर ऐसे पत्र जो उन्होंने मन और खून से एक दूसरे को लिखे, वे उन्हें कभी नहीं मिले। तो क्या कोई व्यक्ति या व्यवस्था उनकी चिट्ठियां खोल, पढ़ रही थी? उन्हें संसरशिप और जासूसी का बेचैन खयाल आया। पर ऐसा क्यों? उनसे किसी का क्या लेना देना? इस रहस्य का क्या अर्थ था? बाद में जब उन्हें पत्र भेजने की व्यर्थता का पूर्ण अहसास हो गया, उन्होंने आपसी सलाह से चिट्ठियां भेजनी बंद कर दीं। पर वे अपने से, बिना एक दूसरे से कहे, एक दूसरे को रोज पत्र लिखते रहे, यह उनकी मजबूरी हो गई थी : बेडाक की चिट्ठियां।

संलाप की डायरियों के अलावा ये चिट्ठियां उनके निषेधाज्ञा प्यार की आस्था का मनहर बयान थीं।

उन खतों में कई ऐसे थे जो अक्सर लड़के लड़की एक दूसरे को भेजते हैं, जैसे, जिंदगी भर का साथ, साथ मरेंगे साथ जीएंगे, मेरी महबूबा मेरी जान, जन्म जन्म की मोहब्बत, सौ बार एक कागज पर तीर से बिंधी दिल की तस्वीर, सौ लिपस्टिक के निशान के नीचे रंगीन पैन से 'किस मी किस मी' की वंदना...ऐसे खत भी एक दूसरे के पास नहीं पहुंचे।

संयोग से, उन्होंने सब चिट्ठियों की कापियां अपने पास रखी थीं। बाद में, दशक के बाद, उन्होंने एक भावुक, कामुक भेद से सराबोर रात को पुराने बक्सों से अपनी न पहुंची और न भेजी चिट्ठियों के बंडल निकाले, उन्हें नाजुक स्पर्श से खोला, और जाने क्या सोचकर उन्हें दिनांक वार आपस में मिला दिया। और तब एक चमत्कारिक हकीकत प्रकट हुई। तारीख के हिसाब से चिट्ठियां इस तरह फाइल में लगीं कि एक हमराज की, फिर एक शमा की, इसी तरह पूरी सात महीनों की शृंखला, कुल मिलाकर करीब दो सौ पत्र, और जब उन्होंने उन्हें कई दिनों में पढ़ा, तो पत्रों का मसौदा और अंतर्वस्तु, उनका मिजाज इस तरह था, मानो सच में लवर्स एक दूसरे की चिट्ठियों का जवाब दे रहे थे, उन्हें भेज रहे थे, और पा रहे थे! यह एक बेहद हसीन अजूबा था, जिसने मानो उनके प्यार को किसी दिव्य शक्ति से बांध दिया।

...निषेधाज्ञा दमघोंटू, पराजित दशाओं से हमराज जल्दी मायूस और उदास हो जाता, पर आशा की नन्ही सी किरण, नाकामयाबी या शिकस्त का कैसा भी भरोसे योग्य तर्क, उसके उत्साह को पुनः कायम कर देता, खास तौर से शमा की तसल्लीमंद आवाज, प्रेम से लबालब...शमा यूं भी अधिक साहसी और स्थिर थी, वह आसानी से हताश नहीं होती थी, बुरे, कठिन और दुरूह वक्त को हल्का बनाने या उड़ाने के लिए वह विनोद का इस्तेमाल करती : टूटी फूटी फ्रेंच में देसी टाइप के मजाक, कुछ गंदे वाले भी, फ्रेंच में वे अजीब से सुनाई देते, इस तरह वह हमराज का मूड अच्छा करती, उसे हंसाती, या मन बहलाती, और कभी कभी इस तरह खुद के डर और आशंकाओं को दबाने का प्रयास करती, इन दिनों वह खूब हमराज को चिढ़ाती कि वह आत्मग्रस्त हो रहा है, ऑबसेसिव...वू...ऑबसेसनेल, वह कहती और हंसाती, तब हमराज कहता कि तुम्हारी रेचल चुड़ैल या डायन है, गुस्से से नहीं, पर रसिक जवाबी मुकाबले की तरह...हां है तो, जादूगरनी, और जलपरी भी, ऐसी मलमली त्वचा और जिस्म के ऐसे झूले और घुमाव कि देख लोगे तो मूर्छा आ जाएगी, गारंटी की बात है...फिर अगले ही पल शमा मानो टीचर का रुख अख्तियार कर लेती, अच्छा वो बात कहो जो मैं सदा सदा सुनना चाहती हूं?...हमराज गला साफ करता, और कहता,

आई लव यू...नहीं ये नहीं, वो जो अगली पायदान का बयान है। हमराज : वी आर लवर्स! शमा : येस, वी आर लवर्स! 'नू सम अमों...पर शमा किन्हीं दिन ये भी साथ में जोड़ देती : वी आर गधाज, डौकीज!!...और हमेशा की तरह, वह सही होती, गलत से ज्यादा सही, हालांकि इस नतीजे को दर्ज करने में थोड़ा वक्त लग सकता है, पीड़ा भोगना और दूरदर्श का होना जरूरी है, क्योंकि इश्क मोहब्बत के मसले में, जब अज्ञात और असंगत तत्व प्यार की राह को रोक रहे हैं, और उन पर किसी का जोर नहीं, तब इश्कमग्नो को अक्षरशः प्रेम की गठरी को गधे की ठोस और अमित दृढ़ता और हठ के साथ ढोना पड़ता है। शमा को विवश और बाध्य जुदाई के शुरुआती दिनों में ही यह धुंधला आभास होने लगा था, हालांकि वह इस बारे में सचेत और चिंतनशील बाद में हुई, कि इस प्यार को पुख्ता करने और उस पर डटे रहने के लिए, कि उनके प्यार पर कोई आंच न आने पाए, वह सुरक्षित रहे, और पाक रहे, उस पर कोई खतरे का अंदेशा न हो, उन दोनों को कठिन मेहनत करनी होगी, यह गधे का काम है, कम नहीं, तभी वह हमराज से कहती कि जिस जानवर को वह देखने के लिए लालायित है, पर देख नहीं पाती, वह गधा है, न जाने सारे गधे कहां चले गए इस शहर से, इंसाननुमा गधों की तो कोई कमी नहीं दिखती, और जिस आदमी को वह भरसक गले लगाना और प्यार करना चाहती है, पर मुमकिन नहीं हो रहा, वह सीमा से बाहर है, वह तू है, इससे यह जाहिर होता है कि तेरी प्रकृति में गधे का कोई अंश है, पर हां...ये जरूर है कि यह जानने का फिलहाल कोई तरीका नहीं कि गधे के आचरण में तेरी कोई छाया है कि नहीं...इसलिए मैं सोचती हूं कि खुदा के रहम से अगर हमारी कभी शादी हुई, बशर्ते हम वेदी पर एक साथ पहुंचने में कामयाब हो सके...और तुम बरात लेकर आए, तो वह जरूर गधों की बारात होगी, हालांकि अगर ऐसा हुआ तो मैं तुझसे ज्यादा प्यार ही करूंगी, पर तुझे सारी बात और मसलों पर गौर करना चाहिए कि जो तू गधे पर बैठकर बारात लेकर आया तो लोग क्या सोचेंगे!...इस तरह की बातें शमा बनाती, ये उनकी अजूबी जुदाई के शुरू के महीने थे।

रेचल ने चिड़ियों के न पहुंचने की विपदा के बारे में शमा से सुना। कुछ देर के लिए वह दुखी सी लगी, उसे शमा के लिए बुरा लग रहा था, पर जल्दी ही उसने मूड को जश्न की राह पर मोड़ दिया। वे बाहर से डिनर लेकर आए, फिर रेचल ने रेड वाइन की एक बोतल खोली, और दोनों तेज गति से पीने लगे, कुछ ही देर में दोनों मशगूल नशे में थे, उड़ने की तमन्ना उमड़ रही थी। नशेमन सदा एक फोकल पॉइंट या फोकस चुनता है, और न जाने क्यों दोनों का दिल लाल रक्त रंग पर ठहर गया, लाल, रक्त का रंग, दिलेरी की कसौटी और जीवंतता की आजमाइश। और कुछ ही देर में लड़कियां खून में सने पैगाम और रक्त की लकीर से लिखे खतों की बात कर रहीं थीं। तुम क्यों नहीं ट्राइ करती, रेचक मानो शमा को इशारा कर रही थी, अपने दिलदार को रक्त के अक्षरों से कुछ क्यों नहीं लिखती। इशारे या सुझाव ने जल्दी ही वायदे की शकल पा ली, ऐसा काज जिसे करना ही है, हो सकता है इस एक पहल से उनकी सारी रुकावटें मिट जाएं, तो अगले आध घंटे में, मशक्कत के बाद, रेचल ने यह वाक्यांश चुना : *मेरे प्यार, मेरे जानेमन, हर गंवाए दिन को हम दो दिनों से पूरा करेंगे, प्यार के हर जतन, इश्क और वस्ल की हर सांस मैं दूना दूंगी तुम्हें, ये वादा और वचन है।* और फिर वक्त के एक स्वप्निल, विलक्षण, मार्मिक स्लाइस में, जब दोनों बेतरतीब हंस रहे थे, खूब बोल रहे थे, शमा आंसुओं से रोई भी, उन्होंने रूसी कहानियों में डुएल की घटनाएं याद कीं, कलाई का ब्लेड या रेजर से चीरना, खून, कहते हैं, फव्वारे की तरह फूटता है, महिला शक्ति की बातें, जेंडर न्याय, सेक्स और वासना के अफसाने, रेचल ने मार्खेज के जग मशहूर नॉवेल की पहली लाइन एक एक अक्षर अलग करते हुए, रुकते रुकते, मानो पूरा स्वाद निचोड़ते हुई कही : *तिक्त बादाम की खुशबू उसे हमेशा इश्क ए नामुराद के हकीकी*

मुकद्दर की याद दिलाती थी...दोनों सहमत थे कि नामुराद मोहब्बत अगर नाबर्दाश्त सितम है, तो मोहब्बतों में वह सबसे ऊंची है, आखिरकार, किसी अनहोने पल में शमा ने एक सुई निकाली, उसे जलती मोमबत्ती की लौ से आग दी, पहली उंगली के सिरे को चुभोकर रक्त की बूंद खींची, और बड़े अक्षरों में एक कोरे, सफेद, लकीरहीन कागज पर फ्रेंच में वह वाक्यांश लिखा जो रेचल ने सुझाया था, रेचल फ्रेंच में बोलती गई, और शमा खून की स्याही से लिखती गई...बाद में शमा ने ध्यान से उस कागज की तह बनाई और उसे संभाल कर अपने संदूक के तल में एक फाइल कवर के अंदर सहेज कर रख दिया...लिखने के बाद शमा विभोर और आनंद की मुस्कान से मुस्कराई थी, और रेचल, वही ऐसा करने की सोच सकती थी, उसने शमा की उंगली के सिरे से रक्त की अंतिम बूँदें अपनी उंगली से सोखी, और उसी गति में रक्त की लाली को शमा की मांग में मिला दिया! अब, आज, इस क्षण से, हमराज और तुम शादीशुदा हो, इस ब्याह की मैं गवाह रही। अब तुम दोनों को न दानवी फरिश्ते, और न आसुरी देवता, कोई अलग नहीं कर सकता. ..तथास्तु!! उन्होंने और वाइन पी, और नशे में और डूब गई, कमरे की चार दीवारों के बीच का विस्तार पूरी दुनिया के बराबर था।

...एक रोज, पूरे दिन आकाश में धूम कोहरा, जो दिल्ली का शाप बन गया था, छाया रहा, और फोन की लाइन पर हमराज शमा को स्पेस टाइम के 4 डी, चार आयाम के चित्र प्रतिरूप को सब्र के प्रयत्न से समझा रहा था : एक्स, वाय और जेड एक्सिस, यह किसी एक वक्त बिंदु पर हमारा लोकेशन देती है, लैटिटूड, लॉंगीटूड के टर्म्स में हमारा जीपीएस कोऑर्डिनेट...यह व्यवहारिक पक्ष है...व्यवहारिक क्यों, शमा ने पूछा, कि लगे उसका ध्यान बंटता नहीं है। ऐसी मीमांसाओं का क्या फायदा, वह रेचल से कहती, और रेचल ने कहा कि रति चरम के सबके अपने अपने दिमागी विआग्रा होते हैं, फिर ये तो विज्ञान का मसला है, दुनिया का फायदा है इसमें...इसलिए, हमराज ने कहा, क्योंकि कई ज्योमेट्रीज और थिओरीज 5, 7 और 9 डिमेंशन की भी है, शांति, हिंसा और इश्क का उनसे कोई लेना नहीं...तो उन्हें मैं दरकिनार कर रहा हूँ...तो क्या इतनी ही आसानी से प्यार भी दरकिनार हो सकता है? शमा का मंतव्य माहौल को हल्का करना था, पर असर माफिक नहीं हुआ। प्लीज मेरी बात जरा देर के लिए गौर से सुनो, हमराज ने कुछ चिढ़न और बेसब्री से कहा, तब शमा ने दिल के लबों पर उंगली सटा ली, हमराज ने घनी सांस के सहारे कहा कि समय जगत का चौथा आयाम है, जो हमारे प्राण का अभिन्न है, वह है वक्त जिसमें हम बीतते हैं, जो हमारे भीतर बीतता है, जिससे अतीत, वर्तमान और भविष्य के बहाव का निर्माण होता है...हमराज अब एक दार्शनिक की तरह वाचाल हो गया था, इश्क की नमी और तृष्णा उसमें अंतर्धान, गुम सी हो गई थी...और चतुर्याम के जगत में टाइम की टी एक्सिस का भी एक बिंदु है, इस तरह एक्सवार्डजेडटी का फोर डी बिंदु बनता है, जो किसी एक क्षण में हमारा लोकेशन स्थापित करता है...और हमारे मामले में ये हरे बिंदु स्पेस टाइम, यानि दिक्काल में कभी अभिसरित, या एक दूसरे में विलीन नहीं हो पाते। यह हमारे प्यार की मूल समस्या है...शरीर का शरीर से मिलन, जो इश्क ए जान की शर्त और दशा है, वह कभी कायम नहीं हो पाता, वह अज्ञात कारणों से वर्जित है... हमराज का स्वर जैसे किसी घने अवसाद में डूबता सा लगा।

नहीं, शमा ने तुरंत दिल और भावना के स्तर से कड़ा प्रतिवाद किया, उसे अपने को, अपने प्यार को, और जान से भी ज्यादा प्यारे हमराज को बहस और मीमांसा की इन छद्म बेड़ियों से बचाना, निकालना था। असल दिक्कत, मेरी जान, ये है कि तुम नक्शों की तानाशाही से आत्मग्रस्त हो, मैप जिंदगी का ईश्वर नहीं, बात सिर्फ इतनी है, और शमा ने गिनाना शुरू किया : अ) तुम्हारा

दिशा का सेंस जीरो है, ब) हमारा मुकद्दर इन दिनों साथ नहीं दे रहा, और यह सब कुछ निरंतर के बेनसीब संयोगों का स्याह नतीजा है, स) हमने अपनी मुलाकातों की कोशिशों में एक दूसरे को क्षणों और इंचों से मिस किया है, और इसके खालिस और पक्के सबूत हैं, और, ड) ये एक दुखद स्थिति और क्षणिक विपदा है, काले बादलों की तरह आई है, तो छंट भी जाएगी, धूप और स्वर्ण किरणें हमसे खफा नहीं, जमाना और वक्त हमारा दुश्मन नहीं, समाज अगर हमारे पक्ष में नहीं तो विपक्ष में भी नहीं है, दुनिया अगर मेहरबान है तो सर आंखों पर, और अगर उदासीन है, तो मेरी जूती पर, मेरी जूती का प्रताप तुमने अभी देखा नहीं...जो प्यार करते हैं, उनके सिर्फ दिलोजान एक होने चाहिए, और तुम और मैं अपने इश्क के जुनून से हटने वाले नहीं, चाहे जान क्यों न चली जाए साथ साथ...और मेरे प्रियवर अगर अनजान शक्तियां हमारा इस्तहान ले रही हैं, तो हमें लड़ना चाहिए, उनका विरोध कर उन्हें पराजित करना होगा, पलायन कोई विकल्प नहीं। मैं इसे अपनी मोहब्बत, मतलब तेरी और मेरी मोहब्बत के अमृत मंथन का करतब मानती हूँ, जिसमें हम खरे उतरेंगे, यह एक गैरजरूरी पर इस्तहानकश निषेध है, और कोई निषेध स्थायी नहीं हो सकता क्योंकि जगत की फितरत बदलाव पर आधारित है, जो आज का सच या तथ्य है, वह कल का झूठ और मतिभ्रम है, वह सदा का या शाश्वत नहीं...इस तरह शमा से अमृतवाणी झरती रही, वह मानो किसी दैवयोग के अधीन थी, उसका गला सूख गया था, पर शब्द और अर्थ स्थिर और अटल थे, हमराज आश्चर्यचकित था, वह शमा की वाक्पटुता में जैसे मीठे गोते लगा रहा था, और एक बार फिर वह उस पर मर मिटा, मेरी छोटी सी जान, इस जिस्म के अनूठे सौष्ठव में न जाने कितनी तरह के रत्न और जिन्न हैं, मेरी शमा के प्यार का कोई ओर छोर नहीं, यह जलपरी, रूप की रानी, मेरा दिल मेरी जान, समुंदर की गहराई से भी गहरा इसका प्रेम है, अतल के अनंत को हृदय में समाकर भी इसके प्यार का सागर छलकता है, लहरों की चंचलता और पराक्रम से मुझे भिगोता है...।

कुछ पल का स्तब्ध विराम। अचानक एक खयाल शमा के ज्वरित मस्तिष्क में कौंधा। अच्छा सुनो, उसने बदली, उत्सुक आवाज में कहा, अभी अभी एक आइडिया मेरे दिमाग में गिरा है, आसमान से गिरा है, पर बेअक्ली के खजूर में नहीं अटका!...क्या?...मिलने के लिए एक आसान, सिंपल समाधान है। क्यों नहीं ऐसा करते कि अलग अलग मिलने के स्थान तय करने की जगह तुम मुझे मेरे हॉस्टल के कमरे से पिक कर लो। आधी राह तो खुद ब खुद तय हो गई, बिना कोई स्थान या स्थल निश्चित किए! नहीं? शमा ने इस तरह फुसफुसाया मानो कोई सुन न ले, मानो यह किसी अदृश्य शक्ति के खिलाफ बगावत का कदम है, या कोई गैर कानूनी षड्यंत्र है।

एकदम नहीं, हमराज ने छूटते ही कुछ तल्ल, खिन्न आवाज में कहा मानो उसे इस प्रस्ताव का पहले से ही अनुमान या अंदेश था, और वह उस पर इत्मीनान से घंटों सोच चुका है, उसकी कांट छंट कर चुका है। पर क्यों, शमा ने आश्चर्य और हठ से पूछा। मैं मानती हूँ मेरा हॉस्टल आने की कोई जगह नहीं, रोमांस के लिए वह अटपटा है, शायद मनहूस है, लोकेशन भी दूर और आउट ऑफ द वे है, यहां पहुँचना मशक्कत का काम है, तुम्हें कम से कम एक किलोमीटर चलना पड़ सकता है, तुम ट्रैफिक जैम में फंस सकते हो, और घंटे लेट हो सकते हो, ये जरूर तकलीफदेह है, मैं मानती हूँ, पर मैं भी तो रोज आती जाती हूँ, मतलब मैं खुद को पिक अप नहीं करती, ये फरक जरूर है, पर मैं अपने कमरे से निकलकर ही बाहर जाती हूँ, जब भी तुमसे मिलने निकली या किसी और काम से, तो उसी तरह तुम भी आ सकते हो, तुम्हें बस गार्ड से कहना होगा, और उसका सलूक भी हमारी तरफ अच्छा हो गया है, वह तंग नहीं करेगा, जैसे दूसरों को अक्सर करता है, आई एम श्योर, मुझे नीचे आने में थोड़ा वक्त लगेगा, और सारी लड़कियां जो बाहर या भीतर आई जाएंगी, वो जरूर तुम्हें घूरेंगी, और दबी हंसी से हंसेंगी, आखिर उन्हें जिंदगी में कितनी बार

एक लंबा, सुघड़, खूबसूरत, गबरू जवान देखने को मिला है...गबरू? हमराज के मुंह से जैसे घुटी खुशी की आह निकली...और क्या !...मतलब, अट्रैक्टिव?...हां, और क्या, कहने से क्या परहेज, मेरी नजर तुम्हें नहीं लगने वाली, और जब हम साथ साथ बाहर के लिए निकलेंगे, ऑन अ डेट, तो खुसपुस शुरू होगी, अफवाहें, कुछ बड़ी ही भद्दी, पर वो ठीक है, मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता, ये त्वचा मेरी सिर्फ तेरे लिए मलमल और मलाई है, वरना बड़ी मोटी खाल है मेरी दूसरों के लिए..डैम इट, मैं तुम्हारा प्यार हूँ, मंगेतर से भी ज्यादा और आगे, तुम मेरे, फिल्म की भाषा में, पति परमेश्वर हो चुके हो, और मैं तुम्हारी जन्म जन्म की अर्द्धांगिनी। और तुम अपनी प्रियतमा को पिक कर रहे होगे, अपनी होने वाली बीवी को, क्या ये काफी वजह नहीं है इस कोशिश के लिए? प्यार में क्या सब जायज नहीं? तुम्हें बस मेरे हॉस्टल के दरवाजे तक पहुंचना है, मुझे मिस्ट कॉल देनी है या मेसेज, या गार्ड से कहना है, और रजिस्टर में एंट्री करनी है। और मैं वहीं हूंगी, अपने कमरे के भीतर, तैयार, तुम्हारे बेसब्र इंतजार में, इस प्लान में कोई खामी नहीं, यह फेल हो ही नहीं सकता!

हमराज असामान्य रूप से चुप और अपने में सिमटा था, मानो वह किसी दूसरी दुनिया में है, या उसका मस्तिष्क किसी अन्य प्रक्षेप में विचरण कर रहा है, और शमा ने उसके ध्यान और मौजूदगी की रिक्ति को अपनी वाग्मिता से भर दिया था, मानो वह किसी असंबली या हुजूम को संबोधित कर रही है, किसी गुप, संप्रदाय या राष्ट्र को पड़ोसी दुश्मन राज्य के मित्र भ्रमण का न्यौता दे रही है।

पर...यह तुम्हारा टॉप नौच आईडिया अलग या विजयी किस तरह से हुआ? हमराज ने कुछ पल बाद पूछा, उसका अंदाज और स्वर अनमना और बदमिजाज था। जो शायद ही पहले कभी इस तीक्ष्णता से रहा हो। अलग किससे?...हमारी मुलाकात की सैकड़ों कोशिशों, जो कम से कम जहीन और अवसर के अनुरूप थीं, कि हम किसी अच्छे, विशिष्ट, आकर्षक स्थान पर मिलें, आखिर डेट है, खयाल एक रोमांटिक मुलाकात का होता था, जिस तरह लवर्स मिलते हैं, उन्हें मिलने की आजादी है, उन्हें इसी तरह मिलना चाहिए, यादगार मुलाकातें, जवान इश्क का वक्त कभी लौटता नहीं, एक तरह का निजी जश्न, मदहोश नजदीकी, और प्रेम का प्रतिज्ञान...प्यार की बातें, खुसफुस, हाथों में हाथ, चुराए चुंबन और जिस्म के स्पर्श, कुछ ऐसा जिसका इंतजार रहे, हफ्ते भर की कड़ी मेहनत और रूटीन के बाद...क्या यह ख्वाइश गलत है?...पता है, जिस तरह की जगह हमने इतने चाव से चुनीं, वे आदर्श थीं, सभी लवर्स ऐसी ही जगह मिलते हैं, एक अच्छा रेस्टोरेंट, सिनेमा हॉल, लाउंज बार, पब, कैफे...पर कुछ काम नहीं किया, हर बार सिर्फ हाथ लगा, जीरो, है न? तो इस नई तरकीब की क्या वजह है, और क्या गारंटी है कि यह गोलमोल तरीका सफल होगा : कि मैं तुम्हें हॉस्टल से पिक करूँ, और फिर हम वहां जाएं जहां जाने की हम कितनी ही असफल कोशिशें कर चुके हैं। यह प्रयास एक चक्कर लेने की तरह है, एक झांसा, जैसे जासूस या चोर करते हैं, एक गैरजरूरी, बल्कि नाजायज परिक्रमा, जिसका माने हैं कि हम एक अमान्य, गलत स्थिति को अंगीकार कर रहे हैं।

अरे मेरे राजा, तुम इतने नेगेटिव क्यों हो? चीजों को काले रंग में देखना क्या जरूरी है? अपनी प्रियतमा को घर से लेना, उसे डेट पर ले जाना, यही तो रोमांस का तरीका है, नहीं?... मैं तेरा इंतजार कर रही हूँ, बार बार खिड़की से बाहर झांकती हूँ, कि कहां रह गया मेरा हमदम, फिर तुम दिखाई देते हो, मैं खुशी से झूम उठती हूँ...हां, मानती हूँ कि हॉस्टल और उसका आसपास खराब और गंदला है, दूर, गैर दोस्ताना, गैरवाजिब, तुम्हें बाहर इस तरह लगेगा मानो तुम कोई चोर या अभियुक्त हो...पर जानूं, ये भी तो है कि फिलहाल ये तुम्हारी महबूबा का आशियाना है, और एक तरह से सोचो तो तुम पापी तो हुए न एक तरह से, और चोर, तुमने मेरा दिल, मेरी जान, मेरा वजूद

हमेशा के लिए चुराकर कैद कर लिया है, है न?...हां, मैं मानता हूं, यह भी एक नजरिया है, हमराज ने संजीदगी से कहा, पर उसके मन का कांटा या अविश्वास, जो भी था, वह बरकरार रहा, न जाने क्यों यह ख्याल उसे तंग कर रहा था कि इस तरह आगे बढ़ना एक भयानक गलती होगी, उनकी आजादी का एक अहम अंश उनसे छिन जाएगा। पर किस तरह का अंश? यह उसे अभी साफ नहीं था। फिर उसने बात बदल दी, और शमा समझ गई कि इस डगर को अभी यहीं छोड़ना होगा।

शमा का सुझाव अलग अलग तरीकों से दोनों के मन में सूखे पंख की तरह फड़फड़ाता रहा, पंख को या तो फेंकना था, या अपनाना था।

दो दिन के बाद शमा ने फिर अलग ढंग से जिक्र छोड़ा। फोन हमराज ने किया था। और कुछ सोचा? हमराज ने घुमाकर पूछा। नेकी और पूछ पूछ, शमा को बना बनाया मौका मिल गया। शायद यह हमराज की तरफ से न्यौता ही था...अच्छा सुनो, उस दिन जो बात मैं कह रही थी, वह एकदम से अचानक आसमान से टपका ख्याल नहीं था, ओके। असल में एक डेढ़ हफ्ते पहले, एक फिल्म देखते हुए यह आईडिया मेरे दिमाग में पहली बार आया था, फिर मैं सोचती रही, और मैंने रेचल से भी, यू नो, मशवरा किया, यू डोंट माइंड, डू यू...नहीं ठीक है, हमराज कम से कम सुन रहा था, तब शमा का साहस बढ़ा...एक साइंस फिक्शन फिल्म थी, तुम्हें ज्यादा रास आती, पूरी फिल्म के दौरान मैं तुम्हें ही याद करती रही...रेचल भी थी?...और नहीं तो किसके साथ जाती? उसने ही फिल्म सजेस्ट की थी, मुझे तो वैसे भी साइंस फिक्शन पल्ले नहीं पड़ता...उसमें एक सीन था, एक बड़ा सा स्क्रीन है, और दो सैनिक या जासूस, या एक इंटेलिजेंस ऑफिसर और एक आतंकवादी हैं, अब याद नहीं, उन्हें एक इंटेलिजेंस की टीम, या हो सकता है कोई वॉर कंट्रोल रूम की यूनिट ट्रेक कर रही है। और स्क्रीन पर दो हरे गोल डॉट्स हैं, वो मूव कर रहे हैं, वे दो अपोजिट खेमे के स्पाइज हैं, या जैसे मैंने कहा, एक टेरोरिस्ट है और एक ऑफिसर है, जो भी, और रूम के सभी लोग, उनमें एक फोर स्टार जनरल भी है, उन्हें वॉच कर रहे हैं...मेरी याद में टेंशन ये थी कि उनमें से एक, जो औरत है और शायद टेरोरिस्ट, उसने संभवतः सुइसाइड बेल्ट पहनी है, उसकी ड्रेस से ऐसा आभास होता था। फील्ड यूनिट की भी यही खबर थी। चेस चलती रहती है, वे डॉट्स जैसे एक दूसरे से खेल कर रहे हैं, कभी पास आते हैं, फिर बहुत पास, लगभग छूते हुए, पर अंतिम क्षण में दूर हो जाते हैं, कभी एक दूसरे की परिक्रमा कर रहे हैं जैसे...कट शॉट्स में उस ऑफिसर और औरत के भी शॉट्स थे, हाथ में पिस्टिल, और एक दूसरे पर घात लगाते हुए...कंट्रोल रूम में यह डर है कि अगर समय से ऑफिसर ने औरत को ठीक से दबोच कर डिसार्म नहीं किया तो विस्फोट होगा, दोनों मारे जाएंगे, और शायद आसपास के लोग भी, और यूनिट का एसेट खत्म हो जाएगा। पर अब उसे यहां तक पहुंचने के बाद रिकॉल करना भी गलत होगा...मुझे याद है, वह मोमेंट जब दोनों स्पॉट मिले, फिर अलग हुए, और फिर से मिले, मानो आलिंगन कर रहे हैं, और फिर एक हो गए, कुछ क्षण कुछ नहीं हुआ, पूर्ण स्तब्ध मौन, फिर एक बम का धमाका...पर वहां नहीं, जहां वे दोनों थे, एक अलग डाउनटाउन की सड़क पर, कंट्रोल रूम के ठीक नीचे! एक क्षण में पूरा कंट्रोल रूम तबाह हो गया, और उसके स्थान पर आग की लपटें, और धुंधले से कट शॉट में जनरल की भौंचक्की आंखें, और मरते हुए उसका उलटता शरीर...।

नेक्स्ट सीन में ऑफिसर और औरत दिखते हैं, एक दूसरे की बांहों में, एक दूसरे को शिदत से चूम रहे हैं...फिर सर्सेस क्लियर हुआ कि ऑफिसर ने अपनी साइड बदल ली थी, वह अब उस औरत के साथ मिल कर काम कर रहा था, वह टेरोरिस्ट न होकर एक इंटेलिजेंस एसेट थी, जिसे जनरल ने बीच में त्याग दिया था, क्योंकि उसे कुछ संगीन बातें जनरल के बारे में पता चली थीं, और मैं ऑफिसर जनरल को मारना चाहता था, क्योंकि बरसों पहले इसी जनरल ने, तब ये मेजर

था, उसकी आंखों के सामने, उसके मां बाप की हत्या की थी...।

मुझे ये साइंस फिक्शन तो नहीं लगता, थ्रिलर ज्यादा, हॉलीवुड स्टाइल...ओ हो, मेरे लिए अगर स्क्रीन है, जिसपर खूब लाइट्स ब्लिंक कर रही हैं, और हरे, चलते डॉट्स हैं, तो साइंस फिक्शन ही हुआ...पर इस कहानी से क्या जतला रही हो, हमराज ने प्यार से पूछा...अरे, मैं तो कहानी सुनाने में बहक ही गई, असल बात तो कुछ और है...मुझे तुम्हारी याद पता है क्यों आ रही थी? हं?...पूछो न क्यों...अच्छा क्यों?...मुझे उस रात, फिर अगली रात याद आया, शमा की आवाज में अब अजीब सी व्यग्र लरज थी...कि तुम जब मुझे स्पेस टाइम का बतला रहे थे, वो चार एक्सिस, एक्सवार्डेजेट, और ये कि किसी अज्ञात वजह से हमारे, वो कार्डीनेट्स मिलकर एक दूसरे में विलीन नहीं हो पाते, तुमने दो मूविंग डॉट्स का उदाहरण दिया था, जो हम हैं, दोनों चल रहे हैं पर एक दूसरे को पाते नहीं, राइट?...राइट...हलो, तुम सुन रहे हो न?...हां, सुन रहा हूं, हमराज ने कहा, उसने आधा अधूरा ही सुना था, पर शमा की बातों की दिशा उसे रजिस्टर हो गई थी, एक तरह की उर्नीदी, मदहोश एकाग्रता ने उसके मस्तिष्क को बांध लिया था, शमा की आवाज के स्वराहो और मिठास ने मानो उसपर कुंडली मार ली थी...ठीक है, बोलो, उसने कहा। अब शमा का हौसला बढ़ा। हो सकता है मेरी बात का कोई आधार नहीं, ये तुम्हीं बता सकते हो, पर मैंने सोचा कि अगर एक डॉट अचल रहता है, मूव नहीं करता, और दूसरा डॉट मूव करता है, खोजता है, ताकि वे आपस में विलीन हो सकें, तो ज्यादा आसान होगा, नहीं?...मुझे गणित का ज्यादा खयाल नहीं, पर आसानी और सफलता का चांस क्या दुगना नहीं हो जाएगा, मुझे लगा...अगर हम दोनों में सिर्फ तुम चल रहे हो, और मैं स्थिर हूं, तो चीजों में तालमेल बिठाने में दूनी कम जरूरत होगी : मतलब मूवमेंट, स्थान का निश्चय, वक्त, जगह का परिचय और उसका रास्ता, तो भ्रम और गलती का चांस आधा रह जाएगा, इस तरह से तुम्हें सिर्फ मेरे हॉस्टल तक पहुंचना है, और मैं पहले से वहां मौजूद हूं...शमा की आवाज तब मद्धिम होकर खो सी गई, और तभी हमराज उसे बहुत ध्यान से सुन रहा था, पर मानो उसके दिमाग में कोई दूसरी बात जोर मार रही थी। शमा की बातों के प्रवाह को बिहारी भैयाजी, गार्ड, ने भंग किया था, फोन काटने या डांटने के लिहाज से नहीं, पर उसने मिठाई का एक खुला डिब्बा उसकी तरफ बढ़ाया था, वह मुस्करा रहा था। क्या हुआ, शमा ने जल्दी से रिसीवर पर हाथ रखकर व्यग्रता से पूछा। बेबी हुई है, उसने कहा और शरमा गया। ओह, शमा एक पल के लिए सकपका गई। सुनो, मैं तुमको पांच मिनट बाद फोन करती हूं, उसने हमराज से फोन पर फुसफुसाते हुए कहा, मुझे प्राइवसी में फोन करना है, यहां भीड़ हो गई है, मेरे दिमाग में बहुत से आइडियाज घुमड़ रहे हैं...शमा ने फोन काट दिया, फिर गार्ड से मिठाई ली, उसे बधाई दी, और बेबी की खुशी में कुछ पैसे। फिर वह ताबड़तोड़ भागती हुई चार मंजिल चढ़कर अपने कमरे में पहुंची, अपना पर्स लिया, धड़धड़ाती हुई नीचे आई, और तेजी से करीब दो सौ गज चलकर एक चमकीले, नये, गहरे लाल रंग के फोन बूथ पर पहुंची, जिसे एक टेलिकॉम कंपनी ने अपने नये विज्ञापन के लिए मात्र एक दिन पहले कुछ दिनों के लिए यहां स्थापित किया था। मजे और संयोग की बात ये थी कि अगली ही रात उठाईगीरों ने बूथ को तोड़ा फोड़ा और सारा सामान और लोहा लादकर ले गए! कंपनी के रिकॉर्ड अगर चेक करें तो पता चलेगा कि इस बूथ से सिर्फ एक फोन हुआ, शमा का फोन हमराज को जो काफी लंबा कॉल था, मानो यह विज्ञापन, प्रयास और निवेश सिर्फ हमारे लवर्स की खातिर था!

...शमा बूथ में घुसी, दरवाजा बंद किया, हमराज का नंबर डायल किया, और कनेक्ट होते ही कार्ड इन्सर्ट किया...यह स्पेशल कार्ड कंपनी ने खास स्कीम में चलाया था, और यह कार्ड किस तरह

शमा के पास था, महज इत्तफाक, यह एक अलग अफसाना, अलग चमत्कार है...हमराज ने तुरंत फोन उठाया था, असल में वह इस अवधि में बिस्तर पर फोन साथ में रखे, उसी पोजीशन में लेटा रहा, सोच में डूबा। शमा ने बोलना शुरू किया, ग्रीन डॉट्स की बात उसने दोहराई, और फिर कहा : अगर तुम मुझे पिक करते हो, तो तुम्हें सिर्फ हॉस्टल तक पहुंचना है, और मैं भीतर हूंगी ही। इसमें तो कोई शक की गुंजाइश नहीं?...पर अगर हॉस्टल ही न वहां हुआ, जहां उसे होना चाहिए, तब? हमराज की आवाज जैसे किसी कंटीले तार पर से लिथइती हुई सी आई। शमा को एक पल के लिए आघात सा लगा। कि हमराज की ऐसी प्रतिक्रिया बेवजह, नकारात्मक और क्रूर है। और एकाएक, पल की मायूसी में उसे यह भी लगा कि हमराज का रवैया औरत विरोधी है, उसके मन में आया कि कहे, भगवान के लिए, वह बारात लेकर नहीं आ रहा, पर उसने अपने को रोका... पर हमराज ने जो बिना सोच के हस्तक्षेप से कहा था, उसकी धारा दूसरी थी, लगभग भविष्यसूचक, यह खयाल उसकी अर्द्धचेतना का था, और उनके परस्पर विलगन के रहस्य को बांध रहा था, इसके अलावा उसका कथन उनके रूदाद ए इश्क और उनके अनुभव के साथ कहीं अधिक संगत था, एक बेहतर प्रकल्पना, और हमराज के भ्रम या अनुमान का अर्थ ये था कि कहीं वह हॉस्टल उसकी ऐंद्रिय दुनिया से विलग या लुप्त तो नहीं।

आखिर हर व्यक्ति की संसार की अपनी अनन्य संवेदिक अनुभूति होती है, तो दृष्टा या जिज्ञासु के नजरिए से उतने ही संसार हैं जितने जिज्ञासु, सबजेक्टिविटी का भी एक वस्तुपरक अस्तित्व है...हालांकि यह बहस मधुमक्खी के छत्ते में हाथ देने की तरह है, और इस तर्क वितर्क को दार्शनिकों के लिए ही रहने दिया जाए तो अच्छा। लवर्स दर्शन के मूल प्रश्नों में उलझें, यह उनके साथ ज्यादाती है।

वक्त के इस नाजुक बिंदु पर जो चीज हमारा ध्यान भरसक खींच रही है, और हमें हमराज और शमा के लंबे, घने संवाद में हस्तक्षेप करना होगा, उनकी बातें जो प्रेमालाप से भी ज्यादा घनिष्ठ हैं और चाहना के असाधारण योग से प्रेरित हैं, वह इस दृश्य की अनूठी विडंबना और क्रूरता है जिसे हम देख रहे हैं, मूक, बेबस गवाह की तरह। शायद किसी पुरानी सदी में कोई इंसान था, औरत ही होगी, जिसे महज रूटीन और रोजमर्रा का निर्वहन करने के लिए, संयुक्त परिवार की चटख और लोलुप जीभ की इच्छा पूरी करने के लिए, दिन और रात बेलन से पापड़ बेलने पड़ते थे, यह किसी क्रुद्ध, स्त्री विरोधी, बदनियत ऋषि का शाप भी हो सकता था, जिसने पापड़ बेलने की जनप्रिय कहावत को जन्म दिया, और यहां इस एक दिन के मेहमान फोन बूथ में हमारे अभागे लवर्स हैं, जिनके लिए एक दूसरे के बिना सांस लेना दूभर हो गया है, पर मिलन की हर राह अकारण, रहस्यमय ढंग से बंद है, और उन्हें साथ होने की राह में कोई जाहिर, तर्कपूर्ण बाधा या शक्ति दिखाई नहीं देती, पूरी दुनिया, यह महानगर, देश की राजधानी, शहर की गति, रुख या कारोबार इन दोनों के प्रति पूरी तरह उदासीन है, शहर के जीव को उनके अस्तित्व, दिक्कत या विपदा की कोई खबर तक नहीं, अन्य या समाज को उनकी कोई परवाह नहीं, उनसे कोई लेना देना नहीं, डेढ़ करोड़ की आबादी में सिर्फ रेचल है जिसे उनकी चिंता है, वह शमा की गहरी मित्र व दोनों की शुभचिंतक है, हालांकि उसने कभी हमराज को नहीं देखा या उससे मिली, हो सकता है रेचल और हमराज ने कई बार एक ही बस से सफर किया हो, एक दूसरे को क्षणिक देखा भी हो, रेचल दिल्ली में पांच वर्ष से है...तो, हमारे बेचारे लवर्स, बेपनाह मोहब्बत में डूबे प्रेमी, मिलने, एक दूसरे की आंखों में झांकने, चूमने, बाहों में लिपटने के बजाय बाध्य हैं कि वे स्पेस टाइम की धारणा का मनन चिंतन करें, मैप्स की थ्योरीज, संगति की पेचीदगियों से जूझें, और उससे भी जटिल और उलझे सब्जेक्टिव ऑब्जेक्टिव के निदर्शन से, या कई समानांतर संसार और मल्टीवर्स के अमूर्त विचारों

में सिर खपाएं, ये काम प्रख्यात वैज्ञानिकों का, और दार्शनिकों का है...इन बेचारों ने ऐसा क्या गलत या पाप कर दिया, बस प्यार ही तो किया है, जिसमें अमरत्व का सूक्ष्म, नाजुक बीज है.. यह किस आधार पर कहें कि इनका त्रास और ट्रेजेडी रोमियो और जूलिएट, या लैला मजनूँ के त्रास से कम है या ज्यादा है, इतना जरूर है कि कथा, काव्य और दंतकथाओं के अमर प्रेमी हमेशा अंत में जवान मृत्यु के ग्रास बने, और शमा और हमराज ने प्रेम, विवाह और दांपत्य का सुख लंबी आयु तक पाया...हमराज और शमा पर तरस खाना उनके साथ नाइंसाफी होगी, पर हमारे, हम सब जो इस कथा से वाकिफ हैं, सबके मन में उनके लिए करुणा और गर्व है। यह सलूट करने योग्य है कि कितनी निर्भीकता, धीरज और दृढ़ता से दोनों अपने संभ्रमित तरीकों और तरकीबों से इस रहस्य और अनर्गलता से लड़ रहे हैं, उनका प्यार सुरक्षित और पाक है, बल्कि और उजला हुआ है, उनका सामना ऐसी दीवार से है जो दीवार न होकर कुछ और है, अवरोध और बाधक विपत्ति जो अदृश्य है, एक शत्रुवत, दानवी, अनिष्ट शक्ति जिसके बारे में उनका संज्ञान शून्य है।

बाद में, जब वक्त गुजरा, कुछेक हफ्ते बीत गए थे, और नामिलन, अलगाव की समस्या ज्यों की त्यों रही, हमराज को वह वाक्यांश याद आया, जो उसने तत्काल और सहज बोध से शमा को कहा था, वह उस फ्रेज के बारे में सोचता रहा, और उसे थोड़ा बदलकर इस तरह रखा, बल्कि उसने इस बदले वाक्यांश को अपनी संलाप की डायरी में बाकायदा उतारा : मुझे क्यों लगता है वह जगह (शमा का हॉस्टल) वहां नहीं है जहां मैं सोचता हूं वह है...माने, मेरी स्थान या लोकेशन की सेंस, लोकेशन खुद के सम्मुख बदल गई है, या भंग हो गई है, और यह सिर्फ, केवल शमा की जुस्तजू के मसले में लागू है, इसलिए अमली और व्यवहार के स्तर पर स्थिर और गतिमान चीजों में कोई भेद नहीं है? उसे लगा, हालांकि वह पूरी तरह आश्वस्त नहीं था, कि अगर वह इस मसले को इन शब्दों में निरूपित करता है तो यह अज्ञात अवरोध का मामला उतना और पूर्ण अनर्गल नहीं लगता, और फिर यह सब अधिक जटिल दिखने लगा जिसके गहन परिणाम थे...।

पर उस दिन यह बात उसने बिना सोचे कही थी, बल्कि मानो जुबान से फिसल गई थी। शमा की प्रतिक्रिया नैचुरल थी, उस बेचारी का कोई दोष नहीं था, बल्कि वह तो अंधेरे में उजली किरण ढूंढ़ रही थी। डार्लिंग, शमा ने कहा, जो जगह मेरा घर है, वह हमेशा है, और मैं भी उसमें हमेशा हूं, तुम्हारा इंतजार कर रही हूं, तुमसे जुड़ना चाह रही हूं, अगर तुम किसी, किसी भी तरह यहां तक बस पहुंच जाओ, फिर यहां से सारी जिम्मेदारी मेरी है, हम यहां से जहां दिल करे, तुम्हारा जहां दिल करे, जा सकते हैं, पूरा शहर हमारे सामने होगा, अपनी माली हैसियत के अनुसार हम कहीं भी जा सकते हैं...हम हाथ में हाथ डालेंगे, बांहों में बांहें, और क्यों नहीं खुला आगोश, हमें किस का डर पड़ा है, हम प्यार करते हैं जानेमन, ये इश्क नहीं आसान लोग कहते हैं, पर हम उन्हें दिखाएंगे कितना पाक और आसान है हमारा इश्क! और मैं देखती हूं कौन है वो माई का लाल जो हमें जुदा करने की हिम्मत जुटा सके...मैं उसकी आंखें न निकाल लूं, तुम मेरे तेवर नहीं जानते, जो औरत प्यार करती है, कितनी हकमुराद और जंगली हो जाती है, घायल शेरनी की तरह मेरे जानेजिगर, मेरे शेर, वह क्या नहीं कर सकती!

...शमा नए, चमकीले फोन बूथ के भीतर थी, निपट अकेली, उसके मन के दृष्टिपटल में सड़क, बाहर, बाजार भी जैसे धुंधला, खामोश और निर्जन हो गया था, एक भेद, जो मन का भेद था, समय और स्पेस का भेद या विकार, दिक् काल का भेद या विचलन सा था, वह बादलों का आच्छादन बनकर कहीं ऊंचे की स्पष्टता और उजलेपन से नीचे के संदेह, संशय और अपर्याप्त में उतर आया था, बूथ के भीतर की हवा कुछ घनी, फुफकार सी, उमसदार हो गई थी। कुछ नूतन

और विरल सा अनजाने ही तब घटने लगा, शमा के मन में, या बूथ के तत्क्षण में तब एक पूरा संसार बस गया, पर्वत श्रृंखलाओं से लेकर नीले सरोवर, तैरते राजहंस, जो न जाने चित्र में जीवित हो उठे थे, या यह उनका जिंदा चित्र था, शमा इतनी देर से अनवरत बोल रही थी, वह कहना और शब्दों के चयन अचानक नाकाफी और नामाफिक हो गए थे, जैसे किसी और आगामी सदी के हैं। विरह, विरह के शिखर के शूल ही थे जो शमा के मन संसार में उमड़े थे, और उमड़ने के इसी ज्वार ने वे मेघ रच दिए थे बूथ की अलकापुरी के ऊपर, और वहां से उतनी दूरी तक जितना दूर हमराज था, और जो दूरी क्योंकि मिट नहीं पा रही थी, इसलिए अनंत थी, और शून्य भी. ..और मेघों की बनावट और फितरत हूबहू वही थी जो कभी शताब्दियों पहले कालिदास ने देखी थी, और मेघदूत का महाकाव्य उसने रच दिया था, न जाने सदियों का आपस में बहुत दूर की लताओं की तरह एक ही पड़ाव, स्थल या आरामगाह में गुंथने का यह कैसा रहस्य या करिश्मा था, कि एक घना, स्फटिक स्वर वक्त की गिरहों को लांघते और पाटते हुए चला आया, जो मेघदूत की ही पंक्तियां थीं, और जिसे शमा ने बाद में ही जाना, कि :

*धुएं, पानी, धूप और हवा का जमघट
बादल कहां? कहां संदेश की वे बातें जिन्हें
शोख, चतुर इंद्रियोंवाले प्राणी ही पहुंचा पाते हैं?
...जो संतदत्त हैं मेघ! तुम उनके रक्षक
हो, इसलिए कुबेर के क्रोधवश विरही बने
हुए मेरे संदेश को प्रिया के पास पहुंचाओ!*

*...जब तुम आकाश में उमड़ते हुए उठोगे तो
प्रवासी पथिकों की स्त्रियां मुंह पर लटकते
हुए घुंघराले बालों को ऊपर फेंकेकर इस
आशा से तुम्हारी ओर टकटकी लगाएंगी
कि अब प्रियतम अवश्य आते होंगे।
तुम्हारे घुमड़ने पर कौन सा जन विरह
में व्याकुल अपनी पत्नी के प्रति उदासीन
रह सकता है, यदि उसका जीवन मेरी तरह
पराधीन नहीं है?*

शमा फोन बूथ के भीतर रची अलकापुरी में है, और हमराज यक्षपति के शाप के कारण रामगिरी के आश्रम में बनाई बस्ती में है, जहां घने छायादार पेड़ हैं, और जहां सीताजी के स्नान से पवित्र हुए भरे जलकुंड हैं...।

और शमा उन मेघदूत को देखते हुए सोच रही है कि :

*...जिसके प्रभाव से पृथ्वी खुंभी की टोपियों
का फुटाव लेती और हरी होती है, तुम्हारे
उस सुहावने गर्जन को जब कमलवनों में
राजहंस सुनेंगे, तब मानसरोवर जाने की
उत्कंठा से अपनी चोंच में मृणाल के
अग्रखंड का पथ भोजन लेकर वे कैलास
तक के लिए आकाश में तुम्हारे साथी बन जाएंगे।*

पके फलों से दिपते हुए जंगली आम
 जिसके चारों ओर लगे हैं, उस पर्वत की
 चोटी पर जब तुम चिकनी वेणी की तरह
 काले रंग से घिर आओगे, तो उसकी शोभा
 देव दंपतियों के देखने योग्य ऐसी होगी
 जैसे बीच में सांवला और सब ओर से
 पीला पृथ्वी का स्तओन उठा हुआ हो...

और तभी शायद हमराज भी निशब्द सोच रहा था कि :

...देह की छरहरी, उठते हुए यौवनवाली,
 नुकीले दांतोंवाली, पके कुंदरू से लाल
 अधरवाली, कटि की क्षीण, चकित हिरनी
 की चितवनवाली, गहरी नाभिवाली श्रोणि भार
 से चलने में अलसाती हुई, स्तनों के भार से
 कुछ झुकी हुई ऐसी मेरी पत्नी वहां अलका
 की युवतियों में मानो ब्रह्मा की पहली कृति है।

हे मेघ, मित्रता के कारण, अथवा मैं विरही
 हूं इससे मेरे ऊपर दया करके यह अनुचित
 अनुरोध भी मानते हुए मेरा कार्य पूरा कर
 देना। फिर वर्षा ऋतु की शोभा लिए हुए
 मनचाहे स्थानों में विचरना। हे जलधर,
 तुम्हें अपनी प्रियतमा विद्युत से क्षण भर के
 लिए भी मेरे जैसा वियोग न सहना पड़े।

वर्षों के गुजरने के बाद जब भी हमारे अखंड प्रेमियों ने उस वक्त खंड की साझा याद की, तो इसी तरह उसे मन की लिपि में समेट सके, जिसे हमने यहां, इन पन्नों पर उद्धृत किया है, वे कभी पूरा विश्वास नहीं कर सके कि ऐसा हो सकता है, पर उनके मन में कोई संशय नहीं था कि ऐसा ही हुआ था, क्योंकि वक्त, स्पेस, स्मृतियां और सदियों का प्रवाह अगर स्थानापन्न हो सकता है, तो भाषा और मन की शाब्दिक, कवित्व अभिव्यक्ति क्यों नहीं?

फिर से हम दोहराते हैं कि शमा नए, चमकीले फोन बूथ के भीतर थी, निपट अकेली, उसके मन के दृष्टिपटल में सड़क, बाहर, बाजार भी जैसे धुंधला, खामोश और निर्जन हो गया था, जैसे ही वह कुछ कहने को हुई, एक विशद तस्वीर उसकी आंखों के सामने उभरी, दोनों की, शमा और हमराज, बहुत पास, हाथ में हाथ डाले वे कहीं चल रहे हैं, और उनके आगे डूबते सूरज का उद्दीप्त सतरंग चल रहा है, शमा उष्ण और उत्कट हो उठी, संचित, संग्रहित मनोभावों का भराव मानो फट पड़ा, उसकी सांस अवरुद्ध हो गई, तब कायनात ने वर्तमान में करवट ली, सांस ने जैसे सांस ली, अंगड़ाई ने अंगड़ाई, हमराज ने फोन पर पूछा, तुम हो ना?...हां, मैं हूं मेरी जान, मैं कहीं नहीं जा रही, तब एक ज्वलंत, प्रेरित, स्वप्निल पल में उसने गुनगुनाना शुरू किया, जो अगले पल गीत बन गया, वह गा रही थी, वह अच्छा गाती है...शमा कहे परवाने से, परे चला जा, मेरी तरह जल जाएगा, यहां नहीं आ...वो नहीं सुनता उसको जल जाना होता है, हर खुशी और हर गम से बेगाना होता

है...प्यार दीवाना होता है मस्ताना होता है...देखा, शमा ने उत्प्रेरणा के धुएं के मध्य से फुसफुसाया, मैं शमा हूं, लौ हूं, मैं जलती हूं, ये मेरी फितरत है, मेरी बदी है, और तू मेरा परवाना है, ये तेरी बदी है...मेरा पतंग, मेरा शलभ, परवाना सदा सदा शमा की तलाश करता है, ये उसकी बदी है, और जब उसे पाता है, शमा को, मुझे, तब होता है प्रेम का नृत्य, तो देखो, मेरा सुझाव, मेरा मनोरथ प्यार की अकूत प्यास के प्राचीनतम रूपक के अनुरूप है, उससे मान्य है, है न?

हमराज अति भावुक हो उठा, और उसे दिल्लगी का अहसास भी हुआ। फिर कुछ देर के लिए वे उस सुझाव और उसकी बंदिशों को भूल गए, और प्यार की अमिट लालसा, इश्क की बंदगी के दास बन गए...हमारा प्यार अमर है, उनकी शपथ थी, यह जुदाई एक दिन खत्म होगी, एक दिन क्यों, वह कल ही खत्म होगी, अगर हमारा प्यार सच्चा है, जो कि है, ब्रह्मांड की कोई ताकत या दानवी शक्ति हमारे प्यार को नहीं रोक सकती, और फिर हम हमेशा हमेशा के लिए साथ होंगे, एक पल के लिए भी मैं तुम्हें नहीं छोड़ने वाली, नहीं कहीं अकेला जाने दूंगी, बल्कि बेहतर ये कि मैं तुम्हारे भीतर रहूंगी, और तुम मेरे भीतर, इस तरह हम एक होंगे, दो नहीं, और तब हम पूर्ण होंगे...हमारी शादी होगी, और बच्चे, खूब, बहुत से बच्चे, और हम एक लंबा जीवन बसर करेंगे, और जब वक्त आएगा, और हम वृद्धता से भी अधिक वृद्ध होंगे, न देख पाएंगे, न सुन पाएंगे ठीक से, पर मस्तिष्क और प्रेम सजग और यौवन से भरा होगा, हम एक साथ स्वर्ग को प्राप्त होंगे, क्योंकि हम एक हैं इसलिए, इस तरह मृत्युपरंत भी हम साथ होंगे, जन्म जनम का साथ...ठीक है, ठीक है, पर तुम शमा हो, हो कि नहीं, क्या तुम जल रही हो?...हां...कितना?...इतना कि ज्वाला में पूरा शहर और आसमान झुलस रहा है...और परवाना? वो क्या कर रहा है? क्या वो भी जल रहा है?...हां, वो जल रहा है, पर दूसरे तरीके से, वह उजाले के, शमा की लौ के स्रोत, उसकी कोख की खोज में जल रहा है, इतना ही वह चाहता है, इतना ही वह तलाश रहा है...और मेरे मैप्स, मेरे नक्शों का क्या? हमराज मंत्रमुग्ध सा पृष्ठ रहा है...नक्शे?...न जाने कैसा निजी नक्शा शमा की आंखों से झांकने लगा...वह बोली : तुम पूरी दुनिया की हर शमा का नक्शा बनाना, हर शमा मैं ही हूंगी, देख लेना, और फिर तुम उन सब शमाओं की लौ का अपनी उंगलियों से स्पर्श करना, इसके लिए तुम देश देशांतर, जंगल समुंदर के ऊपर से उड़ोगे, हर शमा का स्पर्श करोगे, और वो हर में ही हूंगी, और अंत में तुम्हारी तलाश खत्म हो जाएगी, और तुम पाओगे कि तुम्हारी शमा, जो मैं हूं, वह तुम्हारे भीतर है, तुम्हारे दिल के ठीक केंद्र में, तुम्हारे हृदय के मर्म में...इस तरह वे कुछ और देर बात करते रहे। और आखिर में जब उन्होंने फोन रखा, तो उन्हें ठीक से इत्मीनान नहीं था कि वे उदास महसूस कर रहे हैं या उल्लसित, वंचित या पूर्ण संतुष्ट।

परवाना, परवाना : के कई अर्थ हैं, जिनमें प्रमुख हैं : पतंगा, प्रेमी, वारंट, अनुमति...आदेश, स्वीकृति, अनुशस्ति, पासपोर्ट, हिदायत, लाइसेंस। और भी : परवरिश, देखरेख, चिंता...ऐसा लगता है कि शब्दों के अनेकार्थ और अर्थ की बदचलनी के कारण हमारे प्रेमियों का प्यार में मर मिटने और विलीन होने का प्रयास, जो शमा और परवाने के काव्यात्मक विलय के तुल्य है, वह भी फीका और हल्का हो गया है। अगर शब्दों के अर्थ रस की वक्रोक्ति और अनेकार्थ से प्रदूषित नहीं... मतलब भाषा खुद उनके खिलाफ नहीं, तो जरूर उनके प्रति बेसरोकार हो गई है। वारंट, लाइसेंस और हिदायत जैसे अर्थ और उनकी स्याह छाया की पैरवी करती भाषा क्या संदिग्ध नहीं? मानो शमा और परवाने को प्रेम के अनंत नृत्य के लिए कोई लाइसेंस चाहिए, और उन्हें इस हरकत या कृत्य से किसी वारंट या आदेश से रोका जा सकता है।

किसी वजह से शमा के स्पष्ट और सीधे प्रस्ताव, जिसमें निसंदेह पॉजिटिव गुण थे, के प्रति हमराज का संशय बना रहा। वह अपने मत पर अड़ा रहा कि वह शमा को हॉस्टल से उनकी

मुलाकात या साथ के लिए पिक अप करने नहीं आएगा, वह बरकरार रहा कि यह सिद्धांत का प्रश्न है, जिससे वह नहीं हटेगा, और इस मसले में जोर जबरदस्ती का प्रयास व्यर्थ है। कोई भी दूसरी राह या तरकीब मानी है, पर यह नहीं, इस प्रस्ताव के अमल का सवाल ही नहीं उठता। शमा ने जोर नहीं दिया, नतीजा था कि उन्होंने जानी मानी, न चूकने योग्य, और बेहतरीन, अनुरूप जगह मिलने का प्लान बनाया, हुमायूं का मकबरा, हजारों की संख्या में दिल्लीवासी और सैलानी रोज वहां जाते हैं, पर हमारे लवर्स के साथ नतीजा वही रहा। वे मिलने में कामयाब नहीं हुए। एक और दिन इस तरह गुजरा, बेकार हुआ। पर अजीब बात यह थी कि हमारे लवर्स के दिल की गहराई में, अंतस में, ये असफल प्रयास व्यर्थ नहीं थे। आशा भंग और कुंठा, हां। अवरोध और एक विकट समस्या, नाकाबंदी का सा दम घुटने वाला अहसास...पर व्यर्थ नहीं, यह भी उनके प्यार का द्योतक है, उसकी अमरता का रत्न प्रमाण है।

कुछ दिन बाद शमा ने अपने प्रस्ताव को दोहराया, शायद सहमति के लिए उतना नहीं, जितना अपने महबूब का मन और मत समझने की खातिर। लेकिन यह भी था कि यह तरकीब उसके जेहन में अभी भी कायम थी, मुलाकात के अकाल के खात्मे का एक चतुर उपाय। कैद की जकड़न से निकलने के लिए सुरंग खोदने की तरह। एक बार बच निकले तो कैदखाना अलोप हो जाता है, अगर वह बना रहे तब भी।

इस बार हमराज ज्यादा धीर था, उसने शमा को बोलने दिया, वह शमा का दृष्टिकोण बखूब समझ रहा था, उसे किन्हीं क्षणों में उसके अमल का आकर्षण भी हुआ, प्रेमी को नजर भर देखने की तड़प क्या उसे नहीं थी? वह मान रहा था कि आगे बढ़ने की यह वाजिब तरकीब है, और कुछ नहीं तो एक प्रबल चुनौती ही सही, और इस गतिरोध का किसी तरह ढहना भी जरूरी था, ये जुदाई के जहरीले बादल और घने और काले होकर अभेद्य दीवार नहीं बन सकते, उन्हें बीधना होगा, मुक्ति का मेह बरसना ही होगा, आकाश का नीला, अनंत विस्तार उन्हें गम्य होना चाहिए, और जल्दी, पर फिर हमराज ने प्रीत की नेकी और अद्भुत सूझबूझ से शमा के सामने अपना दृष्टिकोण रखा, वह कारण, वजहों में वजह, कि क्यों इस प्रस्ताव को पूरी ताकत से खारिज करना जरूरी है, मात्र उसके द्वारा नहीं, बल्कि दोनों के द्वारा, कि यह पेशकश अवांछनीय और अप्रिय है, शत्रुवत और गलत है। ऐसा फंदा जो उन्हें जिंदगी भर के लिए फंसा सकता है। और कोई मुक्तिदान और वापसी संभव नहीं होगी।

सुनो, हमराज ने मनुहार से कहा, तुमने जो कहा वह वाजिब सुझाव है, अक्लमंदी की बात है, बहुत संभव है वह सफल भी हो जाए, लेकिन, उसने इस तरह कहा मानो ईश्वर को जतला रहा हो कि देवजन जितना सोचते हैं, उससे वह ज्यादा होशियार है, इस सुझाव का अमल एक शर्तनामा या आत्मसंपर्ण भी है, अपने वजूद और मौलिक अधिकार को गिरवी रखना, और जिन अवांछित मुश्किलों को हम झेल रहे हैं, उनका अंगीकार और एक तरह से अनुमोदन और मान्यकरण या वैधीकरण। सुन मेरी बात, पहला बिंदु : ये जो समस्या है, जो भी इसका स्रोत या निरूपण है, जबरदस्ती के अलगाव का मानो शाप या नियम, यह अनुचित और अन्यायपूर्ण है। कोई वजह जरूर होगी कि बोलते हुए हमराज बिस्तर पर खड़ा हो गया था, और जितनी भी जगह थी उसमें चहलकदमी करता दिख रहा था, उसने अपनी बात जारी रखी : यह सुझाव या समाधान हमारी मौलिक स्वतंत्रता पर चोट, आघात है, प्यार करने की हमारी संवैधानिक स्वाधीनता, जिसे हमारे वजूद से अलग नहीं किया जा सकता, यह उसका अतिक्रमण है। अगर हम तुम्हारे प्रस्ताव पर अमल कर, मतलब पराजय मानकर संपर्ण कर देते हैं, तो हम फिर शायद प्यार में, और अन्यथा भी कभी स्वतंत्र न रह पाएं...ये तो एक प्रतिबंध है, जो अपने में विकट और अज्ञेय है, इसके अलावा, कौन

जानता है वह अज्ञात शक्ति कितनी बाध्यताएं और वर्जना हम पर थोप दे? और सब जानते हैं कि एक बार निषेध को वैध करार दे दिया, तो वह जन्म जन्मांतर हटने वाला नहीं...हमराज बहुत बारीक डिटेल्स में जैसे अपना चित्त डुबोकर विस्तार से बोल रहा था, वह खुद अपने से अर्चभित था, इस तरह था मानो कुछ अत्यंत प्राणाधार, गहन रूप से अर्थपूर्ण, कुछ जो उसे और शमा को परिभाषित करता है, जो उनके वजूद, प्यार और प्राण का मर्म और तत्व है, और जो बहुत पहले से उसके हृदय में शंका की नोक बनकर किसी कोने में विराजा था, वह खुलकर, एकाएक बह रहा है, और यह अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति उसे कुछ सिखा रही है, और खुद अपने बारे में उसकी चेतना को कुछ बता रही है, जिससे वह पहले वाकिफ नहीं था, पूरी स्पष्टता के साथ अभी तक तो नहीं था...उसके स्वर, लय और गति में उन्मेष और गहरे जज्बे की व्यंजना थी, वह अपने तर्कों के प्रवाह में पूर्णतः प्रांजल नहीं था, पर एक स्तर पर अर्थ की स्पष्टता थी... यहां, इस बिंदु पर ठहरना जरूरी है, और हमराज के कथन का पुनः ब्यौरा संगृहीत करना, कि उसका क्या सटीक मंतव्य और धारणा थी, उसके शब्दों के पीछे के सांकेतिक शब्द, उसके कथन की भावगत सत्यनिष्ठा, बनिस्वत वे कोरे शब्द जो उसने जोर देकर कहे और शमा के सामने रखे।

हमराज का केंद्रीय बिंदु, जिसपर उसने बार बार जोर दिया, इतनी शिद्दत से मानो अगर जरूरत पड़ी तो वह लहू से उसे लिखेगा, या अणु की अदृश्य सतह तक पर अपनी बात खंरोचेगा, वह यह थी कि अगर उन्होंने एक बार शमा के प्रस्ताव पर अमल किया, और हमराज उसे हॉस्टल से पिक अप करने आया, जहां वह इंतजार कर रही है, और हमराज बाहर गेट पर खड़ा है, और शमा के बाहर आने की बात जोह रहा है, फिर वे कहीं अच्छी जगह साथ साथ जाएंगे, और यह तरीका काम कर जाता है, और वे सचमुच एक दूसरे को बरस से ज्यादा के बाद देख और मिल पाते हैं, उस दिन उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता, न जाने कितने अरब खरब क्षणों का अथक इंतजार, अब जाकर आखिरकार मुलाकात हुई...पर इस अद्भुत आनंद के क्षण के ठीक पीछे बाध्यता और निर्मम अनंतकाल के नियम और निषेध का सर्प मानो हंस रहा है, उसकी फुफकार में अट्टहास का निर्वहन है...तब, हमराज कह रहा है, बहुत मुमकिन है, बल्कि तय है कि इस सदा के नियम की बंदिश पर हमने अपना इकरारनामा लिख दिया है, कि कभी भी मिलना हो तो मुलाकात का एक यही वाजिब और अनुमन्य तरीका है, दूसरे सभी रास्ते और पद्धति अवैध और निषिद्ध हैं...यह, समझो मेरी शमा, मेरी जान, एक उच्चतर स्तर का यह नियम होगा, ऐसा नियम जिसपर हमारी विधिवत सहमति दर्ज हो गई है, मानो हमने किसी ऊंची, अज्ञात अर्थारिटी की आज्ञा, किसी अनजान जुर्म को स्वीकार कर सजा कबूल कर ली है।

तुम, मेरी जान से भी ज्यादा जान, समझ रही हो न मेरी बात? हमराज के सूखे होंठों से यह तप्त आर्तनाद सा निकला। उसकी आवाज में कई स्तरों का कंपन और शीर्ष आवेग था, विरह और वियोग, और प्रेम के अमानुषिक अवरोध का असीम दर्द और जख्म, एक जबरन और कृत्रिम विरही का खौफ और हौसला...हां, उसने जैसे घोषणा की या फैसला सुनाया, सदा के लिए चिन्हित और मुजरिम! मानो कि महज सीधा सादा प्यार कोई गुनाह या दुराचार है, और उसे अपनी प्रेयसी को अंग लगाने के लिए सजायापत्ता की तरह उपागम करना होगा, अगर सजायापत्ता नहीं तो कम से कम अभियुक्त...मानो मैं किसी जुर्म के कारण पैरोल पर हूं, और तमाम बंदिशें और शर्तें मुझ पर लागू हैं, मेरे अधिकार सीमित हैं। और इस अनुक्त निषेधाज्ञा या फैसले को स्वीकारना, वह उसे वैधता प्रदान करेगा, न किए जुर्म का इकबाल, हम दोनों के लिए, मानो हमारा प्यार अमर और पाक न होकर गलत और अशुद्ध है, बीमार, अनिष्ट, अनुचित और कुत्सित है, इंसानियत के खिलाफ मानो, जैसे यह प्यार लोक व्यवस्था और अनुशासन की राह में रोड़ा या खतरा है, जनहित

और नैतिकता के खिलाफ है।

ये कठोर और आदर्श शब्द थे। हृदय की आह और सत्य से भरपूर। फिर हमराज ने उनके प्यार की पाकीजगी और पवित्रता की आवेशपूर्ण गुहार की। कि उनका प्यार सिर्फ उनका है, उनकी अमानत है, वह पूरी तरह स्वतंत्र और बंधनमुक्त है। हमारा प्यार, हमराज ने विकलता से कहा, किसी का गुलाम या मोहताज नहीं, वह हमारा सरोकार है, हम उसके साथ छोटे स्वार्थ के लिए गद्दारी नहीं कर सकते, उसे अप्रतिष्ठित या उस पर कीचड़ उछलने नहीं दे सकते, चाहे कितना भी दबाव हो। सबसे ज्यादा अहम है, प्यार की स्वतंत्रता और मर्यादा की सुरक्षा, जिसके लिए किसी भी कुर्बानी ज्यादा नहीं, हम नहीं झुकेंगे, चाहे इसका मतलब ये भी हो कि इस जन्म में हमारा मिलन न हो, मैं इस सूरत के लिए भी तैयार और तत्पर हूँ, हमराज ने अति नाटकीयता से कहा। और, कौन जानता है, उसने फिर जोड़ा, एक बार कमजोर और निरीह होकर हम तुम्हारे प्रस्ताव के गठन और शर्त को स्वीकार कर लेते हैं, शायद वह अज्ञात शक्ति ही इस विचार की उपज के पीछे है, तो क्या गारंटी है कि और शर्तें और प्रतिबंध नहीं लागू होंगे, अंकुश और निग्रह के नए नियम, उस अनजान शक्ति को कौन रोक सकता है कि वह हमारे प्यार, साथ, मुलाकात, और अंततः शादी के बाद भी, व्यवहार और बर्ताव के नए नियम और प्रतिबंध न लागू करे, हमारे बेडरूम तक के लिए...यह प्यार विरोधी शक्ति जीवनपर्यंत तक हमारा पीछा करती रहेगी, हमें सताती रहेगी। यह एक बार का युद्ध है, आर या पार, इसमें बीच की कोई राह नहीं, हमराज ने कहा, और फिर शून्य में ताकने लगा जहां शायद शमा की रूह विचर रही थी।

...जब जीवन, महज रोजमर्रा का निर्वहन, विकृत, निविड़ और अभेद्य हो जाता है, और हद तक दुष्प्राप्य और मायावी, और तर्क, सहज बोध के परे, तो कथानक भी भ्रांतिजनक, स्थूल और टूटने फूटने लगता है। और अजीबपन, परकीय बोध का आलम कथा के किरदारों को भी आक्रांत करता है। इस कहानी में हमारे निर्भीक लवर्स में, शमा और हमराज, अगर सोचें तो इस अफसाने में इन दो के अलावा और है ही कौन, हां रेचल जरूर है, श्रेष्ठ और दरियादिल, शमा की सखी, उसका खयाल रख रही है, हमराज अकेला है, उसका ऐसा कोई सुख दुख का साथी नहीं, तिस पर मालकिन मकान और उसकी अधपगली जवान, अविवाहित बेटी के गंदले और खतरनाक षड्यंत्रों को झेलने और उनसे बचने की निरंतर की मुसीबत, दोनों औरतें किस्म किस्म के डोरे डाल उसे किसी तरह फंसाने में लगीं रहती हैं। राजधानी और महानगर, उसकी ऊर्जा, महा बेचैनी, अन्याय और बढ़ता असंतोष बस निष्क्रिय पृष्ठपट है, एक स्टेज के नाटक के बैकस्क्रीन की तरह, मूक और स्थिर, पर गहन रूप से प्रासंगिक।

इन परिस्थितियों में, जब जीवन और कथानक दोनों के प्रवाह में तने और खिंचे गतिरोध की दशा बन गई है, तो बेहतर यही है कि हम वक्त को एक बार फिर गुजरने दें, रेतघड़ी से झरती रेत के मुलायम ढेर की बनावट को पढ़ें, या पढ़ने का प्रयास ही करें, और बस सतर्क और चौकस रहें, इंतजार की भी एक खास सत्ता है...और अचूक यही हमारा नैरेटिव अभी कर रहा है। तो, हफ्ते, महीने, गुजर रहे हैं, और हम अब हमारे लवर्स की अज्ञात शक्ति द्वारा प्रयुक्त, नियंत्रित जुदाई की सालगिरह से ज्यादा दूर नहीं हैं। अलगाव या जुदाई, शरीरी संपर्क या निकटता के संस में।

तात्विक दशाएं और हालात वही हैं, वे नहीं बदले, पर उनके असर और तासीर अधिक गहरे और दुर्गम होते जा रहे हैं, ज्यादा गूढ़ और अलक्ष्य। जैसे राजकाज की निर्मम और तटस्थ दुनिया में कहा जाता है, कागज पर सब वही और अबदला है, समाज हो या विकास, उसका रथ तो सदा गतिमान है...पर रथ की गड़गड़ाहट कागजों के भीतर है, वह कागज है जिसका स्वरूप और मिजाज

बदल रहा है। हमारी प्रेमकथा को आर्थिक सत्ता और सांख्यिकीय घनत्व प्रदान करने के लिए, एक दृष्टिकोण से यह अफसाना और कुछ होने के अलावा, साइंस की नमक मिर्च के छितराव के अलावा, कामातुर तसल्ली और तृप्ति का साधन, दस्तावेज और बहाना भी है...एक साल और आठ महीने के अलगाव की अवधि के दौरान हमारे लवर्स ने अनेक स्थानों पर मिलने और डेट पर जाने के अद्धानवे बार जतन किए। मतलब करीबन हर छठे दिन। और हर बार विफल और निराश। मतलब 98 बॉल फेस किए और हर बार बोल्ड। पर यह हर प्रयास उनके जीवन का अंगभूत और निर्णायक हिस्सा था, जो प्यार की प्यास और प्रेरणा से उपभुक्त था। कभी यह कहना सही महसूस हुआ कि उन स्याह और कठिन दिनों में नामिलन की मजबूरी उनके बढ़ते और गहरे होते प्रेम की बुनियाद और रक्षा कवच थी, प्रेम जो स्वर्गिक मंडल, स्फीयर की तरह था, उन्हें ऊपर और ऊपर लेता जा रहा था, सीधे प्रेम की कोख और उसके सत्व में, उसके उद्गम और जन्म का प्रथम स्रोत, उसका बीज और मूल आसव। प्रेम की सभी देवात्माएं, लगा, इस उड़ान की निगरानी करती रहीं।

इस कालावधि में फोन उनके संपर्क का अकेला तरीका था, जिसने, जितना भी वह अधूरा और बेगाना था, उसने कभी उनसे दगा नहीं किया, कुछेक विरल मौके थे जब लाइन खराब थी, कॉल टूटे, या कॉल ड्रॉप्स हुए, इस तरह की तकनीकी दिक्कतें, पर ऐसा बहुत कम, ना के बराबर था। खतों और पोस्टल सर्विस ने उनके साथ नाइंसाफी बरती, इतना ही नहीं, उनके साथ धूर्तता भी हुई जैसा हम जानते हैं। एक बार शमा ने यह भी सुझाव दिया कि वो हमराज को बरसाती से पिक कर ले, उसे कोई दिक्कत नहीं, किसी तरह यह ग्रहण तो हटे, पर हमराज ने साफ मना कर दिया, मालकिन मकान और लड़की की क्षणिक याद भर से उसकी कंपकंपी छूट गई, अगर उन्हें शमा का जरा सा इल्म भी हुआ तो न जाने क्या कर दें, उन दिनों उस बरसाती के अलावा उसके पास कोई विकल्प नहीं था, नई जगह का किराया और एडवांस भरने की न उसमें हिम्मत थी, न बूता, पैसों की काफी किल्लत थी। पर शमा को उसने यह कहकर टाला कि यह सलूशन तो शमा की अपनी थ्योरी के मुताबिक भी नहीं, आखिर शमा परवाने के पास कैसे जा सकती है? यह जुर्रत तो प्रेम के इस अनोखे काव्यपाठ और नुमाइंदगी का हनन करेगी, है न!...चलो, कम से कम तुमने मजाक तो किया, गनीमत है, शमा ने कहा, एक बार तुम सही तो हुए, और बूंद जितने आशावान! उसने कहा और हंस दी।

इस अमर प्रेम प्रसंग का पहिया एक गति से, एक ही तरह से चल रहा है, ये भी नहीं कि पहिया टूट जाए, रथ गिर जाए, कुछ तो नाटकीय, विशाल हो। क्या अमर प्रेम का अनुभव या निचोड़ यही है? हमराज और शमा के सामने न तो लांघने के लिए पहाड़ हैं, न समुंदर जिन्हें नन्ही किश्ती में तूफान, बारिश से जूझते हुए पार करना है, न बर्फीली हिम चोटियां, न घने जंगल और जंगली जानवरों की दहाड़ें...कोई राजमहल भी किसी पर्वत चोटी पर नहीं, या तोता जिसकी जान में दुश्मन दानव की अपार शक्ति है, रेगिस्तान की तप्त रेत भी नहीं जिसमें धंसकर हमराज के पैर झुलस जाएं, अपना प्यार बचाने के लिए शमा के सामने एक हजार एक रातों तक कथाएं बुनने, गुनने का चौलेंज भी नहीं, मनुष्यजात में, दूर दूर परिवार में, या समाज में उनका कोई दुश्मन भी नहीं, इनके प्रेम से किसी को कोई लेना देना नहीं...फिर ये कैसी प्रेम कथा है जिसका जश्न हम मना रहे हैं?...इतना ही कहा जा सकता है कि मन और वातावरण का निर्जन हर जंगल से ज्यादा विकट और वीहड़ है, गैर और अलक्ष्य दुश्मन की दुश्मनी सबसे मारक है, अज्ञात का भय, अनर्गल अलगाव का त्रास अहसास और वर्णन के परे है, निपट सामान्य का असाधारण अपूर्व के आगे है, निर्जन वीहड़ के न्यून, न दिखने वाले उतार चढ़ाव, हर परवान और घाटी से अधिक दुर्गम हैं...ये भी तो देखें कि हमारे लवर्स पर दोहरा, तिहरा भार है। उन्हें न सिर्फ पर्वत लांघने हैं, समुंदर पार करने हैं,

जंगलों से गुजरना है, जंगली जानवरों का वध करना है, असुर, दानवी शक्तियों को जीतना है, वह विलक्षण तोता दूढ़ना है, लगातार एक हजार एक कहानियां सुनानी हैं, बल्कि इन सब दशाओं, परिस्थितियों का, अज्ञात और अनर्गल, सपाट निसर्ग की उदासीनता को बींधते हुए, उनका आविष्कार भी करना होगा, क्योंकि जो शक्ति अज्ञात, अनाम और अदृश्य है, वह सर्वव्याप्त भी है, हर विपरीत और इंसान विरोधी ताकत और हरकत का वह समेकन और अमूर्त प्रख्यापन भी है...।

शमा और हमराज शायद शुरू से जान रहे थे कि यही उनके प्यार की चुनौती है, उनके इश्क का इम्तहान है। कि वे प्रेम के हर विरोधी मनोभाव को : घृणा, जुगुप्सा, शत्रुता, आक्रोश, कटुता, डाह, दुर्भावना, तिरस्कार, उपहास, विमुखता, मुखालिफत, अनिच्छा, असंगति, वीभत्स, दहशत, निष्ठुरता, अन्याय, दमन, संहार, हत्या, अत्याचार, अनुचित, जातिवाद, नस्लवाद, हर सामाजिक विषमता अपने जेहन में समाकर उनका सामना करें, उनका स्वरूप विष निकालकर उसे पीएं, या उनका मन मंथन कर प्रेम का अमृत सींचें...अस्तु...नामिलन का व्रत एक वर्ष मनाकर उसका इस तरह उद्यापन करें...। पर ये अधूरे शब्द हैं, भाषा की अपूर्णता और बेवसी इस पैरा में अंतर्निहित है, इसलिए यह खयाल की उड़ान हमारे लवर्स के त्याग और प्रेम के अमरत्व का संकेत मात्र कही जा सकती है।

तुम्हें लगेगा कि इन विपरीत, कष्टकर परिस्थितियों में, उन्हें यह तक नहीं पता था कि किस तरह की मनुष्यहीन, यांत्रिक, दानवी शक्ति, निसर्ग का कोई सौदा या शपथ उन्हें अलग रख रही है, परिणामी विषाद और कुंठा, और प्रेम की परछाइयां और रहस्य जिसने उन्हें अनवरत लपेट लिया था, अधिकतर लोग, प्रेमी, इस यंत्रणा का भार सह नहीं पाते...ऐसे दूधर हालात में रोजमर्रा के अपने काम पर उनका नियंत्रण नहीं रहता। पर हमराज और शमा के साथ ऐसा नहीं हुआ। जो फर्क पड़ा वह विडंबनापूर्ण तरीके से उलटा था : वे अपने काम और फील्ड में ज्यादा दक्ष, सफल और समर्पित साबित हो रहे थे, हमराज लेक्चरर के रूप में, और शमा का बढ़ता दायरा सोशल वर्क, एक्टिविज्म और कंसल्टेंसी का था। अपने क्षेत्र में दोनों की ख्याति बढ़ी, और उनके प्रशंसकों के दायरे में प्रभावी इजाफा हुआ। शमा ने इस दौरान मातृत्व, परवरिश और महिला साक्षरता पर डोकुड्रामा के लिए अवार्ड विनिंग स्क्रिप्ट भी लिखी।

हमराज के लिए ना मिल पाने की असलियत का संकट अधिक सूक्ष्म और गूढ़ था। जबरन जुदाई के यथार्थ या अयथार्थ के आईने में अपने प्यार और महबूबा की स्मृत और कल्पित तस्वीर के अलावा वह दूसरे प्रश्न और अटकलों के प्रति भी संवेदनशील और संलिप्त था। कार्टोग्राफी और टोपोग्राफी के क्षेत्र में हमराज का काम और उपलब्धियां, विशेषकर उसके एसेज और सिद्धांतों का सरल और लोकप्रिय प्रतिपादन, उसका बॉडी ऑफ वर्क श्योर और परिपक्व हो रहा था। अपने लेक्चर्स और क्लासों में उसने मैपिंग के साइंस की सीमाओं और पहेली उलझनों का जिक्र शामिल करना शुरू कर दिया था। एक मशहूर, सारगर्भित उक्ति कि 'मैप भूमि क्षेत्र नहीं' या एरिक टेंपल बेल की बेहतर सूक्ति कि 'मैप वह वस्तु नहीं जिसे मैप किया गया है' से शुरू करते हुए हमराज ने उन सभी चिंतकों और दार्शनिकों को पढ़ा जिन्होंने अपनी तरह से इस विचार को स्पष्ट किया, और वह साहित्य भी जिसने इस पहेलिका को चिह्नकित किया, विशेषकर बोर्हेज। पश्चात में यह अध्ययन सरल रूप में हमराज के मैप्स और कार्टोग्राफी पर लोकप्रिय लेक्चर्स का अभिन्न, रोचक अंश बना।

हमराज ने अपनी संलाप की डायरी में उन सूक्तियों, उद्धरणों, संक्षिप्त कथन को लिखा जो इस विषय में उसके प्रिय थे। यह जरूरी है कि उनमें से कुछ को हम पाठक के साथ बांटें, हालांकि इन दर्शन सूत्र का आदर्श, अमर प्रेम कथा से क्या लेना देना हो सकता है, यह एक अलग, मुश्किल बहस है। हमराज की डायरी का एक इस प्रकार का पन्ना नीचे उद्धृत करने का जोखिम हम उठा रहे हैं :

सूक्तियां : एक लिस्ट जिस पर सोचना जरूरी है :

- मैप किसी घूमघुमैया से बाहर निकलने की गारंटी नहीं दे सकता, क्योंकि इस बीच घटनाओं का संचयन घटना के यथार्थ को देखने या परखने का ढंग बदल सकता है : यान बायक्वा की कॉमिक लैबिरिंथ का कथानक
- कथा कहना एक संतुलन बनाने की क्रिया है, और यह ख्वाब भी है; किसी कथा का सबसे उम्दा वर्णन उसका सुनाना या वाचन ही है : नीलगैमन
- किसी भूमि क्षेत्र का सबसे अच्छा मैप वह भूमि क्षेत्र ही है और वह न केवल पूर्णतः अच्छा है, वह पूर्णतः निरर्थक और बेकार भी है : नीलगैमन
- वह सब जो सरल है गलत और भ्रामक है। वह सब जो पूर्ण है इस्तेमाल के लिए बेकार है : पॉल वेलेरी
- अगर कथा प्रदेश के किरदार पाठक या दर्शक हो सकते हैं, तो हम, जो उस साहित्य के पाठक और दर्शक हैं, कथा का फिक्शन या कपोल कल्पना क्यों नहीं हो सकते : बोर्हेज

पर फिर, भ्रम और उलझनों की छायाएं हमराज के विचार मनन के किनारों पर उभरने लगीं थीं। वह उस आईने में क्या देख रहा था, जो उसे परेशान करता था, उदास करता था? एक कंटीला, विपरीत विचार उस तक आया था : *क्या ऐसा संभव नहीं कि जिस भूमि क्षेत्र को हम देखते हैं, मैप करते हैं, वह, 'वह' भूमि क्षेत्र नहीं?* हमराज की सब मनपसंद उक्तियां, उसे लगा, यह स्वीकार कर चल रही थीं कि भौतिक संसार वस्तुगत है, स्थिर स्थायी है : जमीन, शहर, सड़कें, दूरियां, दिशाएं, लोकेशन, पूरा त्रिआयामी संसार। और जो छल, विचित्रता और बुझौवल थे वे प्रतिनिधित्व, प्रतिरूपण के इंसानी क्रियाकलाप में अंतर्निहित थे। उदाहरणार्थ, एक मैप का निर्माण। क्या ऐसा नहीं हो सकता, हमराज ने ताज्जुब किया, कि टेरिटरी भी हर इंसान के लिए हूबहू, समान और स्थिर स्थायी नहीं? हर व्यक्ति की दृष्टि, ऐंद्रियता और स्मृति में भूमि क्षेत्र या टेरिटरी का अलग अलग रूप, वर्णन और विवरण भी तो हो सकता है! और टेरिटरी के ये इंसानी संस्करण शायद आपस में अलग हैं और वक्त के साथ बदलते भी हैं?

जिस मंदिर में मैं आज स्पेस टाइम के चतुरायाम में जाता हूं, वह 'वह' मंदिर नहीं जिसे मैं दूसरी बार विजित करता हूं...जब हमराज इस तरह सोचता तो कुछ देर बाद उसका मस्तिष्क ठस और धुंधला हो जाता। फिर वह इस विचार की दिशा में आगे नहीं बढ़ पाता, और उसे इस मनन के अर्थ की पूंछ छोड़नी पड़ती, और वापसी का आश्रय लेना पड़ता। पर, स्पष्टता का अभाव और व्यक्तिगत खोने का यह बोध, उसके विषय कार्य का लाभ था, उसका विषय ज्ञान बेहतर हुआ, और किंचित मौलिक भी।

किन्हीं परिस्थितियों में महज पंख का न्यून वजन लोहे की तरह भारी लगता है। और दूसरे वक्त में तुम कंधे पर बिना प्रत्यक्ष यत्न के शिलाखंड उठा लेते हो! इंसानी अनुक्रिया, उसकी क्षमता और पराक्रम का विस्तार और विचरण असीम है। यही हमारे लवर्स, हमराज और शमा, पर उस बीस महीने की एकाकी, अनन्य कालावधि पर लागू है। जिसका वे सामना कर रहे थे और जो असामान्य आकार का अनाम, परकीय संकट था। और संकट का स्रोत अज्ञात था, और इंसानी दुनिया और भौतिक संसार में उसका कोई लक्षण नहीं था। नियति इस विकट जोखिम के लिए अपर्याप्त, नामुनासिब, बल्कि मुंह चिढ़ाता शब्द था। इससे न उनका समाधान होता था, न ही तसल्ली। विषाद ने उन्हें घेर लिया था, और परकीय शक्तियों के अंधेरे ने। फिर भी, उनके बीच प्यार का वास्ता और बंधन न केवल बरकरार रहा, बल्कि और गहरा और परिपुष्ट होता गया।

असह्य मायूसी और व्याकुलता के क्षण भी अचानक प्यार के भावातिरेक और भरोसे के संज्ञान बोध में फूट पड़ते। उन्हें यह बोध हुआ कि विलक्षण प्रेम का अर्जन उन्हें समाज से अलैदा भी करता है। सामाजिक जीवन का रोजमर्रापन और सामान्यता की तरंगें इस तरह के एकाकीपन और प्यार में अलोप होने की अवस्था पर नाक भौं चढ़ाती हैं। सच्चे और अमर प्रेमी बहिष्कृत और अजाब ए दरबदरी होते हैं, यह सामाजिक जीवन का नैसर्गिक नियम है। प्यार की दिव्यता रोज की जिंदगी की सामान्यता का खलल और खतरा है। लवर्स को वर्तमान के खांचे में नमन करना, उनके प्रति श्रद्धा या अनुराग इंसानी दिल की फितरत के खिलाफ है। रोज की कवायद में अमर प्रेमियों की अन्यता स्वीकार नहीं, कतई नहीं। वे भविष्य के उत्प्रेरक और रहनुमा ए इश्क हैं। हाल और वर्तमान उनके बैरी हैं, और भविष्य और भावी स्वप्निल दीदार की तरह उनके अंगीकार के लिए तत्पर रहता है...एक अमर प्रेमगाथा, रिवायत, किंवदंती, कुछ यादगार, प्रतिष्ठापित जिसे पूज सकें, जिसका आशीर्वाद पा सकें। यही वजह है कि वर्तमान की शक्तियां लवर्स की तरुण और कमउम्र मृत्यु का तरीका तलाशती हैं, गहरे से चाहती हैं। सामाजिक संरचनाओं की उत्तरजीवी प्रकृति का निमित्त है त्रासद प्रेम, इश्क का दुःखद रूप।

शमा और हमराज को इस फितरत का दाम चुकाना ही था : ऐसे परिणाम जो सूक्ष्म थे, और स्थूल, प्रधानतम भी, जो सामने और प्रकट थे, दिक्कत और अनहोने का जालजंजाल जिन्होंने उनके अंतर्मन में आमूल कायापलट और रूपांतरण की दुरुह अवस्थाएं पैदा कीं।

तुम मुझे कितनी अच्छी तरह याद कर पाते हो? शमा ने एक दिन हमराज से पूछा। हमेशा, सदा तुम्हें याद करता हूं, तुम नहीं करती? हमराज ने कहा...नहीं...मेरा मतलब है, कितनी बेहतरी से मुझे दृष्टि में भरते हो तुम, मेरा चेहरा, नाकनक्श, रंग मोहरा, आकृति, ऐसी चीजें...तब हमराज कहने लगा, इतनी जल्दी कुछ नहीं भूलता, तुम्हारा अक्स, तस्वीर, इतने सारे चित्र, वो हमेशा हैं, मौजूद हैं, दिल में बामशककत, बामुलाहिजा कैद!...नहीं, मेरा मतलब है, इतना वक्त गुजर गया, भारी वक्त, चिंताओं का साथ...मुश्किलें...चेहरे बदल जाते हैं, नहीं...हो सकता है मेरा चेहरा गऊ के, निरीह बकरी के माफिक दिखता हो, शमा जोर से, मौके के खिलाफ हंसी...भई अगर तुम्हारा चेहरा बकरी के जैसा दिख रहा है, हमराज ने गहरे सोच की मुद्रा में कहा, तो मैं ये मानूंगा कि बकरियां इन दिनों हूर परी जैसी दिखने लगी हैं! अगली बार बकरी दिखी, तो बहुत प्यार और शिद्दत से निहारूंगा उसे, ये तय है मोहतरमा...फिर भी, शमा ने अपने प्रश्न का सिरा थामे रखा। अच्छा तू बता, तू मुझे कैसे, कितना साफ विजुअलाइज करती है? हमराज ने जवाबी पूछा, इस सोच ने उसे जागृत कर दिया था, कुछ उलझन भी थी। बिल्कुल उस तरह मानो मैं तुझे सामने देख रही हूं, शमा ने बहादुरी से कहा। तो बता मुझे...अब तुम्हारी काली दाढ़ी है, अच्छे से छंटी, संवरी, तुम पर अच्छी लगती है, तुमने अपना चश्मा भी बदल लिया है...हमराज एकदम से चौंक गया, उछल पड़ा। तुम्हें कैसे पता?...हां, जरूर मैंने बताया होगा, चीट! नहीं, तुमने कभी फोन पर नहीं कहा, पर मुझे पता है...कैसे?...मुझे सेंस हो गया था। तुम्हारी आवाज इन तस्वीरों को मुझ तक लाती है। इंद्रियां मौके और अभाव के अनुसार एडजस्ट करती हैं, तीक्ष्ण हो जाती हैं। तुम्हें नहीं लगता अंधे लोग दूसरों का चेहरा पढ़ते और पहचानते हैं?...हां, पर स्पर्श से, छूकर...उसी तरह मैं आवाज से, उसकी प्रीक्वेंसी, सुर लहरी, उसके कंपन और थिरकन से, मुझे तुम्हारा सब कुछ दिख जाता है, निःसंग, निःशब्द, निःवस्त्र! एक बार फिर, कुछ ही देर में इस तरह की बातों के संकेत और संदर्भों ने जैसे उन्हें बेकाबू और ज्वरग्रस्त कर दिया, वे एक दूसरे के फोन कानों में इश्क मोहब्बत, चाहत उमड़नों के कच्चे पक्के खयाल और पुलाव के बुलबुले उड़ेलने लगे, जितना संभव साध्य था, आपे से बाहर होने लगे, आवेग की बिलबिलाती उड़ान और उठान...और एक

दूसरे को अपने अक्स की पहचान बतलाने की जगह वे दूसरे को, अपने प्रिय, जानेजां के चेहरे, आंखें, होंठ, बांहें, जांघ, टांगों के मंजर से रूबरू करने लगे, यह स्पर्श और जिस्मी समागम का पर्याय था, यह सब जैसे स्वप्निल हो उठा, एक काल्पनिक मंजर, सजीव, वास्तविक और खरा।

एक विस्मयकारी सच और तथ्य, जो आगे के सालों में पूर्णता से प्रकाशित हुआ, वह यह था कि इस दौरान वे दोनों लगातार रूपवान और सुंदरतर होते गए। उसी तरह जैसे एक पौधा पौधी का जोड़ा उगता, बढ़ता है, उनका रूप और कामाकर्षण निखरता गया। उनके शरीर, गठन और सौष्ठव, फिगर, ठवन, लालित्य, गतियां, मुद्राएं, चेहरे के कटाव में आश्चर्यजनक बदलाव, निखार और संतुलन जागा। जो बदलाव थे, वे सूक्ष्म, अल्प और सापेक्ष थे, उन पर तर्क या साक्ष्य की उंगली रखना कठिन था। ऐसा कोई परिवर्तन, बेहतरी नहीं थी जिसे किसी खास स्थल, विशेष अंग या अवयव से जोड़ा जा सके, जैसे नेत्र, होंठ, ठोड़ी, गर्दन, कंधे, बांहें, सीना, कमर। बस सभी मौजूद अंगों और अवयवों की आपस में समरूपता बनती गई, और निस्वती संगत और ऐक्य, जो मानो खुद बखुद एडजस्ट और कस गई थी। मानो चेहरे मोहरे और शरीर का मनचला हेलमेल निखरता गया, किसी कॉकटेल को शेक करने की तरह, जिसने सुमेल और अनुरूपता साध दी थी। पर इन नन्हे बदलावों का कुल और समग्र प्रभाव विद्युती, अगाध और अद्भुत था। विमोहक, विलक्षण, चमत्कारिक...वही शरीर था, वही मुखमंडल, शमा आफत की खूबसूरत दिखने लगी, गजब का लावण्य, आभा। यह मानो एक तरह की आर्गेनिक, प्रकृति की कॉस्मेटिक सर्जरी थी। रेचल ने इसका जिक्र किया, शमा को चिढ़ाया, *ओ दैया रे दैया रे...चढ़ गयो पापी बिछुआ...ओ हाय हाय रे मर गई, कोई उतारो बिछुआ!* जाना सुना गया है, रेचल ने कहा, कि ब्यूटी यार के दीदार की मुफीद है, पर तुम्हारे न जाने क्या पाप या जतन हैं कि रातोंरात ब्यूटी खुदी का दीदार हो गई! लां बुते रेदीद दोन ऐ ज्यु दु ला बिहेल्ड, रेचल ने फ्रेंच में ट्रांसलेट कर तफरीह ली। अच्छा, शमा ने फैले, अस्फुट नेत्रों को मिचकाते हुए पूछा, रीयली? मैं क्या पहले से बेहतर दिखने लगी हूं?... बेहतर, जनाबिन? तुम कायाकल्पित हो गई हो, और तुम्हारा बदन इसी रेट पर रूपखोर होता गया, तो कुछ क्या, एक साल के भीतर तुम हूर की परी कहलाओगी, दोजख की अप्सरा...कभी तो मुझे बख्श दिया करो, शमा ने घोर शर्माते हुए कहा। पर उसने तन्हाई में आईने में गौर किया, दर्पण से पूछा। उसे इस जिस्मानी यात्रा के गर्जनी कहर का धुंधला सा आभास था, खास तौर पर नहाते हुए जब वह खुद के शरीर से नंगी और रूबरू होती। उसे महसूस होता जैसे उसका चेहरा, उसके अंग, अपना खुद का अलग, न्यारा हसीनकश सफर तय कर रहे हैं, उसे अपने खुद को देखकर अचरज, उलझन सी होती, उड़ता उड़ता, मधुर और नाजुक सा लगता, मदहोश गुदगुदी होती। उसे लगा था यह उसकी निरी कल्पना या चाहत है, कशिश या भ्रम, पर अब रेचल ने वही बात कही, मतलब इसमें सच्चाई है, है न? कमोबेश यही हैरतमंद निखार हमराज के साथ था, मानो मेयार ए हुस्न के आईने के स्वभाव की धूल पुंछ रही थी। सही जगहों पर उसका वजन घटा और बढ़ा, उसका खड़ा होना, बैठना, चलना, गतियां सुविज्ञ और परिष्कृत होती गई, मानो उसका गुरुत्व की ओज शक्ति से कोई निजी, रहस्यमय संगत का करार हो गया है। उसने दाढ़ी उगा ली थी, जो उसे सूट कर रही थी, उसका चेहरा इकहरा, कोणीय हो गया था, गाल की हड्डियों की लाइनें और ठोड़ी के प्रभाव में मुग्ध जियोमेट्रिक सिमेट्री बन गई थी। लोगों ने शुरू में ये जाहिराना बदलाव नोटिस नहीं किए, पर जैसे महीने गुजरे, परिचितों में एक तरह का विस्मित बोध पैदा हुआ : अरे हां, शमा सच में खूबसूरत हो गई है, नहीं?...वाह, बरखुरदार छैल छबीला हो गया है, देर आया पर दुरुस्त आया, नहीं? जब शमा और हमराज अपने कामकाजी मित्र और करेलीगज से मिलते, कि क्या हालचाल, सब दुरुस्त, और निकल जाते, तो दोस्त एक बार पलट के देखने को, या

कनखियों से निहारने को मजबूर हो जाता, वह सिर हिलाता, यह उद्गार कि आप तो ऐसे न थे, मानो उसने ऐसा कुछ देखा है जिसे पहले नोटिस नहीं किया था। पर यह सूक्ष्म शरीरी बदलाव या निखार लवर्स की निगाह से अछूता था, क्योंकि उन्होंने एक दूसरे को लंबे वक्त से देखा नहीं था। इन जादुई शरीरी तब्दीलियों का संचयन, यह निसर्ग का करतब था, आगे के महीने, सालों में अधिक उन्नत, विपुल और असीम होगा, जब उनकी शादी हुई, बच्चे हुए, वे मध्य आयु में पहुंचे, सफल करियर, आपस का विरल, संपूर्ण प्यार, वे एक बहुप्रद, सविशेष, हसीन कपल थे, आदर्श, एक दूसरे के लिए बने, मिसाल लायक, ऐसे जिन्हें क्लब की शिरकतों में बेस्ट कपल अवार्ड मिलते हैं, और जिनकी उनके बच्चों के साथी, विशेषकर अमन की गर्लफ्रेंड, तारीफ करते नहीं थकते।

...शमा और हमराज की जहनी और भावात्मक दशाएं सुप्त नहीं थीं, और उन्हें यकीनी या ठोस खांचे, इस अथवा उस में फिट करना संभव नहीं था, वे इस भी थे और उस भी, या कुछ भी और, और मौसम की तरह उनका मिजाज, रवैया और रुख नित्य बदलता, और अजीब, अनजान तरीके से भी, मानो उनकी जबरन जुदाई के दर्द पर क्लाइमेट चेंज सरीखा आमूल बदलाव भी असर कर रहा है। उनकी दशाएं असमान थीं, विरोधात्मक भी, और उनमें निरंतर परिवर्तन होता। सिर्फ उनकी जिस्मानी दशा, लावण्य सुपरिभाषित था, और उनकी कामकाजी, व्यावसायिक दुनिया, जिसमें उनकी सफलता और बेहतरी तय थी। फिर भी, कुलमिलाकर, उन दोनों के भावगत स्पेक्ट्रम में अलग अलग स्थान पर मध्यमान बिंदु थे : शमा अधिक धुपहली, आशावान, खुशगवार नारंगी मन थी; और हमराज अधिक नीलवर्ण, निराश, और खिन्न बादलों से घिरा।

...वक्त की मार होती है। सवा साल गुजरने के साथ हमराज के मस्तिष्क में भ्रम और अटकलबाजी का झाड़ उगने लगा, मोथे का उद्यान मानो। जाहिराना, उस बगीचे के केंद्र में शमा और अपार इश्क का एकल, नूतन, परमानंद गुलाब था। मोथा और झाड़ उसके ज्ञान और प्रबोध संसार की पैदाइश थी, जो वह जान रहा था और नहीं जानता था, जिसके बारे में वह भ्रमित था, और भ्रमित नहीं था। अगर उन दिनों तुम उसके कमरे जाते, सर्दियां आ गई थीं, तुम उसकी रिहाइश की दशा, और वहां क्या था, देख कर दंग रह जाते। एक दीवार पर, उसे करीबन पूरा ढकता हुआ, एक विशालकाय दिल्ली का रोड और बिल्डिंग्स का मैप था, टू डी में गूगल मैप के ब्लो अप की तरह। वह दीवार पर चिपका था, और ऐसा खास नक्शा उसने कैसे और कहां बनवाया, इस रहस्य का अनावरण वही कर सकता था। बमुश्किल जतन लगा होगा और काफी खर्चा। जैसे तुम दरवाजे से भीतर दाखिल होते, जरूर तुम्हारी टांगें बिजली के तारों में उलझ जातीं, सैकड़ों तार जमीन पर सांप की तरह बिछे, आपस में गुंथे, लिपटे, और जिनसे तमाम तरह के इलेक्ट्रॉनिक उपकरण जुड़े थे। हमराज के वर्क स्टेशन से सटी कुछ टेबिलें थीं जिनपर कई तरह की मशीनें और एकुपमेंट रखे थे, खूब सारे हेड फॉंस, दो एंपलीफायर, दीवार पर आड़ी तिरछी शेल्ज जड़ी थीं जिनमें ढेर तादाद में रिकॉर्डिंग टेप्स भरे थे, हर टेप पर एक नंबर चिपका था, खास नंबरिंग स्कीम के अनुसार। लग ऐसा रहा था कि जल्दी में यहां एक साउंड रिकॉर्डिंग स्टूडियो बनाया गया है, या, यह भी एक वाजिब खयाल था, कि कमरे में फोन की बातें रिकॉर्ड करने के लिए एक व्यवस्था कायम की गई है, जासूसी भाषा में जिसे 'लिसनिंग पोस्ट' कहा जाता है। जिस बोर्ड पर दीवार के आकार का नक्शा चस्पा था, वहां खूब सारी रंगबिरंगी पिनें थीं, और बहुत सी आलपिन मैप के कतिपय स्थानों पर जड़ी थीं। कई स्थान, जिनमें उसकी अपनी रिहाइश, शमा का हॉस्टल, उनके कार्य स्थल, दिल्ली यूनिवर्सिटी वगैरह थे, सर्किल से चिन्हित थे। जाहिर है, इन बिंदुओं के निर्धारण में लगभग का आंकलन था। इस अजीब दृश्य से मानो जारी रिसर्च का अनुमान होता

था, इसे देखकर जंग और जासूसी फिल्मों के दृश्य, या थ्रिलर्स के सीन याद आ जाते, जहां बचकर भागते हीरो या हीरोइन को दुश्मन की टीम ट्रैक कर रही है। और हमराज टेप्स को सुनने में, कभी एक कभी दूसरा, काफी वक्त गुजार रहा था, वह यदा कदा कुछ नोट करता, कभी टेप फास्ट फॉरवर्ड करता, कभी रिवाइंड, और अनेक बार पहले के टेप को दोबारा, तिवारा सुनता, वह टेबिल पर देर तक इन जतनों में डूबा दिखाई देता, मानो कुछ माकूल, निश्चित या सार्थक खोज रहा है, खास प्रश्नों के खास उत्तर, किसी अंदेश, भ्रम या आतंक की थाह पाना चाह रहा है, फिर हेड फोन उतारकर वह देर तक ध्यानमग्न हो जाता, दीन दुनिया से बेखबर, अपने ही किसी गुप्त जहनी संसार में, हथेलियां ठोड़ी के नीचे उसे पनाह देती हुई, वह उसी मुद्रा में देर तक निश्चल, खामोश बैठा रहता, और फिर वह लंबे मिनटों तक मैप को टकटकी से निहारता, गुनता दिखाई देता, मानो कोई सूत्र, सुराग तलाश रहा है, मानो कोई अर्थ बनाने में व्यस्त है, किसी निर्णय पर पहुंचने में मशगूल है।

ये क्या हो रहा था? एक यही चीज थी जिसे हमराज ने शमा के साथ नहीं बांटा, उससे सलाह नहीं की। एक शाम की बात है, जब अलगाववास निभाते हुए काफी महीने बीत गए थे, दोनों के बीच फोन पर कुछ मिनट ही बात हुई, तब शमा ने कुछ उसे कहा था जिससे उसे खास संतोष हुआ। वह बेहद द्रवित हो गया था। जैसे ही उसने फोन रखा, उसने शमा के कहे को याद करने की कोशिश की। पर पहले पहल सिफर ही हाथ लगा। मानो दिमाग खाली है। ज्यों उसने और कोशिश की, उसने पाया कि उसे उस संक्षिप्त बातचीत का कुछ भी याद नहीं। जीरो! यह सिरे से भूलना, विस्मरण, निकट की याद्दाश्त का अचानक विलोपन, याद जो उसकी जान के बराबर कीमती और प्राणाधार थी, यह सदमे की तरह था, वह सिहर उठा। क्या ऐसा पहली बार हुआ है, उसने सोचा। या यह दिक्कत हमेशा से रही है, यह दारुण खयाल उसके जेहन में कौंधा। सो, यह अपरिहार्य था, रात भर वह बीती फोन की बातों का स्मरण करने की चेष्टा करता रहा, हजारों संवाद, एक साल से भी ज्यादा के, और यह प्रकाशित हुआ कि तरतीब से, वस्तुतः, उसे भरोसेमंद रूप से कुछ भी याद नहीं। मानो उसके मस्तिष्क की हार्ड ड्राइव करप्ट हो गई है। जितना भी वह स्मरण कर सका, सिर्फ बनते बिगड़ते, सरकते अंश और टुकड़े, गिरती बर्फ के लावारिस फाहों की तरह, एक मिटता, देहमुक्त स्वर। इतना व्यापक, घना, विषद और जीवंत संवाद का भंडार था उनके बीच, अमर प्यार की अमर बातें, गिले शिकवे, भविष्य के मसूबे और शरीक ए सोज के आलाप, सुकून और परम उल्लास के जिंदा क्षण, सुनहले ख्वाब और रहस्यों का अनावरण, अतीत और बचपन की यादें...यह सब का सब जो उनकी बेदर्द जुदाई का विशिष्ट, सजीव प्रमाण और गवाह था, वह मानो एक सामान्य, अमूर्त सारांश में घनीभूत और जड़ हो गया, एक लंबे, दुरूह दस्तावेज के समापक तबसरे, टिप्पणी या उपसंहार की तरह : कि यह सही है, मी लॉर्ड, कि वे फोन पर बखूब, निरंतर बात करते थे, उनके संपर्क और संलाप का यह अकेला जरिया था, वे लवर्स थे, और सदा महबूब ही रहेंगे। बस, दैट्स ऑल, मी लार्ड!

उस शाम को ही हमराज ने फैसला किया कि वह उनके आपस के हर फोन के संवाद को रिकॉर्ड करेगा। फिर उसने तत्काल, अक्षरशः, सारी मशीनें, उपकरण और टेप्स खरीदे। उसे काफी मशक्कत और स्टडी करनी पड़ी, क्योंकि इस क्षेत्र में वह नौसिखिया था। हर बार जब शमा का कॉल आता, या हमराज उसे कॉल करता, वह पहले रिकॉर्डिंग ऑन करता, और फिर फोन लेता या करता। जरूर यह एक बाहरी व्यवधान था, जो उसकी प्रतिक्रिया या भावनाओं की शुद्धता, सहज गुण को प्रदूषित और कमजोर कर रहा था, यह एक प्रकार की चीटिंग थी, और हमराज को इसका खूब संज्ञान था। फिर भी उसके लिए यह लौह नियम बन गया। संवादों को वह फिर एक टेप पर उतारता, हर टेप का एक नंबर, ताकि कॉल्स की स्पष्ट सीक्वेंस रहे, और वह उन्हें,

जरूरत के अनुसार, तरतीबवार, निरंतरता में सुन सके, आपसी तुलना कर सके, या पीछे से आगे, आगे से पीछे खंगाल सके, प्रमाण या पुष्टि के लिए, गुप्त सूत्र या सुराग को पकड़ने के लिए, यह सब थ्योरी में ठीक था, हालांकि उसे खुद यह साफ नहीं था वह क्या वास्तव में खोज या चाह रहा है। अक्सर उसका प्रयास होता वह किसी भी रैंडम दिन और वक्त का टेप पकड़े, उसे ध्यान से सुने, फिर किसी और आगे या पीछे के दिन का, और संलाप की उनकी यात्रा में सूक्ष्म बदलाव या फरक को इंगित, करे, मापे, और वाजिब नतीजे प्राप्त करे। संवाद के वक्त सफर में आगे पीछे जाना, यह उसकी सबसे अहम और कशिश ए दिल तलाश थी, मानो उन सैकड़ों, हजारों संवाद में उसे वह आदान प्रदान, बातचीत, गुफ्तगू का चमकता टुकड़ा मिलेगा, जो संपूर्ण संवाद इतिहास के रहस्य और निहितार्थ का पर्दाफाश कर देगा...हमराज को आभास था कि अथक, न्यारे, अमित प्रेम के असीम में 'पर्दाफाश' और 'वाजिब' जैसे विशेषण और क्रियाएं जहर समान हैं।

अमर प्रेम कथाएं, इश्क की अमर, त्रासद दास्तानें, जो शताब्दियों से प्रचलित हैं, उनका जोर और वर्चस्व कभी न्यून नहीं होता...पर उनके बावजूद भी अमर प्रेम का अंतर्ज्ञान, एक बिंदु या दूरी के बाद, नामालूम, अज्ञेय रहा है, शायद यह अमर प्रेम का सर्वाधिक तात्विक सूत्र है...यही वजह है शायद, कि शमा और हमराज भी अमर प्रेम का निर्वाह करते हुए 'पर्दाफाश' और 'वाजिवियत' के जंगल में, कांटों में उलझे थे।

जाहिराना, हमराज के रोजमर्रा के रूटीन में काफी फर्क पैदा हुआ। शमा और हमराज की रोज फोन पर एक या ज्यादा बार बात होती, सारी अमली दिक्कतों के बावजूद, यह आखिर उनकी लाइफलाइन थी। पर हमराज रोज की आवेगमय, भरी पूरी, व्यंजक, प्रेमासक्त बातों में कम वक्त और ध्यान लगा रहा था, जितना उनके पुराने, बीते दिनों के संवादों को छानने और सुनने में। तो, एक तरह से, जब वह फोन पर शमा को सुन रहा होता, या खुद बोल रहा होता, बीते का उनके बीच कुछ कहा या सुना, गूंज, अनुनाद की तरह ध्वनित होता, पृष्ठिका, हस्तक्षेप, परिप्रेक्ष्य की तरह। मूड और विवरण आपस में गडमड हो जाते। हमराज के स्वर में हैरानी और भ्रम के बादल ने घर बना लिया, लगता वह निरंतर कुछ तोल रहा है, टोह और तुलना। मानो प्रेमी की जगह उसका रुख और अख्तियार जज या जासूस का हो गया है, जो और भी खराब और अक्षम्य था।

शमा को यह बदलाव नोटिस करने में ज्यादा वक्त नहीं लगा। यह मजाक की बात हो सकती थी, पर आसन्न खतरा भी था। क्या हो गया है तुमको?...क्या? कुछ भी तो नहीं...तुम हमेशा बेचैन, खोये से सुनाई देते हो...होता हूं, बेचैन और तल्लीन तुम्हारे लिए, हमराज ने बचते हुए कहा। कोई मसला है?...मसला? नहीं तो...तो फिर क्या है, क्या तुम्हें परेशान कर रहा है, मेरी जान...तुम जानती हो क्या हमें परेशान, व्यग्र करता है, हमराज ने कहा, मिल पाने का दुर्भिक्ष, नामिलन की तन्हाई, उजाड़, वीराना। मायूसी की यंत्रणा...नहीं, शमा ने तरेरा, यह निर्जन और दुश्चारी एक साल से ज्यादा की है। और हमने उसका सामना करना सीख लिया है। उससे ऊपर उठना, ऊपर से उड़ान भरना। तुम, मेरे जिगर, किसी और चीज में धंस रहे हो, डूब रहे हो। मुझे बताओ...नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं, सच में, यह सिर्फ थकान होगी, क्षण की कमजोरी, इससे ज्यादा नहीं, हमराज ने टालमटोल, एक चोर के स्वर में कहा।

यह उसे मदद नहीं कर रहा था, यह रिकॉर्डिंग और टेप करने का जतन। उसे अहसास था यह कारस्तानी शमा के साथ दुश्चर छल है। और उसे अपने पाप या कसूर का तीखा अहसास हुआ जब एक दिन, जैसे वह अक्सर करती थी, शमा हमराज का जी ठीक करने के लिए उसे प्यार के आगोश में लेकर चिढ़ा रही थी, उनकी लंबी तन्हाई और जिस्मी, रूहानी तड़प को लेकर। बताओ तो, तुम्हारे भीतर कौन सी प्यास ज्यादा है, तराजू पर तोलकर सच सच बताओ, जिस्मानी या

रूहानी? हमराज ने हां हूं की, यूं नहीं कि उसके पास सवाल का तुरंत जवाब नहीं था, पर वह शायद किसी और खयाल में तल्लीन था। तब शमा ने कहा : असल में एक तीसरा आदमी इस जुदाई के आलम को फरक नजर से देखे शायद। हमराज को तुरंत कुछ कोंचा। कैसे, उसने पलटकर पूछा...हां जी, अब आई न मेरे प्यारे ऊंट की जान पहाड़ के नीचे! शमा ने चाव से कहा। तीसरा आदमी शायद ये कहे कि यह आदमी, याने कि तुम, एक नंबर का लोफर है, कहे कि एक नंबरी है, हो न हो दस नंबरी है!...शमा की आवाज में अनोखा लावण्य और नजाकत थी, चट्टानों को पिघलाने की चाहत और कशिश। ये आदमी, मतलब के तुम, शमा ने गाती सी आवाज में कहा, इस बेचारी सीधी सादी कन्या, अक्षत कुंआरी के पीछे हाथ धोकर पड़ा है। ये आवारा, याने तुम, भोली बाला, याने मैं, का दिन रात पीछा करता है, कमीना कहीं का!...शमा मूड में थी, असीम प्यार के अनवरत संवाद के मूड में, सो बोलती चली गई, एक सिद्धहस्त श्रुति परी, वाक्खल की जादूगरनी की तरह, कहे के किले बनाती, बोली : पर मेरी जूती मेरे ही सर भी पड़ सकती है। कि ये अबला, अबला न होकर हुकर और सड़कबाज है, बेशरम और बेइज्जत। आदमी इस छिछोरी और तिरियाचरित्तर में कतई आकृष्ट नहीं, पर ये कमीनी इस भली आत्मा के पीछे लगी है, बेशर्मी से डोरे डाल रही है, उसकी बाहों में गिरने को हर सूरत में तैयार है...क्या ऐसा नहीं लगता, मेरी जान, कि हम चोर सिपाही का कुत्सित, शयन खेल खेल रहे हैं, बल्कि चोर चोर का, जबकि हम दूर दूर से मौसेरे भाई बहन भी नहीं...इस तरह शमा खूब देर बोलती रही, शहद की तर्ज पर उसके शब्द हमराज के कानों में जलते तेल की तरह गिरते रहे। ये बातें हमराज को शिद्दत से चुभीं। उसे कसूरवारी का तीखा, तिक्त अहसास हुआ, वह भरभरा सा गया। क्या वह अपनी महबूबा की जासूसी नहीं कर रहा? क्यों वह ऐसा घृणित काम कर रहा है? आखिर ऐसी क्या बदगुमानी या संदेह है? क्यों? क्या प्रयोजन है उसका? वह इस राह पर क्यों चल रहा है? कोई वाजिब वजह नहीं थी, वह जान रहा था। पर रुकने के बजाय, वह अधिक जतन से जुटा रहा, मानो यह विकारी लत है जिस पर उसका कोई बस नहीं, वह इस कुत्सित राह के लिए प्रतिबद्ध है, मानो यह कोई इश्क की पाकीजगी का अनर्गल, गलीज इम्तहान है! और फिर उसने पाया कि सारे टेप आपस में बुरी तरह गडमड हैं। न आगा न पीछा। उनमें कोई सीक्वेंस या तारतम्य नहीं है। मानो किसी ने दखलंदाजी कर पूरी नंबरिंग स्कीम को बदल दिया है या नष्ट कर दिया है। उसके बाद टेप्स में गैप्स प्रकट होने लगे : रिक्तियां जहां कोई आवाज नहीं थी, और ऐन वक्त, महत्वपूर्ण मुकाम पर, पूरा प्रयोजन इससे अर्थहीन और अशक्त हो गया।

हमराज को लगने लगा कि जब वह कमरे में लौटता है, तो वस्तुएं और चीजें उन अचूक जगहों पर नहीं होतीं जहां वह उन्हें छोड़ कर गया था। वे मानो अपने स्थान से मुकर, हट गई हैं, उन्होंने सरककर जैसे अलग स्थान बना लिया है। यह चकमा, तबदीली इतनी प्रत्यक्ष नहीं थी कि आंख में सीधे चुभे, ललकार या प्रकृति के खिलाफ नमूदार बगावत की जगह यह सूक्ष्म छल या गुप्त षड्यंत्र की तरह था, पर असर या संघात हमेशा खिसकने की भौतिक दूरी से कहीं ज्यादा था।

हमराज सतर्क हुआ, और भयभीत, शंकित भी। पर उसे इस नए इलहाम से हल्का सुकून भी था, अगर इस तरह की खोज या अहसास दिलासा का भाव पैदा कर भी सकता है। तसल्ली थी तो इस बात की कि वस्तुओं के सरकने का यह अमंगल इंद्रजाल उसकी कच्ची थीसिस को कुछ हद तक संपुष्ट कर रहा था, कि उसकी दुनिया में चीजें व स्थान वहां जरूरी नहीं मौजूद नहीं हैं जहां वे अपेक्षित हैं, या जहां उन्हें सामान्य भौतिक नियमों के अनुसार होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, अमर प्रेम की जुस्तजू और निर्वाह में चतुरायाम स्पेस टाइम उसके साथ न जाने किस शक्ति के अधीन छल, धोखा कर रहा है, और इस धूर्तता में शत्रुता और अदावत का भरपूर अंश है, यह फिजिक्स

के आधारभूत सिद्धांतों के साथ खिलवाड़, नाजायज उल्लंघन भी था। संकट और भय का विषय था ये, और इश्क के भरोसे पर ही इसका सायास परिज्ञान इंसानी शक्ति के दायरे में संभव था। हमराज के हृदय के बीज केंद्र में अमर प्रेम की पाकीजगी की अग्निशिखा दमक रही थी, और उसके अहसास में लंबे प्रश्नचिह्नों की चिंगारियां थीं। ज्यों अनुत्तरित प्रश्नों की गीली लकड़ियां आग को कुरेदतीं, वह बुझने के बजाय अधिक उदीप्त और रक्तिम हो उठती। इस सहसा उन्नत और खूबसूरत आदमी के साथ एक तन्हा, दिव्य प्रभामंडल जैसे जुड़ गया था। लगता उसकी शख्सियत से कुछ असीम और बे बुने की किरणें फूट रही हैं, एक प्रकार का उदास, निर्जन यश या फख्र ए राजी ए अमल...जो उसकी महिला सहकर्मी, मित्र, या बिंदास छात्र, छात्राओं को यह सोचने के लिए मजबूर सा करता कि, हाय, हाथ बढ़ाकर इसके गाल सहला दें, बालों में उंगलियां फेर दें, या असल में आगोश में भर लें, उसके झुलसते, उदास प्रताप को गोद की छांह में छिपा लें। न जाने कितनी औरतें उस काल में उसे बिना उम्मीद के प्यार करने लगीं, वह खूब समझ रही थीं यह शख्स अलभ्य और किंचित पुनीत है, मानो वह किसी नसीबवर अप्सरा का सात जन्मों का आशिक, प्रेमी है।

कुल मिलाकर हमराज की उन दिनों यह स्याह सफेद मिश्रित स्थिति थी : क्लांत उल्लास और जीवंत उदासी के बहते, झरते अहसास। शमा की प्रकृति अलग और उजली थी, जैसा हम पहले भी कह चुके हैं, इसलिए अलगाव के इस निरंतर, अबूझ संकट और उलझन की तरफ उसकी प्रतिक्रिया की रेंज मुख्तलिफ और भिन्न थी। वह अधिकांश आशान्वित रहती, कोशिश करती, और बहती या निश्चल नदी की स्याह सतह पर हमेशा जलते दिए तलाशती और उन्हें पा भी लेती। वह खुशबख्त भी थी कि उसे रेचल जैसी जांबाज, उत्पाती, खुशमिजाज दोस्त का सहारा और इंश्योरेंस का इत्मीनान था। रेचल अनोखी ऊर्जा और साहस की धनी थी, और बेजोड़ चरित्रवान और अनुरक्त, सिद्धांत और मित्रता के लिए मर मिटने को तैयार।

तुम इतने आदमियों, मतलब बॉयफ्रेंड्स, के साथ कैसे मैनेज कर लेती हो?...मैनेज करने में लगता ही क्या है?...मतलब, एक साथ कई अफेयर, ताश के पत्ते शफल करने की तरह, और फिर भी जैसे कोरी, अनछुई! शमा रेचल से अचरज से पूछती...अनछुई? रेचल की आंखें मुस्कराईं। लुक, रेचल ने कहा, एज फॉर सेक्स, जहां तक मेरी बात है, शरीर की, जिस्म की, उसकी छूना छूनी में संसर्ग की कोई कमी नहीं! जितना ज्यादा उतना कम, ये उग्र का तकाजा है जान। नहीं, शमा ने हकलाते हुए कहा, मेरा मतलब है तुम इतनी बेअसर लगती हो। आखिर, जब अफेयर होते हैं, तो उनका असर जिस्म के अलावा दिल और मन पर भी पड़ता है, दिल तो एक ही है न...तेरा मतलब है, कई आदमियों के साथ सेक्स का इशू? साफ क्यों नहीं कहती! पर ये कौन कहता है कि सेक्स को जहनी होना ही होना है। सेक्स शुद्ध जिस्मानी भी हो सकता है, पांच इंद्रियों का विशुद्ध शोरबा भोग, सुख, विलास, नहीं?...फिर भी, एक औरत के लिए...तेरा मतलब है हम लड़कियां अलग होती हैं? शायद ये सही है, पर मेरे लिए, मैं अपने हाल के बॉयफ्रेंड के साथ नंगी हो सकती हूं, पर मेरा दिल और आत्मा सुरक्षा की गहरी परतों में आवृत्त और लिपटे होते हैं, अनछुए!...हां, पर एक तरह से ये दयनीय है, नहीं? शमा ने कहा। डार्लिंग, नजरिए की बात है, सेक्स को अनावश्यक तरजीह मिली हुई है। सेक्स बाइ इटसेल्फ सिर्फ लुफ्त और वासना का रस और विहार है, जैसे दूसरे ऐंट्रिक सुख...हां, पर प्यार, वह कहां फिट होता है इस राग में?...प्यार एक अलग ही उदात्त और झंझटी चीज है। अगर जो मैं कभी प्यार में पड़ी, और उस वक्त का मुझे बेसब्री से इंतजार है, तो मैं तुम्हारे मुकाबले कमजोर सिद्ध हूंगी, रेचल ने कहा। और, जानती है तू, जहां तक इश्क, मोहब्बत का सबब है, तू मुझसे मीलों आगे है, बहुत बहुत खुशकिस्मत हो, मेरी जान। मुझे मौका और आजादी होती, तो मैं तुरंत अपने अहसास और जिंदगी की तुमसे अदला

बदली कर लेती। ले मैं तो अभी कहती हूं, एक हमराज मुझे दे दे, और मुझसे सारे सेक्सी, मूर्ख, खूबसूरत, लजीज बदन के मर्द ले जा। शमा लज्जा से लाल हो गई, और झूठी नाराजगी से उसे दगाबाज कहने लगी, वे दोनों देर तक साथ में हंसते रहे, और वाइन की पूरी बोतल गटक गए।

तुझे अहसास भी है, तू कितनी खूबसूरत हो गई है, रेचल ने नशे और मीठी थकान में चूर, स्वप्न सी आवाज में कहा। हर रोज, हर क्षण, तेरा रूप खिलते गुलाब की तरह निखर रहा है, बूंद बूंद, गिरती ओस की तरह। शमा के गालों पर अरुणिमा की लहरें तैर रही थीं। रेचल ने अपनी सबसे प्रिय, अंतरंग सखा का हाथ पकड़ा, मनाते, राजी करते हुए उसने शमा को निर्वस्त्र होने पर मजबूर किया, वह उसे आईने के सामने ले गई, उसे सहारा देती, सटती हुई, शमा के पैरों में बेहोश थिरकन थी। देख अपने को, शरीर के पुर सुरूर को, कि तू कैसी कण कण, अंग अंग हसीन और जलता अंगार दिख रही है, रेचल फुसफुसाई। एक नाजुक, महीन मूर्छा से शमा का जिस्म नहा गया, वह एकटक अपने नंगे जिस्म को मानो पहली बार निहार रही थी। वह बार बार कांप गई जब रेचल ने उसे पीछे से अपनी बांहों में भींच लिया, उसके वक्षों को अपने हाथों के घेरे में बांध लिया। रेचल की गर्म सांस उसके गले पर बहक रही थी। शमा को लगा कुछ जल्दी ही घटने, फूटने वाला है। कुछ बारूद सा, जिस्म के भीतर कुलबुलाता सा।

नहीं नहीं, तेरे साथ नहीं, रेचल के लरजते स्वर ने उसके कान में बुदबुदाया। रेचल पीछे हट गई, अब सिर्फ उसकी छाया शमा से लिपटी थी। तू बेहद कीमती, अनोखी है, रेचल ने कहा, मुझे तुम्हें हमराज के लिए बचाना है! यह मेरा दरिद्र, घिसा पिटा त्याग है, रिनोसेशियाँ इन्चुतिल... मुझ जैसी मुबारक पापिन का, है न मेरी जान!

शमा ने अपने अंतर्मन के गहन में कभी नहीं माना कि उसके महबूब और खुद पर लागू असामान्य, अप्रसम निषेधाज्ञा, उनका आपस में अकारण नहीं मिल पाना कोई घोर अभिशाप है, या परकीय अवरोध है, एक अनिष्ट शक्ति। जो उन्हें चतुरायाम स्पेस टाइम में बिंदु या निर्देशांक के रूप में एक दूसरे में विलीन नहीं होने दे रही, जैसा हमराज स्याह मनोदशा में अक्सर कहता था। वैसे भी, उसे स्पेस टाइम के नियम और सिद्धांत की खास जानकारी या ऐतबार नहीं था। बनिस्वत, उसने इस क्रूर दशा को देवत्व के इशारे की तरह मन में स्वीकार किया, और यह कि यह दशा अंततः उनके हित में है। इतना ही था कि उनके सितारे इस वक्त ठीक तरह से सधे नहीं थे। पर समय गुजरेगा, और मुकद्दर का फैसला उनकी तरफ होगा। शमा के नजरिए में प्रकृति, सितारों का इख्तियार अनुकूल और दयालु है। हर मजहब का भगवान उदार और कृपालु है, देवत्व के मिजाज में कोई दुर्भावना या नफरत नहीं, वह कहती। उसे लगभग विश्वास था कि जितनी बार भी उन्हें मुलाकात के जतन में विफलता हाथ लगी, वे सब अंततः भूलचूक थी, संदेश की गलती या टाइमिंग का दोष। कुछ न कुछ डिटेल हर बार रह जाता। यह हमारी गलती है, और ज्यादातर तुम्हारी, उसने हंसते हुए हमराज से कहा, क्योंकि तुम प्रोफेशनली इतने भुलक्कड़ हो, और तुम्हारी दिशा की सेंस जीरो है...आई टेल यू, मुझे इतना डर लगता है कि एक दिन तुम अपने मनमौजीपन में किसी कुत्ते की दुम पर पैर डाल दोगे, और वो तुम्हें काट लेगा, ये करतब सांप के साथ भी हो सकता है, क्योंकि वह तुम्हें निश्चित रस्सी दिखाई देगा, और इससे भी बदतर, किसी दिन औरत का गाल पर चांटा खाओगे, क्योंकि तुम सीधे उससे टकराओगे, या समझोगे कि वो मैं हूं, और जाकर झप्पी मार लोगे! यह सुनता हुआ हमराज पहले कुछ खीजता, पर अंत में उसे शमा की हंसी में शामिल होना पड़ता। और चारा भी क्या था।

बस ये है कि ईश्वरीय या परम शक्ति को यह लगता है कि हम अमर प्रेम के लिए पूरे तैयार नहीं, वह हमराज से कहती। ये एक आजमाइश है, अग्निपरीक्षा, एक खास, पाक ऊंचाई

हमें हासिल करनी है, प्रेम जतन की बुलंदी, एक मुहरबंदी हमें करनी है, और जिस क्षण यह संपन्न होगा, हम डंके, नगाड़े, ढोल, मृदंग की चोट पर मिलेंगे, खुले, रोशन आसमान के नीचे, या गहरी, संकरी गुफा में, जहां तुम चाहो, तुम देखना, तुम मन में मेरा नाम लोगे, और मैं उसके पहले तुम्हारे आगोश में हूंगी, तुम देखना...मुझे इसमें तिलमात्र संदेह नहीं, अगर ऐसा न होता तो हमारा प्यार अब तक कमतर हो गया होता, पर मोहब्बत का ताप तो बढ़ता जा रहा है, है न? इतना कि उसके भंवर, बवंडर को काबू में रखना असंभव हो गया है...ये सब कहते हुए कभी शमा की आवाज महीन और कातर सी हो जाती, तब हमराज की बारी होती कि वह कुछ सुंदर, अजीब बयान करे, वह ऐसा करता, वह यह तो नहीं कहता कि तुम्हारे मुंह में घी शक्कर, पर उसे मन की जुबान में कुछ मीठे का जरूर अहसास होता।

शमा की मनोदशा में स्याह रंजोगम के पल भी थे, ऐसे दिन जब सब कुछ उदासी के अंधेरे में डूबा महसूस होता। चिढ़ और संशय के मकड़जाल। पर फिर उसके निकट रेचल थी, जिसका मजबूत सहारा था, वह उसका मूड़ उठाती। एक दिन शमा खास क्षुब्ध थी। उस रोज उनकी, शमा और हमराज की, बात तक नहीं हो पाई। फोन लगातार एंग्रेज्ड, एक बार फोन लगा भी तो पलों में स्वर की शून्यता। वह पूरे दिन म्लान रही, और देर शाम घर लौटते हुए उसका पांव सड़क के गड्ढे में पड़ गया। वह कराह उठी, उसका मन कराहा, पर सड़क के सूनेपन में वह निपट अकेली, निरीह थी, आत्मदया के क्लेशमय सर्प ने उसे जकड़ लिया। यह शमा के सामान्य आचरण का नकार था। अब बस यही मेरा बस रह गया है, कीचड़ और गड्ढों में गिरना। कितना साफ सफा गिरना। तलछट और गंदले की चौपियन जो बन गई हूँ मैं, शमा सुबक रही थी, रेचल ने उसे चुपचाप सुना। ऐसी जिंदगी का होना न होना बेकार है। किसी कुएं में डूब मरूं, ये ही अच्छा...अच्छे से भी बेहतर, रेचल ने शोख संजीदगी से कहा, रहस्य और दिल्लगी की ओट, कितना अद्भुत और बेहतरीन खयाल है, बेल डडे इनुचि, रेचल ने कहा, मानो तारीफ कर रही है। चलो, एक कुआं दूढ़ते हैं, एक बढ़िया कुआं, एपुंड प्रोफों, रेचल ने शमा का हाथ पकड़ा, ताकि तुम उसमें पूरी शमा शोभा से कूद कर डूब सको, है न! और यह रेचल की अनूठी फितरत थी कि अगले दिन उसने शमा से जबरदस्ती छुट्टी करवाई, एक ऑटो लिया, ड्राइवर को कहा डॉलर में इनाम मिलेगा, जो कहीं सो करो, पूरे दिन दोनों ने दिल्ली की खूब खाक छानी, खास तौर से पुरानी दिल्ली के गली कूचे, एक लाजवाब कुएं की तलाश में! उन्हें इस फिराक में अनेक बावली देखने को मिलीं, पोखर, गंदे बदबूदार नाले, दलदली धसान, लुप्त तालाब, झील के सिकुड़े तल, पर कहीं भी इस्तेमाल योग्य, उपयुक्त कुआं नहीं मिला। कुछ कुएं जरूर मिले, पर उन पर लोहे की जालियां थीं। कुछ खुले कुएं थे जो सूखे थे, और जिनमें पानी था, उन्हें रेचल ने यह कह कर खारिज कर दिया कि पानी इतना कम है कि वह सच्चा डूबना नहीं होगा, इतना पानी कुएं में होना चाहिए कि शमा उसमें छपाक से गिरे, और इतनी गहराई कि तैरना जानने के बावजूद अंत में वह डूबे और उसकी, मतलब तुम्हारी जान चली जाए! यही तो मेरी दोस्त की दिली ख्वाइश है, है न! जाहिर था, ऐसा कुआं मिलना नहीं था, सो नहीं मिला। पर इस बहाने गजब की सैर रही, अजब, मशहूर और अनोखी जगहों पर उन्होंने जमकर हर तरह का स्वाद चखा, छक कर खाया : छोले भटूरे, टिक्की, चाट, जलेबी और लाजवाब, लजीज कबाब और गोश्त बिरयानी। भरे, फटते पेट और मदमस्ती में वे रात में लौटे। ऐसी थी रेचल!

रेचल ने ही शमा का रिक्के के खयाल और पोएट्री से तआरुफ कराया। न केवल काव्य, बल्कि उसके हवाले और सिफारिश के बिखरे रत्न, उसकी कवायदें और यत्न के हमवार अंधड़... दिनों में, हफ्ते और महीनों की अहद ए असीरी में शमा को रिक्के के कितने ही उद्धरण कंठस्थ

हो गए, जिन्हें वह अपने जेहन में बार बार दोहराती :

वे जवाब न खोजो, जिन्हें तुम जी नहीं सकती, अभी सवालों को जीना है...वह सब होने दो, जच्च करो, जेब और खौफ, बढ़ती जाओ, कोई जच्चा अंतिम नहीं...कि जिंदगी का मकसद है महान और अधिक महान चीजों से हारना...इश्क में जरूरी अभ्यास यह है : रुखसती! बांधना और बंधे रहना आसान है, सीखने की जरूरत नहीं...मैंने दस हजार साल लंबी परिक्रमा की, मेरे मीत! मुझे अब भी संज्ञान नहीं मैं बाज हूं, अंधड़ या अधूरा गीत!

शमा को सबसे प्रिय थी रिल्के की डुइनो एलेगीज...मरसिया, विलाप का शोकगीत, जो उसे निर्मल हर्ष का प्रस्फुटन लगता, था भी ।

रात की करवटें होतीं, ज्वर की कंटीली सेज, बहुत करीब होने और न होने की गुंथी वेणी, और लैंप के धूलि कण में शमा अक्षर अक्षर, हर बार कुछ अलग, अज्ञात और असुलभ पाते हुए रिल्के को पढ़ती : जब तुम प्रियतम के साथ, मस्तक, चेहरा, गर्दन, साया, लिपटकर ऊपर उठती हो, संपूर्ण रसपान, मुंह में मुंह, अजीब है जतन में सुदूर हो जाना...कितनी नरमी से प्रीत और विरह उनके कंधों पर बैठी थी, वे दुनिया से विलग प्राणी थे...कितना हल्का था उंगलियों का स्पर्श, जबकि धड़ में प्रचंड बल था, कितना आत्मसंयम था... ।

शमा रेचल से कहती रिल्के के शब्दों में वे ख्याब हैं जिन्हें वो रोज देखती है, इश्क और प्रीत की खराश जो आगामी और परे है ।

रोज का कोई साधारण काज, उसे तुम्हें देखने दो...शमा पढ़ती, कंठस्थ करती...बहुत प्यार से उसे वाटिका के निकट ले जाओ, उसे वह प्रदान करो जो रातों से ज्यादा है, उसे न जाने दो, उसमें समा जाओ...अगर चाह की अधिकता है, इश्क ए नामुराद के गीत सुनाओ, उस मोहब्बत की तपिश अतल है...कांपते हुए, न समझते हुए शमा ने पढ़ा : ये वक्त है, प्यार में अथाह डूबकर हम महबूब से आजाद हों...सिहरते, सहते, जैसे तीर कमान को सहता है, ताकि, अपने पथ की उड़ान में वह अपने से कुछ अधिक हो, क्योंकि ठहराव कहीं नहीं होना है!

जब रिल्के का भार ज्यादा महसूस होता तो शमा सेंटीमेंटल गीतों की लाइनें गुनगुनाती, जैसे : क्या यही प्यार है, हां यही प्यार है...दिल तेरे बिन कहीं लगता नहीं, वक्त गुजरता नहीं...रुत बदले, दुनिया बदले, प्यार बदलता नहीं... ।

क्या रुखसती प्रीत का उत्कर्ष है? प्रणय और चाहना के अतिरेक की गिरफ्त में शमा ने अपनी संलाप की डायरी में लिखा ।

...शमा को हमराज की हाल की दशा का कोई इल्म नहीं था । यह कि वह फोन की बातें रिकॉर्ड कर रहा है, और हर दशा, अवस्था के प्रति वह दुखद रूप से सचेत और संवेदनशील हो गया है । एक दिन, वे दोनों कमरे में यूं ही बातें कर रहे थे, रेचल और शमा, दोनों ने एक दूसरे के कपड़े पहने थे, ब्रा भी, कि रेचल ने संभवतः इस अंतरंग अदला बदली से प्रेरित एक खयाल रखा : क्यों न मैं हमराज को फोन करूं, तू बनकर, और डेट फिक्स करूं? शायद तब ना मिलने की इस मनहूसियत की कड़ी टूटे? खयाल तो बादल हैं, उनका क्या, उन पर किसी का जोर नहीं, शमा ने वाइन की मस्ती में कहा, तब रेचल ने शमा की आवाज की नकल उतारने का नमूना पेश किया, और वह बहुत अच्छी, करीब प्रोफेशनल थी । वैसे भी, रेचल ने बिंदासपन से कहा, अगर हमराज को खटका हुआ तो मैं कह दूंगी मैं रेचल हूं, तुम्हारी दुश्मन नहीं, वो बुरा नहीं मानेगा । शमा को शुरू में दुविधा हुई, फिर वो मान गई, कि चलो ये भी सही, परखने में क्या हर्ज है, शायद ये जुगत काम कर ही जाए, खराब से खराब, मजाक बन जाएगा...इस तरह एक शाम रेचल ने हमराज को फोन मिलाया, पूरा रूतबा, गजब का कौशल, हमराज ने यह छल पूरा का पूरा पी लिया,

और रेचल ने शमा बनकर उसके महबूब के साथ आजाद, धाराप्रवाह संवाद बना लिया। मानो शमा ने उसमें प्रवेश कर लिया है, वह सच में शमा बन गई है, और वही बातें कह रही है जो शमा कहती। शमा रेचल को एकटक, मंत्रमुग्ध सुन, देख रही थी, अजीब सा रस, शुरु का तनाव पहले दिल्लीगी बना, फिर शमा के भीतर अनायास यह अजीब, बेचैन अहसास घिरने लगा कि वह हमराज को चीट कर रही है, और रेचल उसे। क्योंकि अब उनकी बातों में गाढ़ी सी अंतरंगता कायम हो गई थी। उसने रेचल को इशारे से फोन काटने के लिए कहा, रेचल ने उसे रुको अभी की खामोश इत्तला दी। चीजें अनायास हाथ से बाहर होती जा रही थीं...अब शमा कैसे इस फोन टॉक को रोकती, रेचल की बातें अब बेकाबू, उच्छृंखल सी हो गई थीं, वे अनैतिक और कामी के सिरों को छूने लगी थीं, विवश सी शमा भीतर बाथरूम में छिप गई, पर उसके कान मानो सुनने के लिए दीवार को छेद रहे थे। रेचल का निसर्ग खिलंदड़ा था, उस लीक पर चलते हुए वह खुली ठसक से इश्कबाजी करने लगी, यह रेखा बहुत महीन होती है, वह खूब हंस रही थी, सरगोशी और चुंबनों की फूंक उड़ाना, रेचल ने कुछ नहीं छोड़ा, हमराज को इस नमकीन नॉकड्रॉक और खुशमिजाजी पर रश्क हो रहा था। क्या बात है जानेमन, आज तुम अलग सुनाई दे रही हो? हमराज ने चुहल की...कैसे? रेचल की खास लरज...वो इस तरह कि आज तुम कमीने, मस्तमगन किस्म के, हायतौबा टाइप के झंडे गाड़ रही हो!...अच्छा जी, क्या ऐसा है? स्वर में लरज की दूसरी परत बन गई.. .ऐसा ही है...सो, यू आर नाओ माय लविंग स्लेव? मोनेस्क्लाव एमों?...खूब फ्रेंच सीख ली है रेचल से, और भी काम की चीजें सीख लो, मेरी जान!...लगता है, तुमने एक नया मिजाज अपना लिया है, हमराज ने भावविभोर होकर कहा, जरूर कोई नया रहस्य तुम्हारे दिल पर काबिज है!...तुम्हें सच में लगता है ऐसा? रेचल बोली, मानो कान के भीतर, तो तुमको ये नयापन अच्छा लग रहा है?...तुम शब्द खोजती सी लग रही हो, हमराज ने न जाने क्यों कहा...मैं तुम्हें न खोजूं, अपने गरीब शब्दों की जगह, रेचल ने तपाक से कहा...तो तुम्हें क्या ज्यादा पसंद है?...मतलब?...मतलब आज की मैं, या दूसरे दिनों की मैं? हमराज ने कुछ पल सोचा, और फिर आज की शमा को चुना। उनकी दिल्लीगी और इश्किया चोंचलेबाजी कुछ देर और चली, चाहते तो चलती रहती। बाद में, शमा खिन्न और नाराज रही। जिस तरह तुम बातों को बढ़ाए जा रही थीं, मुझे अच्छा नहीं लगा, उसने रेचल से शिकायत की। तुम मेरी सबसे अजीज दोस्त हो! यह समझकर कि शमा को उसका मसखरापन बुरा लगा, रेचल ने अपनी दोस्त से तुरंत माफी मांगी, यह माना कि वह दिल्लीगी में बह गई थी, उसने दोस्ती की अलक्ष्य रेखा लांघी है। जैदिपैसे लेबहुनअ...पार्दु, पार्दु...मिल फआ... ओके...फ्रेंच भाषा के अनोखे, गुलगुले उच्चारण ने बिगाड़ और अनबन की संभावना को खत्म किया। बाद में, आधी रात में, झपकियों के बाद, नींद टूटने पर, रेचल ने शमा से फिर सॉरी कहा, कई बार कहा। देख, वो लाइन तो इनविजिबल है न? फ्रेंच लड़की के लिए तो और भी इनविजिबल, है कि नहीं? इस हैंडीकैप का कुछ तो लिहाज मिलना चाहिए। मुझे तब, उन असल क्षणों में लाइन का हिसाब नहीं रहा...कुछ देर बाद रेचल फिर बोली। आवाज में गंभीरता और याचना की खरोंच। देख, मैं थोड़ी सी, तनिक, हल्की सी लालची हो गई थी। मोहब्बत, पाक मोहब्बत ऐसा रोशन, विलक्षण वारदान है, पूरा समुंदर। सबके नसीब में ऐसा कहा? मैं अपने आप को तुम्हारे इश्क के अमृत पराग के खजाने से चुटकी भर सुधा चुराने से रोक नहीं पायी। पर इससे तुम वंचित नहीं हो जाती, मेरी जान! तुम्हारा प्यार अनंत, अथाह है। शमा बिस्तर से उठी, दोनों देर तक गले लगी रहीं, कुछ बूंदें आंसू की भी ढलकीं। दोनों दोस्ती की डगर पर और पास आ गए।

शायद उसी रोज की बात थी कि मायूस हमराज, बढ़ी हुई दाढ़ी, उसके कान शमा की आवाज से बज रहे थे, दिनों तक वह रोज उनके फोन संवाद के टेप सुन रहा था, कभी कभी घंटों

एकमुश्त, दिमाग में उनकी तरतीब और खाका बनाने की भरसक कोशिश, कि कोई अर्थपूर्ण सूत्र हाथ लगे, पर कोई सफलता नहीं...उस रोज हमराज को पहली बार आवाज के बारे में नुक्ताचीन खटका हुआ। उसके थके और विदीर्ण हृदय में इस सवाल ने फन फैलाया : अगर फोन पर आवाज भी अब शमा की नहीं, तो? इस भरोसे का, कि आवाज उसकी ही है, क्या निर्विवाद, अकाट्य आधार है? भ्रम के कीड़े तुरंत रेंगने लगे। आखिर संदेह के कितने जंतु प्रकार हैं, उस दिन या बाद में हमराज ने यह खयाल भी किया। शंका का पिटारा ओवरफ्लो करने लगा था, वह क्या क्या संभाले? तथ्य तो यह था कि जहां तक उनके अटल, निरंतर संपन्न होते प्रेम का सवाल था, सहज बुद्धि और भौतिक संसार के ठोसपन ने साथ छोड़ दिया था, बल्कि वे छल कर रहे थे, स्थान वहां नहीं थे जहां उन्हें होना चाहिए, कम से कम उसके लिए, फोन के टेप और उनकी तरतीब पूरी भूलभुलैया थी, जबकि उनकी व्यवस्था में हमराज ने कठोर मेहनत की थी, इन प्रवाही स्थितियों में वह उस एक चीज के बारे में कैसे विश्वस्त रहता, जो अब तक चट्टान की तरह उनका साथ दे रही थी, उनकी मोहब्बत का अकेला अचल और प्रमाण, उनका एकमात्र संपर्क स्रोत, जिसने उन्हें प्रेमपाश में बांधा था : उनकी फोन की रोज की बातें, और शमा की दुखहर आवाज, उसके सरस, खुशगवार शब्द! ये फोन की बातें भी अगर असल नहीं हुईं, दूषित निकलीं, सबूत के बिना, कभी घटी ही नहीं, कोरी कल्पना थीं...फिर? व्हॉट इफ अगर वह आवाज विदेह थी, या किसी और की थी? अगर वह इस शंका से शुरू करता है, तो उसके पास क्या बचता है? जब हमराज इस तरह सोचता तो सिहर जाता, वह अपने जेहन से इस खयाल को मिटा देना चाहता था, इस लकीर की दिशा से बचना चाहता था, पर भ्रम के पौधे ने जड़ें जमा लीं थीं, और मुक्ति की कोई राह सामने नहीं थी। यह होना ही था, और हुआ कि वह फोन के संवाद दोबारा से सुनने, खंगालने लगा, पर इस बार प्रेमालाप के सुख को बार बार जीने की प्यास न होकर, संदेह की परछाई थी, हल्की पर मौजूद, कि आवाज क्या सोलह आने शमा की ही है। फिर, जैसे मिथक के अमर प्रेमियों के साथ त्रासद संयोग लाजमी होते हैं, हमराज ने वह टेप दोबारा सुना जिसमें रेचल शमा को कॉपी कर रही थी! उसके अशांत, वहमी मस्तिष्क को यह नोटिस करने में मुश्किल नहीं हुई कि यह आवाज उस स्वर से भिन्न है जो पिछले टेप में थी। उसने दोबारा चेक किया, इस बार केंद्रित ध्यान से। हां साफ था, यह आवाज अलग थी, किसी और की थी। स्वर की रंगत, लहजा और बल फरक था। तो उसने अब दो आवाजें खोज ली थीं, कौन जानता है और भी अलग स्वर हों? कौन कह सकता है?...अगर कई आवाजें हैं तो वे किसकी हैं? क्या वह पूरे दौरान शमा से संवाद करता रहा था, या किन्हीं और से? क्या वह शमा को जानता भी है, जबकि आवाज के बारे में भी संशय? यह कोई भयानक गलती, किसी किस्म का वीभत्स मजाक, कोई दुरभिसंधि तो नहीं? वह भी अज्ञात, अनजान शक्तियों की? पर हमराज इस बिंदु पर आकर पस्त हो जाता, इसके नतीजे सोचने की उसमें शक्ति नहीं बची थी। उसका दिल और दिमाग इस सोच को नकार देता। क्योंकि उसके हृदय में एक विपरीत विश्वास अटलता से स्थापित था कि उनका प्यार, हमराज और शमा का, अटूट और अचल है। उतना ही निश्चित जितनी उनकी पैदाइश, उनका जीवन और अस्तित्व। अगर वे सचमुच हैं, तो प्यार भी है, अगर प्रेम नहीं तो वे भी नहीं। कोई प्रमाण इस आस्था को बदल नहीं सकता था। यह तो मात्र कोरा भ्रम था। इसलिए हमराज पीछे नहीं हटा, संदेह और नैराश्य के अंधेरे के बावजूद। पूर्व की तरह, दोनों की फोन पर लंबी, अंतरंग बातें चलती रहीं, वह उन्हें टेप करता रहा, उन्हें कई कई बार सुनता परखता रहा, मानो अपने ही भ्रमों के खिलाफ सबूत खोज रहा है। पर ये भी सच था कि संवाद में वह पहले की स्वच्छंदता, आग और उन्मुक्त अतिरेक, कम से कम हमराज की तरफ से नहीं था। मानो वह प्रीत की इस बाधा दौड़ में अब हांफने लगा था। पर जब यह सब

हुआ, अबूझ विरह का जुल्म वे एक साल और सात महीने तक झेल चुके थे। उनके त्रास की गुफा काफी लंबी हो चली थी। पर साथ में कहीं यह भी उड़ता सा खयाल बनने लगा था, अव्यक्त और अकहा, कि शायद किसी दिन वे गुफा का एक मोड़ पार करेंगे, और उसके मुहाने पर प्रकाश का दीप दिखेगा। इस विपदा और अनर्थ के वे कतई पात्र नहीं हैं। और, लावारिस आस की तरह, इन बाद के महीनों में भी उन्होंने मिलने की तारीखें और नुस्खे बनाए, वे अपने घरों से पूरी तैयारी के साथ हर बार निकले, और हर बार विफल हुए।

तो अब, वक्त की इस सांझ में, हम अपने लवर्स को, शमा और हमराज को, जो हमारे इतने अजीब हो गए हैं, किस तरह देखें, रूपायित करें, इस क्रूर, विशाल राजधानी में, जहां वे रोज की जिंदगी जी रहे हैं? हर सुबह, लाखों अन्य जन की तरह, वे तैयार होकर अपने नित्य के काम और काज के लिए घर से निकलते हैं, बस ऑटो मेट्रो, कभी टैक्सी की सवारी, और अक्सर पैदल चलना, रोज दिन गुजरता है, दोपहर होती है, हल्की सी थकान या ऊब लगती है, फिर शाम, वे कार्य स्थल से निकलते हैं, घर पहुंचने की तैयारी, रास्ते में क्या काम हैं, हो सकते हैं?...धूल, धुएं ने आकाश और शाम को मलिन कर दिया है, शहर की लाइटें जलने लगीं हैं, शाम का अफरातफरी का ट्रैफिक, कभी वे रास्ते में ठहर जाते हैं, बाजार, कोई माल, सीपी या मंडी हाउस का एरिया, वे किसी कैफे, लाउंज बार या रेस्टोरेंट में रुक जाते हैं, ब्रेड, बर्गर, पीत्जा के पीस, किसी खयाल को कुतरते हुए, वही जगहें जो उन्होंने अपने मिलन के लिए सावधानी से मुकर्र की थीं, जो कोशिशें नाकामयाब रहीं, हमेशा यह धुंधली सी उम्मीद, उम्मीद के खिलाफ उम्मीद, कि शायद, शायद वे एक दूसरे से टकरा जाएं, संयोग एकतरफा या रंजित नहीं होते, वे निष्पक्ष होते हैं, सो इस प्रकार की चांस मुलाकात हमेशा संभव है, चाहे संभाव्यता कितनी भी कम क्यों न हो, आखिर शहर की एक सौ तीस लाख की आबादी है, पर संयोग या दैव हिमायतें यही तो होती हैं, है कि नहीं, वे प्रायिकता के वजन से ऊपर उठ जाती हैं, तो क्या होगा, वे सोचते हैं, जब एक दिन या शाम, एक चांस, आकस्मिक भेंट घटती है, अचानक वे आमने सामने हैं...और तब वे इस तरह की अचानक मुलाकात के खयाल में खो जाते हैं, जब वे अपनी क्रमशः बसों में घर की तरफ जा रहे हैं, कई बार ऐसा हुआ कि जिन बसों में वे थे, वे बगल से गुजरीं, एक क्षण का चिरा अंश था जब वे खिड़कियां आमने सामने थीं, जिनके बगल में वे बैठे थे, पर तब वे बाहर देख नहीं रहे होते, अपने ख्यालों के जंगल में मग्न, और यह कितना उदास और विडंबनायुक्त था कि उसी क्षण के चिरे अंश में वे असल में एक दूसरे के बारे में ही सोच मग्न थे, एक दूसरे की अचूक तस्वीर को याद करते हुए, और यह एक बार नहीं, कई बार हुआ, उनके गैर जाने...उनके खयाल तब आकस्मिक मुलाकात की उम्मीद पर मंडरा रहे थे, कि उस मिलन के क्षण में उनका पहला जब्बा, खयाल, मुख भाव क्या होगा, पहला इजहार, शब्द, बोल, चीख, वाक्य, उद्बोध, व्याकरण?...क्या वह क्षण बांध के टूटने की तरह होगा, या दो धारा, नदी या समुंदर के मिलाप, संगम की तरह, क्या तब नीले, साफ आकाश में अचानक इंद्रधनुष तना होगा, और बेमौसम की फुहार?...क्या अखंड प्रेम के देव, देवियां तब मुस्कराकर आशीर्वाद देंगे, मन में ही सही पर दूर दूर तक फैला दुंदुभि का स्वर, खयाल में ही सही पर फूलों की वर्षा? क्या वे इतनी मेहरबानी के भी काबिल नहीं, उन्होंने अकारण ही इतना कुछ सहा है, क्या इतना प्रतिकार भी उनकी निष्फल झोली के लायक नहीं?...आंखें एकटक एक दूसरे में समाई, क्या पहचान तत्क्षण होगी या क्षण के अंश का विलंब, इतने अंतराल के बाद अचानक भेंट का दहलाता ताज्जुब, क्या यह तो नहीं कि क्षोभ की धूल उस अनूठे क्षण की सुषमा को परास्त कर दे, संशय का खंजर कहीं उनका मन न उजाड़ दे...क्या वे उस वक्त की गिरफ्त

में स्तब्ध, निःशब्द होंगे क्योंकि जब्बे और अकहे का ज्वार उनके भीतर फट रहा होगा, या वे निरर्थक बकबक कर रहे होंगे, क्योंकि अचानक इतने अंतराल के बाद उन्हें लगेगा कि उनके पास कहने को बहुत कम है, उन्होंने क्या पहना होगा, और क्या आपस का आकर्षण और जिस्मी चाहत वही होगी जो कभी थी...इस तरह वे अपने दिवास्वप्न, बहलावे में खोए थे, बस की ठंडी खिड़की से टेक लगाए, चेहरे और बालों को सहलाती मंद हवा, बस का सफर उन्हें घर के निर्जन की ओर ले जा रहा है...फिर रात का आसन, बचे कुचे काम की संभाल, रात का जैसा तैसा खाना, और उसके बाद बिस्तर का स्पर्श, करवटों की अदल बदल, हर रात का अलग तौर और क्रम, जब तक नींद उन्हें भर न दे, और अंत में उनके खाब, जिनमें अक्सर वे खुद होते, कुंठित, नामुराद इश्क के अच्छे बुरे, कटु मिठे सपने, और उन अज्ञात शक्तियों, अजीब दैत्यों से कलह और जद्दोजहद, जो उन्हें जुदा करने पर आमदा थे...।

कभी शाम में उनकी व्यस्तताएं भी होतीं, किन्हीं मित्रों या सहयोगियों से मिलना, वे हंसते, बातें करते, पर अकेलेपन का कवच सदा साथ होता, विपरीत सेक्स के लिए मुखालिफत की सचेतना, पास आओ पर सीमा के भीतर, कोई सोशल महफिल, शादी या सेमीनार, टॉक, डिनर या सिनेमा, शमा अक्सर रेचल के साथ बाहर जाती, हमराज को घनिष्ठ मित्रता का यह आसरा नहीं था, और ऐसे में हमेशा, कहीं उनके दिल में यह तनाव, उम्मीद बनी रहती कि अचानक वे मुड़ेंगे, और हमराज की नजर शमा से दो चार होगी, शमा के सामने सहसा एक वरदान की तरह हमराज नमूदार होगा...इस तरह उनके मन संसार में उनकी मिथकीय स्तर की चिर प्रतीक्षित मुलाकात के सैकड़ों कल्पनाशील नरेटिव और रूपक थे, और यह उद्यम उन दिनों की उनकी जिंदगी का सबसे कोमल और कीमती पहलू था।

इस दौरान शमा हद तरह से हसीन, अलबेली, सोहनी होती गई, खुद उसे ठीक, पूरा अंदाजा नहीं था। और हमराज खूब हैंडसम दिखने लगा था, विशिष्ट, उन्नत लुक्स। जब वे बाहर होते, कहीं जाते, जलसे में शरीक होते, अनजान सिर और निगाहें उन्हें दोबारा देखने के लिए घूमतीं। और जो उन्हें पहले से जानते थे, वे इस रूपांतर से अभिभूत थे, कायल थे। पर ईर्ष्या और हिचक उन्हें कुछ भी कहने या तारीफ करने से रोकती। एकमात्र अपवाद, जाहिराना, रेचल थी। वे हर तरह के कपड़े, ड्रेस में अच्छे लगते। जबकि उनके वारड्रोब नीरस और दरिद्र थे। ब्रैंड या महंगी ड्रेस खरीदने का सामर्थ्य नहीं था। उनके अपने सर्किल में कई मर्द, औरतें उन्हें गुपचुप पसंद करती थीं, और कई उनपर मोहित, आसक्त थे। पर प्रेम निवेदन का साहस जुटाना उनका बस नहीं था, क्योंकि शमा और हमराज खुद में इतने खोए और तल्लीन लगते, यह अकहा स्वीकार था कि वे किसी न किसी के प्रेम में बंधे हैं। यह खास भाव उनकी शख्सियत की शर्त थी। कि वे अपना दिल किसी को हमेशा के लिए दे चुके हैं।

और जो हम उनके तनहा संसार में उनके पीछे पीछे हैं, जिसमें महबूब एक थोपे नियम की तरह गैर मौजूद है, कितने ही ऐसे अवसर हमने देखे जब वे एक दूसरे के बहुत पास से गुजरे, कितनी ही बार एक ही जगह, एक ही वक्त वे मौजूद थे, एक बस में साथ सफर किया, एक आगे और दूसरा बस में सबसे पीछे, एक ही प्ले या सिनेमा शो देखने पहुंचे, और कई हृदय विदारक मौके ऐसे थे जब वे एक दूसरे से मात्र कुछ गज की दूरी पर थे, ये सब संयोग थे, पर हर बार उन्होंने गलत दिशा में देखा, गलत एग्जिट ली, या गलत एंट्री की, या उल्टी दिशा में मुड़े, इस तरह रूबरू होने के, जिसकी तड़प अकूत थी, उन्होंने न जाने कितने अवसर गवां दिए, इतनी ही सात्वना है कि वे इन गवांए मौकों से पूर्णतः अनभिज्ञ थे।

इस तरह यह कह सकते हैं कि वे तीन जिंदगियां एक साथ जी रहे थे, या तीन स्तरों का

जीवन। पहला प्यार के नकार या विराग का त्रास था, उस अजीब निषेध की काली छाया जिसने उनके मिल पाने की हर विक्रांत, मायूस तरकीब को बिगाड़ा, कि वे हर प्रेमी युगल की तरह बेरोक प्यार कर सकें। दूसरी उनकी प्रोफेशनल स्पेस थी जिसमें वे सफल और समर्थ थे, खुश और सहज थे। और तीसरा पक्ष उनके जांबाज, विरल इश्क की विलक्षण शक्ति थी, सौंदर्य और ताप था, प्रेम की दृढ़ता और निश्चितता, जो उनकी सहज नियति थी। इस तीसरे स्तर पर हमराज का मिजाज राजसी था, और शमा संपन्न और एकांतिक थी। कि दिव्यता का उन्हें अदृश्य आशीष है, दोनों के पास अनमोल प्रेम के असंख्य मणियां हैं। किसी भी दुखते क्षण में उन्हें अपने को इतना ही फुसफुसाना होता : मुझे प्यार है! हम लवर्स हैं! वी आर लवर्स! तब सनसन रोमांच से वे तरंगित हो उठते, हवा और बादलों पर सवार हो जाते। कि लोग मन ही मन दांतों में उंगली दबाते, कि ये रूप और नूर का कैसा करिश्मा है। मानो उनका जिस्मानी गठन और सौष्ठव महबूब की उस तस्वीर का अनुकरण कर रहा है, जो उनके दिलों में बसी है, उस एक साल और आठ महीने के अंतराल में जब उन्होंने एक दूसरे को एक बार भी नहीं देखा...।

हम ऐसी कथा सुन रहे हैं, ऐसी घटनाएं जिन्हें घटे दो दशक से ज्यादा गुजर गए। इस बीच एक नई पीढ़ी आ गई। राजधानी बदली, प्रचुर फैल गई है, देश और प्रांत भी तेजी से बदले, विकसित हुए हैं। सामाजिक शक्तियों और टेक्नोलॉजी में तेज बदलाव। राजनीति में भी। हर दशक समस्या और समाधान की नई फेहरिस्त रचता है। नए चैलेंज, काल प्रवर्तक घटनाएं, अच्छी और बुरी, अच्छे और बुरे के भी बदलते मापदंड। अधेड़, बूढ़ी होती पीढ़ी के लिए यह खयाल सहज है कि चीजें, हर कुछ बिगाड़ गया है। और, नॉसटाल्जिया की झरती, पीली धुन में उन्हें लगता है कि विगत हर हाल में बेहतर था। दूसरी तरफ, प्रबुद्ध जन ने यह बार बार जतलाया है कि जितनी ज्यादा चीजें बदलती हैं, उससे भी बढ़कर वे वही रहती हैं। हमारी नजर और फोकस इस दौरान पूरी तरह हमारे लवर्स की निजी जिंदगी पर केंद्रित रहा है, और यह वाजिब भी है, इसलिए दीर्घ दिन दुनिया और विस्तीर्ण सामाजिक प्रवाह हमारी निगाह से अछूता रहा है, एक स्तंभित पृष्ठपट, मानो देश और राजधानी के कोलाहल और हमारे लवर्स के बीच कोई आदान प्रदान नहीं था, और उनके खयाल, जीवन चौतरफा उथलपथल से अलैदा, असंपृक्त थे। पर ऐसा कतई नहीं था। हमारे लवर्स कोई सियासी सिफर नहीं थे, न ही सापेक्ष संवेदनाओं से महरूम। वे समाज के मुद्दों, विघटन, बिखराव, अन्याय के तमाम संघर्ष से सीधे और परोक्ष रूबरू और जुड़े थे, और उनकी सोच, निष्ठा उनके अपने दायित्व और कार्यचलन के साथ संगत थी। हाथी के दांत, खाने के और, दिखाने के और वाला दोगलापन नहीं था। शमा खास सक्रिय थी, यह उसके प्रोफेशन की मांग भी थी, न्याय, जेंडर, असमता, जाति और पहचान, राइट्स, संप्रदायिक टकराव, हिंसा, आजीविका और क्लाइमेट चेंज, ये शमा के सरोकार और हिस्सेदारी के विशिष्ट क्षेत्र थे। चारों तरफ की आबो हवा के जहर और संस्थानिक विकार के प्रति वे सचेत और चिंतित थे, बढ़ता अनुदार और राजनैतिक सामाजिक शक्तियों की कशाकशी में मेल का सर्वथा अभाव और जटिल विभंग, जिनसे भेदभाव, कट्टरपन बढ़ रहा था। बढ़ती हिंसा, उपद्रव की वारदातें और कट्टरपंथी संघर्ष। नृशंस हत्याएं और बलात्कार, दिल्ली को कितनी बार रेप कैपिटल की संज्ञा मिल चुकी थी। वे व्यथित होते, विशुब्ध होते। अपने भीतर झांकते कि उनकी कोई कमी तो नहीं, क्या वे वह सब कर रहे हैं जो उन्हें करना चाहिए। इतनी तीक्ष्ण गिरावट क्यों? जब वे ऑनर किलिंग्स और खाप पंचायत के अमानवीय व्यवहार, उनकी असभ्य सोच और वहशी फैसलों के बारे में पढ़ते, जानते तो वे शर्म और जुगुप्सा, बेकसी से भर उठते। अलग जाति, धर्म के जवान प्रेमियों के साथ बर्बर सलूक, उनकी हत्या की सैकड़ों वारदातें, यह कितना भयानक और वीभत्स था, आज के युग में। कुटुंबी, मां बाप तक, जिस तरह अपने 'पापी' बच्चों का शिकार

कर रहे थे, हत्या कर रहे थे, मानो महज प्यार करना, प्यार में डूबना पाप है। और इस आदिम उन्माद को पोषित करने में मोबाइल और टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल। यह भयानक था, इंसान का हृदय आखिर कितने भागों में विभक्त है। प्रिय और अप्रिय में जैसे भेद लुप्त हो गया है...।

और यह सहज ही था कि शमा और हमराज अपने प्रेम के मणि को इस विकृत सामाजिक यथार्थ के आर्डने में, और उसके सापेक्ष देखते, उसे खंगालते, निहारते, छिपाते, पोषित करते।

पर यह भी नहीं था कि उनकी प्रतिबद्धता और सरोकारों का मिजाज सिर्फ मायूस है। उनकी नजर में न सब कुछ काला था, न सारा सफेद। सार्थक हस्तक्षेप, घुसपैठ, और अच्छे की पर्याप्त मिसालें थीं, गुंजाइश में कोई अल्पता नहीं थी। अगर दुष्टता का बदबूदार वनस्पति तेल का भरा पीपा है, तो हमारी अच्छाई के सुगंधित खालिस घी का पांच किलो का डिब्बा भी कम नहीं, शमा अपने संगठनों में इस तरह के जुमले लगाती। हमराज के सोशल, इंसानी जट्टोजेहद के सरोकार अपेक्षाकृत कम थे। मैप्स के फलसफे और सिद्धांतों के निरूपण में यह गुंजाइश कम थी, जो उसके निसर्ग के माफिक भी थी। जरूर एक प्रोजेक्ट में उसने प्रवसन के टाइम सीरीज मैप्स बनाए थे, जिनपर काफी चर्चा हुई थी।

विरह के शुरु के दिनों में, जब उन्हें अलगाव की परकीय शक्ति का अंदाजा नहीं था, न मिल पाना एक तरह का मजाक लगता था, हमराज अक्सर शमा की चुटकी लेता, स्त्री विमर्श के इशु पर। भई, तुम्हारी औरत का आज का सवाल क्या है, हम भी सुन लें, सिर तो हमारा भी मुड़ेगा...जेंडर जस्टिस में आनुवांशिक गंज को लेकर क्या राय है तुम्हारी...मेरी औरत, अच्छा अब मेरी औरत हो गई, शमा तुनककर कहती, हालांकि गुस्सा काफी कुछ बनावटी होता। अधिकार और शोषण की बात हो तो वो मेरी औरत का सवाल है, और जो मजे लूटने हों तो फिर तुरत मर्द की औरत, उसकी प्रॉपर्टी हो गई, क्यों, बोलो, बोलो...हमराज उतनी ही चुटकी बजाता जितनी वाजिब थी, और नमक मिर्च की तरह यह भी जोड़ देता कि औरत का सवाल इतना महंगा पड़ रहा है कि उनकी मुलाकात भी नहीं हो पाती...कैसे, कैसे, शमा पूछती...वो ऐसे कि औरत के सवाल में तुम इतनी उलझ जाती हो कि मुर्करं वक्त पर हमसे मिलना ही भूल जाती हो...हां जी, क्यों नहीं, शमा तुनकती...फ्रोइडियन स्लिप तो सुनी है, पर क्या पता था कि मरदूद स्त्री विमर्श स्लिप भी होती है...विमर्श कुमारी हमारी सबसे विकट दुश्मन है, मेरी जान!...अंत में वे हंसे बिना नहीं रहते, एक दूसरे पर वारी वारी जाते। पर आबो हवा सचमुच जहरीली हो गई थी, उन्हें लगता। मन में सवाल उठने लाजमी थे, जिनकी दिशा सामाजिक से व्यक्तिगत की तरफ थी।

सवाल : क्या अनन्य प्रेम के केंद्र में हिंसा और बेरहमी का छिपा बीजकोष है? क्या प्यार की प्रकृति अंततः हिंसक है? यह और ऐसे सवाल उनके जेहन की छलनी बने। प्रेम का तप कर रहे लवर्स के मन में इस तरह का खयाल पनपना खुद में विकल और विसंगत है, चिंता का विषय। वे क्या करते, उन्होंने प्रेम के मर्म की मानो तफतीश शुरु की, उसके बारे में सोचा, जितना उनके बस में था पढ़ा। पर इश्क के निसर्ग और फलसफे पर टेक्स्ट्स प्रचुर और निश्चित नहीं थे। सीधी समझ और विवेचना सुलभ नहीं थी। अगर थी तो नाकाफी। जो पढ़ने को मिला वह अधिकांशतः प्रेम के कई रूपों का श्रेणीकरण था : जैसे प्यार का चार प्रकार में मशहूर ग्रीक वर्गीकरण : बंधुत्व या मेल जोल, मित्रता या फीलिया, जो चारु चरित, प्लैटोनिक है, रूमानी चाहत और अगेय जो दिव्य, ईश्वरीय प्रेम है, खुद का उपासना में विलयन। प्रेम के कंसेप्ट की कई डिसिप्लिंस के कोण से सूखी परख : जैविकी, धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, विकासपरक, मनोवैज्ञानिक...पर शमा और हमराज की अनुभूति यह थी कि इश्क की परख या मीमांसा उसकी अमूर्त, स्पंद सृष्टि को एक खयाल पाबंद रूढ़ोक्ति में सिकोड़ देती है : ईश्वर ही प्रेम है, प्रेम, अर्थात अन्य के अच्छे का

संकल्प, प्रेम परम मूल्य की शर्त है, प्रेम बेशर्त निःस्वार्थ भाव है, ढाई आखर प्रेम का...ये रब दी मर्जी है, ये इश्क दी मर्जी है...इस तरह का पढ़ना, सोचना उन्हें बेमानी, संकुचित लगा, थोथा चना बाजे घना। इतना वक्त या टिकाव नहीं था कि वे प्रेम की अपूर्व गुत्थी, रहस्य का अनावरण दुनिया के महान साहित्यकारों के पत्र संकलन, संस्मरण या तबसरे के धूल धूसरित पन्नों पर बिखरे शब्द रत्न के गूढ़ बंदनवार से करते, मसलन महान, प्रबुद्ध गोएते का कथन कि प्यार का सच्चा माप ये है : जब हमें भरोसा है कि सिर्फ हम प्यार कर सकते हैं, कि हमसे पहले किसी ने भी ऐसा नहीं किया होगा, और हमारे बाद भी हमारे जैसा प्यार किसी के बस का नहीं होगा...जो भी ज्ञान मेरे पास है, वह कोई भी दूसरा पा सकता है, पर मेरा दिल पूरा और सिर्फ मेरा है...जब गोएते पीड़ाकारी आनंदोल्लास, प्रेममय नफरत, उत्तेजक असंतोष के मुहावरे गढ़ता है...कहता है हम अपनी संतान को दो ही अनमोल उत्तरदान देने की आशा कर सकते हैं, एक हमारी जड़े हैं, और दूसरे पंख...सब थ्योरी, प्यारे दोस्त, धूसर, धुंधली है, पर जीवन के मधुमास का वृक्ष सदा हरा...और अगर मैं तुम्हें प्यार करता हूं, तो तुम्हारा क्या लेना देना!...शमा और हमराज को फिर भी इतना इत्मीनान रहा कि इंसानी जद्दोजेहद में प्यार की अवस्था केंद्रीय है, अनगढ़ पर बेमौके क्षणों में अकस्मात अजेय, और यही वजह है कि सृजन और कला में प्रेम सदा मौजूद, प्रबल थीम है। प्रेम के दुशप्राप्य और सर्वव्यापक निसर्ग के समक्ष मार्खेज कह उठा था...प्रेम अंततः प्रेम है, प्रेम हमेशा प्रेम था, किसी भी वक्त, किसी भी समय।

...खबरें, लेख, विरोध प्रदर्शन, सेमीनार, रोज के जीवन में, और कार्यस्थल के सरोकार और प्रयोजन में अक्सर देहेज हत्या, वैवाहिक बलात्कार के कुत्सित, जघन्य मामले आते, सुखियों का गलीज हिस्सा बनते, खाप पंचायतों के नामाकूल, धिनौने निषेध, आदेश, ऑनर किलिंग्स के भयाक्रांत हादसे, अलग जाति, धर्म के युवा प्रेमियों के पशुवत कल्ल, यह सब मानो नित्य का जबरन भोग हो गया था, न निजात थी, न क्षमा या अनदेखी की गुंजाइश, न निगलते बनता था, और थूकें तो कहां, निज और लोक स्पेस में हवाएं इस तरह बह रही थीं कि थूक के छिंटे लौट कर खुद पर गिरें...तब उन्हें यह जान और खयाल कर हैरत होती, उम्दा भी लगता कि लैला मजनूं की मजार पर हजारों जन दुआ सलामती की चाह लिए, सैकड़ों युगल अपने प्रेम के अमर होने की मन्नत मांगते हैं...देश की सरहद से लगा राजस्थान का बिंजौर गांव, यहीं हर साल लैला मजनूं की याद में मेला लगता है...दिन ढलते ही कव्वाली की धुनों के बीच फरियाद करने वालों का तांता लगने लगता है, कहते हैं कि यह प्रेम करने वालों का मक्का है, और मजहब चाहे कोई भी हो, खुशहाल शादीशुदा जिंदगी के लिए यहां एक बार जरूर आना चाहिए...एक किंवदंती भी है कि मजार पर हर गुरुवार को चिराग जलता था, वह चिराग पाकिस्तान की सीमा की ओर जाता, और कुछ समय बाद वापस अपनी जगह लौटकर जमीन में समा जाता, तभी से मन्नतों का सिलसिला शुरू हुआ, और बढ़ता ही गया।

यह कैसे सुसंगत होता : एक तरफ इज्जत कल्ल की जघन्य वारदातें, परिवार, गांव, समुदाय में जवान, रीत प्रथा से मुक्त प्रेम की तरफ गहरा, निर्मम प्रतिशोध, जड़ मूल से उखाड़ने का बीड़ा, और दूसरी तरफ नापाक, पगली मोहब्बत के अनुश्रुत प्रेमियों से दुआ मांगते, इबादत गुजार, हर संप्रदाय, उम्र के स्त्री पुरुष। उन दंतकथाओं को पढ़कर, सुनकर कौन नहीं रोया है, वाहवाही की है : सोहनी महीवाल, हीर रांझा, लैला मजनूं, शीरी फरियाद, सलीम अनारकली, पारो देवदास...फिर राधा कृष्ण, शकुंतला दुष्यंत, सावित्री सत्यवान, रूपमती बाज बहादुर...और मानो इतना भी मन के लिए कमतर है, इधर के वक्त में निर्मित, पुनःनिर्मित शाहजहां मुमताज महल, जोधा अकबर, बाजीराव मस्तानी के अमर प्रसंग। यह अनवरत की चाह, प्रक्रिया है। भक्ति, परम ईश्वर प्रेम की पवित्र, रूहानी

ज्वाला से धर्म के नाम पर युद्ध और त्रास का पथ बहुत लंबा नहीं रहा है, यह इतिहास की बार बार की गवाही, चेतावनी है। इधर के गैर बराबर देशों में हिंसा और अनुदारता में बढ़ोतरी हुई है, दरियादिली, मुक्त भाव में पर्याप्त संकुचन हुआ है, नीति और सदाचार के सहज बिंदु तक में, उच्च, प्रबुद्ध वर्ग तक में मलैक्य जैसे बिखर गया है...और आज हम मनाही, प्रतिबंध, ये बैन, वो बैन, और नैतिक पुलिसिंग की गर्त में डूब उबर रहे हैं। क्या ऐसा अब रह गया है जिस पर बैन, मनमुटाव, धरना, विरोध, जुलूस, काली स्याही पोतना, उपद्रव, हिंसा की किचकिच और पेशकश नहीं है : खान पान, आमिष निरामिष, ड्रेस पहनावा, किस तरह के जश्न की आजादी है, प्रेम के इजहार पर प्रतिबंध, बोलना उच्चारण, साहित्य कला आर्ट लेख विचार...हर मौके पर सेंसर करने का आह्वान, चैलेंज।

और फिर मानो एक अपूर्व अचरज की तरह, इस अनूठे, विवश, काले प्रबोध के साथ कि यह तो होना ही था, यह निश्चित, लाजमी था, वह अनोखा मुहावरा हमारे गले की हड्डी बना : लव जेहाद! लव और जेहाद, लव या जेहाद! अगर लव तो जेहाद! जेहाद माने लव! मानो प्यार जेहाद का अथवा कट्टर ताकतों का अस्त्र, औजार है। प्यार जेहाद की सिफारिश है, उसका गुण कीर्तन है। मानो दो विपरीत धारा, अर्थ, अभिप्राय, अवस्था, तत्व अकस्मात् एक आसुरी रासायनिक क्रिया के अधीन एकमेक हो गए हैं। इस प्रकाश में वह सवाल जो हमारे लवर्स के जेहन में कौंधा था, और भी संकटपूर्ण हो जाता है : क्या प्रेम की प्रकृति में हिंसा की धारा सन्निहित है? हमारे लवर्स के पास इसका कोई अध्ययनशील प्रत्युत्तर नहीं था। पर उनका प्रेममय जीवन इस सूत्र प्रस्ताव का वाग्मी नकार था। जिस तरह वे जिंदगी जी रहे थे, वह प्रमाण था कि प्यार में हिंसा का कोई स्थान नहीं।

इस तरह दिन गुजरे, और हम उनकी गिनती कर सकते हैं, एक, दो, तीन, चार...और शायद वे भी गिनती कर रहे थे, अथक इंतजाररत थे। क्योंकि जो शुरू होता है उसे खत्म होना है, और जो खत्म है उसे नए सिरे से शुरू होना है। हम इतना ही कह सकते हैं कि उस कालखंड में, एकाकीपन की ज्योति का काल, विरह और अलगाव का विषाद (सर्द, अभेद्य अलगाव जिसमें किसी व्यक्ति, समूह, इंसानी शक्ति की घृणा, दुर्भाव का लक्ष्य होने की सात्वना भी नहीं थी), हम अपने साथ उनकी दो तस्वीर, प्रतिरूप हासिल कर सकते हैं : उदास मगर कृतसंकल्प प्रेमी, पीठ पर लदा मोहब्बत का बोझ, दिल में झुलसती उम्मीद, या दो कांतिमान प्राण, प्रेम की निश्चितता में तल्लीन, इश्क के रजत परिमल से दीप्त उड़ते, तैरते राजहंस...।

यह होना ही था, और हमारे लवर्स को भी खूब भान था, पर वे चिंता, खयाल से इनकार करते रहे। इसे दूसरी तरह भी कह सकते हैं। अगर किसी घटक, होनी या घटना का सचमुच बेहद डर है, तो वह घटती जरूर है, पश्चात की जगह पेशतर। सही है कि इंसान और उसका संकल्प ही उसकी नियति संचालित, निर्धारित करता है। यह भी सही है कि भय उस संकल्प का जरूरी, सशक्त अंश है..जो हुआ, होना ही था, जिसका पूर्वाभास अमोघ था, वह भी उनके संकल्प का हिस्सा था।

एक दिन फोन कॉल्स भी पराभूत, बाधित हो गए! मानो निषेधाज्ञा जारी हुई है। उन्होंने हर तरीका, ट्रिक अपनाई, पर सब विफल। उस दिन के बाद फोन नहीं लगा तो नहीं लगा, चाहे लैंडलाइन, मोबाइल, एसटीडी बूथ, किसी और का मांगा फोन। इस तरह संपर्क की डोर का आखिरी साधन खत्म हो गया। या तो दूसरी तरफ बिजी टोन आती या लाइन डेड होती, हो जाती। या क्रॉस कनेक्शन। यदा कदा नंबर मिला भी, नंबर वही है, पर आवाज किसी और की होती, अरे भैया सही नंबर का पता करो, ये मेरा नंबर है, मानो टेलीफोन नंबर के अलौटी बदल रहे थे, नित्य तब्दील हो रहे थे। यह बाद में साफ हुआ कि दोनों का यही अनुभव था। पर तब, कभी उन्हें चिढ़, गहरी मायूसी होती, क्या शमा फोन नहीं कर सकती, ऐसी भी क्या व्यस्तता...हमराज क्यों काठ का उल्लू बना हुआ

है, खामोश गुड्डा, चूँ चूँ का मुरब्बा...पर ये सिर्फ क्षणिक कुट्टन होती, दिल ही दिल में उन्हें अंदाजा था। एसएमएस भी नहीं पहुंच रहे थे, क्योंकि कभी रिप्लाय नहीं मिले, मोबाइल पर सेंट मेसेज की लंबी लिस्ट थी, पर मिले मेसेज का फोल्डर शून्य। वो क्या करते, क्या और कैसे जानते। अलगाव का अंधेरा अब पूरा और परम था। भौतिक स्पेस के घुप्प अंधेरे में फिर भी इंसान, वक्त के साथ, स्व, मौजूदगी और व्यष्टि का सेंस फिर से पा लेता है। पर संसर्ग, संवाद का घुप्प अंधेरा, उससे निजात या संघर्ष का क्या साधन है? अब प्रेम का पोषण, अनुरक्षण किस तरह? और, तथापि, इन परकीय निषेध के सिलसिले और विषमता के अलावा उनके जीवन में सब कुछ नॉर्मल था, निहायत सहज, सामान्य। बल्कि, नॉर्मल से बेहतर। कोई बुरी खबर नहीं थी। मौसम शांत और नरम था। हर चीज और उद्यम में एक प्रकार का हल्कापन, उछाल। आनंद और अच्छा अच्छा होने की प्रत्याशा। शहरी जीवन की विकटता, म्लान में मानो बालोचित, निर्दोष विराम!

एक अलौकिक, विचित्र प्रत्याशा, जिसमें नॉसटाल्जिया की भीनी सिहरन, खुशबू थी, उसने दिल्ली यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर, जो अगले कुछ महीनों में रिटायर हो रहा था, के मूड को भी प्रभावित किया। और कैसे! एक दिन वह अकेला, खुद में मग्न, यूनिवर्सिटी के बगीचे के उस अचूक स्पॉट से गुजरा जहां एक वक्त व्यर्थ का पुल हुआ करता था (इस पुल से हम भली भांति वाकिफ हैं)। वह एकाएक रुका और मानो जड़, स्तंभित हो गया। कुछ रहस्यमय पल गुजरे, उसने लंबी सांस खींची और प्रत्यक्ष रूप से बेतनाव हो गया। उसके होंठों पर एक मुस्कान फैली थी, वह चलते हुए अपने राजसी ऑफिस लौटा। अगले दिन उसने यूनिवर्सिटी के आर्किटेक्ट, इंजिनियर्स और सीनियर अधिकारियों की विशेष बैठक बुलाई।

वीसी वाचाल, मजे के मूड में था, और देर तक बड़े लगाव से अपने यूनिवर्सिटी के पांच साल के कार्यकाल के बारे में बोलता रहा। मुझे काफी संतोष और सुकून है, उसने कहा, और फिर जोड़ा कि अब वह कोलकता यूनिवर्सिटी वापिस लौटने के लिए उतावला है, जहां वह एक साल और रिटायरमेंट तक बॉटनी का प्रोफेसर रहेगा। लौटने का अपना सुकून है, नहीं? बीवी से बंगाली में डांट सुने अरसा बीत गया, अब याद आती है, वह हंसा, पत्नी की भी और डांट की भी, दोनों का हिला मिला अहसास। इस तरह बातें होती रहीं, रिटायरमेंट के बाद कौन कहां सेटल कर रहे हैं...और फिर वीसी अपने प्रस्ताव पर आया। वीसी के नाते मेरी एक इच्छा बाकी है, उसने कहा। उसने पुल की बात की, जब वह पुल बरकरार था तो उसके कई प्रिय, आमफहम नाम थे : खाम खयाली का पुल, चुल्लू पानी वाला पुल, बेशऊर, बैरंग पुल, पुल बेहया...आप उस पुल की बात कर रहे हैं न जो नोव्हेर से नोव्हेर का सफर करता है, रजिस्ट्रार ने पूछा। एकदम, वीसी चहक उठा।

मैं चाहता हूँ वह पुल उतने ही बेमतलब, खाम खयाली से दोबारा बने, पूरी आनबान के साथ पुनःस्थापित हो। मैं उसे दोबारा पूरी बेमतलब की भव्यता से कायम देखना चाहता हूँ।...इधर रंग में भंग की तमाम हुल्लड़ क्रियाएं होने लगी हैं, जरूरत है कि कभी भंग में रंग भी गिरे...आज वीसी साहब को क्या सूझा है, सब सोच रहे थे...असल में, प्रोफेसर बनर्जी (वीसी) ने कहा, हम अपने लक्ष्य और पेशे को लेकर बेहद सीरियस और सोद्देश्य हो गए हैं। दूसरी तरह से कहें तो खुदगर्ज और आत्मग्रस्त। यह सेहत के लिए भली बात नहीं, सोद्देश्य का अपच, सो कभी कभार हम कोई नादान, अच्छी चीज बिना खास कारण के भी करें, यूँ ही, ऐसी चीज जिसकी कोई जाहिर जरूरत नहीं, समझो, नोव्हेर की आन बान शान में, क्यों?...ये तो एक बात रही...असल में इस प्रस्ताव के पीछे एक निजी वजह भी है जो मैं आपके साथ शेयर करना चाहूंगा, वीसी ने कहा, और एक भावुक तरंग उसके चेहरे पर दौड़ गई।

वीसी की आवाज में संकोचशील कंपन था, उसके गालों पर तरुण लालिमा उभर आई थी, जब वह अपने प्रमुदित, हैरान साथी प्रोफेसरों को बताने लगा कि करीब पैंतीस वर्ष पहले, अरसा बीत गया, तब वे जवान थे, इसी यूनिवर्सिटी में डॉक्टरल स्टूडेंट्स थे, उसकी अपनी पत्नी से पहले पहल मुलाकात इसी ब्रिज पर हुई थी, जिस बैरंग पुल की हम बात कर रहे थे...हम दोनों, समझो जोर से टकराए, यूं ही, बेवजह, खाम खयाली की टक्कर, और देखो क्या परवान चढ़ा, टक्कर से बना प्रेम, एंड लव लेड टू मैरिज! अ हैप्पी वन! मैं जोड़ दूं...तो मेरी इच्छा, समझो मुराद ये है : कि मेरे जाने से पहले हम ये ब्रिज दोबारा बनाएं। कौन जानता है कितने और जवान रिसर्चर्स, हमारे बच्चे, इस ब्रिज पर टकराएं, और लवर्स बन जाएं! अच्छा, निरर्थक सा उद्यम होगा, पर भला, निष्कपट। धनराशि के लिहाज से छोटा सा प्रस्ताव था, जाहिर है वह तुरंत मंजूर हुआ, और लकड़ी का वह वक्राकार पुल दोबारा उसी स्पॉट पर बना, वह पहले वाले से बेहतर और ज्यादा मजबूत था, पर उतना ही संकरा, भिड़ंत की सुगमता के लिए! और उसे हरा पेंट किया गया, और, निःसंदेह, उसके नीचे कोई धारा नहीं बह रही थी।

तो मंच अब तैयार था, एक मायने में हमारे लवर्स के लिए ही पुनःप्रतिष्ठित हुआ था...गीत के वे बोल : *समझने वाले समझ गए हैं, ना समझे...ना समझे वो अनाड़ी है!...वो चांद खिला वो तारे हंसे, ये रात अजब मतवाली है...*बेरुख भौतिक शक्तियों ने जो मुलाकात पर प्रतिबंध लगाया था, जिसका कोई प्रमाण नहीं था, वह अब ढीला पड़ने के लिए शायद तैयार था, कोई भी जुल्मो सितम या अन्याय अंतहीन नहीं यह नियम बना रहा, और इस बदले परिवेश का साधक और संदेशवाहक बना वाइस चांसलर। जो फिर घटा वह लाजमी था, और बहुप्रतीक्षित, दीन दुनिया की सेहत और भले के लिए नियामक सहयोग। यह गहरे आश्चर्य की बात थी कि एक साल आठ महीने के अंतरित काल में, जो खास मुश्किल वक्त भी था, शमा और हमराज के लिए वह पुराना, बेधारा, खामखा का पुल एक भूली याद बन गया था।

जिस तरह अचानक, अनायास उनकी मुलाकातें खत्म हो गई थीं, उतने ही अनपेक्षित, अकस्मात ढंग से उनका दोबारा मिलन हुआ। और यह पुनर्मिलन नए, नवनिर्मित पुल पर हुआ।

करीब परफेक्ट शाम थी उस रोज। साफ, नीला आकाश, परफेक्ट नीलांबर, कई हफ्तों के बाद धूम कोहरा नदारद था। टेंपरेचर जिस्म, त्वचा के लिए आदर्श, सुकून संपन्न। हवा जो सांस को ताजा कर रही थी, स्फूर्ति से भर रही थी। हमारे लवर्स को यूनिवर्सिटी हॉल में आयोजित एक सेमीनार के लिए अलग अलग इनविटेशन मिला था। टॉक के बाद डिनर था। एक औपचारिक प्रबंध। मन न होते हुए भी दोनों ने आयोजन में शिरकत का मन बनाया था। शमा ने शाम के लिए साड़ी पहनी, हमराज ने सफेद शर्ट, काली पतलून, काले जूते, स्कार्फ, जो शायद उसने अरसे बाद पहना था। हॉल पहुंचने के कई रास्ते थे। उन्होंने न जाने क्यों एक कट लिया जो शॉर्ट भी नहीं था। विरक्त, खोये मन की उपज शायद। लगभग एक ही क्षण वे नए ब्रिज के विपरीत छोर पर पहुंचे। आंखें नीची थीं, मन कुछ खाली सा, उद्गार कुछ भरे भरे। पर यह वो शाम थी जब विमुखता, आंखें चार न होने पर निषेध था। मिलने में चूक की इजाजत नहीं थी। नामिलन की वर्जना थी...और जैसे उनकी तलाशती आंखें एक दूसरे की आस में मुड़ीं, एक तरह का चमत्कार घट रहा था।

शमा की बेटब, लापरवाही से बंधी साड़ी मानो खुद ब खुद कस गई, और परफेक्ट ड्रेप बन गया, ब्लाउज इस तरह संवर, संजो गया मानो एक अदृश्य ड्रेसर, अभ्यस्त दरजी काम कर रहा है। शमा का फिगर और सुहाना गठन पूरे निखार से नुमायां था, वक्ष का उभार सतर्क, चंचल, टांगें, पदज ठहरे, संतुलित, संचित। होंठ अधखुले, केश बहते, लहराते। इसी तरह का समतुल्य बदलाव हमराज

के रंगढंग और दिखाव में भी घट रहा था, शर्ट और ट्राउजर्स उसके छरहरे, सुडौल शरीर से एकदम फैशन फिट में सटने लगे, सीना बांकी अदा में फूला, और चौड़े कंधे के ऊपर स्थिर मजबूत गर्दन, ठोढ़ी। चेहरे पर सलौने, प्रबल कटाव, और आंखें काली, गहरी, अभिज्ञ। यह इस तरह था मानो प्रकृति स्वयं इस सीन को हमारे विरही लवर्स के लिए फोटोशॉप कर रही है। इसके बाद के क्षण एक धुंधलके की तरह हैं, कोई निश्चल तस्वीर अगले क्षण की गति को पकड़ने में असमर्थ है, और लवर्स इतनी देर में अविभाज्य समाविष्ट हो गए थे, प्रगाढ़ आगोश में मिले, जुड़े। अगले कुछ पलों में सब कुछ कथित, साफ और सुबोध था, और कैसी भी व्याख्या या विवरण इसके लिए मुनासिब या शोभनीय नहीं है। प्रेमी अमरपाश में युक्त थे, अब अभियुक्त नहीं थे! अब उन्हें कोई ताकत जुदा नहीं कर सकती।

कल शाम मैंने दंपति युगल को काफी दिनों के बाद देखा, शमा और हमराज को। मैं क्लब के बार से निकला ही था, पार्किंग लॉट जाने के लिए मैंने एक शॉर्ट कट लिया। एक उजाड़ बगीचे के बगल से एक छोटे कंकरोँ का संकरा रास्ता था। शाम की रक्तिम आभा से पथ रोशन था। अचानक मैंने लवर्स को उसी रास्ते पर अपनी ओर आते हुए देखा। वे इस क्लब के मेंबर हैं, मुझे जानकारी नहीं थी...कुछ न कुछ नाक के नीचे नामालूम रह ही जाता है...शायद वे बार या रेस्टोरेंट की तरफ ही जा रहे थे। आज साथ में बच्चे नहीं थे। पहले शमा ने हमराज की ओर हल्के से मुड़ते हुए, ऊपर उसके मुंह को लक्ष्य कर कुछ कहा। हमराज ने जवाबी कुछ कहा, जो भी कहा उस पर शमा मुस्करा दी। दो वाक्यों का यह संवाद, जिस पर विराम मुस्कान का था, वह उनके पूरे, निर्मल, प्रेमाकुल दांपत्य का फलसफा, उसकी पाकीजगी का विरल प्रमाण हो सकता था। इतनी आसक्ति बन गई थी मेरे भीतर उनके आपसी प्रेम के प्रति, कि मुझे इस तरह की रहस्यवादी बात कहने से कोई परहेज नहीं...फिर, हमराज एक पल के लिए नीचे, तिरछा होकर झुका, उसके होंठ शमा के कान की मुलायम किनारी पर से छूते हुए सरके, उसकी बांह ने उस क्षण में प्रिया की कमर को साधा : महीन, हल्का, नामालूम स्पर्श। स्पर्श और छूने का गुलदस्ता जैसे...तभी मैं उनके बगल से निकला। मैंने स्माइल किया होगा क्योंकि दोनों ने मेरी तरफ अर्द्ध सी झुकने की व्यंजक अदायगी की थी। मानो पहचान की मुस्कराहट का प्रतिदान। वह परफेक्ट शामिल मुद्रा थी।

बेधारा के खाम खयाल पुल पर तिबारा मिलने के अनूठे वाक्ये को पच्चीस से अधिक वर्ष गुजर चुके हैं। हमारे लवर्स की मोहब्बत, इश्क, प्रीत, प्रेम, कुछ भी कह लो, उसकी अदायगी और जज्बा उतना ही जवान है जितना उतने साल पहले : एक पेंटिंग, पिक्चर पोस्टकार्ड की तरह।

मुझे इत्मीनान है मैंने मन ही मन उनके भले की इबादत की होगी। या कहा होगा : टचवुड!

चारों तरफ पेड़ ही पेड़ हैं। हरियाली है। मेरी बूढ़ी होती नसों में भी रक्त की गति यह सब सोचते हुए बढ़ गई।

बीसवीं सदी के थैले में उन्नीसवीं सदी का स्त्री चिंतन

अच्युतानंद मिश्र

पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में स्त्री प्रश्न को नये सिरे से समझने की कोशिशें हुई हैं। अनेक दायरों से वर्तमान समाज संस्कृति और राजनीति में स्त्री की भूमिका क्या हो—इसे विश्लेषित करने का प्रयत्न किया गया। कुछ चिंतकों ने यह भी प्रश्न उठाया कि आखिर स्त्री को ही केंद्र में रखकर, कहीं हम उसकी अवधारणा को लोगों की चेतना में समस्या के तौर पर आरोपित तो नहीं कर रहे। ऐसा सवाल उठाने वालों में फूको का नाम लिया जा सकता है। फूको का मानना था कि आखिर जेंडर स्टडीज के तहत समूची दुनिया में स्त्रियों का ही अध्ययन क्यों किया जाता है? पुरुषों का क्यों नहीं? कहीं यह स्त्री पर वर्चस्व की चेतना निर्मित करने की कोशिश तो नहीं। उत्तर संरचनावादी दायरे से उठाया गया फूको का यह प्रश्न विमर्शवादियों के लिए नई जमीन मुहैया कराता है। बावजूद इसके दुनिया के बहुत से चिन्तक स्त्री प्रश्न को फूको की इस दृष्टि से अलग कर देखते हैं। वे स्त्री प्रश्न को उसकी ऐतिहासिकता और वर्तमान के द्वंद में तलाशने की कोशिश करते हैं। इस कोशिश में सबसे बड़ी उलझन है कि वर्चस्ववादी इतिहास की समझ से कैसे टकराएँ?

फुटपाथ पर कामसूत्र में अभय कुमार दुबे प्रश्न को आगे बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं। वे भारतीय संदर्भ में इस ऐतिहासिकता की पड़ताल 19वीं सदी की चेतना की निर्मिति में करते हैं। ऐसा करने के लिए वे अनामिका के उपन्यास 'दस द्वारे का पिंजरा' और 'तिनका तिनके पास' को टेक्स्ट के रूप में इस्तेमाल करते हैं। अभय कुमार दुबे का मानना है कि यह उपन्यास है और लेखक ने पात्रों की ऐतिहासिकता में कल्पना के तत्वों को मिलाया है लेकिन रमाबाई चूंकि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में स्त्री पक्ष को निर्णायक मोड़ तक ले जाती हैं, अतः उनकी औपन्यासिक कथा को भी बहस और विमर्श के दस्तावेज के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है।

रमाबाई के जीवन से जुड़े तथ्यों को अभय कुमार दुबे अनामिका के उपन्यास की बजाय

कोसाम्बी के रमाबाई के जीवन पर आधारित लेख से प्रस्तुत करते हैं। ऐसे में पाठकों को थोड़ी उलझन जरूर होती है कि वह अनामिका के उपन्यास का भाष्य पढ़ रहा है या किसी और पाठ की व्याख्या। इन छोटी मोटी उलझनों को अगर दरकिनार कर दें तो हम पाते हैं कि अभय कुमार दुबे का यह लेख 19वीं सदी के भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन की नई प्रवृत्तियों की पहचान करता है। वह वर्तमान के स्त्री आंदोलन की विफलता और उसकी जद्दोजेहद को आधुनिक भारत की निर्मिति में तलाशने की कोशिश करता है। साथ ही भारतीय स्त्री आंदोलन का स्वरूप किस प्रकार यूरोपीय स्त्री आंदोलन से भिन्न है इसकी व्याख्या भी दुबे इस लेख में करते हैं।

यूरोप में प्रबोधन के पश्चात समाज ने स्वतंत्रता, समानता और न्याय की अवधारणा को विकसित किया। स्त्रियों ने इस अवधारणा को आत्मसात करते हुए अपने लिए भी इससे सम्बद्ध अधिकारों की मांग की। 19वीं सदी में यूरोप में महिलाओं का नवजागरण भी सामने आया। अन्ना कारेनिना जैसे उपन्यासों या मोपासां की कहानियों में मौजूद स्त्रियों के माध्यम से हम यूरोपीय समाज में स्त्री नवजागरण की इस लहर की पहचान कर सकते हैं। बड़े पैमाने पर महिलाएं उपन्यास लेखन में आईं। उनके लेखन से समाज का एक दूसरा पहलू प्रकट हुआ। यूरोपीय स्त्री नवजागरण के रास्ते यूरोप में एक नये तरह का समाजशास्त्र विकसित हो रहा था। यूरोपीय राष्ट्रवाद के विकास के साथ नारीवाद का विकास अंतर्विरोध के रूप में वहां नहीं हुआ। ऐसा इसलिए भी कि वहां राष्ट्रवाद की अवधारणा का विकास मध्यकालीन संस्कारों से मुक्ति के रूप में हुआ परिणामस्वरूप मध्यकालीन स्त्री चेतना से भी संघर्ष हुआ। इस तरह वहां के राष्ट्रवाद की चेतना ने न चाहते हुए भी आधुनिक स्त्री चेतना के विकसित होने में सहयोग दिया। हालांकि यह सबकुछ बहुत सरल भी नहीं था। समाज एकदम से मध्ययुग से आधुनिक युग में प्रवेश नहीं कर गया। स्त्रियों को छद्म नाम से लिखना पड़ रहा था। अभय कुमार दुबे लिखते हैं—“स्त्री के अधिकारों की दावेदारी जब शुरू हुई, उस समय तक राष्ट्रवाद के कदम यूरोप में पूरी तरह जम चुके थे। उसकी जीत में औरतों की हिस्सेदारी थी, पर उसके बदले औरत को उसका हिस्सा देने के लिए वह कतई तैयार नहीं था।” (19) उत्तरोत्तर यूरोपीय राष्ट्रवाद एक बर्बर साम्राज्यवाद में बदलता गया और स्त्रियां इस राष्ट्रवादी चेतना से अलग होती गईं, लेकिन यहां यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि यूरोपीय स्त्रीवाद मुखर रूप से साम्राज्यवाद विरोधी नहीं था। यही वह बिंदु है जिसने तीसरी दुनिया की औरतों के समक्ष राष्ट्रवाद और स्त्रीवाद की मौजूदा चेतना को लेकर एक दुविधा पैदा कर दी। वे यूरोपीय स्त्रीवाद के पक्ष में नहीं जा सकती थीं, क्योंकि वह साम्राज्यवाद के प्रति आलोचनात्मक नहीं था। अपने देश में भी यह जानते हुए कि राष्ट्रवाद के भीतर स्त्रीवाद का विरोध एक हद तक अंतर्निहित है वे मुखर विरोध नहीं कर सकती थीं। वे अपनी मुक्ति और राष्ट्र की मुक्ति के प्रश्न को, उस दौर में अलग कर नहीं देख सकती थीं। भारतीय स्त्रीवाद के साथ आरंभ से ही यह द्वंद्व मौजूद रहा। अभय दुबे कहते हैं भारतीय स्त्रीवादी चिंतकों ने राष्ट्रवादी चेतना के साथ सहयोग और संघर्ष के द्वैत का रास्ता चुना—“लेकिन इतिहास गवाह है कि भारतीय स्त्रियों ने ऐसा न करके एक दोहरी लड़ाई लड़ी। उन्होंने राष्ट्रवाद की उपनिवेशवाद विरोधी राजनीतिक दावेदारी में अपना स्वर मिलाना मंजूर किया, क्योंकि उसके माध्यम से उनके लिए एक नया दिगंत खुल रहा था। दूसरी तरफ उन्होंने राष्ट्रवाद की मर्दवादी सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों और जकड़बांदियों को चुनौतियां देते हुए राष्ट्रवादी एजेंडे में नारीवादी एजेंसी के जरिये पितृसत्ता विरोधी पहलुओं का समावेश करने का यत्न किया।” (21) भारतीय नारीवादी आंदोलन का यह स्वरूप उसे यूरोपीय नारीवाद से अलगता है। अनामिका के उपन्यास में भारतीय नारीवाद की इस रूपरेखा को उभारा गया है। उपन्यास के हवाले से अभय दुबे इस बात को भी रखते हैं कि अनामिका का यह लेखन इतिहास और राष्ट्रवाद

की हमारी मान्यताओं को गहरे तक प्रभावित करता है और साथ ही उसे बदलने की रूपरेखा भी प्रस्तुत करता है। अभय दुबे के इस लेख में सबसे महत्वपूर्ण बिंदु है नारीवादी आंदोलन की दृष्टि से राष्ट्रवाद का किया गया मूल्यांकन। यही वह आधार बिंदु है, जिसके अनुरूप बीसवीं सदी में स्त्री आंदोलन को विकसित होना था। तीस के दशक में अगर भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन का संतुलन बिगड़ता नजर आता है और उसके अंतर्विरोध मुखर होने लगते हैं तो यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि उसमें भारतीय नारीवादी आंदोलन की भूमिका अहम थी। आजादी ने इस समूचे विकासक्रम को स्थगित कर दिया। आजादी से पहले देश सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के जिस रास्ते पर चल पड़ा था, आजादी के उन्माद में वह दिशा बदल गई। आजादी से पूर्व जो प्रश्न समाज के बहुस्तरीय संवाद का हिस्सा था, आजादी के उपरांत वह संस्थाओं के दायरे में महदूद होकर रह गया।

यहीं से स्त्री प्रश्न को लेकर एक क्रमभंग की स्थिति पैदा हुई। समाज में स्त्री का मूल्य तो बढ़ा लेकिन उस विकास के मूल में आर्थिक विकास का लक्ष्य ही था। स्त्री घर की चौहदियों के बाहर निकली, मगर इस अर्थ में कि वह धनोपार्जन में परिवार और पुरुष का सहयोग करे। स्त्रीवादियों ने इस बात को खूब प्रचारित प्रसारित किया कि मुक्त स्त्री की परिकल्पना तभी संभव है जब वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र और आत्मनिर्भर हो। यह बात एक हद तक सही भी थी लेकिन यह पूर्णतया सही नहीं थी। क्योंकि आर्थिक निर्भरता की कीमत उसे चुकानी पड़ रही थी। यहां से स्त्री देह के व्यवसायीकरण के नये सूत्र बनाये गए। समाज में कामशास्त्र का नया मनोविज्ञान विकसित किया गया। व्यवसायीकरण ने समाज में स्त्री को महज देह में बदल दिया। इस सबका उद्देश्य यह था कि सेक्स को मूर्त और अमूर्त, भौतिक और मनोवैज्ञानिक दोनों अर्थों में समाज की चेतना का हिस्सा बना दिया जाए।

प्रश्न सेक्स को लेकर नहीं था। प्रश्न था सेक्स की बढ़ती व्यावसायिकता को लेकर। चूंकि समाज के हर वर्ग को इसकी आवश्यकता थी इसलिए इसे बहुस्तरीय बनाया गया। सेक्स की इस बहुस्तरीयता में सेक्स को तमाम संचार माध्यमों के द्वारा एक काल्पनिक आनंद में बदला गया। फ्रायड के हवाले से अभय दुबे लिखते हैं—“फ्रायड ने बीसवीं सदी की शुरुआत में हमें बताया था कि इंसान की देह का हर अंग एक नहीं, दो काम करता है। एक काम कुदरती और दूसरा सेक्सुअल।” (65)

फ्रायड की यह बात महज शरीर के बाहरी अंगों तक ही नहीं बल्कि मस्तिष्क पर भी लागू होती है। वह मानव मस्तिष्क को भी विभाजित कर देता है। एक हिस्सा अपने रोजमर्रा की उलझनों में मुब्तिला होता है और दूसरा सेक्सुअलिटी से दो चार हो रहा होता है। बात अगर इसी विभाजन के द्वंद तक सीमित रहती तो भी ठीक थी। लेकिन धीरे धीरे मस्तिष्क का वह हिस्सा जो काल्पनिक सेक्स आनंद से तृप्त हो रहा होता है, वह समूचे मस्तिष्क पर वर्चस्व अख्तियार कर लेता है। हर स्त्री उसे काम की देवी नजर आने लगती है।

“देह और दैहिक आनंद की केंद्रीयता के कारण प्रेम मित्रता, भाईचारे और रक्त संबंधों की शक्ति कुछ से कुछ हो जाती है। जिसमें पूरा माँस मीडिया, बुद्धिजीवी हल्के, सरकार, राजनीतिक पार्टियाँ, धर्माचार्य, मानवाधिकारों के समर्थक, तरह तरह के नैतिकतावादी और मूर्तिभंजक साफ तौर पर पक्ष विपक्ष में खड़े नजर आते हैं।” (65)

इस तरह समूचा समाज सेक्सुअलिटी के फंदे में उलझ जाता है। इस समूची प्रक्रिया में देह विमर्श की राजनीति भी उत्तरोत्तर एक विकृत रूप अख्तियार करने लगती है। स्त्री की चेतना और उसके शरीर दोनों का ही वस्तुकरण होने लगता है। यहां स्त्री उपनिवेश की तरह नजर आती है।

सार्त्र ने उपनिवेशवाद के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बात कही थी। उनका कहना था कि उपनिवेशवाद की प्रक्रिया दोनों को पतन तक ले जाती है। क्योंकि इस प्रक्रिया में और इससे संघर्ष में वर्चस्ववाद की चेतना नहीं मिटती। हर हाल में वह प्रबल होती जाती है। देह विमर्श के साथ भी यही संकट है। देह के उपभोग की चेतना, उसे विषय से वस्तु में बदल देती है। संस्थाओं और ज्ञान माध्यमों द्वारा इसे संभव बनाया जाता है। स्त्री देह को उपनिवेश बनाने के लिए यह जरूरी है कि समाज की चेतना में उसे एक समस्या के रूप में प्रस्तुत किया जाए। हर बलात्कार को संचार माध्यमों से बढ़ चढ़कर प्रचारित किया जाता है। समाज में इसके बहाने हिस्टीरिया को निर्मित किया जाता है। स्त्री देह की सुरक्षा के बहाने उसपर वर्चस्व के नये स्तर विकसित किए जाते हैं। यह बात प्रचारित नहीं की जाती कि किसी बलात्कार में स्त्री से कम नुकसान पुरुष का नहीं होता। इस समूची प्रक्रिया में जिस तरह से विमर्शवादी हस्तक्षेप करते हैं, उससे यह बात पुष्ट होने लगती है कि स्त्री अधीन है और उसे सुरक्षा की जरूरत है। इस प्रक्रिया का चरम तब विकसित होता है जब स्त्री स्वयं अपनी देह की सुरक्षा के लिए वर्चस्व का इस्तेमाल करने लगती है। वह खुद ही विभाजित होने लगती है। उसकी देह और उसकी चेतना एक दूसरे को नियंत्रित करने लगते हैं। वस्तुकरण की यह प्रक्रिया इस अर्थ में न सिर्फ बाह्य रह जाती है, बल्कि वह एक आंतरिक प्रक्रिया भी बन जाती है। ऐसे में स्त्री की कोख से स्त्री नहीं बल्कि देह पैदा होती है, समाज ने पहले ही जिसका वस्तुकरण दोनों अर्थों में कर दिया है।

यह सोचना थोड़ा कठिन लग सकता है, लेकिन एक हद तक यह यथार्थ है कि वर्तमान युग में स्त्री विमर्श की प्रचलित धारा के रास्ते पुरुष सत्ता का अनुकूलन संभव हो पा रहा है। जूडिथ बटलर सरीखे स्त्री चिंतकों का मानना है कि स्त्री संबंधी दृष्टिकोण वस्तुतः द्वंद्वात्मक ही हो सकते हैं। हम ज्यों ही उसे निष्कर्षात्मक बनाने का प्रयत्न करते हैं, वे पुरुष सत्ता में बदल जाते हैं। इस बात को हम यूं भी समझ सकते हैं कि स्त्री संघर्ष के समक्ष एक रूपांतरित दुनिया है। यह दुनिया किन विचारों से बनी है? ये वही विचार हैं जो पुरुष सत्ता को निर्मित करते हैं। पुरुष सत्ता का निर्माण तभी संभव है जब उसके सापेक्ष स्त्री चेतना का विकास किया जाए। पूरब के बगैर पश्चिम की परिकल्पना विकसित नहीं हो सकती थी। इस तरह एक बाइनरी युग्म का निर्माण किया जाता है। स्त्री संघर्ष चाहे अनचाहे यही प्रयत्न करता है कि इस युग्म को उलट दिया जाए, लेकिन इस समूची प्रक्रिया में स्त्री बनाम पुरुष की परिकल्पना और मजबूत होती है। युग्म के उलट जाने से पुरुष सत्ता की चेतना नहीं बदलती, सिर्फ उसे चलाने वाली, निर्धारित करने वाली शक्तियों का रूपांतरण हो जाता है। इस तरह स्त्री मुक्ति एक लुका छिपी के खेल में बदल जाती है। धीरे धीरे वह एक सत्ता के संतुलन में ढलने लगती है। यही वजह है कि स्त्री विमर्श से सम्बद्ध शक्तिशाली वर्ग अपनी मुखरता की कीमत सत्ता में भागीदारी के तौर पर करता है। हम देखते हैं कि इस प्रक्रिया में स्त्री मुक्ति का स्वप्न धूमिल होने लगता है। विचार की समूची प्रक्रिया इस तरह निर्मित की जाती है कि उसे लोकतंत्र और भाईचारे की व्यावसायिक शब्दावली में बदलना सहज होने लगता है।

अभय कुमार दुबे की यह पुस्तक स्त्री विमर्श और देह की राजनीति के उपर्युक्त पहलू की तरफ हमारा ध्यान आकृष्ट नहीं करती। पुस्तक के अधिकांश हिस्से में थोड़ी जटिलता के साथ सर्वेक्षणों से निकलकर आनेवाले लोकप्रिय समाजशास्त्र को ही व्याख्यायित करने का प्रयत्न नजर आता है। सर्वेक्षणों के झूठ सच से परे यह पूछना अधिक लाजमी लगता है कि इन सर्वेक्षणों के निहितार्थ क्या हैं? इसकी तकनीक के मूल में कौन सी चेतना कार्य करती है। यह पुस्तक इन प्रश्नों से उलझने की बजाय सर्वेक्षणों का एक बड़ा कोलाज हमारे सामने रखती है। इन सर्वेक्षणों में मौजूद आत्मविश्वास का मूल उद्देश्य है, हमारी समझ की जड़ों को खोदना। उदाहरण के तौर पर सहजीवन

से संबद्धित आंकड़ों को देखा जा सकता है “इस समय स्थिति यह है कि अमेरिका में करीब 45 लाख जोड़े सह जीवन में जिंदगी गुजार रहे हैं। यह संख्या 1960 की स्थिति से एक हजार प्रतिशत ज्यादा है। 2000 का एक अध्ययन बताता है कि इस देश में करीब आधे नवविवाहित ऐसे हैं जो पारंपरिक बंधनों में बंधने से पहले सहजीवन में रहकर एक दूसरे को अच्छी तरह समझ रहे थे। वेस्टर्न वाशिंगटन यूनिवर्सिटी में जे. टीचमेन द्वारा तीन हजार जोड़ों पर किए गए एक अध्ययन के अनुसार सह जीवन में रहने और विवाह से पूर्व संभोग कर लेने वाली जिन स्त्रियों ने अपने उसी पार्टनर के साथ आगे चलकर विवाह किया, उनके जीवन में तलाक की नौबत का प्रतिशत किसी भी तरह से उन स्त्रियों से ज्यादा नहीं था जिन्होंने पारंपरिक विवाह से ही अपने यौन जीवन की शुरुआत की थी। डेनमार्क, नार्वे और स्वीडन की स्थिति यह है कि वहां पचास फीसदी के आसपास नई संतानें सह जीवन के तहत पैदा हो रही हैं। कनाडा में 16 प्रतिशत, मैक्सिको में 18 प्रतिशत, ब्रिटेन में 25 प्रतिशत, फ्रांस में 17.5 प्रतिशत, फिनलैंड में 21 प्रतिशत जोड़े सह जीवन के तहत जिंदगी गुजार रहे हैं।” (176)

ये आंकड़े किस तरह हमारी चेतना में प्रवेश करते हैं? इन आंकड़ों को किस तरह निर्मित किया जाता है? 20 वीं सदी में आंकड़ों के हवाले से एक नये तरह का वैज्ञानिक समाजशास्त्र प्रस्तुत करने की कोशिश की गई। इसके पीछे उद्देश्य यही था कि मनुष्य की चेतना की विषयपरकता को एक खास तरह की वस्तुपरकता में बदल दिया जाए।

विज्ञान ने संख्याओं के माध्यम से एक प्रकट तार्किकता को हमारे समक्ष रखा। 19वीं सदी में भौतिक विज्ञान और गणित की उपलब्धियों ने इसे समाज की आम समझ का हिस्सा बना दिया। इस विज्ञान का अनुसरण कर पूंजीवाद के प्रति लोगों में आम सहमति विकसित हुई। पूंजीवादी विकास की चेतना नैसर्गिक लगने लगी। 19वीं सदी के विज्ञान ने मनुष्य की चेतना को संख्याओं के रास्ते रूपांतरित करना शुरू किया। हीगेल का द्वंद्ववाद वास्तव में संख्याओं द्वारा निर्मित इस तार्किकता का विरोध करता था। लेकिन विज्ञान की विकासवादी चेतना ने द्वंद्ववाद को हटाकर सापेक्षवादी विकास की अवधारणा को स्थापित किया। 20वीं सदी की तमाम सत्ताएं जिनमें पुरुष सत्ता भी शामिल थी के सामने मुख्य प्रश्न यही था कि समाज को संख्या की चेतना में बदलने की प्रक्रिया क्या हो? दुनिया की समझ के वस्तुकरण के लिए यह अनिवार्य था। द्वंद्ववाद से मुक्त होने के लिए बाइनरी के रास्ते सापेक्षवाद को विकसित किया गया। सूचना प्राद्यौगिकी ने समूचे समाज की अवधारणा को चिह्नों और कोड में बदल दिया। सर्वेक्षणों का मुख्य उद्देश्य समाज के प्रति हमारी धारणा का वस्तुकरण है। आंकड़े इस प्रक्रिया में चेतना पर एक वर्चस्व स्थापित करते हैं। यह दिलचस्प है कि समाजशास्त्र का मूल उद्देश्य समाज के वस्तुकरण का विरोध है लेकिन उसका एक स्कूल समाज को सर्वेक्षणों के बहाने ही व्याख्यायित करता है। इस तरह चाहे अनचाहे वह वही कर बैठता है, वास्तव में उसे जिसका विरोध करना था। 5000 स्त्रियों से पूछे गए प्रश्न को सांख्यिकी के तर्कों द्वारा समाज का वस्तुसत्य बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। इस समूची प्रक्रिया में समाज को पदार्थ विज्ञान में बदल दिया जाता है। यह कुछ कुछ उसी तरह है जिस तरह जल के गुणों का अध्ययन मात्र दो चार अणुओं के माध्यम से हम करते हैं। तो क्या समाज भी जल की तरह एक पदार्थ है। इस पूरी प्रक्रिया में समाज की परिवर्तनकामी चेतना का निषेध छिपा होता है। सर्वेक्षणों का मूल उद्देश्य यह होता है कि वे समाज की समूची अवधारणा को संख्याओं में बदल देते हैं। हर मनुष्य संख्याओं की एकरूपता के भीतर कसमसाता रहता है। सर्वेक्षक की सीमा यह होती है कि वह इस कसमसाहट को नहीं देख सकता। यही वजह है कि बहुत खूबसूरती से सर्वेक्षणों को विज्ञान का जामा पहनाकर, उसके पीछे की विचारधारा या उद्देश्य को छिपा लिया जाता है।

अभय कुमार दुबे की इस पुस्तक में संख्याओं, आंकड़ों का एक महाजाल नजर आता है। वे तथ्यों को वस्तुपरकता में बदल देते हैं। समाज के सच को इस तरह विज्ञान के सच के तौर पर प्रस्तुत किया जाता है कि पाठक सामान्य विवेक के द्वारा इन पर शंका जाहिर नहीं कर सकता।

लेखक हमारे समक्ष निष्कर्षों को रखता है। पिछले तीस वर्षों में हुए सामाजिक बदलावों के जो परिणाम उभरकर सामने आए हैं अभय कुमार दुबे उसे हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। लेकिन वे इस बदलाव की प्रक्रिया की पड़ताल नहीं करते इसलिए कई बार वे एक खास तरह की निरुपायता को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। जरूरत इस बात की महसूस होती है कि इस तरह के परिवर्तनों की पड़ताल की जाए। उन ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का आकलन किया जाए जिनके तहत समाज और उसके मूल में काम करने वाली शक्तियां एक दूसरे से संबंध स्थापित करती हैं। समाज का जो हिस्सा बदल रहा है और जो हिस्सा नहीं बदल रहा है उनकी परस्पर टकराहटों का समाज के मनोविज्ञान पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। यह पुस्तक उस दिशा में स्थितियों को समझने में हमारी मदद नहीं करती। आखिर स्त्री मनोविज्ञान को रचा किस तरह जा रहा है, यह समझना अधिक जरूरी लगता है।

20वीं सदी के मध्य तक दुनिया की व्याख्या में लगी तमाम विचारधाराएं अपने निष्कर्षात्मक प्रयोजन की वजह से मूलतः पुरुषवादी विचारधाराएं ही बनकर रह जाती हैं। इसकी पहचान फूको करते हैं। फूको से लेकर जीजेक और बटलर तक एक पूरी धारा विकसित हुई है जो यह मानती है कि निष्कर्षात्मक होना ही पुरुष होना है। इसलिए वे संख्याओं से निकलकर आने वाले निष्कर्षों की उपेक्षा करते हैं। इस पुस्तक में उस दिशा के संधान की कोशिश नहीं की गई है।

यह पुस्तक बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षों के मूल्यांकन को ही समकालीन स्त्री की विचारधारा मानकर चलती है। इसीलिए स्तालिन और माओ के जिक्र के बाद अभय कुमार दुबे भारतीय वामपंथ के स्त्रीवादी चिंतन की तरफ बढ़ने लगते हैं। यह कम दिलचस्प नहीं है कि 1950 के बाद वामपंथी स्त्री विचारधारा का मूल्यांकन वे महज भारतीय वामपंथी स्त्रीवाद के नजरिए से करते हैं। ऐसे में यथार्थ का व्यापक पहलू छूट जाता है। पचास के बाद उत्तर मार्क्सवादी विचारकों ने जो स्त्री प्रश्न को लेकर आगे का चिंतन सामने रखा है, लेखक उसे हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं करता। ऐसा क्यों? यह अनुत्तरित प्रश्न इस पुस्तक की समूची परिकल्पना से टकराता है।

तमाम बहसों के बावजूद राष्ट्रवाद और स्त्री विमर्श को लेकर यह पुस्तक नये सिरे से कुछ प्रश्नों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है। इसे इस पुस्तक की उपलब्धि के रूप में देखा जाना चाहिए।

फुटपाथ पर कामसूत्र : अभय कुमार दुबे, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य : रु. 695

कला, सौंदर्य व प्रेम की तलाश यथार्थान्वेषण की प्रक्रिया से

अमृता जोशी

तमाम साहित्यिक, समाजशास्त्रीय, कलाशास्त्रीय मानदंडों के चौखटे पर फिट किए जाने की पारंपरिक जददोजहद के बावजूद 'सौंदर्य निष्पत्ति' को साहित्य का स्वायत्त आलोचनात्मक मानदंड कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। मनुष्य की ऊर्ध्वगामिनी चेतना के सौंदर्यीकरण के उपादानों की तलाश रचनाकार चाहे यथार्थ के भीतर से करे अथवा यथार्थ को रचकर, आलोचक की दृष्टि मूलतः यही देखती है। तथापि पिछले कुछ वर्षों में कहानी की प्रवृत्ति 'समय' को उतार देने की, यथार्थ से परिचय करा देने मात्र की ही होती गई है। 'यथार्थ के इस पुनरुत्पादन' ने हिंदी कहानी की अंतश्चेतना व सौंदर्य को नुकसान पहुंचाया है।

समसामयिक हिंदी कहानी में कम रचनाकार हैं जो अपने काल से लड़कर कहानी के 'कहानीपन' को बचाए रख सके हैं। अभी हाल ही में, प्रकाशित प्रसिद्ध कथाकार **नीलाक्षी सिंह** का कहानी संग्रह **इब्तिदा के आगे खाली ही** इस दृष्टि से न केवल एक कथाकार के अगले सोपान के रूप में देखा जा सकता है वरन, हिंदी कहानी के दंभी, एक रेखीय, विमर्शीय चश्मे के भीतर कुठित हो जा रहे कहानी के व्यक्तित्व के विपरीत यथार्थ को अन्वेषित करने के क्रम में, मानवीय आस्था के पक्षधार मूल्यबोध युक्त एक सशक्त कहानी संग्रह के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। इस संग्रह की कहानियों का सौंदर्य यह है कि वे सिर्फ सत असत, ग्राह्य अग्राह्य, घटना, परिवेश, चरित्र का चित्रण मात्र नहीं करती बल्कि, यूं कहें इन सबके 'यथार्थ का अन्वेषण' करके मानवीय आस्था व मानव संभावना की लकीरें खींचती हैं। ये कहानियां 'यथार्थ का पुनरुत्पादन' नहीं, यथार्थ की रचना हैं, मनुष्य की परत दर परत व्याख्या करती हुई। ये कहानियां प्रति उत्तर

हैं उन तमाम नव उपनिवेशवादी सांस्कृतिक विचलनों द्वारा रचे गये काल व परंपराबोध से विच्छिन्न, अययार्थत्मक साहित्यिक विमर्शों व उन उद्घोषणाओं की जिनके अनुसार अब 'मनुष्यत्व' की संभावनाएं समाप्त हैं तथा साहित्य विभाजन के बिना संभव नहीं।

इस संग्रह में नीलाक्षी की तीन लंबी कहानियां हैं, जो अलग अलग आयामों में रचनाकार की तीन यात्राएं हैं— समय, जीवन, व मनुष्य की इयत्ता का अंतर्संघटनात्मक प्रतिफलन। तीनों कहानियां 'इब्तिदा के आगे खाली ही', 'लम्स बाकी', व 'बाद उनके' अपनी अपनी तरह से साहित्यिक विभाजन की स्थूल भेदमूलक दीवारों को गिराकर मानवीय संघर्ष के गलनांक पर जिस उदात्त 'नैतिक दृष्टि' का परिचय देती हैं, वह निश्चय ही नीलाक्षी के रचनाकार को परंपरा व इतिहासबोध मूलक अंतःप्रवहमान धारा से जोड़कर एक समर्थ व ऊर्जस्वित रचनाकार के रूप में स्थापित करती है।

संकलन की कहानियां मनुष्य के 'होने' को लेकर हैं। इन कहानियों की मानविकी नवउपभोक्तामूलक बाजारवादी सांस्कृतिक विचलन के दौर में मनुष्य की भीतरी प्रश्नाकुलता, अंतर्मथन, अस्तित्वबोध से जुड़कर नए संदर्भों में अपने समय के भीतर पकड़कर गढ़ी गयी हैं। प्रश्न हैं, अंतर्मथन है, अस्मिबोध है तो जाहिर है, मनुष्य की संभावना अभी बाकी है। इन कहानियों का यही सौंदर्य है कि ये 'मनुष्यता' की मूल तलाश को शब्दबद्ध करती हैं। यूं तो, अस्मिबोध नीलाक्षी की तकरीबन सभी कहानियों का मूल उत्स है चाहे परिदे का इंतजार सा कुछ की नसर हो, प्रतियोगी की दुलारी साया कोई की किरण हो तथापि इन कहानियों के पात्रों का अस्मिबोध आत्म मूल्यांकन से जुड़कर समय की वैकल्पिक विडंबनाओं से भिड़ते हुए भी ऊर्ध्वगामी है। जीवन की स्थूल प्राप्तियों से दूर ये पात्र देह, वर्चस्व, संसाधनों के आधिक्य की बजाय अपने भीतर के मनुष्य के सहज प्रश्नों, विचारों, अंतर्विश्लेषणों, व पश्चातापों के साथ अर्थप्रधान उपभोक्तामूलक सभ्यता में भी उच्च मानवीय नैतिकी की प्रतिष्ठा करते हैं। ये पात्र बाहर और भीतर दोनों तरह से संघर्षरत हैं, अपने घोर पश्चातापों, आत्मग्लानियों से भरे क्षणों में भी मनुष्यता की कसौटी पर हारे हुए नहीं हैं, ये जीते हुए भी नहीं हैं, किंतु मनुष्य की सौंदर्यदीप्ति से युक्त हैं। आज जबकि देह विमर्श, छोटे छोटे अहमजन्य संघर्ष, नव उदारवादी मूल्य, क्षुद्र व स्थूल अधिकारों की सतही लड़ाई, साहित्य के अंत की घोषणा, पूंजी आदि का मानवीय चेतना के भीतर गहरी घुसपैठ का दौर है, तब ये कहानियां आस्थावादी सौंदर्य चेतना को नवीन प्रसंगों में पकड़ती हैं।

संकलन की प्रथम कहानी है, 'इब्तिदा के आगे खाली ही'। यह कहानी संग्रह की शीर्षक रचना होने के साथ पूरे समय की अंतर्ध्वनि के प्रति एक व्यंजनात्मक शब्द प्रतिध्वनि कही जा सकती है। कहानी का शीर्षक सिर्फ कहानी में आए संदर्भों के संबंध में ही नहीं वरन, पूरे समसामयिक कालखंडीय यथार्थ के प्रति एक व्यंजनात्मक अर्थगर्भिता लिए हुए है। नीलाक्षी इस शीर्षक से अपने पूरे समय के प्रति कटाक्ष रचती हैं, जो 'समय' अपने ऐतिहासिक परंपराबोध से विच्छिन्न है। साथ ही, जीवन के उन मूल्यों की पक्षधरता में भी, जो संग्रह की कहानियों का आसव हैं। यह कहानी मृगा की है जो पूरी कहानी में फैंटेसीपरक शैली में नायक की स्मृति में रहती है। प्रत्यक्षतः यह कहानी प्राइवेट संस्थाओं द्वारा रची गई भ्रमोत्पादक व्यूहरचना, युवा शक्ति की ऊर्जा की सही विधेयात्मक खपत न हो सकने की राष्ट्रव्यापी समस्या, उच्च शिक्षा संस्थानों की दोषपूर्ण असफल शिक्षण प्रणाली, 'एजुकेशन लोन' के नाम पर राज्य व पूंजीपति के गठजोड़ द्वारा विद्यार्थी की कार्यक्षमता को उपकरण की तरह प्रयुक्त कर अनुचित दोहन करने की सच्चाई और समस्याओं से जुड़ी हुई है, यह कहानी का 'समय' है, किंतु अर्थगर्भिता में यह कहानी एक सशक्त अस्मिबोध से युक्त स्वाभिमानि स्त्री मृगा की कहानी है। यह कहानी प्रचलित अर्थों में स्त्री विमर्शीय नहीं है।

स्त्री पुरुष के स्थूल संघर्षाख्यान की बजाय संवेदना के सूक्ष्मतरंगों पर यह कहानी एक स्त्री द्वारा 'अस्मिता की तलाश' का 'कहन' शब्दबद्ध करती है। कहानीकार ने कहानी के अंत में भी मृगा को नायक की अपेक्षा बहुत ज्यादा अकादमिक रूप से सफल दिखाकर कहानी को स्थूल स्त्री विमर्श की कहानी बनने से रोक लिया है। यहां एक स्त्री का सूक्ष्म आंतरिक संघर्ष है, अपने 'होने' को लेकर। मृगा अपनी छोटी सी स्थायी बैंक की नौकरी से कैम्पस सिलेक्शन की गुब्बारेनुमा सफलता के मानकों का ठोस उत्तर देती है। कहानीकार का यह कौशल है कि विडंबना का यह क्षण कहानीकार ने संवाद या सायासित परिस्थिति से नहीं रचा है। मृगा व अशेष आमने सामने नहीं हैं प्रत्यक्षतः, वरन उनका आमना सामना उसी आभासी दुनिया में है जिसमें अशेष एक स्मृति के रूप में निरंतर उसे लेकर चलता है। प्रत्यक्षतः कहानीकार ने मृगा द्वारा अशेष को बैंक की लोन किस्त चुकाने के रिमाइंडर पर लिखे नाम व पोस्ट के उल्लेख के अलावा कहीं नहीं दिखाया है। और यही विडंबनात्मक यथार्थ लिए, वह संवेदनात्मक क्षण है जो एक स्त्री व पुरुष को कालखंड की चुनौती के प्रति अलग अलग प्रतिक्रियाओं के साथ आमने सामने खड़ा करता है। अशेष व मृगा यहां कालखंड के प्रति अलग अलग संघर्ष शैली के साथ हैं। यहीं कहानीकार की इतिहासदृष्टि व परंपराबोध का परिचय मिलता है। कहानी इस यथार्थ को अन्वेषित करती है कि पीछे छूटा हर व्यक्ति हारा हुआ नहीं है। प्रकारंतर से यह कहानी मनुष्य व तकनीकी के संबंध की उस विडंबनात्मक त्रासदी का भी चित्रण करती है जहां मनुष्य की संवेदनात्मक व भावात्मक सृजना शक्ति के भीतर गहरे तक तकनीकी का प्रवेश है। इस विडंबना को रचनाकार ने हॉस्टल के कमरे पर बने चित्रों की नायक द्वारा की गई डीकोडिंग के माध्यम से व्यक्त किया है। वास्तव में, यह मानव चेतना में समाया अदृश्य भय है, जिसे नीलाक्षी ने बड़ी खूबसूरती से सारगर्भित रूप से व्यक्त किया है— "तकनीकी! मैं वहीं बैठ गया। तकनीकी इंसान को जनम दे, इससे भी भयानक कल्पना थी सामने...जिसमें इंसान जन्म दे रहा था तकनीकी को...मस्तिष्क से नहीं बल्कि उस जगह से, जो सिर्फ धड़कने वाली आत्माओं को जन्म देती है। यह इंसान की चुनौती थी सीधे सीधे उस कुदरत को जिसे गर्व था कि उसने इंसान का विकल्प नहीं बनाया। पर यहां उसी इंसान ने अपना विकल्प बना लिया था—तकनीकी को!" (पृ. 49)

ऐतिहासिक संकट की ऐसी संश्लिष्ट विंबात्मक व व्यंजनात्मक अभिव्यक्ति कहानी की अंतर्दृष्टि को मनुष्य व इतिहास के बीच के संवेदनात्मक संबंधों में आई दरारों से जोड़ती है।

संकलन की दूसरी कहानी 'लम्स बाकी' एक प्रेम कहानी है। किंतु, प्रेम यहां रूढ़ अर्थ में नहीं है। कहानी की नायिका पूरबा दत्ता बाजार के तेजी से बदलते गणित व प्रतियोगितावादी संस्कृति के बीच अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए निरंतर संघर्षरत है। परिवेश से मिली तमाम चोटों और भीतरी तौर पर घायल 'स्व बोध' का संतुलन वह लिफ्ट में (जो किसी तकनीकी खराबी से अटक जाती है), सत्ताईस मिनट अड़तालीस सैकेंड की अवधि में, नायक के समक्ष अपनी स्वाभाविक आत्मसम्मानि प्रतिक्रियाओं से बनती है। सत्ताईस मिनट अड़तालीस सैकेंड का यह समय उसके लिए स्वयं की चाही गई स्वाभाविक प्रतिक्रियापूर्ण दुनिया का संक्षिप्त संस्करण है। लिफ्ट में मौजूद दूसरा व्यक्ति, जिससे वह पूर्णतया अनजान है, अनजाने ही उसके स्वयं के भीतर छिपे 'प्रतिकार' की मौन अभिव्यक्ति का माध्यम बनता हो जैसे। वह अपने 'भीतर' की दबे कुचले 'स्व' को भरपूर जीती है इस अवधि में। यह अवधि उसकी स्वयं से संघर्ष की है। जहां वह बाहरी दुनिया के तमाम रोजमर्रा के दृश्यों में अपना चाहा हुआ प्रतिक्रियात्मक व्यवहार छोड़ने को बाध्य है, यहां सत्ताईस मिनट अड़तालीस सैकेंड की अवधि उसे स्वयं से एक नए तरह से परिचय करने का सेतु बनती है। वह खुशी से इस चाहे गए आत्मसम्मानि जीवन को एक 'अनुभव खंड' के रूप में जीती है। परिस्थितिवश नायक से अपने नौकरी से जुड़े किसी कार्य के सिलसिले में दुबारा टकराने पर मानो

यह दुनिया उसकी पुनः टूट जाती है। सदी का यही संकट है कि आज के उपभोक्तामूलक व्यवहारवादी, बाहरी व भीतरी दबावों से भरे समय में हम आभासी यथार्थ में ही अपना चाहा हुआ जीने को अभिशप्त हैं। यह संकट सिर्फ पूरबा दत्ता का ही नहीं, सदी के हर स्वाभिमानी मनुष्य का है। दुबारा मिलने पर लिफ्ट के भीतर के उसी अनजान व्यक्ति का हल्का सा रूखा व उदासीन सा व्यवहार पाकर पूरबा दत्ता का अस्मिता बोध घायल होता है और कहानी इसी अस्मिता बोध की पुनर्निर्मिति, तलाश, संघर्ष व प्रयास में विकसित होती है। हिंदी कहानी के पारंपरिक नायक नायिका की छवियां नहीं हैं यहां। प्रेम का विकास अस्मिता की रगड़ और निरंतर संघर्ष से होता है। दोनों के लिए प्रेम का यह भाव बाजार के गणितों के बीच एक खरगोशनुमा कोमल वस्तु है।

नीलाक्षी की कहानियों की स्त्रियां रोती, बिसूरती, गिड़गिड़ाती, पाठक की दया की काम्य नहीं वरन अपना व्यक्तित्व अपनी शर्तों पर आत्म वेदना की भट्टी पर तपाकर स्वयं गढ़ती हैं। और यह नीलाक्षी की कहानियों का वैशिष्ट्य है कि उनके नायक भी नायिकाओं की इसी आत्म सम्मानी छवि से प्रेम करते हैं। यह तथ्य इस कहानी में मुखर रूप से आया है—“वह सब सच नहीं था। सपना था। सपना। उसका स्वाभिमान अक्षुण्ण था अभी तक और मेरा आकर्षण बच गया था साबुत।... तो मैं उसके प्रेम में था। मैं उसकी तनी हुई गरदन के प्रेम में था। मैं उसकी आजादी के प्रेम में था।” (पृ. 88-89) नायक स्वप्न में भी नायिका के टूटे हुए स्वाभिमान के लिए दीन हीन छवि को नहीं सोच पाता।

स्त्री पुरुष संबंधों को लेकर लिखी गई परंपरागत प्रेम कहानियों के विपरीत ‘लम्स बाकी’ प्रेम के उच्च मानकों को गढ़ती है, जहां प्रेम प्राप्ति नहीं, व्यक्तित्वान्वेषण का सकारात्मक उपादान है। हिंदी कहानी से ऐसे स्त्री और ऐसे पुरुष लगभग गायब ही हैं।

संकलन की तीसरी व महत्त्वपूर्ण कहानी ‘बाद उनके’ के केंद्र में भी प्रेम है। ‘बाद उनके’ कहानी मानव चेतना के विकास की दृष्टि से नीलाक्षी की अब तक की शीर्षस्थ कहानियों में रखी जा सकती है। एक समय के बाद चीजों को जानने ही नहीं, जीने के क्रम में भी जीवन खेल ही तो है। पूरी कहानी एक दृष्टा भाव को लिए हुए है। जिंदगी को हाथों में उछालकर उछाल की ऊंचाई को आंखों से मापती हुई कहानी। यह संकलन की सर्वाधिक लंबी कहानी है। लगभग 100 पृष्ठ के कलेवर में रची यह कहानी कौशिकी सक्सेना की है, जो मूर्तियां रचती है, फैली हुई बड़ी सी दुनिया के कई तरह के छोटे छोटे रोजमर्रा के अपमानों के दंश से घायल ‘अस्मि बोध’ के निरंतर निर्माण हेतु प्रयासरत ‘सौंदर्य’ के टुकड़े निर्मम दुनिया से बीनती हुई। यह कहानी एक रियल एस्टेट कंपनी के बेईमान किंतु ‘सत् असत्’ के शाश्वत अंतर्संघर्ष में उलझे मनुष्य की भी है और उम्र की ढलान पर विवाहेतर प्रेम के ‘गिल्ट’ को जीते एक वयोवृद्ध व्यक्ति की है। इन तीनों पात्रों की अपनी अपनी तल्लव वास्तविकताएं हैं, अपनी अपनी त्रासदियां हैं, अपने अपने अंतर्संघर्ष हैं, और अपनी अपनी अलग अलग विस्तृत जीवन व्याख्याएं हैं किंतु तीनों पात्र जिस संवेदनात्मक स्तर पर समान हैं वह है जीवन सत्त्व की खोज। हालांकि इस खोज के लिए अपनाया गया उनका मार्ग व नियति अलग अलग है। स्त्री पुरुष संबंधों के अंतःसूत्र यह कहानी कई कई स्तरों पर तलाशती है। यहां प्रेम स्वयं की खोज व प्राप्ति का माध्यम है। यह साझा खेल परस्पर एक दूसरे के स्वायत्त को किसी तरह से आघात पहुंचाकर शासन करने में नहीं वरन, जीवन के ‘उत्स’ तक पहुंचने में सार्थक है। भले ही इस प्रयास में वे परस्पर आमने सामने टकराकर विपरीत दिशाओं से आते हुए एक दूसरे को काटकर आगे निकल जाते हों, “यह एक सामूहिक प्रयास है। जो कमजोर पड़ जाए, उसकी मदद करनी है दूसरे को और मिलकर इस पुल को धामे रखना है।” (पृ. 120)

भारतीय चिंतन में स्त्री पुरुष संबंध की परिकल्पना जिस मनोवैज्ञानिक व व्यावहारिक दृष्टिकोण से की गई है, वह विश्व साहित्य में दुर्लभ है। शिवपुराण की वायनीय/संहिता के 11वें

खंड में वायु देव शिव शिवा की उत्पत्ति के संदर्भ में ब्रह्माजी द्वारा सृष्टि चक्र को चलाने के लिए शिव व शक्ति की परिकल्पना का ध्यान करने की बात कहते हैं। मैथुनी सृष्टि की वृद्धि के संदर्भ में 'अर्द्धनारीश्वर की परिकल्पना' ने आकार पाया। विज्ञान की दृष्टि से भी यह प्रामाणिक है, गुणसूत्रीय संरचना से। ज्ञान व दर्शन के मार्ग पर आगे चलकर स्त्री व पुरुष का फर्क मिट जाता है, मनुष्य सिर्फ 'आत्मतत्त्व' है। ऐसे तमाम तथ्य नये विधान में जीवन के प्रति नीलाक्षी की सकारात्मक व विधेयात्मक दृष्टि के प्रमाण के रूप में इस कहानी के अंतःसूत्रों के रूप में बिखरे हैं। प्रेम दर्शन ही तो है, आत्मज्ञान का उपक्रम। "एक उम्र के बाद आदमी और औरत अपना शारीरिक अंतर खो देते हैं मिस्टर अग्निहोत्री। मैं अपनी बाकी की जिंदगी अपने तरीके से जीऊंगी, पर उम्र के आखिरी पड़ाव पर उसके जैसी ही दिखना चाहूंगी। उस आदमी के जैसी।" (पृ. 180) हिंदी कहानी का संबंध जीवन व भारतीय समाज की ऐसी आस्था की अंतःप्रवहमान धारा से टूट सा गया है, नीलाक्षी इस संकट को पहचानती हैं। वह हिंदी कहानी के उस जातीय व्यक्तित्व की पक्षधर हैं जिसके मानकीकरण के लिए किसी उत्तर औपनिवेशिक आयातित अवधारणा की दरकार नहीं। तमाम साहित्यिक परिवर्तनों के बावजूद 'मनुष्यत्व' की पक्षधरता को विश्व का कोई ऐतिहासिक बदलाव या नवीन साहित्यिक, मानदंड अप्रासंगिक सिद्ध नहीं कर सकता।

एक सृजनशील व्यक्तित्व के लिए 'दोहराव' एक आतंक की तरह है, एक विचित्र किस्म का त्रास है। कहानीकार ने कौशिकी सकसेना के माध्यम से सर्जना के इस संकट की ओर भी दृष्टिपात किया है— "बेतरतीब प्रहार करते रहे उसके हाथ। आंखें खुलने पर फिर से एक दुहराव सामने था। जतन से तराशकर बनाई गई एक पुरानी कृति का दुहराव।" (पृ. 101) रचनाकार स्वयं को दोहराने के दंश से बचना चाहता है और कला साधना का यही सत्य है कि निरंतर स्वयं को अनुभवों की आंच में तपाकर नया विधान रचें। नीलाक्षी ने स्वयं को कहीं नहीं दोहराया है, यह नीलाक्षी के रचनाकार व्यक्तित्व का संभावनाशील पक्ष है। 'बाद उनके' को वास्तव में 'कला व सौंदर्य' की तलाश कह दिया जाए तो अत्युक्ति न होगी। प्रेम इस तलाश का सहकारी है। जब नायिका प्रेम का मूल रहस्य समझ लेने के बाद मूर्तियां आंख खोलकर रचने लगती है, वह इस कहानी का सबसे सुंदर आस्थावान क्षण है। पूरी कहानी एक काव्यात्मक लय में एक संगीत की थाप पर जैसे 'सौंदर्य' को अलग अलग पीड़ा, उजास, आत्मसम्मान, हर्ष, आंसू, सृजन आदि भावों के अंतरों में गाती चली जाती है। यहां तक कि नौकरीपेशा जिंदगी के अनुभव, अपमान के दंश भी यहां आत्म विकास के सहकारी तत्व के रूप में हैं, उद्देश्यहीन निराशा के रूप में नहीं। कहानी जीवन के प्रति एक दृष्टा भाव लिए है, निरपेक्ष किंतु आत्मविधेयमूलक सौंदर्य लिए हुए है। कहानी का हर पात्र स्थिति व परिस्थिति को पूरे ताप से भोगकर निष्कलंक, तपे हुए 'स्वायत्त जीवन दर्शन' की तलाश में है।

संकलन की तीनों कहानियां जीवनदृष्टि के तीन आयाम हैं, क्रमशः आत्म परिष्कार, अस्मिबोध व कला— सौंदर्य, प्रेम की साधना की दृष्टि से। नीलाक्षी की कहानी यात्रा का यह अग्रगामी सोपान है किंतु ऐतिहासिक परंपराबोध से नालबद्ध। हिंदी कहानी के निजी व्यक्तित्व, दर्शन व स्वरूप से ही यह 'सोपान' विकसित हुआ है। कहानी का मूल उद्भव 'गल्प' से हुआ है, पंचतंत्र, जातक कथाओं, पुराणों में यह 'गल्प' ही संवेदनात्मक सौंदर्य वैभव के साथ व्यक्त हुआ है। शायद इसीलिए काल की धारा इसे विस्मृति के गर्भ में ले जाने से बचा ले गई है। 'यथार्थ' कहानी की मिट्टी है किंतु आत्मा यथार्थ का अतिक्रमण या समय को उलांघकर मानवीय सत्य की अनुभूति ही है। एक ऐसे समय में जबकि शिल्प व भाषा अपने आडंबर के साथ कहानी के मूल व्यक्तित्व पर प्रहार कर रहे, कहानी काल की प्रतिध्वनि बनने के बजाय ध्वनि के रूप में घटनाओं, सूचनाओं, विचारों का जमघट बनकर जनसमाज से दूर जा रही, नीलाक्षी कहानी की अंतः प्रवृत्ति

को अक्षुण्ण रखते हुए उसे काल की प्रतिध्वनि, अनुगूँज और यथार्थ के रचाव के रूप में संवर्द्धित करती हैं। इन कहानियों में जो विमर्श है वह है व्यापक चेतनाशील मनुष्य का विमर्श। इन कहानियों की स्त्रियाँ 'देहमुक्ति' का राग नहीं अलापतीं, चीखती चिल्लाती नहीं वरन काल के परिवर्तनशील कैनवास पर अपनी 'अस्मिता' को नए संदर्भों में तलाशती हैं, खंगालती हैं।

शिल्प व भाषा सदैव 'कथ्य' के सहायक हैं, संप्रेषक हैं किंतु यदि संवेदना के रचाव में इनका रूढ़ स्वरूप टूटता है, तभी वे स्वीकार्य होते हैं। इन तीनों कहानियों की भाषा कथ्य संप्रेषण में नीलाक्षी के स्वयं के भी मानक तोड़ती है। नीलाक्षी इन कहानियों में स्वयं द्वारा रचे गए कहानी मानकों के आगे खड़ी हैं। संग्रह की कहानियाँ विन्यास में लंबी हैं, लम्स बाकी थोड़ी कम लंबी, शेष दोनों औपन्यासिक विस्तार लिए, किंतु 'कहानीपन' को, मानवीय क्षणों, विडंबनाओं, अंतर्विरोधों को पकड़ने की दृष्टि से, बचाए हुए है। फैंटेसी कहानी के प्रादुर्भाव के साथ उपजी प्रविधि है। नीलाक्षी ने इस प्रविधि का प्रयोग 'इब्तिदा के आगे खाली ही' में सिर्फ चमत्कार हेतु नहीं, जटिल मानव यथार्थ की सरल अभिव्यक्ति के लिए बड़े सार्थक ढंग से किया है। संग्रह की कहानियों के बिंब, प्रतीक, शब्द प्रयोग गहरी अर्थवत्ता लिए हुए हैं तथा व्यापक विराट सत्यान्वेषण या यथार्थान्वेषण की प्रक्रिया के उपक्रम के रूप में प्रयुक्त हैं।

एक अन्य गुण जो नीलाक्षी की कहानियों को अन्य कहानीकारों से पृथक करता है, वह है, नाटकीयता का 'कहन' शैली में संगुंफन। संवाद दर संवाद कहानी चलती रहती है किंतु कहानी का 'कहन' गुण कहीं चोटिल नहीं होता। इस तरह का संवाद व कहन का संगुंफन अंतर्संघटनात्मक रूप बहुत कम देखने को मिलता है। कहानी संवादों के भीतर भी सूत भर भी पाठक को 'रस' या 'संवेदना' से विलग होकर नाटकीयता पर केंद्रित होने का अवसर नहीं देती। उत्तर औपनिवेशिक सांस्कृतिक जीवनानुभव इन कहानियों में रचनाकार की समय संबद्धता या इतिहास दृष्टि का परिचय देते हैं, किंतु 'कहानीपन' इस 'कालखंड की ध्वनियों' को अनुगूँज रूप में ग्रहण करने में परिलक्षित है। 'इब्तिदा के आगे खाली ही' कहानी में अवश्य अपवादस्वरूप व्यापक अनुभवों, बिंदुओं, स्थितियों की सृष्टि में एकाध स्थान पर सूचना प्राधान्य या जानकारी का हल्का सा बोझिलपन दिखाई पड़ता किंतु वह है कहानी की मूल संवेदना से संबद्ध।

कहानी की विकास परंपरा में ये कहानियाँ इतिहास को निचोड़ लेने की कला दृष्टि से, मानव चेतना के विकासोन्मुख अवसरों की तलाश की दृष्टि से, हिंदी कहानी के स्वायत्त व्यक्तित्व को परंपराबोध में नए संदर्भों को पहचानने की दृष्टि से नीलाक्षी की अग्रगामिता की परिचायक हैं। भाषा की व्याकरणिक प्रयोगशीलता, क्रियापदों का बदला हुआ रूप या अमूर्तकरण की शैली हिंदी भाषा के मूल व्यक्तित्व को आघात नहीं पहुंचाती वरन हिंदी भाषा सामर्थ्य को अपनी प्रयोगशीलता द्वारा संवर्द्धित करती है। 'बाद उनके' की भाषा पात्रों के परिवेश, स्तर व परिस्थिति विशेष में एक 'आभिजात्य संस्कार' लिए हुए हैं किंतु वह इन पात्रों की मनोस्थिति, जीवन यथार्थदृष्टि तथा कहानी के 'औदात्य' के अनुकूल है। बिंबों, प्रतीकों व फैंटेसी का सार्थक प्रयोग इन कहानियों की एक अन्य सफलता है।

समसामयिक ही नहीं हिंदी कहानी की विकास यात्रा में यह कहानी संकलन काल चेतना की सर्वकालिक व्याख्या के साथ आधुनिक दृष्टिसंपन्न मानवीय अस्मिता, सौंदर्य व प्रेम की चिरंतन तलाश को अपने पारंपरिक नैरंतर्य के साथ समय की सख्त यथार्थानुभूतियों के भीतर पकड़ता है। 'इब्तिदा के आगे खाली ही' को कहानी की विकास यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव कहा जा सकता है।

इब्तिदा के आगे खाली ही : नीलाक्षी सिंह, प्रकाशक : आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, मूल्य : 300 रु.

परंपरागत संदर्भों में दबी आधुनिक संवेदना

राजीव कुमार

शिवेन्द्र के कहानी संग्रह चॉकलेट फ्रेंड्स की कहानियों को पढ़ते हुए उन्हें सुनने सा आनंद प्राप्त होता है। आधुनिक जीवन की जटिलता को वहन करने के क्रम में कहानी इतनी पेचीदा, ऊबड़ खाबड़ होती चली गई कि आख्यान के आरोह अवरोह की मूल लय, उत्सुकतापूर्ण सादृश्य विधान उससे छूटता चला गया। नैरेटिव के मूल स्वभाव को अपनी कहानियों में शिवेन्द्र ने जिस तरह से पुनर्जीवित किया है कथा के वर्तमान परिदृश्य पर यह विरल आमद है। यह इसलिए और आकर्षण का कारण बनता है कि उनके वस्तु विस्तार का स्वरूप सरल अथवा एकरेखीय नहीं है, बल्कि उसकी कई तहें हैं। मूल कथा के साथ कई अवांतर हैं। उपमा, सादृश्य विधान, आप्त वाक्यों एवं मिथकों की भरमार है। वस्तु विस्तार के क्रम में आए अनेक मिथकों का शिवेन्द्र ने पुनर्सृजन किया है। इसके बावजूद कथाकार ने कथारस की स्फीति नहीं होने दी है। संवेदना की गहराई एवं तीव्रता को उसी स्तर पर व्यक्त कर देने में इस कथाकार का कोई सानी नहीं है। इसके लिए वे जिस प्रकार का संदर्भ गढ़ते हैं अथवा वस्तुस्थिति की पुनर्व्याख्या करते हैं वह प्रशंसनीय है। उदाहरणस्वरूप 'चॉकलेट फ्रेंड्स' शीर्षक कहानी में जब जादूगर गुलाबी स्त्री के बगैर बेटी परी को लेकर गांव लौट रहा होता है उस क्षण की मार्मिकता को व्यक्त करते हुए कहानीकार लिखता है—“उस दिन से चांद का ऑक्सीजन समाप्त हो गया और पानी सूख गया। वह बुढ़िया भी न जाने कहां लापता हो गई जो चांद के बनने के दिनों से वहां थी! स्त्री अब भी रो रही थी और उसकी गुलाबी आंखों से खून के आंसू बह रहे थे।”

लेकिन शिवेन्द्र के यहां अभिव्यंजना का तानाबाना जितना आकर्षक है, समकालीन भावबोध अथवा प्रश्नों की उतनी चमक नहीं है। प्रश्न तो हैं, पर कुछ दबे हुए से, कुछ भोथरे से। कई बार महसूस होता है कि वस्तु की शर्त पर शिल्प को गरिमा प्रदान की गई है। चीजें वैचारिक रूप से हैं पर वे वर्तमान की जद्दोजहद, जटिलता एवं बहुआयामिता से च्युत हैं। कई ऐसे प्रश्न हैं जो

आज की मौजू हैं पर यहां वह अपने बीते शकल में उपस्थित हैं। ‘लव जिहाद’ शीर्षक कहानी को छोड़ दें तो हर कहानी की जड़ें लोककथा, लोकगीतों में हैं। उसी संदर्भ को उठाकर शिवेंद्र ने कथा देह में ढाला है। कई स्थलों पर वस्तु विस्तार के साथ गीतों की लड़ियों पिरोने का मोह इस कदर है कि कहानीकार उन लड़ियों के व्याख्याकार का रूप ले लेता है। दरअसल अतीत के भावों की संरचना (Structure of feeling) का दबाव इस संग्रह में जगह जगह मौजूद है। प्राचीन कथा में ‘संयोग’ का अनुपात अतिशयतापूर्ण हुआ करता था, उसकी भी छाप शिवेंद्र में है। यह तथ्य रेखांकित करना इसलिए भी आवश्यक है कि जब कथन की भंगिमा अपने प्रवाह में बांध लेती है लेकिन युग की प्रतिध्वनि मुकम्मल नहीं होती तो पाठक को रिक्तता का एहसास होता है। अतीत के भावों की संरचना है लेकिन उसका वर्तमान के प्रश्नों के वास्तविक मिजाज से साम्य नहीं हो पाया है। फिर भी प्रश्न तो उठ गए हैं लेकिन ये कहानियां मेटाफर नहीं बन पाई हैं। ऐसा इसलिए हुआ है कि कथाकार ने अपने दो युगों के बीच के परिवर्तन का संज्ञान नहीं लिया है। विस्थापन को ही लें, विस्थापन अब भी बड़ा प्रश्न है लेकिन विद्यापति के युग से शिवेंद्र के जमाने तक इसमें बड़ा फर्क आया है। विछोह तो वैसा ही है, लेकिन संपर्क रिक्तता की परिस्थिति ज्यों की त्यों नहीं है। विकसित संचार व्यवस्था ने इसमें बड़ा फर्क पैदा किया है।

बहरहाल, अतीत की संरचना के दबाव के बावजूद शिवेंद्र की कहानियों में कई चीजें ऐसी हैं जो बिलकुल ताजे झोंके की तरह है। इसमें सर्वप्रमुख है शिवेंद्र की वैचारिकता एवं कथा संरचना में पर्यावरण बोध की उपस्थिति। पर्यावरण के प्रति चिंता और जीवन पद्धति में उससे अपनापा शिवेंद्र की कहानियों में निरंतर ‘मोटिफ’ की तरह मौजूद है। तकनीक के प्रभुत्व ने मनुष्य को विलासी, मतलबपरस्त एवं गाफिल बनाया है। लेकिन यह मानव मात्र पर समान रूप से लागू नहीं होता है। आज मनुष्यों की छोटी संख्या बड़ी संख्या की कीमत पर संसाधन का उपभोग कर रही है एवं पर्यावरण को भी क्षति पहुंचा रही है। ‘लव जिहाद’ में जब नैरेटर पंखा खुला छोड़ देता है तब गौरैया टिप्पणी करती है, “तुम लोग ये जो बेवजह बिजली खपत करते हो, इसके लिए नर्मदा की दीवार तीन फीट और ऊंची करनी पड़ती है और गांव के गांव विस्थापित हो जाते हैं...मालूम?” कहानी में आगे भी मनुष्य की अंतहीन लालसा पर प्रहार किया गया है, “तुम लोग उन चीजों के आदी हो चुके हो जो सृष्टि को धीरे धीरे मार रही हैं। आदमी अब उन चीजों के बिना जी भी नहीं सकता, जिनकी एक समय में कोई जरूरत ही नहीं थी।” इस संग्रह में पर्यावरण सचेतता का यह कोई अकेला दृष्टांत नहीं है। वक्तव्य अथवा लेखकीय हस्तक्षेप में ही नहीं कहानियों के कार्य व्यापार में भी अनेकानेक प्रसंग हैं जहां मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे से संबद्ध हो जाते हैं। सभ्यता के विकास के क्रम में जो तार टूट गए हैं उसे यहां फिर से पुनर्जीवित किया गया है। ‘चॉकलेट फ्रेंड्स’ में जादूगर पेड़ से अपने पिता की कहानी सुनता है। ‘कहानी’ में भागवंती के पृथ्वी में समा गए बच्चे अमोला एवं बेला बनकर उगते हैं। ‘राजकुमार घुटरू’ में नैरेटर की प्रेम संवेदना से तमाम जीव तरंगित हो जाते हैं, “...और तभी हवाओं में परिजात खिलने लगा। मछलियां उसे देखने नदी से बाहर निकल आईं और तितलियां बस उसे एक बार छू लेने को पुल पर मंडराने लगीं और पक्षियों के रूप में पुरखे आशीर्वाद देने रेलिंग पर आ बैठे।”

शिवेंद्र की कहानियों में जो दूसरा प्रमुख तत्व है वह है स्त्री संवेदना की उपस्थिति। इनकी प्रायः हर कहानी स्त्रियों की वंचना, पीड़ा, प्रतिरोध एवं संघर्ष के इर्दगिर्द घूमती है। इस प्रक्रिया में कहानीकार रूढ़ियों एवं वर्जनाओं पर तीक्ष्ण प्रहार करता है। ‘चॉकलेट फ्रेंड्स’ में परी को उसकी मां पहचान नहीं पाती और एक दिन चीखकर उसे लौट जाने को कहती है। यह चीख परी को प्रेत की आवाज की तरह लगती है। कहानीकार इस मनोदशा की आंतरिक तह में जाता है, “अक्सर ऐसा होता है कि मां सिर्फ कल्पना में बची रह जाती है और वास्तविकता में वह प्रेत

बन जाती है अपनी बेटी तक के लिए! ऐसा इसलिए होता है क्योंकि कुछ मरे हुए रीति रिवाज और एक मरता हुआ समाज उसकी आत्मा पर काबिज हो जाते हैं। वह उतना ही बोलती है जितना समाज बोलता है। वह उतना ही प्रेम करती है जितना समाज इजाजत देता है।”

‘चॉकलेट फ्रेंड्स’ में कई प्रश्न उठाए गए हैं। विस्थापन, आर्थिक बेहतरी की दम तोड़ती चेष्टा एवं स्त्री वंचना। एक समय रोजी रोटी की तलाश में हिंदी पट्टी के बड़े भू भाग के पुरुषों का बंगाल जाना ऐतिहासिक तथ्य है। समय बदलने पर केंद्र बदल गए, अब बंगाल की जगह दिल्ली, बंबई आ गए हैं पर विस्थापन आज का भी यथार्थ है। इस स्तर पर कहानी एक जरूरी प्रश्न उठाती है लेकिन कहानी में विस्थापनजनित पीड़ा का स्वरूप बदल गया है। कहानीकार समस्या को युगिन शकल नहीं दे पाया है। कहानी में एक और महत्वपूर्ण संकेत है— यह संकेत है हमारी सामाजिकता का हास। इस तथ्य से हम सभी अवगत हैं लेकिन इस कहानी में इसे जिस प्रकार से अभिव्यक्ति दी गई है वह शिवेंद्र के कथा व्यक्तित्व की खासियत को दर्शाती है। प्रकारांतर से यह अभिव्यक्ति कहानी में हीरामन के माध्यम से हुई है। हीरामन सोचता है, “अब दुनिया में कितनी कम कहानियां बची हैं। एक समय था जब लोगों से अधिक उनकी कहानियां होती थीं।” मनुष्य की तकनीकी निर्भरता ने उसे ड्राइंग रूम तक सीमित कर दिया है, उसे एकाकी बनाया है। पारस्परिकता एवं संवाद के खत्म होते जाने की स्थिति में कहानी कहां से जन्म लेगी।

इस संग्रह की पहली कहानी ‘राजकुमार घुटरू’ एक नियतिवादी कहानी है। परिस्थिति व्यक्ति को क्या दिन नहीं दिखाती के भाव में डूबी इस कहानी का परंपरागत सुखद अंत होता है। यह कहानी मध्ययुगीन बंद समाज की तस्वीर पेश करती है। इसमें आधुनिकता की कौंध राजकुमारी के प्रतिरोध में है। लौकिक दुख में डूबी राजकुमारी पारलौकिक देव को खुश करनेवाले रीति रिवाजों की उपेक्षा करती है। यहां जो क्षीण सा प्रतिरोध है वह ‘चॉकलेट फ्रेंड्स’ में अधिक मुखर हो जाता है। कहानी में गुलाबी स्त्री अपने लिए प्रेम का मार्ग वरण नहीं कर पाती लेकिन अपनी बेटी के लिए नई राह खोलती है। परी को जादूगर को सौंपते हुए वह कहती है, “मैं नहीं चाहती कि इसकी जिंदगी भी मेरी जैसी हो कि यह चांद पर किसी और के साथ हो, और बिस्तर पर किसी और के...इसकी परवरिश ऐसे करना कि यह अपनी आत्मा से सोच सके कि अपना निर्णय लेने के लिए इसे किसी जादूगर की जरूरत न पड़े।”

प्रेम की स्वतंत्रता की कामना एवं उसकी प्राप्ति की जद्दोजहद ‘लव जिहाद’ में भी है। यहां प्रेम एक मूल्य के रूप में है। यह कहानी इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें मनुष्य एवं उससे इतर जीव के मध्य भावों की एकता दिखाई गई है। ‘कहनी’ शीर्षक कहानी में सत्ता की हृदयहीनता के बरक्स स्त्री संघर्षशीलता का चित्रण है। कहानी में लेखक के सर्वद्रष्टा का भाव गहन रूप से मौजूद है। राजमहल में सौतों के षड्यंत्र एवं पति की हृदयहीनता का शिकार छोटी रानी भागवती एक समय उसके समक्ष चुनौती बनकर आती है एवं उसके सत्ताच्युत होने का कारण बनती है। कहानी में राजा के मनमानेपन एवं कर से त्रस्त जनता के प्रतिरोध का भी समावेश है लेकिन जनशक्ति का विद्रोह, राजा को राजच्युत कर कृषि कार्य का दंड एवं भागवती द्वारा सोखा का वरण— यह सब बॉलीवुड की किसी कहानी की तरह ताबड़तोड़ ढंग से कहानी में पिरोया गया है।

संवेदना की अनेक सीमाओं के बावजूद शिवेंद्र का यह संग्रह कहानी में ‘किस्सा’ की वापसी की दृष्टि से पठनीय है। पर्यावरण चेतना इस संग्रह की विशिष्टता है। स्त्री प्रश्न की लगातार उपस्थिति कहानीकार की वैचारिक दृढ़ता को सामने लाती है। जो कमी है वह प्लॉट के चुनाव एवं आधुनिक संदर्भ के निर्वाह के स्तर पर।

चॉकलेट फ्रेंड्स : शिवेंद्र, प्रकाशक : आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, मूल्य : 150 रु.

‘बे समय’ में गिरते ‘समय’ की पहचान

नीरज खरे

कहानीकार देवेंद्र का दूसरा कहानी संग्रह **समय बे समय** एक लंबे अंतराल बाद आया है। पहला कहानी संग्रह ‘शहर कोतवाल की कविता’ कोई दो दशक पहले छपा था। चर्चित रहे इस संग्रह की शीर्षक कहानी के अलावा ‘क्षमा करो हे वत्स!’ जैसी मार्मिक कहानियां, कहानीकार की उपलब्धियां थीं। यहां वरिष्ठ कथाकार काशीनाथ सिंह के उस संग्रह पर लिखे फ्लैप का यह अंश उल्लेख्य लगता है कि *“वे कम लिखते हैं बहुत संभल संभल कर। कुछ इस इरादे से कि हर कहानी उनकी अपनी ‘पहचान’ को पुख्ता करे। वह कभी करती है, कभी नहीं भी करती लेकिन कोशिश ही देवेंद्र को ताजातरीन और दमदार बनाए हुए है।”* यह बात इस नए संग्रह के लिए भी कहना मौजू है। इसकी कुल छह कहानियों में भी यह खासियत बरकरार है। विशेषतः देवेंद्र का कहानीकार लोकतांत्रिक आदर्श मूल्यों की विफलताओं का आलोचक है। इन कहानियों के घूमते आईने में वर्तमान समय की राजनीति, पुलिस प्रशासन, न्यायपालिका की निरर्थकता से लेकर विश्वविद्यालयों में घुसपैठ कर चुकी पतनशील प्रवृत्तियों के अक्स हैं। इस प्रक्रिया में अनिवार्य है कहानीपन के साथ घटना और परिघटना के वृत्त में बदलती समय चेतना। अकारण नहीं कि शीर्षक के साथ यह संग्रह हमारे ‘समय’ के ‘बे समय’ होने की ही पहचान कराता है। संग्रह में प्रेम और स्त्री मुक्ति के स्वर भी हैं पर स्त्रीवादी पाठ से अलग। उनके यहां स्त्री के ऐसे रूप हैं जो पूंजी, जाति और पुरुष अधिकार की दीवारों को ढहाकर प्रेम और मुक्ति पाना चाहते हैं।

सत्ता तंत्र द्वारा संचालित समूची व्यवस्था लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए उत्तरदायी है। पर जमीनी हकीकत अलग है। कहानीकार ने उनके गिरते मूल्यों को वस्तुनिष्ठता से परखा है। साथ ही उनके छीज चुके जनहितकारी चरित्र पर विचार करते हुए सवाल उठाए हैं। चौतरफा रफ्तार से ‘माडर्न उत्थान’, इस समय का एक सच है तो ‘हिंसा’ ‘भय’ ‘अनैतिकता’ और ‘गैरजवाबदेही’

दूसरा। राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था तकनीक और संसाधनों से लैस ऊंचाई पर पहुंची है। पर उनके आदर्श और मूल्य ढलान से नीचे फिसलते गए हैं। आजादी के बाद से ही इस 'फिसलन' के कारण भी व्यवस्थागत ढांचे के भीतर मौजूद रहे हैं। संग्रह की दो कहानियों 'रंगमंच पर थोड़ा रुककर' और 'समय बे समय' की धुरी पर राजनीति और पुलिस प्रशासन की कोख में पलने वाले आपराधिक तंत्र और मंथर न्याय व्यवस्था की खामियों का समय घूमता है। 'हत्या' उनका अनिवार्य घटक है। यहां हत्या होना सिर्फ एक घटना नहीं, बल्कि हत्या का फलसफा है। 'रंगमंच पर थोड़ा रुक कर' कहानी हत्या के दर्शन से ही शुरू होती है—“सेना के जवानों और पैसा लेकर हत्या करने वाले हत्यारों में बहुत कुछ एक सा होता है। पेशेगत नैतिकता में हत्या का महत्व तो एक जैसा होता ही है, समानता इस अर्थ में भी कि दोनों उस आदमी के बारे में कुछ विशेष नहीं जानते, जिनकी हत्या उन्हें करनी होती है। उससे उनकी कोई व्यक्तिगत रंजिश नहीं होती है। कभी कभी तो उन्हें अपने दुश्मन का नाम पता तक नहीं मालूम होता है। मरनेवाले के मां, बाप, भाई, बहन, बीवी और बच्चों पर क्या गुजरेगी, इस बारे में सेना के जवान या हत्यारे नहीं सोचते। सोचना उनके पेशे में जुर्म माना जाता है। इस मामूली बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि हत्या करने के एवज में उन्हें नियमित वेतन का भुगतान किया जाता है या 'काट्रैक्ट' दिया जाता है।” (पृ. 9) भारतीय न्याय व्यवस्था की कानूनी जटिलताएं और अंतरप्रक्रिया ऐसी है कि अक्सर गरीब या बेकसूर न्याय के नाम पर अन्याय भुगतते हैं। यह कहानी प्रेम, हत्या, पुलिस की 'कार्यावाही' और न्यायालय के 'फैसले' तक नाटकीय अपराध कथा भी है। सुव्रत का प्रेम उसकी हत्या होने की मूल वजह है। दूर पहाड़ी इलाके के एक बंगले में अपनी विवाहित हो चुकी प्रेमिका को कोसते और पत्र लिखते अकेले सुव्रत पर दो पेशेवर हत्यारे गोली चला देते हैं। लेकिन वह मरने के पूर्व रिमोट से घर का दरवाजा लॉक करने में सफल हो जाता है। हत्यारे उसी घर में भूख प्यास और सड़ती लाश की बदबू से घुटकर मर भी जाते हैं। पर इसके पहले गांव की एक बुढ़िया कौतुहलवश इस वीरान घर की तांक झांक करके जो कुछ जान पाती है, सारे गांव में खबर देती है। सभी से हत्यारे पुलिस को सूचना देकर, वहां से मुक्त कराने के लिए गिड़गिड़ाते हैं। बुढ़िया के अलावा गांव भर के लोग वहां पहुंच पहुंच मजा लेते हैं कि ये हत्यारे लड़के खुद ही पुलिस को सूचित करने को क्यों कह रहे हैं? लेकिन हत्यारों के लाख गिड़गिड़ाने पर कोई उनकी मदद करने और पुलिस को सूचना देने का उपक्रम नहीं करता। अंततः वह बुढ़िया ही आठ लाख रुपए इनाम के लोभ से पुलिस तक पहुंचती है। पर उसे ही सारे मामले का गुनहगार मानकर गिरफ्तार कर लिया जाता है। यही नहीं उस पर झूठे आरोप भी मढ़ दिए जाते हैं। पांच साल अदालत में घिसटते इस मामले का नाटक चलता है। उम्र और पुलिसिया प्रताड़ना की मुसीबत झेलती बुढ़िया को मृत्युदंड सुनाया जाता है। जबकि, वह खुद जिंदगी और मौत के बीच ही झूल रही थी।

शीर्षक कहानी 'समय बे समय' में हत्या का प्रसंग विश्वंभर की बेरोजगारी के चलते भयावह फलसफे के रूप में सामने आता है। राहजनी में पेशेवर अपराधियों द्वारा हुई दरोगा और सी.जे. एम. साहब सहित तीन तीन की हत्या का रहस्य जानने वाले एक मात्र विश्वंभर हैं। वही इस 'समय' के 'बे समय' की पड़ताल करने के आलंबन हैं। पूरे वाक्य में उसके अक्स विश्वंभर की चुप्पी, भय और बेरोजगारी की पीड़ा में आसानी से पहचाने जा सकते हैं। ये दोनों कहानियां इसका प्रमाण हैं कि कतिपय अतिरंजना या अतिनाटकीयता से भी अपने निहितार्थ को सफलता से कहा जा सकता है।

वर्तमान सामाजिक संरचना में स्त्री के लिए प्रेम और विवाह : एक स्वाधीन मूल्य नहीं बन सका है। तीन कहानियों 'एक खाली दिन', 'एक खंडित प्रेमकथा' और 'सपने के भीतर' के केंद्र

में भिन्न भिन्न संदर्भों में यह सवाल है। 'एक खाली दिन' की सत्तो अपने पति की बीमारी के चलते एक माह अस्पताल में देखरेख करती, उनकी मृत्यु हो जाने पर अकेली श्मशान शव लेकर पहुंचती है। जहां डोम लाशों को जलाने के नंबर लगाता है। जलाने के बाद उसे राख मिलने का समय रात बारह बजे का दिया गया था। परिजनों को खबर करने के बाद सुबह से रात तक, उसका पूरा दिन खाली था। वह इस खाली दिन में उसी शहर में अपने प्रेम और प्रेमी शांतनु को याद करती है। भाई के विरोध के चलते उसकी शादी शांतनु से न होकर दूसरे शहर ले जाकर कर दी गई थी। शादी के उत्सव के बाद उसने यातना के लंबे अंधेरे को भोगा था। स्मृतियों में खोकर उसके भीतर की स्त्री आत्मलाप करती है— "लड़कियां शादी के बाद सब कुछ भूल जाती हैं। स्मृतिहीन होना किसी का शौक नहीं। भाई सोचता है कि वह प्रेमी को भूल जाए और यह न भूले कि मैं ही उसका बाप भी हूं। पति सोचता है कि मैं उसकी दुनिया हूं। एक तुक का बोध नहीं और क्षेपक रचकर जीवन का मूलपाठ ही इन लोगों ने बदल दिया। अब मैं ही क्यों याद रखूं कि आज मेरे पति की मृत्यु हुई है, कि मुझे सिनेमा नहीं देखना चाहिए। अपने तय किए नियमों की तार्किक परिणतियां लोग भी भोगें।" (पृ. 39) अपने विवाह से नाखुश सत्तो की विवाह संस्था पर पुरुष वर्चस्व से गहरी असहमति है। वह इस मानसिक आवेग की दशा में अपने पुराने शहर में आने की वास्तविक वजह छिपा कर शांतनु से मिलती है। पर उसमें प्यार और संपर्ण का वह आवेग ना पाकर निराश होती है। वह रात उसके घर जाकर भी बाहर से ही लौट पड़ी। यहां साठोत्तरी कहानी के पात्रों में बहुख्यात 'मूड' और 'क्षण' के कथा रूपायन के बीच स्त्री के लिए खींची गई लकीर को लांघती उत्कट और प्रश्नाकुल स्त्री है। 'सपने के भीतर' कहानी में सत्तो और शांतनु फिर दो प्रेमी युगल के रूप में मौजूद हैं। पर यह प्रेमकथा भी समाज के ऊंच नीच और लड़की के प्रति पुरुषवादी सोच की शिकार हो जाती है। स्वभाव से चंचल सत्तो लड़कियों के लिए बने समाज और परिवार के घेरों से बाहर, आजाद हवा में जीवन जीना चाहती है। किसी लड़की की मुक्ति के लिए उसका प्रेम आलंबन बने, ऐसा होना कहां था! सत्तो को उसके घर के लोग दूर ले गए। पीछे शांतनु अकेले भटकते रह गए। दरअसल सत्तो और शांतनु समाज की प्रेम विरोधी दीवारों से टकराकर अपराजित योद्धा की तरह संघर्षरत हैं। सवाल हार और जीत का नहीं। उनकी कहानियां कभी खत्म होने वाली नहीं हैं। 'एक खंडित प्रेमकथा' का संदर्भ कुछ अलग है। यह निरंजन के अपने सेठ की दूसरी कमउम्र पत्नी से प्रेम संबंध की छलकथा है। 'बूढ़े' सेठ की 'जवान' सेठानी बनना पूंजीवादी सामंती समाज में स्त्री जीवन का एक सच है। और बाद में सेठ की दूकान के नौकर निरंजन से परिस्थितिजन्य प्रेम को, सेठानी द्वारा ही सेठ की संपत्ति का उत्तराधिकार और पारिवारिक सामाजिक कारणों से ठुकरा देना दूसरा। दोनों पक्ष कहानीकार ने कुशलता से उभारे हैं। आखिर निरंजन नौकर थे और विवाहित। बूढ़े सेठ तो सारी बातों से लगभग अनभिज्ञ थे। निरंजन भयभीत होते हैं। वजह है उनका बच्चा सेठानी के गर्भ में होना। सेठानी उनका भयदोहन करती है। निरंजन के प्रति सेठानी का पूरा बर्ताव बदल जाता है। अब सेठानी के जीवन में निरंजन का स्थान, उनका मौसरा लड़का सामल ले चुका था। अंततः वह निरंजन को लात मारकर और सेठ सेठानी दुत्कारकर भगा देते हैं। यह पूंजी और प्रेम का खेल है, सो इश्क में हारना और मात खाना नौकर के ही हिस्से आना था।

कहानीकार खुद उच्च शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ा है। 'नालंदा पर गिद्ध' कहानी में लेखक के इस अनुभव और यथार्थ की पूरी वस्तुनिष्ठता है। यहां काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग का लगभग तीन दशक पूर्व का दौर केंद्र में है। कहानीकार ने विभागीय राजनीति, मठाधीशी, परिवारवाद, जातिवाद, प्रतिभाओं के शोषण और वैचारिक ठस्सपन के साथ साथ परिसर का

राजनीतिकरण और अपराधीकरण तक फैले यथार्थ को कथाबद्ध किया है। कथा पाठ में व्यंग्य रुचिकर है। शिक्षा केंद्रों पर गिद्धों की तरह आचार्य चूड़ामणि जैसे अध्यापक लंबे समय तक विराजे रहे हैं। हालांकि, अब यू.जी.सी. की अध्यक्ष पद पर रोटेशन स्कीम से स्थितियां काफी बदल गई हैं। कहा गया है कि इस कहानी की रचना के पीछे लेखक का अपना द्वंद और आक्रोश रहा है। पर यहां सिर्फ आत्म पीड़ा ही नहीं झलकती। क्या अब राजनीतिक हस्तक्षेप, अध्यापकों की अंदरूनी राजनीति, गुटबाजी, जातिगत समीकरणों और भाई भतीजावाद से विश्वविद्यालय पूरी तरह उबर गए हैं? क्या चौतरफा आई गिरावट से शिक्षा केंद्र बचे हैं? क्या आज के शिक्षा केंद्र, नालंदा और तक्षशिला जैसे प्राचीन विश्वविद्यालयों की ऊंचाई छू पाए हैं? यदि नहीं, तो इसे मौजूदा दौर के विश्वविद्यालयों की रूपक कथा जैसा भी पढ़ा जा सकता है। कथा आलोचक सुरेंद्र चौधरी ने लिखा है—“अगर कहानी वास्तविक घटनाओं की खबर बनकर रह जाए और उनकी अंतकथा अदृश्य छोड़ दी जाए तो इसके पीछे भी लेखक का एक षड्यंत्र होता है। खोज रपट के नाम पर अपराध कथाओं के लेखक तो ऐसा कर सकते हैं पर वे लेखक ऐसा नहीं कर सकते जो हर घटना को परिघटना के भीतर का अंग मानते हैं और जो जिवो वेग्जा की तरह यह मानते हैं कि रपट एक अत्यंत संवेदनशील रचनात्मक साधन है जो परिघटनाओं के लिए पूर्व सूचना का काम कर सकती हैं।” (हिंदी कहानी : रचना और परिस्थिति, सं. उदयशंकर, पृ. 247) कहना न होगा कि सहज कथात्मकता की रीढ़ पर ‘नालंदा पर गिद्ध’ ही नहीं, अन्य कहानियों का घटनात्मक परिवेश भी भरसक ‘कहानी’ की तरह सधा है। ये कहानियां लेखक की इसी कोशिश से सिर्फ ‘रपट’, ‘वृतांत’ या ‘बयान’ होने से बची हैं।

देवेंद्र इन कहानियों में कहने की पारंपरिक आख्यानधर्मी सहजता को व्यंग्यपुष्ट भाषा से रोचक बनाते हैं। कथानक का वर्णनकर्ता खुद कहानीकार है या प्रथम पुरुष में पात्र द्वारा वर्णित है। यहां कथा शिल्प का नवाचार नहीं है। यथार्थ का महाआख्यान रचना भी लेखक का लक्ष्य नहीं है। ये कहानियां अपने पाठक को समय की विसंगतियों पर सोचने विचारने के लिए बैचन करती कथा भाषा के साथ ले जाती हैं। पर कथा रचना का एकरस प्रवाह हर कहानी में अपनी चाल और प्रकृति को तोड़ नहीं पाता। खासियत यह है कि किसी अतिरिक्त लेखकीय उत्तेजना के बिना कहानी में लेखक के अपने भाषायी मुहावरे की छाप है। इसीलिए कहानीपन का आकर्षण सदैव बना रहता है। कहानी के स्वरूप में असाधारण बदलाव सन् 90’ के बाद आया। देवेंद्र उस कथा पीढ़ी में कम लिखकर भी प्रमुख हैं। उनका कहानीकार सारी विरोधी परिस्थितियों में मनुष्य की अस्मिता और न्याय का पक्षधर रहा है। उनकी कहानियां और उनके पात्र प्रतिबद्ध सामयिक चिंताओं के आलंबन हैं। ‘रंगमंच पर थोड़ा रुक कर’ की बुद्धिया, ‘एक खंडित प्रेम कथा’ के निरंजन, ‘समय बे समय’ के विश्वंभर, ‘सपने के भीतर’ के सत्तो व शांतनु और ‘नालंदा पर गिद्ध’ के सुबोध मिसिर अपने हक, न्याय या प्रेम से वंचित हुए पात्र हैं। इन कहानियों में उन्हीं के कुचले हुए सपनों की पीड़ा है। यहां लेखक के पहले कहानी संग्रह से अर्जित विश्वास का विस्तार है। कहने की जरूरत नहीं कि इस अंतराल में भी लेखक अपनी कथा दृष्टि से प्रतिबद्ध है।

समय बे समय : देवेंद्र , प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, मूल्य : रु. 220

वह अंतिम हरी पत्ती अभी मौजूद है

अरुण होता

प्रसिद्ध कवि राजेश जोशी की सन् 2000 से 2015 की अवधि में लिखी कविताओं को **जिद** में संकलित किया गया है। 2000 तक का समय बाजार के आगमन का है तो 2013-15 के समय को पूंजी और बाजार के वर्चस्व के काल के रूप में जाना जा सकता है। पूंजी को बाजार और सत्ता की मिलीभगत ने मानवीय मूल्यों को ध्वस्त करना शुरू कर दिया। उक्त तिकड़ी ने प्रतिरोध को कुचलने का पूरा प्रयास किया। सत्ता पूंजी की गुलाम हो गई। पूंजी ने एक तरफ अपने मुनाफे में कई गुना बढ़ोत्तरी की तो दूसरी तरफ उसके प्रभाव से सारे संबद्ध, रिश्ते नाते बिकाऊ होने लगे। संबंधों का आधार अर्थ हो गया और नतीजतन रिश्ते टूटने बिखरने लगे। जबकि कवि संबंधों की सर्वाधिक महत्त्व देता है। इसलिए संबंधों में नुकसान पहुंचानेवाली शक्तियों का वह विरोध करता है। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में बाजार की प्रभुता मनुष्य और मानवता की शक्तियों को लील जाना चाहती है। कभी साम्राज्यवादी और फासीवादी ताकतें विध्वंस की लीलाएं करती थीं लेकिन इधर बाजार उनसे भी अधिक संहार करने में लगा है। बाजार के इस समय में अनावश्यक वस्तुओं से, 'अतिरिक्तों' से घर भरने की मानसिकता पनप रही है जिससे राजेश जोशी चिंतित हैं

अतिरिक्त हमारे मन की कमजोरी को पहचानता है

लालच धीरे धीरे पांव पसारता है

एक अतिरिक्त दूसरे अतिरिक्त की बुलाता है

और दूसरा अतिरिक्त तीसरे अतिरिक्त के लिए जगह बनाता है। (पृ. 54)

लेकिन राजेश जोशी की कविता बाजार के सामने घुटने टेकना नहीं जानती है।...बाजार और पूंजी को चुनौती देती है अथवा सबसे बुरी स्थिति में भी अच्छाई ढूंढकर बाजार की विजय को पराजय में तब्दील कर देती है। 'सेकंडहैंड किताबें' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियां अवलोकनीय हैं—

लकदक बाजार ने हाशिये पर धकेल दिया है किताबों को
 लाखों किताबें हर दिन
 सेकंडहैंड किताबों में बदल जाती हैं
 गनीमत है कि सेकंडहैंड किताबों में छपे शब्द
 कभी सेकंडहैंड नहीं होते
 सेकंडहैंड किताबों में छपी कविताएं
 कभी सेकंडहैंड नहीं होतीं (पृ. 22)

भूमंडलीकरण, उदारीकरण और निजीकरण की आंधी ने पूरी दुनिया में 'अंधेरे समय' को स्थापित किया है। गरीबी और भुखमरी का साम्राज्य स्थापित होता जा रहा है। बेरोजगारी बढ़ रही है, किसान मजदूर बनने को विवश हैं या आत्महत्या करने के लिए मजबूर। दूसरी ओर अमीर पूंजीपति बन रहे हैं तो कालाधन विदेशी बैंकों में बढ़ता जा रहा है। राजेश जोशी की कविताओं से गुजरने का मतलब है अपने समय से गुजरना। उस समय के साथ गुजरना जिसमें समाज की धड़कनें हैं। राजेश जोशी समय और समाज के कवि हैं। वे समय का रेखांकन मात्र नहीं करते, समय में डूबकर, उसके आरपार से गुजरकर समय को मूर्त करने के प्रयास में लिखते हैं—

सारी सच्चाई किसी न किसी रूपक में बदल जाती है
 कहना मुश्किल है कि यह कवि की दिक्कत है या उसके समय की
 जो हमेशा उलझा हुआ, अबूझ और अंधेरा समय है
 कि एक सीधा सादा वाक्य भी सांप की तरह बल खाने लगता है। (पृ. 63)

डायरी लिखना सबसे मुश्किल होता है कवि के लिए क्योंकि समय उतना आसान नहीं होता है जैसा दिखता है। सर्वाधिक भयावह और त्रासद स्थिति यह है कि समय व समाज की इबारत दीमक लिखे। दीमक सृजन नहीं विध्वंस करती है। आमजन के प्रतिकूल और अभिजन के अनुकूल इबारत लिखती है। यहां कवि के समयबोध और इतिहासबोध के बारे में जाना जा सकता है—

एक दिन लेकिन जब वह अपनी पुरानी डायरी को खोलता है
 तो पाता है कि समय की दीमक ने डायरी के पन्नों पर
 न समझ में आनेवाली ऐसी कुछ इबारत लिख डाली है
 जैसे वही कवि के समय के बारे में
 लिखा गया सबसे मुकम्मल वाक्य हो।

मुक्तिबोध की तरह राजेश जोशी के इस संग्रह में भी अंधेरा बराबर आया है। उल्लेख किया जा सकता है कि अंधेरे से कवि का प्रेम नहीं है। संघर्ष अथवा किसी दूसरे उपाय से अंधेरे से निजात कवि का उद्देश्य है। समय और समाज की दिशाहीनता का प्रतीक बनकर यह अंधेरा उपस्थित होता है तो भयावह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक वातावरण का संकेतक बनकर चित्रित होता है। आम नागरिक को अंधेरे में रखकर सत्ता अपना स्वार्थ हासिल कर सकती है—

हम एक ऐसे समय के नागरिक हैं
 जिसमें हर दिन महंगी होती जाती है रोशनी
 और बढ़ता जाता है अंधेरे का क्षेत्रफल लगातार (पृ. 41)

स्पष्ट है कि अंधेरे का कोई एक चेहरा नहीं होता है। वह बहुरूपिया बनकर समय और समाज में आता है। वह कभी राम मंदिर बाबरी मस्जिद तो कभी गोधरा के रूप में सारे देश को हिंसक उन्माद में झोंक देता है। राजेश जोशी लिखते हैं—

अंधेरे में जब बहुत सारे लोग डर जाते थे

और उसे अपनी नियति मान लेते थे
कुछ जिद्दी लोग हमेशा बचे रहते थे समाज में
जो कहते थे कि अंधेरे समय में अंधेरे के बारे में गाना ही
रोशनी के बारे में गाना है
वे अंधेरे समय में अंधेरे के गीत गाते थे
अंधेरे के लिए यही सबसे बड़ा खतरा था। (पृ. 16)

बिना अंधेरे को पहचाने उसके समाधान हेतु प्रयास नहीं किया जा सकता है। इसलिए अंधेरे की मुकम्मल पहचान जरूरी है। यह चेतना भी आवश्यक है कि कैसे और कितने रूपों में अंधकार का प्रवेश हो रहा है। इस कविता से कवि की राजनीतिक सूझबूझ का भी सुंदर परिचय प्राप्त होता है। कवि की राजनीतिक दृष्टि कल्पना की दुनिया से उत्पन्न नहीं हुई है, बल्कि जमीनी स्तर पर जुड़े रहने के कारण अनुभव से पगी राजनीतिक समझ उभरकर आई है। हां एक बात और है, जहां कवियों की राजनीतिक समझ दर्शाने वाली कविताएं राजनीतिक स्लोगन या प्रोपगैंडा में तब्दील होकर कविता नहीं रह जातीं वहां राजेश जोशी की कविता विचार, कथ्य और कला के सुंदर समन्वय का उदाहरण बनती है।

राजेश जोशी की कविताएं निराश नहीं करतीं। वे अपने बुनियादी रूप में संघर्षशीलता और संभावनाओं के द्वारा उन्मुक्त करने वाली हैं। उन्होंने यथार्थ की खुरदरी जमीन पर चलते हुए नई राह की खोज की है। इस दृष्टि से 'गुरुत्वाकर्षण' कविता बेहद महत्वपूर्ण है। 'हमारे समय का एक ही सच है कि हर चीज फिसल रही है अपनी जगह से।' संवादहीनता और संबंधों की घटती ऊष्मा से चिंतित कवि चांद को 'कॉर्पोरेट के बड़े से जूते में दुबककर बैठा पाता है। ऐसी स्थिति में निम्न पंक्तियों की अर्थवत्ता स्वयं सिद्ध है—

फिसलन ही फिसलन है पूरे गोलार्द्ध पर
और पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण खत्म हो गया है (पृ. 75)

बावजूद इसके राजेश जोशी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके यहां 'अंतिम हरी पत्ती अभी मौजूद है।' (पृ. 93) कविता में अपने समय की परिपक्व समझ देखना है तो राजेश जोशी की कविताएं मदद करती हैं। समय की सच्चाई हो या स्मृतिविहीन समय की अंतर्पीड़ा, मजदूर वर्ग के प्रति संवेदना हो या किसानों की लाखों की तादाद में आत्महत्या, मशीनी सभ्यता के दुष्परिणाम हों अथवा विस्थापन का दर्द राजेश जोशी शिद्दत के साथ उन्हें कविता संसार में पिरोते हैं। इसलिए केदारनाथ सिंह ने कहा है—“राजेश जोशी आज की कविता के उन थोड़े से हस्ताक्षरों में हैं, जिनसे समकालीन कविता की पहचान बनी है।”

'जिद' संग्रह की कविताओं से गुजरकर पता चलता है कि इसके कवि के पास अद्भुत सादगी है। संग्रह की कविताओं में न कोई शब्द जाल है और न ही वाक् आडंबर। कवि ने बहुत ही सहज तरीके से अपनी बातें, चिंताएं और अपने सरोकार प्रस्तुत किए हैं। कहीं कथाशैली में तो कहीं संवाद के माध्यम से कविता रची गई है। गंभीर चिंताओं को सहजता के साथ प्रस्तुत करने की कला में राजेश सफल हैं। संग्रह की कविताएं हमसे बोलतीं, बतियाती संबंध स्थापित करती हमारी आत्मीय बन जाती हैं। सादगी का यह सौंदर्यशास्त्र युवा पीढ़ी के लिए अनुकरणीय है।

राजेश जोशी के इस संग्रह में शहर के प्रति एक लगाव दिखाई पड़ता है। वे उन संवेदनाओं के विलुप्त हो जाने का गहरा दुख प्रकट करते हैं जिन्हें लंबे अंतराल के बाद हासिल किया गया था। स्थितियां ऐसी भयावह होती जा रही हैं कि कवि अपने चिर परिचित शहर को गायब पाता है। 'शहर भीतर शहर', 'कचौरी इंदौर की' जैसी कविताओं के माध्यम से स्थानिकता की मौजूदगी देखी जा सकती है। कवि का शहर नागरी सभ्यता की चपेट में न था। शहर की गलियों, उनके प्रत्येक

मोड़ और उसके चप्पे चप्पे से वाकिफ कवि को दुख होता है कि—उस शहर के गायब हो जाने के बाद भी इस शहर के माथे पर कई शिकन तक नहीं। (पृ. 57) इसी तरह परंपरा तथा इतिहास के ज्ञान के बिना कविता कृत्रिम हो जाती है, यह 'कचौरी इंदौर की' कविता में व्यक्त हुआ है।

'सराय कायनात का भठियारा', 'विकल्प', 'इस आत्महत्या को अब कहां जोड़ूँ', 'मकाऊ', 'सड़क पर चलते हुए' आदि कविताओं में प्रतिबद्धता का संवेदनात्मक धरातल है। ऐसी कविताएं हाशिए के लोगों के प्रति सहानुभूति के लिए नहीं लिखी गई हैं और न ही अपनी विचारधारा के प्रचार के लिए। इन कविताओं में कवि की उपेक्षित वर्ग से गहरी संबद्धता परिलक्षित होती है। 'स्मृतिविहीन समय में' तथा 'अनुपस्थिति की जगह' में कवि का गहरा जुड़ाव प्रतिफलित होता है। स्मृतिविहीन होना कहीं न कहीं अस्मिता संकट भी है। स्मृतियों केवल अतीत से जुड़ी हुई नहीं होती हैं, वे वर्तमान को भी प्रभावित करती हैं—

*स्मृतियां जैसे जैसे धुंधली पड़ने लगती हैं
लड़ने की ताकत छीजने लगती हैं (पृ. 98)*

प्रस्तुत कविता संग्रह की 'पानी' 'रतजगा', 'नदी का रास्ता', 'राजा भोज ने तालाब बांधा' जैसी कविताओं में कवि की प्रकृति और पर्यावरण संबंधी चिंताएं सरकार हुई हैं। विकास एवं प्रौद्योगिकी के नाम पर प्रकृति के विनाश से मानव जाति के समक्ष भयानक संकट मंडरा रहा है। राजेश ने पर्यावरण संकट की ओर इशारा किया ही है, साथ ही व्यंजना शब्दशक्ति का मनोज्ञ दृष्टांत भी प्रस्तुत किया है।

*कम हो रहा है धरती में पानी
कम हो रहा है, कुओं में, नदियों में, तालों में पानी
आंखों में पानी कम हो रहा है
बिना पानी का सोना बिना पानी की चांदी
कैसी लगेगी पायल कैसा लगेगा हार? (पृ. 115)*

नदियां नाले में तब्दील होकर अपनी अस्मिता खो बैठती हैं। नदियों का अदृश्य हो जाना हमारे वैज्ञानिक विकास के सामने बहुत बड़ा सवाल खड़ा करता है। पर्यावरण असंतुलन ही नहीं जनजीवन भी महासंकट में है। अंतिम कविता 'राजा भोज ने तालाब बांधा' में कवि में सैनिकों के माध्यम से अपने समय के यथार्थ का चित्रण है तो व्यापक चिंतन भी—

*साहूकारों ने कहा हमारी तिजोरी में बहू बेटियों के गहने हैं
किसानों का खून पसीना है
यह पानी के सोते हम कहां कहां से लाएं महाराज
सैनिकों ने कहा राजा आदेश दे तो हम नगर की सारी बावलियां और
कुएं उलीच दें तालाब में
खून की नदियां बहा दें और जोड़ दें तालाब से
पर पानी के नए सोते हम कहां से लाएं। (पृ. 119)*

कविता संग्रह का शीर्षक 'जिद' केवल 'जिद' कविता के आधार पर नहीं रखा गया है। आज के दौर में जिद की परम आवश्यकता है। जिद बची रहेगी तो तमाम अंतर्विरोधों और विसंगतियों से लड़ने और जूझने की ताकत बची रहेगी। उम्मीद है कि इस संग्रह से समकालीन कविता की नई दिशा प्राप्त होगी।

जिद : राजेशी जोशी, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य : रु. 300

आत्मालाप के विरुद्ध जन संवाद की कोशिश

अरविंद त्रिपाठी

पंकज चतुर्वेदी के नये काव्य संग्रह **रक्तचाप और अन्य कविताएं** पढ़ते हुए यह अवधारणा मजबूत हुई कि साहित्य का प्रयोजन अंततः संवाद है। साहित्यिक विधाओं में कविता, भाव और विचार दोनों ही स्तरों पर ज्यादा घनीभूत, सांद्र और रंगहीन माध्यम है। अतः वह कविता ज्यादा पठनीय और उत्तेजक होती है जो पाठकों से सीधा संवाद करती हो। जिरह और फैसले वह न करे लेकिन संवाद उसके बुनियादी उसूलों में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण पहलू है।

गौर किया जाए तो आठवां दशक आते आते कविता 'संवाद' की जगह 'आत्मसंवाद' और बहुत हद तक स्थितियों, घटनाओं का यथातथ्य चित्रण मात्र बनकर रह गई, पर कविता में यथार्थ का आशय स्थितियों, घटनाओं का यथातथ्य चित्रण नहीं है बल्कि 'यथार्थ' के नाम पर यह धोखा लगता है। दुर्भाग्यवश इस तरह की गिरफ्त में कई प्रतिभाशाली कवि स्वयं आत्मघात का शिकार होकर अलग थलग पड़ गए। हाल के वर्षों तक सातवें दशक के कवियों में भगवत रावत और वीरेन डंगवाल ही ऐसे दो कवि ठहरते हैं जिन्होंने कविता को लगातार जन संवाद से जोड़े रखा।

समकालीन कविता के मौजूदा परिदृश्य में यह देखकर किंचित विस्मय होता है कि पंकज चतुर्वेदी का यह तीसरा काव्य संकलन कविता में 'संवाद' के टूटे पुल को नई पीढ़ी के समाज से जोड़ने की एक कारगर कोशिश लगती है। इस कोशिश में पंकज का कथ्य बेलाग हुआ है। इसलिए रक्तचाप और अन्य कविताओं का तापमान प्रायः चढ़ा हुआ दिखता है। रक्तचाप और तापमान का रिश्ता यूं भी अन्योन्याश्रित है, जो हमारे समय समाज और राजनीति पर भी लागू होता है। पर पंकज की यह खूबी है कि वे ज्यादातर कविताओं में 'संवाद' की ललक के चलते कहीं सीधे सीधे और ज्यादातर बतकही की शैली में कविताओं को अंजाम देते हैं। इसके उदाहरण कई कविताओं से दिये जा सकते हैं। जैसे कला का समय, बारिश, पांच महीने के अपने बच्चे से

बातचीत के बहाने, 1947 में, कुछ सवाल, संबंध, रक्तचाप, संवाद, सबब, सरकारी हिंदी, पुरुषत्व एक उम्मीद, जाति के लिए, कमीनों का क्या है, आते हैं। ये वे कविताएं हैं जो पाठकों से सीधा 'संवाद' करते हुए उनके दिलों में उतरती हैं। आपसी बातचीत की शक्ति में कहीं सहमति बनाती हुई और कहीं असहमति का पाठ पढ़ाती हुई।

इस प्रसंग में 'पांच महीने के अपने बच्चे से बातचीत के बहाने' कविताओं में 'संवाद' बखूबी किया गया है। आमतौर पर पांच माह के बच्चे से बातचीत संभव नहीं है। सिर्फ रुदन ही उसकी भाषा है। उसके रोने के अर्थ को माएं तो समझ लेती हैं, पर पिता भी समझ ले यह बड़ी बात है। इन दोनों कविताओं की खासियत यह है कि इनमें एक पिता अपने अबोध बेटे से बात कर रहा है। कविता की शुरुआत रुदन से शुरू होती है और शिशु के चंद्रमा और नक्षत्रों तक पहुंचने की गाथा रचती है—जब भी तुम रोते हो/मैं जानता हूँ मेरे बच्चे/ तुम कुछ कहना चाहते हो/ और उसे कह नहीं पा रहे हो/...मसलन अपनी नींद भूख/ किसी और इच्छा, जरूरत/या तकलीफ के बारे में कुछ मैं जानता हूँ मेरे बच्चे/एक प्लेट के भीतर/जिसका अपना कोई बगीचा नहीं/ तुम सो नहीं पाते/तुम्हें नींद आती है/ खुले आसमान के नीचे/जहां ठंडी हवा चलती है/ उन सघन वृक्षों की छांव में/ जो सड़क पर बचे रह गए हैं/...दुनिया के सबसे सुखद और समुज्ज्वल विस्मय हैं/ उसके सौंदर्य में जब तुम/ निमज्जित हो जाते हो/मुझसे बहुत दूर/फिर भी कितने पास मेरे/तब मुझे लगता है, मेरे बच्चे/ यह भी एक जरूरी काम है/ जिसके बिना/ मनुष्य होने में संपूर्णता नहीं। (संवाद : पृष्ठ 24,25)

दिलचस्प तथ्य यह है कि पांच माह का यही बच्चा 'संवाद' कविता में एक साल का हो गया है। अब वह पिता के साथ सैर पर निकल चुका है। जो रास्ते में मिलने वाली गाय, बैल, भैंस, कुत्ता, बकरी, सुअर, से बात करना चाहता है। कवि पिता की मुश्किल है कि 'वह कितनी ममता से चाहता है कि वे उससे बात करें। मैं एक लाचार दुभाषिये की मॉनिटिंग दुखी होता हूँ/ मैं उसे कैसे समझाऊँ/ वे बोल नहीं सकते...तब मुझे उसकी ललक/अच्छी लगती है/ जो दरअसल यह बताती है कि/ संवाद हर सूरत में संभव है। (संवाद : पृ. 53, 54)

कहने की जरूरत नहीं कि इन दोनों कविताओं में 'संवाद' के लिए अबोध बच्चे से जो कोशिश है, वह विलक्षण है। यह कविता पिता पुत्र का संवाद भर नहीं प्रकृति और मनुष्य का भी संवाद है। कवि ने जिस सादगी के साथ बाल मन की कोमल अनुभूतियों के महीन कणों को पकड़ने की कोशिश की है वह विलक्षण है। कविता यह बताती है कि एक अबोध बच्चे का संवाद सिर्फ मां बाप, आसपास, घर परिवार से ही नहीं होता बल्कि पूरी सृष्टि, पूरे ब्रह्मांड चराचर जगत से होता है। देखा जाए तो एक बच्चे के संवाद की दुनिया वयस्क आदमी के मुकाबले व्यापक होती है। जीवन में उम्र बढ़ने पर विस्मयता का जीवन तत्व विलुप्त होने लगता है। मनुष्य के अंतःकरण का आयतन क्रमशः सिकुड़ने लगता है। इस कविता में 'विस्मय' के बाल मनोविज्ञान को जिस सूक्ष्म अंतर्दृष्टि के साथ कवि ने रचने की कोशिश की है वह न केवल काबिले तारीफ है बल्कि इधर की लिखी जा रही कविताओं के बीच कविता का माडल भी पेश करती है। इस कविता में सादगी का सौंदर्यबोध दरअसल कवि के सहज भावबोध के साथ अभिव्यक्त करने की कला में उसकी सादगी है।

श्रीकांत वर्मा की कविता 'हस्तक्षेप' में सड़क के बीच से गुजरता हुआ एक मुर्दा प्रश्न पूछता है—'मनुष्य क्यों मरता है?' जिस समाज में नवजात बच्चे और मुर्दे प्रश्न पूछने लगे आप अंदाजा लगा सकते हैं कि वह सामाजिक सभ्यता कितनी जागरूक होगी। वह समाज कितना सभ्य और विकसित होगा। जबकि व्यवस्थाएं सरकारें संवाद से भागती हैं, प्रश्न पूछने से घबराती हैं और आपको देशद्रोही करार देती हैं। पर लोकतंत्र में 'संवाद' और 'हस्तक्षेप' की प्रक्रिया को खत्म नहीं

किया जा सकता। लोकतंत्र में विश्वास रखने वाले नागरिकों और कविता में जनतांत्रिकरण की प्रक्रिया को बहाल रखने वाले कवियों को आज कविता में आत्मसंवाद की बजाय दूसरों से संवाद करने की जरूरत है। इस लिहाज से पंकज की कविता का लहजा आज की कविता की बुनियादी विशेषता है। उनकी संवादधर्मी कविताओं की खासियत है कि वे बिना किसी भूमिका के कविता को सामने वाले के समक्ष बयां करते हैं। बिना किसी लागलपेट या हुज्जत के दोटूक, चुस्त और निरावरण, निरालंकरण विन्यास में उनकी कविता में कथ्य यानी विषयवस्तु महत्वपूर्ण होती है—बाकी रूपविधान अवांतर प्रसंग लगता है।

इस संग्रह की ढेरों कविताएं बतकही करती हैं। पर खासियत यह है कि वह बतकही ही मात्र नहीं रह जाती। कविता के अंत तक जाते जाते 'हस्तक्षेप' का एक नया मंत्र फूंक जाती है। लगभग आप्त वाक्य में खत्म होने वाली कविताएं पाठक को गहरी सोच या बेचैनी में डालकर आगे बढ़ जाती हैं। कुछ उद्धरण प्याप्त होंगे— *रामलीला में धनुष यज्ञ के दिन/ राम का अभिनय/ राजकुमार का अभिनय है...नरेश के पिता किसान थे / सहसा मंच के बगल से/ दबी जुबान से उन्होंने पुकारा/ नरेश घर चलो/ सानी पानी का समय हो गया है/ मगर नरेश नरेश नहीं था/ राम था/ इसलिए उसने एक के बाद एक/ कई पुकारों को अनसुना किया/ आखिर पिता मंच पर पहुंच गए/ और उनका यह कहा बहुते ने सुना/ लीला बाद में हो जाएगी/ पर सानी पानी का समय हो गया है।* (कला का समय, पृ. 15-16)

इस कविता में कला के समय में जीवन यथार्थ की सीधी भिड़ंत देखने लायक है। जहां मंच पर पिता की धौंस कला समय के परखचे उड़ा देती है, वहीं 'सबब' कविता में धर्म के प्रति आम मनुष्य की निगाह क्या है इसे देखने के लिए यह कविता गवाह का काम करती है। कविता की शुरुआत और अंत दोनों देखने लायक है— *सोमवार का दिन/ अचरज हुआ/ उसकी दुकान खुली थी/ पूछा शिवाले नहीं गए? उसने कहा : / नहीं/ आजकल हम उनसे नाराज चल रहे हैं।...उसने रहस्य भरी मुस्कराहट के साथ जवाब दिया : / नहीं/ हमारा झगड़ा उनसे है/ अब यह ऐसी बात है कि मुस्कराये बगैर आप भी रहेंगे नहीं* (पृ. 58) कहीं कहीं कविता और बतकही इतनी दिलचस्प हो जाती है कि बतरस का आनंद झरता है। इस बतरस अंदाज में कहीं कहीं भाषा का खिलंदड़ापन देखने लायक होता है जो पंकज की पहचान बनती जा रही है। देखा जाय तो कविता में सादगी का यह परिधान दरअसल साधारण जीवन की सोच से उपजा है। कहने की जरूरत नहीं कि सादगी का यह काव्य विन्यास ही आज की कविता का वास्तविक सौंदर्यबोध है। इसे मैं पंकज की कविता की वास्तविक उपलब्धि मानता हूं। हिंदी साहित्य में सादगी के सौंदर्य का पहला पाठ कथा में प्रेमचंद ने पढ़ाया था और कविता में त्रिलोचन ने। बाद में वह भगवत रावत, वीरेन डंगवाल में विकसित होता हुआ कविता की उर्वर जमीन बना। पंकज की यह काव्यशक्ति इस काव्य संकलन की आत्मा है जहां वे निर्भ्रांत वास करना चाहते हैं।

तीसरी खास बात यह कि पंकज साधारण जीवन की खोज से निकले सामाजिक कर्म के कवि हैं। इस संग्रह में उनकी राजनीतिक आशय वाली कविताएं इस तथ्य की ओर इशारा करती हैं कि वे व्यवस्था की खूबियों और खामियों पर निगाह रखने वाले एक चौकन्ने कवि हैं। हिंदी में राजनीतिक कविता लिखने वाले नागार्जुन और रघुवीर सहाय के बाद कम कवि हैं जो कविता में राजनीतिक समझ रखते हैं। पंकज की कुछ कविताएं इस लिहाज से पठनीय हैं क्योंकि उनमें जातिवाद, सांप्रदायिकता के आंतरिक पहलुओं पर दृष्टिपात किया गया है और जगह जगह हस्तक्षेप करते हुए प्रहार भी किया गया है— *1947 में जो मुसलमान थे/ उन्हें क्यों चले जाना चाहिए था पाकिस्तान?/ जिस जगह राम के जनमने का/ कोई सबूत नहीं था/वहां जब बाबरी मस्जिद का/*

दूसरा गुम्बद भी ढहा दिया गया/ तो पहले और दूसरे गुम्बद के बीच/ सरकार कहां थी/ कहां था देश/ और संविधान?...दरअसल बाहर से आया हुआ/ किसी को बताना/ उसे भीतर का न होने देना है। (कला का समय, पृ. 15-16)

इसी तरह 'जातिप्रथा पर' कविता में गिरिराज किशोर से यह संवाद मौजूदा राजनीति में शामिल जातिव्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है— शाम को मैं मशहूर कथाकार/ गिरिराज किशोर के घर गया/ मैंने पूछा देश का क्या होगा?/ उन्होंने कहा देश का अब/ कुछ नहीं हो सकता फिर वे बोले: अभी/ वैश्य महासभा वाले आए थे/ कह रहे थे— आप हमारे/ सम्मेलन में चलिए (जाति के लिए, पृ. 69, 70)

गौर करने की बात है कि पंकज की राजनीतिक और सामाजिक रुझान की कविताओं में उनके कवि के भीतर छिपा हुआ आखेटक यानि उनका आलोचक जगह जगह वास्तविक हस्तक्षेप के साथ आप्तवचनों से लैश टीपें दर्ज करता है— दर्द है इस समाज को/ बहुत है/ पर उस दुख के कारणों पर कोई रेडिकल बहस नहीं है।...पर वह संघर्ष नहीं/ उसका मिथ होता है/ वह इतना निजी होता है/ कि कैंसर होता है। (पृ. 17, 18) और आप जो कुछ हैं/ अपनी बदौलत है। (पृ. 23) दुख के कारण होते हैं/ और उसके रिश्ते/ हमारे समय/ और जिंदगी के हालात से/ चाहे उन्हें कोई देखने पाए/ और देख पा रहा है/ तो इस तरह के झूठ का प्रचार करना/ किसी सामाजिक अपराध से कम नहीं है। (पृ. 24, 25) मुझे लगा, किस्सागो कवि से कहूं/ अगर यह आपकी चेतना में है/ यथार्थ में है/ तो आप सिर्फ इशारा कर रहे हैं/ एक निर्वेक्तक इशारा/ देखिये यह सब कहाँ से लौट आया है। (पृ. 64)

इन काव्य पक्तियों के उद्धरणों में कवि के आलोचनात्मक विवेक का इस्तेमाल गौरतलब है। खासतौर से अंतिम काव्य उद्धरण में 'निर्वेयक्तकता' शब्द का इस्तेमाल काव्य में बेजा लगता है। क्योंकि यह शब्द काव्यजनोचित नहीं है। ऐसे काव्य प्रयोगों का इस्तेमाल करते वक्त कवि को यह भूल नहीं जाना चाहिए कि वह काव्य का आलोचक भी है। असल में दो घोड़ों की साथ साथ सवारी में घोड़ों का तो कुछ नहीं बिगड़ता, घायल सिर्फ सवार होता है।

अंत में संग्रह की 'पुरुषत्व एक उम्मीद' जैसी जागरूक और आज के दौर में सभ्यता समीक्षा पर एक बेवाक टिप्पणी करती कविता का जिक्र जरूरी समझता हूं। इस कविता का प्रश्न है—आखिर मोबाइल आप कहां रखोगे? डाक्टरों का मत है कि अगर पैंट की जेब में रखेंगे तो पुरुषत्व जा सकता है। कमीज के बाईं ओर ऊपरी जेब में रखेंगे तो दिल को खतरा है। इस डाक्टरी निष्कर्ष का समाहार करते हुए कवि ने लिखा है— इस पर एक उच्चस्तरीय भारतीय संस्थान में/ कुछ बुद्धिजीवी/ अपने सहधर्मी के सुझाव से/ सहमत और गदगद थे/ कि दिल भले जाय/ हम तो पुरुषत्व को बचाएंगे/ इस तरह मैंने जाना पुरुषत्व एक उम्मीद है समाज की/ जिसके पास दिल नहीं रहा।

कहने की जरूरत नहीं कि यह कविता हमारे तथाकथित पुरुषवादी समाज के मौजूदा दौर पर एक तीव्र कशाघात है। पर जो समाज के 'कमीने' हैं वे तो इसे हरगिज नहीं समझ पाएंगे। कहने की जरूरत नहीं कि जिनके पास अभी दिल साबुत बचा है वे जरूर सोचेंगे और सिहरेंगे।

और अंत में इस संकलन में पंकज की प्रेमपरक कविताएं भी शामिल हैं। पर उनकी प्रेम कविताओं पर अलग से फिर कभी विचार करूंगा। यहां 'तिल' जैसी विलक्षण स्मृति की कविता की बानगी पेशकर उनके प्रेमशास्त्र की लौकिकता की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूं— सौंदर्य जहां सघन हुआ था/ वहां तिल था/ तिल को चूमना/ समूचे सौंदर्य को चूमना था। (पृ. 88)

रक्तचाप और अन्य कविताएं : पंकज चतुर्वेदी, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, मूल्य : रु. 325

इस अंक के लेखकों के मोबाइल नंबर

| | | |
|---------------------|---|------------|
| विनोद कुमार शुक्ल | : | 9425515382 |
| अनिल त्रिपाठी | : | 9412569594 |
| वीर भारत तलवार | : | 9560857548 |
| राहुल सिंह | : | 9308990184 |
| अरुण कमल | : | 9931443866 |
| सुधांशु फिरदौस | : | 9891700243 |
| एकांत श्रीवास्तव | : | 9433135365 |
| जितेंद्र श्रीवास्तव | : | 9818913798 |
| महेश वर्मा | : | 9713610339 |
| सुजाता | : | 9911869977 |
| अरविन्द मोहन | : | 9811826111 |
| जितेंद्र भाटिया | : | 9460885550 |
| राकेश मिश्र | : | 9970251140 |
| मनोज कुमार पांडे | : | 8275409685 |
| प्रदीप भार्गव | : | 9415237820 |
| ममता कालिया | : | 9212741322 |
| असगर वजाहत | : | 9818149015 |
| राजू शर्मा | : | 9871054093 |
| अच्युतानंद मिश्र | : | 9213166256 |
| अमृता जोशी | : | 9828764367 |
| राजीव कुमार | : | 9990524542 |
| नीरज खरे | : | 9450252498 |
| अरुण होता | : | 9434884339 |
| अरविन्द त्रिपाठी | : | 9415313214 |

केंद्रीय हिंदी संस्थान

मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

संपर्क : हिंदी संस्थान मार्ग, आगरा - 282005, फोन: 0562-2530684, वेबसाइट: www.hindisansthan.org, www.khsindia.org

संक्षिप्त परिचय

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार के शिक्षा विभाग द्वारा 1961 ई. में स्थापित एक स्वायत्त शैक्षिक संस्था है। इसका संचालन स्वायत्त संगठन केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल द्वारा किया जाता है। संस्थान का मुख्यालय आगरा में स्थित है और इसके आठ क्षेत्रीय केंद्र, दिल्ली, हैदराबाद, गुवाहाटी, शिलांग, मैसूर, दीमापुर, भुवनेश्वर तथा अहमदाबाद में हैं।

संस्था के प्रमुख उद्देश्य

■ भारतीय संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुपालन में अखिल भारतीय भाषा के रूप में हिंदी का विकास करते हुए इसके विकास और प्रसार की दृष्टि से उपयोगी शैक्षणिक पाठ्यक्रमों की प्रस्तुति एवं संचालन। ■ विभिन्न स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण हिंदी शिक्षण का प्रसार, हिंदी शिक्षकों का प्रशिक्षण, हिंदी भाषा और साहित्य के उच्चतर अध्ययन का प्रबंधन, हिंदी के साथ विभिन्न भारतीय भाषाओं के तुलनात्मक भाषा वैज्ञानिक अध्ययन को प्रोत्साहन और हिंदी भाषा एवं शिक्षण से जुड़े विविध अनुसंधान कार्यों का आयोजन। ■ अपने विभिन्न पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के लिए परीक्षा आयोजन तथा उपाधि वितरण। ■ संस्थान की प्रकृति एवं उद्देश्यों के अनुरूप उन अन्य संस्थाओं के साथ जुड़ना या संदस्ता प्रहण करना या सहयोग करना या सम्मिलित होना, जिनके उद्देश्य संस्थान के उद्देश्यों से मिलते-जुलते हों और इन समान उद्देश्यों वाले संस्थानों को संबद्धता प्रदान करना। ■ समय-समय पर नियमानुसार अध्येतावृत्ति (फेलोशिप), छात्रवृत्ति और पुरस्कार, सम्मान पत्रक की स्थापना कर हिंदी से संबंधित कार्यों को प्रोत्साहन आदि।

संस्थान के कार्य

- शिक्षणपरक कार्यक्रम : (i) विदेशी विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण, (ii) हिंदीतर राज्यों के विद्यार्थियों के लिए अध्यापक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, (iii) नवीकरण एवं संवर्द्धनात्मक कार्यक्रम, (iv) दूरस्थ शिक्षण कार्यक्रम (स्ववित्तपोषित), (v) जनसंचार एवं पत्रकारिता, अनुवाद अध्ययन और अनुपयुक्त हिंदी भाषाविज्ञान के सांध्यकालीन पाठ्यक्रम (स्ववित्तपोषित)
- अनुसंधानपरक कार्यक्रम : (i) हिंदी शिक्षण की अपुनानत प्रविधियों के विकास के लिए शोध, (ii) हिंदी भाषा और अन्य भारतीय भाषाओं का तुलनात्मक व्यतिक्रमिक अध्ययन, (iii) हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में आधारभूत एवं अनुपयुक्त अनुसंधान, (iv) हिंदी भाषा के आधुनिकीकरण और भाषा प्रौद्योगिकी के विकास के उद्देश्य से अनुसंधान, (v) हिंदी का समाज भाषा वैज्ञानिक सर्वेक्षण और अध्ययन, (vi) प्रयोजनमूलक हिंदी से संबंधित शोधकार्य अनुसंधानपरक कार्यों के अंतर्गत द्वितीय भाषा एवं विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण के लिए उपयोगी शिक्षण सामग्री का निर्माण
- शिक्षण सामग्री निर्माण और भाषा विकास : (i) हिंदीतर राज्यों और जनजाति क्षेत्र के विद्यार्थियों के लिए हिंदी शिक्षण सामग्री निर्माण, (ii) हिंदीतर राज्यों के लिए हिंदी का व्यतिक्रमिक व्याकरण एवं द्विभाषी अध्येता कौशलों का निर्माण, (iii) विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण पाठ्यपुस्तकों का निर्माण, (iv) कंप्यूटर साधित हिंदी भाषा शिक्षण सामग्री का निर्माण, (v) दूर-श्रव्य माध्यमों से हिंदी शिक्षण संबंधी पाठ्यसामग्री का निर्माण, (vi) हिंदी तथा हिंदीतर भारतीय भाषाओं के द्विभाषी/त्रिभाषी शब्दकोशों का निर्माण।

संस्थान के प्रकाशन : हिंदी भाषा एवं साहित्य, भाषाविज्ञान, अनुपयुक्त भाषाविज्ञान, तुलनात्मक एवं व्यतिक्रमिक अध्ययन, भाषा एवं साहित्य शिक्षण, कोश विज्ञान आदि से संबद्ध विभिन्न विषयों पर उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन अब तक 150 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न स्तरों एवं अनेक प्रयोजनों की पाठ्यपुस्तकों, सहायक सामग्री तथा अध्यापक निर्देशिकाओं का प्रकाशन। त्रैमासिक पत्रिका - 'गवेषणा', 'मीडिया' और 'समन्य पूर्वोत्तर' का प्रकाशन।

पुस्तकालय : भाषाविज्ञान, अनुपयुक्त भाषाविज्ञान, भाषा शिक्षण और हिंदी साहित्य के विभिन्न विषयों की पुस्तकों के विशेषीकृत संग्रह की दृष्टि से हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पुस्तकालयों में से एक। लगभग एक लाख पुस्तकें लगभग 75 पत्र-पत्रिकाएँ (शोधपरक एवं अन्य)।

संस्थान से संबद्ध प्रशिक्षण महाविद्यालय : हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के स्तर को समुन्नत करने तथा पाठ्यक्रम में एकत्रित लाने के उद्देश्य से उत्तर गुवाहाटी (असम), आइजोल (मिजोरम), मैसूर (कर्नाटक), दीमापुर (नागालैंड) के राजकीय त्रिभाषी शिक्षण-प्रशिक्षण महाविद्यालयों को संस्थान से संबद्ध किया गया है।

योजनाएँ : भारतीय सांस्कृतिक केंद्र, कोलंबो में सिंहली विद्यार्थियों के लिए केंद्रीय हिंदी संस्थान के पाठ्यक्रम की 2007-08 से शुरुआत। ■ अफगानिस्तान के नानारहर विद्याविद्यालय (जलालाबाद) में संस्थान द्वारा निर्मित बी.ए. का पाठ्यक्रम 2007-08 से प्रारंभ। ■ विश्व के कई अन्य देशों (चेक, स्लोवाकिया, यू.एस.ए., यू.के., मौरिशस, बेनिन, ब्रुन आदि) के साथ शैक्षणिक सहयोग और हिंदी पाठ्यक्रम संचालन के संबंध में संवाद जारी। ■ हिंदी के बहुआयामी संवर्धन के लिए हिंदी कौशलों परियोजना, हिंदी लोक शब्दकोश परियोजना, भाषा-साहित्य सीडी निर्माण परियोजना, पूर्वोत्तर लोक साहित्य परियोजना, तम्रु हिंदी विश्वकोश परियोजना पर कार्य।

- डॉ. कमल किशोर गोयनका
उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल
ई-मेल: kkgovanka@gmail.com

- प्र. नन्द किशोर पाण्डेय
निदेशक

ई-मेल: nkpandey65@gmail.com
director@khs@yahoo.co.in